ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

मेसर्स एग्रोस इंपेक्स इंडिया प्राईवेट लिमिटेड

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 118 of 2013. Decided on 30th April, 2013.

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 6, नियम 17 सह-पठित आदेश 7, नियम 7—अनुतोष का परिवर्तन—जहाँ मुकदमा लंबित रहने के दौरान अनुतोष का परिवर्तन आवश्यक बनाने वाली कुछ घटना होती है, यह न्यायालय को पश्चातवर्ती घटना का ध्यान लेने और तद्नुसार अनुतोष का परिवर्तन करने के लिए सशक्त बनाती है—वाद/रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान कोई पश्चातवर्ती घटनाक्रम जो अनुतोष का परिवर्तन आवश्यक बनाता है, न्यायालय नयी घटना का संज्ञान ले सकता है—सी॰ पी॰ सी॰ को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कार्यवाही के प्रति प्रयोज्य नहीं बनाया गया है किंतु सी॰ पी॰ सी॰ के सिद्धांत सारवान रूप से रिट कार्यवाही पर भी लागू होते हैं। (पैराएँ 6 से 9)

(ख) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 1 नियम 10—वाद में पक्ष को पक्षकार बनाया जाना—Dominus Litis के सिद्धांत के बावजूद सी॰ पी॰ सी॰ का आदेश I, नियम 10 न्यायालय को यह पाने पर कि अन्य व्यक्ति, जिसे वाद में पक्ष के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया है, विवाद्यक/विवाद्यकों को पूरी तरह और प्रभावकारी रूप से विनिश्चित करने के लिए आवश्यक पक्ष है, स्वयं अपने प्रस्ताव पर वाद में किसी व्यक्ति को पक्षकार बनाने के लिए सशक्त बनाती है। (पैरा 8)

अधिवक्तागण.—M/s Jitendra Singh, Pandey Neeraj Rai, Suraj Samdarshi, For the Appellant; Mr. Rajesh Shankar, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. विवाद ने इसी समय पर दूरगामी परिणाम इस कारण से इप्सित किया कि जहाँ याची ने उच्च सुरक्षा रजिस्ट्रेशन प्लेटों की आपूर्ति और चिपकाने के लिए झारखंड सरकार के परिवहन विभाग के साथ इसके द्वारा किए गए करार की समाप्ति के विरुद्ध रिट याचिका दाखिल किया, अंतरिम अनुतोष के लिए याची का आवेदन आई॰ ए॰ सं॰ 2701 वर्ष 2012 विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 25.9.2012 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। दिनांक 25.9.2012 के इस आदेश के विरुद्ध याची ने एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 424 वर्ष 2012 दाखिल किया जिसमें याची-अपीलार्थी का प्रतिवाद यह था कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा याची-अपीलार्थी के हित की सुरक्षा करने के लिए उसकी प्रार्थना पर विचार नहीं किया गया था। इस न्यायालय की खंडपीठ ने (हमनें) संप्रेक्षित किया कि आक्षेपित आदेश से यह स्पष्ट नहीं है कि ऐसा तर्क किया गया था अथवा यदि किया गया था, ऐसे तथ्यों और अवस्था को केवल पुनर्विलोकन अधिकारिता में स्पष्ट किया जा सकता है। ऐसा संप्रेक्षण करते हुए दिनांक 8.10.2012 के आदेश के तहत एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 424 वर्ष 2012 खारिज कर दिया गया था। याची-अपीलार्थी ने एस॰ एल॰ पी॰ (सिविल) सं॰ 31556 वर्ष 2012 दाखिल करके दिनांक 25.9.2012 और दिनांक 8.10.2012 के पूर्वोक्त आदेशों को चुनौती दिया जिसे दिनांक 16.10.2012 के आदेश के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में जब प्रत्यर्थी ने दिनांक 5.9.2012 का एक अन्य एन॰ आई॰

टी॰ जारी किया, याची ने आई॰ ए॰ दाखिल करके प्रत्यर्थी की उस कार्रवाई को चुनौती देना इप्सित किया किंतु तब प्रत्यर्थी ने दिनांक 5.9.2012 के एन॰ आई॰ टी॰ को रद्द करने का निर्णय लिया और पुन: दिनांक 8.11.2012 का निविदा नोटिस जारी किया। दिनांक 8.11.2012 की ऐसी निविदा नोटिस के अनुसरण में वही संविदा जो पहले याची को अधिनिर्णीत की गयी थी, मेसर्स रोजमार्ता टेक्नोलॉजी लिमिटेड को अधिनिर्णीत की गयी थी। यह स्थिति पाते हुए याची ने आवेदन आई॰ ए॰ सं॰ 359 वर्ष 2013 दाखिल किया और प्रार्थना किया कि उक्त मेसर्स रोजमार्ता टेक्नोलॉजी लिमिटेड को रिट याचिका में पक्ष प्रत्यर्थी सं॰ 4 के रूप में पक्षकार बनाया जा सकता है। याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 4 को उच्च सुरक्षा रजिस्ट्रेशन प्लेटों की आपूर्त्ति और चिपकाने के कार्य के पंचाट का अभिखंडन और अपास्त किए जाने का अनुतोष भी इप्सित किया। याची ने इस आई॰ ए॰ सं॰ 359 वर्ष 2013 में बदली स्थिति में समुचित नए अभिवचनों को किया ताकि पक्षकार बनाए जाने के लिए इप्सित प्रत्यर्थी पक्ष को संविदा के पंचाट को चुनौती दी जा सके। उक्त आवेदन (आई॰ ए॰ सं॰ 359 वर्ष 2013) विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सुना गया था और खारिज कर दिया गया है। अत: याची–अपीलार्थी द्वारा इस एल॰ पी॰ ए॰ को दाखिल किया गया है।

3. अपीलार्थी के लिए उपस्थित अधिवक्ता श्री पांडे नीरज राय द्वारा सहायित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री जितेन्द्र सिंह ने जोरदार निवेदन किया कि वादी याची के हित की सुरक्षा के लिए पक्ष को पक्षकार बनाया जाना आवश्यक था। पक्षकार बनाए जाने के लिए इप्सित पक्ष पश्चातवर्ती घटनाक्रम के कारण आवश्यक पक्ष बन गया और घटना रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान हुई थी। यह निवेदन भी किया गया है कि याची संविदा के अधीन अपने अधिकार का दावा कर रहा है और अपनी संविदा की समाप्ति को चुनौती दे रहा है और वह अनुतोष केवल तब पा सकता है जब किसी अन्य को ऐसी संविदा नहीं दी जाती है। इस मामले में, केवल याची की संविदा के रद्दकरण के कारण प्रत्यर्थी ने नयी निविदा आमंत्रित किया था जिसके प्रत्युत्तर में नया पक्ष चित्र में आया था। यदि याची की संविदा का समाप्ति आदेश अपास्त किया जाता है, तब स्वभाविकत: प्रत्यर्थी, जिसने रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान संविदा पाया, को सुनवाई का अधिकार हो सकता है अथवा नहीं हो सकता है किंतु वह प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने के लिए बाध्य है, अत: इस याचिका में नए पक्ष को पक्षकार बनाना याची के लिए आवश्यक है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने विधि की गंभीर गलती भी किया क्योंकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस उपधारणा पर कि जब रिट याची के पक्ष में अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है, याची अंतिम अनुतोष पाने का हकदार नहीं है जो विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पैरा 4 में दिए गए निष्कर्ष से प्रकट है। तथ्य के उस दृष्टिकोण में, और यदि उस दृष्टिकोण को स्वीकार किया जाता है, तब भी नया पक्ष इस कारण से आवश्यक पक्ष है कि आवश्यक पक्ष की उपस्थिति के बिना, जो नयी एन॰ आई॰ टी॰ के अधीन संविदा का लाभ पाएगा, यह अभिनिर्धारित करने के पहले सुनने की आवश्यकता है कि संविदा के पूर्विक अधिनिर्णय की दृष्टि में, जिसे अवैध रूप से समाप्त कर दिया गया है, वाद में अधिनिर्णीत संविदा पर कोई प्रभाव नहीं होगा। याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया कि ऐसे मामले में भी जहाँ विनिर्दिष्ट और सकारण आदेश द्वारा अंतरिम अनुतोष की प्रार्थना से इनकार किया गया है, तब भी, उस स्थिति में याची की रिट याचिका अंतरिम प्रार्थना से इनकार के आधार पर खारिज नहीं की जा सकती है।

4. याची–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **उदित नारायण सिंह मलपहारिया बनाम अपर सदस्य, राजस्व बोर्ड, बिहार एवं एक अन्य, AIR (1963)SC 786; पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम शिवानंद पाठक एवं अन्य, (1998)5 SCC 513; राम कुमार वर्णवाल बनाम रामलखन, (2007)5 SCC 660** और **प्रबोध वर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1984)4 SCC 251** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है।

5. प्रत्यर्थी श्री राजेश शंकर के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि स्वयं याची ने अंतरिम अनुतोष प्राप्त करने के लिए समुचित आवेदन दिया जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनुज्ञात नहीं किया गया था और याची इस न्यायालय की खंडपीठ के पास और सर्वोच्च न्यायालय के पास भी गया, किंतु वह नयी निविदा आमंत्रित करने से प्रत्यर्थी को अवरुद्ध करते हुए किसी अंतरिम प्रकृति का अनुतोष नहीं पा सका था। उस तथ्यपरक-स्थिति में, प्रत्यर्थी ने निविदा आमंत्रित किया और संविदा के अधिनिर्णय के लिए शुरु की गयी नयी प्रक्रिया में याची ने भाग नहीं लिया था। उस स्थिति में, याची नए पक्ष को बाद में अधिनिर्णीत की गयी संविदा को चुनौती नहीं दे सकता है। यह निवेदन भी किया गया है कि उच्च सुरक्षा रजिस्ट्रेशन प्लेटों की आपूर्ति और चिपकाने का काम समय की अनुबंधित अवधि के भीतर पूरा किए जाने की आवश्यकता है।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है। आरंभ में ही, हम यहाँ संप्रेक्षित कर सकते हैं कि सी॰ पी॰ सी॰ का आदेश 7 नियम 7 ऐसी स्थिति का पूर्ण उत्तर है। जहाँ अनुतोष के परिवर्तन को आवश्यक बनाने वाले मुकदमें के लंबित रहने के दौरान कुछ घटना होती है, यह न्यायालय को पश्चातवर्ती घटना को ध्यान में लेने के लिए और तद्नुसार अनुतोष का परिवर्तन करने के लिए सशक्त बनाती है।

7. उक्त के अतिरिक्त, सी॰ पी॰ सी॰ का आदेश 6 नियम 17 अभिवचनों का संशोधन करने की अनुमति देता है ताकि पक्षकार प्रभावित करने वाली पश्चातवर्ती घटना को सम्मिलित करने के लिए उसी मुकदमें में संशोधन इप्सित कर सकता है अथवा जो एक अन्य वाद को आवश्यक बनाने से बचने के उद्देश्य के साथ बदली परिस्थिति में समुचित अनुतोष प्राप्त करने के लिए आवश्यक है अथवा अनुतोष के लिए याचिका जिसे मूलत: संस्थापित वाद अथवा याचिका में दिया जा सकता है।

8. सी॰ पी॰ सी॰ का आदेश 1 नियम 10 उस स्थिति जो हमारे समक्ष है का पूर्ण उत्तर है। सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 1 नियम 10 के दो पहलू हैं: (i) कोई भी जिसे पक्ष के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया है, वाद में स्वयं को पक्ष के रूप में पक्षकार बनाए जाने के लिए आवेदन दे सकता है और (ii) वादी-याची अथवा प्रतिवादी भी तृतीय पक्ष को वाद में पक्ष के रूप में पक्षकार बनाए जाने के लिए आवेदन दे सकता है। Dominus Litis के सिद्धांत के बावजूद सी॰ पी॰ सी॰ का आदेश 1 नियम 10 न्यायालय को यह पाने पर कि पक्ष के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया अन्य व्यक्ति विवाद्यक/विवाद्यकों को पूरी तरह और प्रभावकारी रूप से विनिश्चित करने के लिए वाद में आवश्यक पक्ष है, स्वयं अपने प्रस्ताव पर वाद में पक्ष को पक्षकार बनाने के लिए सशक्त बनाता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रक्रिया संहिता को कार्यवाही के प्रति प्रयोज्य नहीं बनाया गया है किंतु इसी समय पर सिविल प्रक्रिया संहिता के सिद्धांत सारवान रूप से रिट कार्यवाही में भी लागू होते हैं। अन्यथा भी, यदि स्वयं न्यायालय द्वारा प्रक्रिया अधिकथित की जाती है, तब भी हमारा सुविचारित मत है कि जहाँ सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 17 नियम 7 और सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 1 नियम 10 के अधीन विहित प्रक्रिया का संबंध है, वे विधि के प्रावधान हैं जो निश्चय ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन मामलों पर विचार करते हुए न्यायालयों को मार्गदर्शित करते हैं ताकि पश्चातवर्ती घटना को ध्यान में लेकर और मुकदमा में आवश्यक पक्ष को पक्षकार बनाकर पूरा न्याय किया जा सके।

9. इस मामले में, हम पुन: स्मरण कर सकते हैं कि याची को संविदा अधिनिर्णीत की गयी थी और संविदा समाप्त कर दी गयी है और याची-अपीलार्थी की उस संविदा की समाप्ति चुनौती के अधीन है। याची को यह दर्शाने का प्रत्येक अधिकार है कि संविदा की समाप्ति का आदेश अवैध था और समस्त विधिक आवश्यकताओं के परिपूर्ण करने के अध्यधीन, जिसे याची-अपीलार्थी द्वारा परिपूर्ण किया जाना आवश्यक है, संविदा के अधीन काम पूरा करने का अधिकार उसके पास है। इस चरण पर, जब मामला अंतिम सुनवाई के लिए नहीं लिया गया है, कोई उपधारणा नहीं हो सकती है कि याची-अपीलार्थी का

गुणागुण पर मामला नहीं है जहाँ तक उसकी संविदा की समाप्ति को अपास्त करने के लिए उसके अनुतोष का संबंध है और यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि याची किसी भी स्थिति में इस संविदा को पुनर्जीवित करवाने का अवसर नहीं पाएगा। अंतरिम चरण पर, सिवाए उस चरण के जहाँ स्वयं वाद की पोषणीयता का विवाद्यक विचाराधीन है, यह उपधारित करके कि याची दावा किया गया अनुतोष पाने में सफल नहीं हो सकता है अथवा नहीं होगा, अन्य विवाद्यकों को विनिश्चित करना समुचित नहीं है। पश्चातवर्ती घटना के कारण अभिवचनों में संशोधन पर विचार करने के समय पर और पक्ष जोड़ने के लिए आवेदन पर भी विचार करने के समय पर न्यायालय को उपधारित करना चाहिए, जबतक विधिपूर्ण कारण और चरण नहीं है, कि याची दावा किए गए अनुतोष का हकदार हो सकता है। अत: वाद/रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान न्यायालय किसी पश्चातवर्ती घटनाक्रम जो अनुतोष का परिवर्तन आवश्यक बनाता है, संज्ञान ले सकता है। वाद/रिट के लंबित रहने के दौरान पश्चातवर्ती घटना जो प्रत्यर्थी के कार्रवाई के कारण हुई, वादी/याची के अधिकार को विनष्ट नहीं कर सकती है। वर्तमान मामले में, यदि याची यह दर्शाने में सफल होगा कि उसकी संविदा की समाप्ति का आदेश अवैध था और वह प्रश्नगत काम का हकदार भी है, तब उस स्थिति में, यह निश्चय ही पक्षकार बनाए जाने के लिए इप्सित पक्ष के हित के विरुद्ध होगा। उस स्थिति में, यह आवश्यक है कि याचिका में ऐसे पक्ष को पक्ष के रूप में जोड़ा जाना चाहिए। न्यायालय पश्चातवर्ती घटना की जानकारी होने पर अथवा अपने ध्यान में लाए जाने पर पश्चातवर्ती घटना को आवेदन अथवा अन्यथा के रूप में ध्यान में ले सकता है किंतु सामान्यत: अभिवचन में पश्चातवर्ती घटना को सम्मिलित करना समुचित हो सकता है ताकि अन्य पक्ष प्रतिवाद कर सके, अत: ऐसी स्थिति में यदि संशोधन इप्सित किया जाता है, सामान्यत: इसे अनुज्ञात करना होगा।

10. इसके अतिरिक्त, संप्रेक्षण कि ''काम की निविदा पुन: आमंत्रित करने से और किसी सक्षम और पात्र एजेंसी को इसे आवंटित करने से प्रत्यर्थी सरकार को रोकता हुआ कोई अंतरिम आदेश नहीं था और न ही याची आई॰ ए॰ सं॰ 3301 वर्ष 2012 में ऐसी पुनर्निविदा को चुनौती देता है जिसे तद्नुसार खारिज कर दिया गया था'', याची के आवेदन का अस्वीकरण भी विधि के विपरीत इस कारण से है क्योंकि अंतिम अनुतोष पाने के लिए अंतरिम अनुतोष प्राप्त करना पुरोभाव्य शर्त नहीं हो सकता है। यदि अंतरिम अनुतोष के लिए कोई आवेदन दिया गया था और इसे व्यादेश से इनकार करते हुए सकारण आदेश द्वारा भी खारिज कर दिया गया था, तब भी वह यह उपधारित करने का आधार नहीं हो सकता है कि याची रिट याचिका में दावा किए गए अनुतोष का हकदार नहीं हो सकता है। अत:, नयी निविदा आमंत्रित करने से प्रत्यर्थी को अवरुद्ध करता हुआ अंतरिम आदेश वस्तुत: अप्रासंगिक था।

11. अत:, उक्त कारणों की दृष्टि में, हमारा सुविचारित मत है कि यह एल॰ पी॰ ए॰ अनुज्ञात किए जाने योग्य है और इसलिए इसे अनुज्ञात किया जाता है। दिनांक 18.3.2013 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। याची का आई॰ ए॰ सं॰ 359 वर्ष 2013 अनुज्ञात किया जाता है और परिणामस्वरुप मेसर्स रोजमार्ता टेक्नोलॉजी लिमिटेड प्रत्यर्थी सं॰ 4 को पक्ष प्रत्यर्थी सं॰ 4 के रूप में जोड़ा जाता है और इप्सित किया गया संशोधन अनुज्ञात किया जाता है। याची संशोधित रिट याचिका दाखिल करेगा।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

गोलक बिहारी मंडल एवं अन्य

cuke

कमला देवी एवं अन्य

W.P. (C) No. 6005 of 2010. Decided on 5th April, 2013.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XXI, नियम 97 एवं 99 सह-पठित धारा 151—डिक्री का निष्पादन–आपत्ति अस्वीकार किया जाना–अवर न्यायालय ने अनेक कार्यवाही और इसके परिणाम को विचार में लेने के बाद इस निष्कर्ष पर आया है कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXI नियम 97 एवं 99 सह-पठित नियम 101 के अधीन दाखिल आवेदन पोषणीय नहीं है–याचीगण तात्विक तथ्य के दमन के आधार पर कोई अनुतोष पाने के हकदार नहीं हैं–याचीगण को विवाद्यकों, जिन्हें उनके द्वारा दाखिल मुख्य वाद में उठाया गया है, को फिर से उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और वह भी मामले में अंतर्ग्रस्त तात्विक तथ्य का दमन करके–रिट याचिका खारिज की गयी। (पैराएँ 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–2013(1) JBCJ 314—Relied; AIR 1996 (SC) 2367; AIR 1991 SC 264; AIR 1993 Delhi 187; AIR 1970 AP 375—Distinguished.

अधिवक्तागण.–Mr. V. Shivnath, For the Petitioners; M/s Ranjan Kumar Singh, A.K. Chaudhary, For the Respondents.

आदेश

याचीगण ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके विविध अपील सं॰ 5/2006 में जिला न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित दिनांक 20.8.2010 के आदेश (परिशिष्ट–2) और विविध केस सं॰ 3/2006 में उप–न्यायाधीश II द्वारा पारित दिनांक 10.7.2006 के आदेश (परिशिष्ट–1) जिसके द्वारा विद्वान उप–न्यायाधीश ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI, नियम 97 एवं 99 सह–पठित धारा 151 के अधीन दाखिल याचिका खारिज कर दिया है, को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए प्रार्थना किया है।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए और आक्षेपित आदेशों तथा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का परिशीलन किया गया।

3. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थीगण द्वारा एक अभिधान वाद सं॰ 49/97 दाखिल किया गया था और पक्षों के बीच हुए समझौते/सुलह की दृष्टि में उक्त वाद निपटाया गया था। यह निवेदन भी किया गया है कि सुलह डिक्री को अपास्त करने की प्रार्थना के साथ सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश IX नियम 13 के अधीन मूल प्रतिवादीगण में से कुछ द्वारा एक विविध केस सं॰ 1/2004 दाखिल किया गया था और उक्त मामले में याचीगण ने सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 1 नियम 10 के अधीन पक्ष के रूप में पक्षकार बनाए जाने के लिए आवेदन दिया था किंतु जोर नहीं दिए जाने के कारण उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया था। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार याचीगण को अभिधान वाद सं॰ 49/97 में प्राप्त की गयी कपटपूर्ण सुलह डिक्री के विरुद्ध अपना मामला रखने के लिए अवसर कभी नहीं दिया गया था यद्यपि वे अभिधान वाद सं॰ 49/97 में कपटपूर्ण सुलह डिक्री के विरुद्ध आपत्ति उठाने और शिकायत करने के लिए विधितः हकदार थे। आगे यह निवेदन किया गया है कि उक्त आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर याचीगण ने अंतिम डिक्री को चुनौती देते हुए प्रथम अपील सं॰ 10/05 दाखिल किया और उक्त प्रथम अपील तकनीकी आधार पर खारिज कर दी गयी थी। याचीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि तत्पश्चात याचीगण द्वारा द्वितीय अपील दाखिल की गयी थी किंतु जोर नहीं दिए जाने के कारण इसे वापस ले लिया गया था क्योंकि याचीगण सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXI नियम 97 और 99 सह–पठित नियम 100 के अधीन वैकल्पिक उपायों का लाभ लेना चाहते थे। विद्वान वरीय अधिवक्ता ने सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXI नियम 97 और 99 सह–पठित नियम 101 में अंतर्विष्ट प्रावधान को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि

उक्त अवस्था के अधीन आवेदन दाखिल करके किसी व्यक्ति द्वारा निष्पादन अवरुद्ध किया जा सकता है और सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXI नियम 101 में अंतर्विष्ट प्रावधान के मुताबिक निष्पादन न्यायालय को उक्त आवेदन पर विचार करने और इसे विनिश्चित करने की आवश्यकता है। यह निवेदन किया गया है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, याचीगण ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 के अधीन आवेदन दाखिल किया जो विधित: पोषणीय है। किंतु, अवर न्यायालय ने निष्पादन कार्यवाही में प्रासंगिक तथ्यों और अभिलेख पर सामग्री को समुचित अधिमूल्यन किए बिना और इस पर विचार किए बिना उक्त आवेदन अस्वीकार कर दिया। याचीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLIII (1A) के अधीन अपील से संबंधित अनेक प्रावधानों की ओर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 (3) में अंतर्विष्ट प्रावधान को भी निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि पक्षों की सहमति से न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के विरुद्ध अपील नहीं होगी। याचीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने अपने प्रतिवाद के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों को निर्दिष्ट किया है और उन पर विश्वास किया है;–

1. AIR 1996 (SC) Page 2367;

2. AIR 1991 (SC) Page 264;

3. AIR 1993 Delhi 187 vkj

4. AIR 1970 (Andhra Pradesh) Page 375.

4. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिशपथ पत्र को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि याचीगण ने उनके द्वारा दाखिल अभिधान वाद सं॰ 81/04 को और अभिधान बँटवारा वाद सं॰ 138 वर्ष 2010 के बारे में उल्लेख नहीं करके तात्विक तथ्यों का दमन किया है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि अवर न्यायालय ने द्वितीय अपील जिसे वापस ले लिए गए के रूप में खारिज कर दिया गया था की दाखिली के बारे में तथ्य सहित वर्तमान याचीगण द्वारा दाखिल अनेक कार्यवाहियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया है। यह भी इंगित किया गया है कि अपीलीय न्यायालय ने भी अपने आदेश के पैरा 19 में वर्तमान याचीगण द्वारा आरंभ की गयी अनेक कार्यवाहियों और उक्त कार्यवाहियों के परिणाम के बारे में चर्चा किया और तत्पश्चात उक्त अपील खारिज कर दिया। आगे यह निवेदन किया गया है कि चूँकि याचीगण ने इस न्यायालय के समक्ष तात्विक तथ्यों का दमन किया है, याचीगण किसी अनुतोष को पाने के हकदार नहीं हैं जैसी प्रार्थना की गयी है क्योंकि याचीगण शुद्ध हृदय से इस न्यायालय के पास नहीं आए हैं। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रतिवाद के समर्थन में **2013 (1) JBCJ 314** में प्रकाशित निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है और निवेदन किया है कि वर्तमान याचीगण द्वारा दाखिल अभिधान वाद अभी भी सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित है और इस तथ्य को इस न्यायालय के समक्ष इंगित नहीं किया गया है और उक्त निर्णय में अधिकथित निर्णयाधार प्रावधानित करता है कि एक ही हेतु के लिए दो समानांतर कार्यवाही अनुज्ञेय नहीं है और लोकनीति के विरुद्ध है और वर्तमान मामले के प्रयोजन से यह निर्णय प्रासंगिक है।

5. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदनों के प्रत्युत्तर में याचीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उनके मुवक्किल ने किसी तथ्य का दमन नहीं किया है। यह निवेदन किया गया है कि पूरक शपथ पत्र दाखिल करके इस तथ्य का उल्लेख किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि तथ्य जिसका कथन याचिका में नहीं किया गया है मात्र लोप है और वह लोप रास्ते में नहीं आएगा अथवा किसी अनुतोष को प्राप्त करने से याची को गैर हकदार नहीं बनाएगा जैसी प्रार्थना सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 एवं 99 सह-पठित नियम 101 के अधीन याचीगण द्वारा की गयी है क्योंकि यह स्पष्टत: प्रावधानित करता है कि पृथक वाद पोषणीय नहीं है।

6. पक्षों के पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और आक्षेपित आदेशों तथा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि याचीगण ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 के अधीन दाखिल आवेदन में अवर न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष से व्यथित और असंतुष्ट होकर वर्तमान रिट याचिका दाखिल किया है और आक्षेपित आदेशों के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता किए गए निवेदन पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद और अनेक कार्यवाही तथा इसके परिणाम को विचार में लेने के बाद इस निष्कर्ष पर आया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 तथा 99 सह-पठित नियम 101 के अधीन दाखिल आवेदन पोषणीय नहीं है। यह भी प्रतीत होता है कि वर्तमान याचीगण ने अभिधान वाद सं॰ 81/2004 दाखिल किए जाने के बारे में उल्लेख नहीं किया है जिसे बाद में इस याचिका में अभिधान बँटवारा वाद सं॰ 138/2010 में संपरिवर्तित कर दिया गया था। किंतु याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इसे न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया और निवेदन किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 एवं 99 सह-पठित नियम 101 में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में उक्त दमन याचीगण के रास्ते में नहीं आएगा अथवा अनुतोष पाने से याचीगण को गैर हकदार नहीं बनाएगा। याचीगण के उक्त तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह तथ्य याचिका दाखिल किए जाने के समय प्रासंगिक था और इसका विवरण देने की आवश्यकता थी। इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि तात्विक तथ्य के दमन के आधार पर याचीगण किसी अनुतोष को पाने के हकदार नहीं हैं जैसी प्रार्थना इस याचिका में की गयी है। इसके अतिरिक्त, विद्वान जिला न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित दिनांक 20.8.10 का आक्षेपित आदेश स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि अभिधान अपील सं॰ 10/2005 को मात्र तकनीकी आधार पर खारिज नहीं किया गया था, बल्कि इसे गुणागुण पर भी खारिज किया गया था। यह प्रतीत होता है कि संपति में अपने अधिकार, हक और हित का दावा करते हुए और इस घोषणा के लिए भी कि टी॰ एस॰ सं॰ 49/1997 में पारित डिक्री अवैध, शून्य और विधि के अधीन अप्रवर्तनीय है, मुख्य वाद दाखिल किया है। याचीगण को विवाद्यक, जिसे उनके द्वारा दाखिल मुख्य वाद में उठाया गया है, को पुन: उठाने की, और वह भी मामले में अंतर्ग्रस्त तात्विक तथ्य का दमन करके, अनुमति नहीं दी जा सकती है। आदेश XXI नियम 97 तथा 99 सहपठित नियम 101 प्रावधानित करता है कि उसमें उठाए गए विवाद्यक को पृथक वाद द्वारा विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। किंतु वर्तमान मामले में, जैसा यह प्रतिशपथ पत्र के पैरा 9 से प्रकट होता है, ऐसा आवेदन दाखिल करने के पहले याचीगण ने पहले ही प्रत्यर्थीगण एवं अन्य के विरुद्ध विद्वान बंदोबस्त अधिकारी, दुमका के समक्ष पृथक वाद अभिधान वाद सं॰ 81/2004 दाखिल किया है और इसे संथाल परगना अभिधृति (विनियमन) अधिनियम, 1872 की धारा 5(A) की दृष्टि में अंतरित किया गया था अब यह अभिधान (पी॰) वाद सं॰ 138/2010 के तहत विद्वान उप-न्यायाधीश I, देवघर के समक्ष न्याय निर्णयण के लिए लंबित हैं। अत: यदि याची वादी उक्त वाद में अपने हक और घोषणा, जैसा इप्सित किया गया है, स्थापित करने में सफल होता है, तब इसके परिणाम होंगे। याचीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने **AIR 1996 (SC) Page 2367; AIR 1991 (SC) 264; AIR 1993 Delhi 187** और **AIR 1970 (AP) Pg. 375** में प्रकाशित अनेक निर्णयों को निर्दिष्ट किया है और इन पर विश्वास किया है किंतु उक्त निर्णयों में अधिकथित निर्णयाधार वर्तमान मामले के उक्त कथित तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में याचीगण की मदद नहीं करते हैं।

7. उक्त चर्चा की दृष्टि में, वर्तमान रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है। तद्नुसार, इस रिट याचिका को खारिज किया जाता है। परिणामस्वरुप, दिनांक 19.1.2012 के तदंतरिम आदेश को रिक्त करने का आदेश दिया जाता है।

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

रमेश सचदेव एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (Cr.) 243 of 2012. Decided on 10th May, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 467 एवं 468/34—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—छल एवं कूट रचना–काल वर्जित सिविल वाद के विरुद्ध लाभ पाने के लिए दांडिक अभियोजन का सहारा लेने की अनुमति किसी पक्ष को नहीं दी जाएगी–समय के किसी बिंदु पर याचीगण का प्रवंचनापूर्ण अथवा कपटपूर्ण आशय नहीं था–उन्होंने परिवादी के समक्ष संपत्ति से संबंधित मुकदमें के समस्त तथ्यों को निर्दोषितापूर्वक रखा था–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 467 अथवा 468 के अवयव आकृष्ट नहीं होते हैं–यह प्रतीत नहीं होता है कि याचीगण ने छल के प्रयोजन से किसी कूटरचित दस्तावेज को सृजित किया था–अभियुक्तगण/याचीगण के विरुद्ध परिवादी द्वारा दांडिक मामला नहीं बनाया गया है और केस डायरी में दर्ज गवाहों के बयान भी उसी दिशा में है–याचीगण की प्रार्थना पर विचार करने के लिए परिवाद दाखिल करने में हुआ विलंब भी तर्कपूर्ण कारक है–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 13 से 17)

निर्णयज विधि.–(2007) 13 SCC 107; (2007) 14 SCC 776; (2008) 13 SCC 678; (1999) 8 SCC 687; (2006) 6 SCC 669—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajan Raj, For the Petitioners; Mr. Dilip Jerath, For the O.P. No.2; Mr. Jalisur Rahman, For the State.

निर्णय

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन यह आवेदन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467 और 468/34 के अधीन दर्ज दिनांक 20.6.2012 के धनबाद (बैंक मोड़) पी॰ एस॰ केस सं॰ 621 वर्ष 2012, जी॰ आर॰ केस सं॰ 2456 वर्ष 2012 के तत्सम, से उद्भूत होने वाली प्राथमिकी और विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के न्यायालय में लंबित उक्त मामले से उद्भूत होने वाली संपूर्ण कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

2. यह प्रतीत होता है कि वि॰ प॰ सं॰ 2 अर्थात् अश्विनी कुमार व्योत्रा ने विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के न्यायालय में परिवाद केस सं॰ 1350 वर्ष 2012 दाखिल किया है और उक्त परिवाद मामला दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 156 (3) के अधीन बैंक मोड़ पुलिस थाना भेजा गया है जिसके बाद अभियुक्तगण/याचीगण के विरुद्ध बैंक मोड़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 621 वर्ष 2012 दर्ज किया गया है।

3. परिवाद से प्रतीत होने वाले तथ्य, संक्षेप में ये हैं कि परिवादी 1980 से मूल अभियुक्त सं॰ 2 को जानता था और वे समय के उस बिंदु से कोयला व्यापार के काम में लगे हुए थे। सम्यक क्रम में अभियुक्तगण/याचीगण और परिवादी के परिवारों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित हुआ और वे जब और जैसा आवश्यक हो एक-दूसरे की मदद कर रहे थे। यह प्रकट किया गया है कि अभियुक्तगण/याचीगण ने मौजा धनबाद सं॰ 51, टेलीफोन एक्सचेंज रोड, धनबाद के अंतर्गत भूखंड सं॰ 915, खाता सं॰ 80 से संबंधित अपनी 42 डिसमिल भूमि को बेचने की अपनी इच्छा अभिव्यक्त की थी। परिवादी ने उक्त भूमि खरीदने में दिलचस्पी लिया और बातचीत के बाद अग्रिम के रूप में 3,20,000/- रुपयों का भुगतान किया

जिसके बाद याचीगण और उनकी माता सावित्री देवी सचदेव द्वारा दिनांक 12.3.1991 का विक्रय करार निष्पादित किया गया था। अभियुक्तगण/याचीगण ने यह भी स्पष्ट किया है कि संपत्ति आरंभ में उनके पिता स्व॰ सुखदेव सचदेव द्वारा खरीदी गयी थी जो अपने पीछे सावित्री देवी सचदेव (विधवा), तीन पुत्रों अर्थात रमेश सचदेव, राकेश सचदेव और राजन सचदेव (याचीगण) और तीन पुत्रियों अर्थात् आशा तनेजा (स्व॰ धर्मवीर तनेजा की विधवा), श्रीमती स्नेह आर्या (प्रमोद आर्या की पत्नी) और डॉ॰ सबिता गुलाटी (श्री ब्रजमोहन गुलाटी की पत्नी) को अपने पीछे छोड़ते हुए दिनांक 19.12.1977 को मृत्यु हो गयी।

4. जब परिवादी ने अभियुक्तगण/याचीगण से पूछा कि क्या विक्रय के प्रस्तावित करार में सह-विक्रेताओं के रूप में बहनें उनके साथ जुड़ेंगी, अभियुक्तगण ने कथन किया कि इस तथ्य को ध्यान में रखने पर कि उन्हें उनके विवाह के दौरान दहेज के रूप में उनके पिता की संपत्ति और आस्ति में न्यायोचित और पर्याप्त हिस्सा दिया गया था, उनकी तीन विवाहित बहनों ने वस्तु संपत्ति में अपना हिस्सा त्याग दिया था और इसलिए केवल अभियुक्तगण और उनकी माता प्रश्नगत भूमि अंतरित करने के लिए सक्षम हैं। आगे यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण ने उनके विरुद्ध दाखिल तुच्छ राजस्व मामले और प्रश्नगत भूमि को अंतर्ग्रस्त करते हुए उनके और बिरेन्द्र कुमार भाटिया के बीच हुए विवाद का प्रतिवाद करने के लिए परिवादी से लाखों रुपया खर्च करवाया और एक या दूसरे बहाने भी परिवादी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया था। एक या दूसरे आधार पर अभियुक्तगण विक्रय विलेख का निष्पादन स्थगित करते रहे और इसने परिवादी और अन्य वादीगण को उप-न्यायाधीश, धनबाद के न्यायालय में दिनांक 12.3.1991 के करार के विरुद्ध संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए अभियुक्तगण/याचीगण के विरुद्ध अभिधान वाद सं॰ 104 वर्ष 2008 दाखिल करने के लिए मजबूर किया। उक्त अभिधान वाद में याचीगण उपस्थित हुए और उन्होंने अपना लिखित कथन दाखिल किया। उक्त अभिधान वाद के लंबित रहने के क्रम में याचीगण की बहनों में से एक अर्थात् डॉ॰ सविता गुलाटी ने संपत्ति में अपने हिस्से का दावा करते हुए और आवश्यक पक्ष के रूप में वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति उसको देने के लिए दिनांक 24.2.2011 को याचिका दाखिल किया। डॉ॰ सविता गुलाटी द्वारा दाखिल याचिका के विरुद्ध कोई प्रत्युत्तर अथवा विरोध दाखिल नहीं किए जाने के परिवादी को आश्वस्त किया कि वे एक-दूसरे के साथ हैं और उसने स्वयं को छला गया महसूस किया और परिवाद दाखिल किया जिसके आधार पर वर्तमान मामला संस्थापित किया गया है।

5. याचीगण के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि परिवादी शुद्ध हृदय से इस न्यायालय के पास नहीं आया है और उसने दिनांक 12.3.1991 के उक्त करार, जिसके द्वारा याचीगण और उनकी माता ने परिवादी को उक्त भूमि बेचने का वादा किया था, के लगभग 21 वर्षों बाद इस मामले को दाखिल किया है। यह इंगित किया गया है कि उक्त करार के निष्पादन के समय पर याचीगण का प्रवंचनापूर्ण आशय नहीं था जो उक्त करार और परिवाद में किए गए प्रतिवादों से प्रकट है। याचीगण ने स्व॰ सुखदेव सिंह सचदेव के विधिक उत्तराधिकारियों का पहचान और पता कभी नहीं छुपाया। उन्होंने याचीगण की उन बहनों के साथ संपर्क करने से परिवादी को अवरुद्ध कभी नहीं किया। ग्रहण किए गए दस्तावेजों के आगे परीक्षण पर यह प्रकट होगा कि परिवादी ने अनेक तथ्यों को छुपाया था जो अंतर्ग्रस्त विवाद्यक को विनिश्चित करने के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है। वाद पत्र, जिसके आधार पर अभिधान वाद सं॰ 104 वर्ष 2008 दर्ज किया गया है, में परिवादी और अन्य वादीगण द्वारा किए गए स्वीकृत प्रकथनों का परिशीलन किया जा सकता है।

6. परिवादी धनबाद सिविल न्यायालय में पेशेवर वकील है और उसने स्वीकार किया है कि उसने वर्ष 1986 से वस्तु संपत्ति में अपनी दिलचस्पी दिखायी थी और अनेक अवसरों पर उनकी इच्छा और

आवश्यकता के मुताबिक अभियुक्तगण/याचीगण को धन का भुगतान किया था और इसलिए यह प्राख्यान किया की करार के निष्पादन की तिथि पर अग्रिम के रूप में 3,20,000/- रुपयों की राशि का भुगतान किया गया था, सही नहीं है। वादी का स्वीकरण आगे उपदर्शित करता है कि वे प्रश्नगत संपत्ति से उद्भूत होने वाले मुकदमें से पूर्णत: अवगत थे और परिवादी ने वकील होने के नाते उन मामलों में पैरवी किया था और धन खर्च किया था। उसने यह भी स्वीकार किया कि दोनों परिवारों के मैत्रीपूर्ण संबंध थे। वस्तुत: परिवादी ने याचीगण और उनके परिवार के सदस्यों को प्रभावित किया था और दर्शाया था कि उसने संपत्ति में उनके हित की रक्षा करके और उनको उक्त भूमि उसे और उसके परिवार के सदस्यों को बेचने के लिए सहमत करके उन पर कृपा किया था। वाद पत्र में वादीगण और परिवादी के स्वीकृत विवरण इस तथ्य के द्योतक हैं कि दिनांक 12.3.1991 को बातचीत नहीं की गयी थी जिस तिथि पर उक्त करार को निष्पादित किया गया था बल्कि यह वो तिथि थी जिस पर पक्षों के बीच दस्तावेज सृजित किया गया था। यहाँ यह इंगित करना उपयुक्त होगा कि परिवादी आगे स्वीकार करता है कि उसके द्वारा करार का प्रारूप तैयार किया गया था और इसके परिशीलन के लिए इसके निष्पादन के लिए इसे दाखिल करने के लिए इसे अभियुक्तगण/याचीगण को सौंपा गया था। इन सबों ने याचीगण की निर्दोषिता को उपदर्शित किया और यह कल्पना की सीमा के परे होगा कि उनका उस समय पर जब वे संपत्ति बेचने के लिए सहमत हुए कोई प्रवंचनापूर्ण अथवा कपटपूर्ण आशय था।

7. यह सुनिश्चित विधि है कि किसी व्यक्ति को समय वर्जित सिविल विवाद के विरुद्ध लाभ पाने के लिए दांडिक अभियोजन का सहारा लेने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यद्यपि यह अभिधान वाद सं॰ 104 वर्ष 2008 में विनिश्चित किए जाने वाला मामला है किंतु याचीगण इस न्यायालय के समक्ष यह प्रस्तुत करना आवश्यक महसूस करते हैं कि परिवादी अथवा किसी अन्य वादीगण ने समय के किसी बिंदु पर शेष प्रतिफल नहीं दिया था और यह कहना गलत है कि अभियुक्तगण/याचीगण ने विक्रय विलेख का निष्पादन स्थगित रखा। परिवादी के अनुसार, संपत्ति में अपने हिस्से का दावा करते हुए डॉ॰ सविता गुलाटी द्वारा याचिका दाखिल किए जाने ने उनके लिए यह विश्वास करने का कारण सृजित किया है कि आरंभ से ही अभियुक्तगण/याचीगण का प्रवंचनापूर्ण आशय था और उन्होंने उसके साथ छल किया है और यह किसी अपराध के अवयव को आकृष्ट नहीं करता है जिसके लिए यह मामला दर्ज किया गया है। निर्दोष नागरिक की स्वतंत्रता में कटौती नहीं किया जा सकता है और वे द्वेषपूर्ण अभियोजन में परेशान नहीं किए जाएँगे जिसे परिवादी ने वर्तमान मामला दाखिल करके याचीगण के विरुद्ध आरंभ किया है।

8. पुलिस ने अद्यतन केस डायरी दाखिल किया है और आज की तिथि तक संग्रहित किया गया साक्ष्य और कुछ नहीं बल्कि परिवाद में किए गए प्रतिवाद को दोहराना है। पुन: यह उल्लेख करना अनावश्यक नहीं होगा कि पुलिस के समक्ष दिए गए उनके बयान में परिवादी और उसके गवाहों द्वारा अनेक तथ्यों को छुपाया गया है। यह अत्यन्त स्पष्ट है कि याचीगण ने प्रश्नगत संपत्ति से संबंधित किसी तथ्य का दमन नहीं किया था और उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है और इसलिए, धनबाद (बैंक मोड़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 621 वर्ष 2012 से उद्भूत होने वाली प्राथमिकी और याचीगण का दांडिक अभियोजन अभिखंडित किए जाने का दायी है। याचीगण ने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास किया है:–

(i) (2006)6 SCC 699 (jkefcj th noh cuke me'k dekj flg)

(ii) (2009)7 SCC 712 (gjeuçhr flg vgyokfy;k cuke itkc jkT;(

(iii) (2011)13 SCC 412 (FkeDl fyfeVM cuke d0 ,e0 tkuh)(

(iv) (2009)15 SCC 429 (je'k nÙk cuke i tkc jkT;)(

(v) (2005)1 SCC 568 (mMhlk jkT; cuke noUn ukFk ikèkh) vkj

(vi) (2007)10 SCC 82 (lfercko cuke ikjl fQuk l d0)

9. दूसरी ओर, परिवादी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्कों का जोरदार विरोध किया और निवेदन किया कि प्राथमिकी अन्वेषण के चरण पर अभिखंडित नहीं की जा सकती है। परिवादी को साक्ष्य देने का अवसर देना ही होगा। केवल आपवादिक परिस्थिति में प्राथमिकी का अभिखंडन ग्रहण किया जा सकता है। अभियुक्तगण/याचीगण का प्रवंचनापूर्ण आशय था जब उन्होंने उक्त करार में झूठा और गलत घोषणा किया था। करार के पैराग्राफों 4 और 10 में की गयी घोषणा अत्यन्त प्रासंगिक है जो निम्नलिखित है:–

"4. ;g fd foØrkx.k ,rn}kjk ?kk"k.kk djrs gSa fd o vuqlwph ^,0 Hkfe d lai.k vkj vuU; Loke ,o LoRoèkkjh gS vkj vuqlwph ^,0 Hkfe leLr foYyxek çHkkjk] cèkd] èkkj.kkfèkdkj l eDr gA ;fn fdlh Hkh çÑfr dk dkb foYyxe çdk'k e vkrk g] foØrkx.k [kjhnnkjk d i{k e foØ; foy[k fu"ikfnr vkj nt dju d igy bldk ifj'kkèku dju d fy, ckè; gkxA*

10. fd ;fn ;g ik;k tkrk g fd dN vU; 0;fDr vuqlwph ^,0 ^Hkfe e vfèkdkj] gd vFkok fgr dk nkok dj jg g] foØrkx.k dk ;g n[kuk gkxk fd mud }kjk foØrkx.k d :i e vFkok lgefr nu oky xokgk d :i e foØ; foy[k fu"ikfnr fd;k tkrk gA*

*vuqlwph ^,**

fcgkj jkT; d Bkdk l0 1595 e nt ekStk èkucknj] ekStk l0 51, ih0 vk0 ih0 ,l0 vkj ftyk èkucku d Hk[kM l0 915 [kkrk l0 80 dk 42 fMlfey ekiokyh j;rh Hkfe d leLr (Hkkx)A

bld lk{; e oreku i{kk u mDr fyf[kr fnu] ekg] o"k ij viuk gLrk{kj fd;kA"

10. विद्वान अधिवक्ता ने भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 17 को भी निर्दिष्ट किया है जिसमें कपट परिभाषित किया गया है। यह तर्क किया गया था कि तथ्य की जानकारी अथवा विश्वास होने पर किसी के द्वारा तथ्य को सक्रिय रूप से छुपाना भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 17 के अधीन कपट का अवयव आकृष्ट करता है। अभियुक्तगण/याचीगण अच्छी तरह से जानते थे कि उनकी बहनों ने संपत्ति में अपने हिस्से का वास्तविक रूप से त्याग नहीं किया था और उन्होंने यह कहते हुए कि बहनों को उनके विवाह में बहूमूल्य और दहेज देकर संतुष्ट किया गया था, गलत सूचना दिया गया था। यदि याचीगण ने परिवादी को यह विश्वास करने के लिए उत्प्रेरित नहीं किया था कि स्त्री सह–अंशधारियों अर्थात् उनकी बहनों ने प्रश्नगत संपत्ति में अपने हिस्से का त्याग किया था, याची धन से अलग नहीं हुआ होता और प्रश्नगत संपत्ति के विरुद्ध विक्रय का करार नहीं किया होता। माननीय न्यायाधीशों द्वारा **(2013)1 SCC 562** में प्रकाशित निर्णय में प्रवंचना की सही व्याख्या की गयी है। यह याचीगण/अभियुक्तगण का स्वीकृत मामला है कि उन्होंने अपनी बहन डॉ० सविता गुलाटी द्वारा दाखिल याचिका का प्रत्युत्तर दाखिल नहीं किया था और उन्होंने विरोध कभी नहीं किया था। वे यह कहने के लिए आगे नहीं आए हैं कि उसका संपत्ति में हिस्सा नहीं है क्योंकि उसने संपत्ति में अपना हिस्सा त्याग दिया था। अभियुक्तगण/याचीगण के

पश्चातवर्ती आचरण ने परिवादी को यह विश्वास करने के लिए मजबूर किया था कि उसके साथ छल किया गया है और इसलिए वर्ष 2012 में वर्तमान मामला दाखिल किया गया है और यह अभियुक्तगण/याचीगण के विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज करने में हुए विलंब का तर्कपूर्ण और युक्तियुक्त स्पष्टीकरण है। आगे यह निवेदन किया गया था कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा संग्रहित साक्ष्य और केस डायरी में लिखा गया पर्यवेक्षण नोट उपदर्शित करता है कि अभियुक्तगण/याचीगण ने अभिकथित अपराध किया है और वे अभियोजित किए जाने के दायी हैं। विद्वान अधिवक्ता ने 1**999 (2) Supreme Court (राजेश बजाज बनाम राज्य (दिल्ली का एन॰ सी॰ टी॰); (2009)11 SCC 737 और (2013)1 SCC 562 (रामचंद्र भगत बनाम झारखंड राज्य** में प्रकाशित निर्णयों पर विश्वास किया है।

11. परस्पर विरोधी निवेदनों को सुनने पर और अभिवचनों पर विचार करते हुए यह प्रतीत होता है कि दिनांक 20.6.2012 के धनबाद (बैंक मोड़) पी॰ एस॰ केस सं॰ 621 वर्ष 2012 के तहत वर्तमान दांडिक अभियोजन अभियुक्तगण/याचीगण के विरुद्ध इस कारण से आरंभ किया गया है कि अभिधान वाद सं॰ 104 वर्ष 2008 में उनकी बहन डॉ॰ सविता गुलाटी द्वारा दाखिल याचिका, जिसके द्वारा उसने संपत्ति में अपना दावा किया है, के विरुद्ध याचीगण द्वारा प्रत्युत्तर दाखिल नहीं किया गया है। यह स्पष्ट किया गया है कि उक्त अभिधान वाद सं॰ 104 वर्ष 2008 दिनांक 12.3.1991 के करार से संबंधित संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए अभियुक्तगण/याचीगण के विरुद्ध संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए परिवादी एवं अन्य वादीगण द्वारा दाखिल किया गया है। चूँकि याचीगण ने अपनी बहन डॉ॰ सविता गुलाटी द्वारा किए गए दावा का विरोध नहीं किया था, परिवादी के पास यह विश्वास करने का कारण था कि याचीगण का आरंभ से ही प्रवंचनापूर्ण और कपटपूर्ण आशय था और यही कारण है कि वे प्रश्नगत संपत्ति के विरुद्ध हस्तांतरण विलेख निष्पादित करने का आशय नहीं रखते थे और एक या दूसरे आधार पर विवाद्यक स्थगित करते रहे और अंतत: उक्त अभिधान वाद में डॉ॰ सविता गुलाटी की उपस्थिति के बाद याचीगण के पश्चातवर्ती आचरण ने इसे पारदर्शी बनाया कि उपस्थिति के बाद याचीगण के पश्चातवर्ती आचरण ने इसे पारदर्शी बनाया कि याचीगण ने झूठी घोषणा की थी। इस न्यायालय द्वारा परिवादी द्वारा उठाए गए विवाद्यक पर विचार करने के पहले अभिधान वाद सं॰ 104 वर्ष 2008 में वादपत्र दाखिल करके उनके द्वारा किए गए परिवादी और अन्य वादीगण के कतिपय स्वीकृत प्रकथनों का उल्लेख करना वांछनीय होगा। उक्त वादपत्र के प्रासंगिक पैराग्राफ सं॰ 7 से 9, 11 से 14, 16, 19 और 22 है। उन पैराग्राफों में किए गए प्रतिवाद को उद्धृत करने के बजाए उन पैराग्राफों का सार प्रयोजन को पूरा करेगा। यह प्रतिवाद किया गया है कि अपनी पारिवारिक बाध्यताओं को पूरा करने के लिए याचीगण को धन की अत्यधिक आवश्यकता थी और उन्होंने दिनांक 27.11.1996 को परिवादी से 50,000/- रुपया देने का अनुरोध किया और उनके द्वारा इस प्रकार प्राप्त की गयी राशि प्रश्नगत भूमि के प्रस्तावित विक्रय के विरुद्ध प्रतिफल/अग्रिम का भाग निर्मित करेगी। परिवादी और याचीगण के बीच का संबंध अत्यन्त मधु और पारिवारिक था किंतु परिवादी के पास प्रश्नगत संपत्ति से संबंधित हक विलेख देखने का अवसर नहीं था और इसलिए, उसने उनको अगले दिन दस्तावेज के साथ आने के लिए कहा और उस समय तक वह 50,000/- रुपयों की राशि का प्रबंध कर लेगा। तद्नुसार, अगले दिन याचीगण किसी राजीव आहूजा के साथ हक विलेख, नामांतरण आदेश एवं अन्य दस्तावेजों की छाया प्रतिलिपि के साथ परिवादी के कार्यालय गए थे जिसका उसने परीक्षण किया और याचीगण पर विश्वास होने के कारण दिनांक 28.11.1996 को 50,000/- रुपयों की राशि का भुगतान किया। इसी तरीके से भिन्न अवसर पर परिवादी ने उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए याचीगण को भुगतान करके याचीगण पर कृपा किया था। अंतत: भूमि की दर 25,000/- रुपया प्रति कट्ठा विनिश्चित की गयी थी। परिवादी को भूमि अधिकतम सीमा अधिनियम, जो समय के उस बिन्दु

पर प्रवर्तनीय थी, की प्रयोज्यता के बारे में प्रत्येक जानकारी थी और इसलिए जटिलताओं से बचने के लिए हस्तांतरण विलेख का निष्पादन स्थगित रखा गया था। परिवादी ने याचीगण से उसको मूल करेंट किराया रसीद देने के प्रयोजन से उसे इसे सौंपा गया था। पैरा 14 में यह प्रतिवाद किया गया है कि डील दिसंबर, 1996 में अथवा इसके आस-पास अंतिम रूप दिया गया था और परिवादी को यह पता लगाने की जिम्मेदारी से न्यस्त किया गया था कि विक्रय विलेख निष्पादित और रजिस्टर्ड करवाने के लिए कौन समय सर्वाधिक उपयुक्त होगा। यह भी स्वीकार किया गया है कि वर्ष 1986-87 के दौरान भूमि अंतरण परिदृश्य अत्यन्त विवादपूर्ण और भ्रमों से भरा था। अत:, परिवादी और याचीगण ने संयुक्त रूप से फैसला किया है कि प्रश्नगत भूमि का विक्रय करार समुचित समय पर किया जाएगा। वादपत्र के पैरा 16 में परिवादी मुकदमा के बारे में स्वीकार करता है जो किसी विरेन्द्र कुमार भाटिया और याचीगण के बीच हुआ था क्योंकि उक्त बिरेन्द्र कुमार भाटिया भूमि के अधिक्रमण पर अपनी गिद्ध दृष्टि लगाए था और उसने प्रश्नगत भूमि के 4.5 डिसमिल से संबंधित कूटरचित दस्तावेज सृजित किया था। पुन: याचीगण ने परिवादी की सक्षमताओं पर पूरा विश्वास किया क्योंकि वह धनबाद सिविल न्यायालय में पेशेवर वकील था और उसको संपत्ति के संरक्षण करने के लिए समस्त आवश्यक प्रयासों को करने का काम न्यस्त किया। केवल यही नहीं, परिवादी ने यह भी प्रस्तावित किया था कि मुकदमा का समाधान करने में उसके द्वारा उपगत व्यय को प्रश्नगत भूमि के विक्रय के विरुद्ध आंशिक भुगतान माना जाएगा और अंतिम विलेख के समय पर इसे समायोजित किया जाएगा। पुन: पैरा 22 में, स्वयं परिवादी द्वारा करार प्रारुप तैयार किया गया था और इसे उनकी सहमति पाने के लिए याचीगण को सौंपा गया था।

12. पूर्वोक्त तथ्यों के उल्लेख की आवश्यकता इसे निर्धारित करने के लिए आवश्यक बन गयी है कि क्या याचीगण का आरंभ से ही प्रवंचनापूर्ण और कपटपूर्ण आशय था या नहीं जो भारतीय दंड संहिता की धारा 415 की प्रयोज्यता की मूल आवश्यकता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 415 का पठन निम्नलिखित है:–

415. ***Ny-****&tk dkb fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diViod ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkb lifÙk fdlh 0;fDr dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og ,lk dkb dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml gj çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkkO; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA*

Li"Vhdj.k-*&rF;k dk cbekuh l fNikuk bl èkkjk d vFk d vrxr iopuk gA***

13. ऊपर निर्दिष्ट परिवादी के स्वीकृत प्रकथन एवं अभिवचन मजबूती से सुझाते हैं कि समय के किसी बिंदु पर याचीगण का प्रवंचनापूर्ण अथवा कपटपूर्ण आशय नहीं था। उन्होंने परिवादी के समक्ष प्रश्नगत संपत्ति से संबंधित समस्त प्रासंगिक तथ्यों और मुकदमा को अत्यन्त मासूमियत से प्रस्तुत किया था बल्कि उन्होंने प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में समस्त आवश्यक करने के लिए परिवादी पर पूरा विश्वास किया था। उन्होंने अपनी तीनों बहनों का नाम-पता नहीं छुपाया था। परिवादी स्वयं स्वीकार करता है कि याचीगण और उनकी माता के पक्ष में पारित नामांतरण आदेश और किराया रसीद बहनों का नाम मजबूत करते हुए न केवल परिवादी को दर्शाया गया था बल्कि समस्त आवश्यक प्रयोजन से इन्हें उसको सौंपा भी गया था। अत:, यदि याचीगण ने प्रश्नगत संपत्ति में अपना दावा करते हुए उनकी बहन डॉ॰ सविता गुलाटी द्वारा दाखिल याचिका का प्रत्युत्तर दाखिल नहीं किया था, यह अकेले सुझाने के लिए पर्याप्त नहीं

है कि उनका आरंभ से ही कपटपूर्ण अथवा प्रवंचनापूर्ण आशय था जब वे परिवादी और अन्य प्रतिवादीगण के पक्ष में प्रश्नगत संपत्ति का विक्रय करने के लिए सहमत हुए थे। इस संबंध में, **बी॰ सुरेश यादव बनाम शरीफा बी, (2007)13 Supreme Court Cases 107,** मामले में माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

^^vfHkfuèkkfjr fd;k x;k

foØ; foy[k fu"ikfnr djr g, vihykFkh u dkb >Bk vFkok Hkked 0;in'ku ugh fd;k FkkA fdlh pht dk dju d fy, vFkok ugh dju d fy, ftl og ugh dj ldrk Fkk vFkok---------;fn ml bl çdkj çofpr ugh fd;k tkrk] mldh vkj l mRçj.k ij dkb xjbekunkj&ÑR; Hkh ugh FkkA LohÑr :i l] ekeyk l{ke U;k;ky; d le{k yfcr gA bl fufeÙk fofèk d l{ke U;k;ky; dk fu.k; yu dh vko';drk gA vko';drk i{kk d chp fookn flfoy fookn gA

*Ny dk vijkèk LFkkfir dju d ç;ktu l ifjoknh dk ;g n'kku dh vko';drk g fd okn vFkok 0;in'ku dju d le; ij vfHk;Dr dk diVi.k vFkok xjbekunkj vk'k; FkkA bl çÑfr d ekey e] yfcr flfoy ednek e i{kdkj }kjk fy, x, nf"Vdk.k ij fopkj djuk fofèk e vuK; gA bldk vFk ;g ugh g fd ,d gh le; ij fdlh 0;fDr dk nkf;Ro flfoy ,o nkfMd nkuk ugh gk ldrk gA fdr tc ifjokn ;kfpdk e ,d nf"Vdk.k viuk;k x;k g tk flfoy okn e mld }kjk viuk, x, nf"Vdk.k d lkFk foijhr vFkok vlxr g] ;g egRo mièkkfjr djrk g----------***

14. ऑल कारगो मूवर्स (इंडिया) (प्रा॰) लि॰ बनाम धनेश बदरमल जैन; (2007)14 Supreme Court Cases 776, मामले में माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

*"16. gekjk er g fd ifjokn ;kfpdk e fd, x, vfHkdFku] ;fn mUg Lohdkj fd;k tkrk g vkj li.krk e lgh ekuk tkrk g] vijkèk çdV ugh djr gA mDr ç;ktu l] bl U;k;ky; u doy LohÑr rF;k dk fopkj e y ldrk g cfYd okn e çR;Fkh l0 1 oknh d vfHkopuk dk ifj'khyu djuk Hkh vuK; gA ukfVl e oreku vihykFkhx.k d fo#) dkb Hkh vfHkdFku ugh fd;k x;k FkkA tk çfrokn fd;k x;k Fkk] og dfj;l vkj mud ,tV dh vkj l mi{kk vkj@vFkok lfonk Hkx FkkA lfonk Hkx Lo; e vijkèk xfBr ugh djrk gA mDr ç;ktu l] ifjokn ;kfpdk e fd, x, vfHkdFkuk dk mld vko';d vo;ok dk çdV djuk gkxkA tgk flfoy okn yfcr g vkj flfoy okn nkf[ky fd, tku d ,d o"k ckn ifjokn ;kfpdk nkf[ky dh x;h g] ge ;g irk dju d ç;ktu l fd D;k mDr vfHkdFku çFke n"V;k lgh g] i{kk }kjk fofue; fd, x, i=kpkjk vkj vU; LohÑr nLrkotk dk fopkj e y ldr gA ;g dguk ,d pht g fd U;k;ky; bl ekM ij vfHk;Dr d cpko ij fopkj ugh djxk fdr ;g dguk ,d vyx ckr g fd bl U;k;ky; dh vrfufgr vfèkdkfjrk dk ç;kx dju d fy, Lohdkj fd, x, nLrkotk dk ifj'khyu vuuK; gA nkfMd dk;okfg;k dk çkRlkfgr ugh djuk pkfg, tc bl vlnHkkoi.k vFkok vU;Fkk U;k;ky; dh çfØ;k dk n#i;kx ik;k tkrk gA bl 'kfDr dk ç;kx djr g, mPprj U;k;ky;k dk U;k; dk mí'; ijk dju dk Hkh ç;kl djuk pkfg,A***

15. यदि प्राथमिकी में किए गए प्रकथनों को सही माना जाता है, भारतीय दंड संहिता की धारा 467 अथवा 468 के अवयव आकृष्ट नहीं होते हैं। यह प्रतीत नहीं होता है कि याचीगण ने छल के प्रयोजन

से कोई कूटरचित दस्तावेज सृजित किया था। **सूर्यलक्ष्मी कॉटन मिल्स लि॰ बनाम राजवीर इंडस्ट्रीज लि॰, (2008)13 Supreme Court Cases 678,** में माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"17. nM çfØ;k lfgrk dh èkkjk 482 d vèkhu viuh vfèkdkfjrk d ç;kx e mPp U;k;ky; dh vfèkdkfjrk d ekinM vc lfuf'pr gA ;|fi bldk foLrkj 0;kid g] bld ç;kx e vR;Ur lrdrk dh vko';drk gA ekey e vrxLr lKkr fofèkd fl)krk dh ç;kT;rk vko';d gA

18. lokxh.k :i l ;g vfèkdfFkr djuk u rk lHkk0; g vkj u gh 0;ogk; fd fdl vkèkkj ij nM çfØ;k lfgrk dh èkkjk 482 d vèkhu mPp U;k;ky; dh vfèkdkfjrk dk ç;kx fd;k tkuk pkfg,] fdr bl U;k;ky; d dN fu.k;k e ml fufeÙk dN ç;kl fd, x, g] mnkgj.kLo#i] gfj;k.kk jkT; cuke Hktu yky(turk ny cuke ,p0 ,l0 pkèkjh(:iu noy ctkt cuke doj iky flg fxy vkj Hkkjrh; ry fuxe cuke ,u0 b0 ih0 lh0 bfM;k fy0A

*22. lkekU;r% vfHk;Dr dk cpko] ;|fi ;g rdlxr çrhr gkrk g] dk mDr vfèkdkfjrk dk ç;kx dju d fy, fopkj e ugh fy;k tkuk pkfg,A iu% mPp U;k;ky; ml pj.k ij rF; d fookfnr ç'u dk lkekU;r% fopkj e ugh yxkA fdr bldk vFk ;g ugh g fd vufèk{ki.kh; pfj= d nLrko tk dk fdlh Hkh dher ij ;g irk dju d ç;ktu l fopkj e ugh fy;k tkuk pkfg, fd D;k nkfMd dk;okgh tkjh j[kuk U;k;ky; dh çfØ;k d n#i;kx d rY; gkxk vFkok fd D;k ifjokn ;kfpdk doy vfHk;Dr dk ij'kku dju d fy, nkf[ky dh x;h gA ;|fi ge bl rF; l vutku ugh g fd ;|fi fooknk dh cMh l[;k dk lkekU;r% doy flfoy U;k;ky;k }kjk fofuf'pr fd;k tkuk pkfg, fdr nkfMd ekey doy vfre y{; çkIr dju d fy, nkf[ky fd, tkr g vFkkr vfHk;Dr dk rjUr ifjoknh dk cdk;k jkf'k dk Hkxrku dju d fy, etcj dju d fy,A ,d vkj] U;k;ky;k dk ,lh çFkk dk mRlkfgr ugh djuk pkfg,(fdr] nljh vkj] o dk;okgh tk vU;Fkk okLrfod g e gLr{ki dju d fy, viuh vfèkdkfjrk d ij ugh tk ldr gA U;k;ky; bl rF; dk Hkh nf"V l vk>y ugh dj ldr g fd dfri; ekeyk e flfoy dk;okgh vkj nkfMd dk;okgh nkuk ik"k.kh; gkxhA***

16. ऊपर निर्दिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में और परिवाद के परिशीलन पर यह भी स्पष्ट है कि प्रश्नगत भूमि की बिक्री-खरीद के संबंध में पक्षों के बीच विवाद था। मेरे दृष्टिकोण में, यदि परिवाद में किए गए अभिकथन को सत्य तथा सही स्वीकार भी किया जाता है, याचीगण को छल अथवा कूटरचना का कोई अपराध करता हुआ नहीं कहा जा सकता है। उन पर दोषी होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता है और न ही परिवादी को प्रवंचित करने के लिए उनकी ओर से कोई आशय संभव था। यह प्रतीत होता है कि अभियुक्तगण/याचीगण के विरुद्ध परिवादी द्वारा दांडिक मामला नहीं बनाया गया है और केस डायरी में दर्ज गवाहों के बयान भी उसी दिशा में हैं। मैं इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता हूँ कि परिवादी और याचीगण के बीच अस्सी के दशक से मैत्रीपूर्ण संबंध था और वे एक-दूसरे को जानते थे। परिवादी ने उनकी आवश्यकता परिपूर्ण करने के लिए भुगतान करके याचीगण पर कृपा की किंतु प्रश्नगत भूमि

की खरीद के आंशिक प्रतिफल की ओर। प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में संव्यवहार वर्ष 1986 से पक्षों के बीच शुरू हुआ था और परिवादी द्वारा दिए गए कारणों से वह लगभग पाँच वर्षों तक विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए तैयार नहीं था और अंतिम करार प्रारुप उसके द्वारा तैयार किया गया था जिसे वर्ष 1991 में निष्पादित किया गया था। यद्यपि यह परिवादी द्वारा दाखिल वाद में विनिश्चित किया जाने वाला मामला है किंतु मेरे समक्ष यह दर्शाने के लिए दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया है कि परिवादी अथवा वादीगण ने कभी भी शेष प्रतिफल राशि दिया था। संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद वर्ष 2008 में दाखिल किया गया था अर्थात् करार के 17 वर्ष बीतने के बाद। समय के उस बिंदु पर भी परिवादी ने परिवाद में अभिकथित अपराधों के बारे में कभी नहीं फुसफुसाया था। प्रत्येक सह-अंशधारी को संपत्ति में दावा करने का अधिकार है और केवल इसलिए कि बहनों में से एक जो सुखदेव सचदेव की विधिक उत्तराधिकारी है ने परिवादी द्वारा दाखिल वाद में उपस्थित होकर दावा किया, यह कहना पर्याप्त नहीं होगा कि छल का अपराध आकृष्ट होता है और याचीगण का आरंभ से ही गैरईमानदार और कपटपूर्ण आशय था जब उन्होंने करार किया था। परिवाद उक्त करार जिसे पक्षों द्वारा लेखबद्ध किया गया था, के लगभग 21 वर्षों बाद दाखिल किया गया है। अत: याचीगण की प्रार्थना पर विचार करने के लिए परिवाद दाखिल करने में विलंब महत्वपूर्ण कारक है। यह सत्य है, जैसा **ट्राइसंस केमिकल्स इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल, (1999)8 SCC 687** में माननीय न्यायाधीशों द्वारा विनिश्चित किया गया है:–

> *^^mPp U;k;ky; dh vrfufgr 'kfDr d ç;kx e çkFkfedh vFkok okni= dk vfHk[kMu doy vR;Ur vioknk rd lhfer gkuk pkfg,A ek= blfy, fd ÑR; flfoy çkQkby okyk g] ;g bl bld nkfMd vkoj.k l uXu dju d fy, i;kIr ugh gA**

उस प्रतिपादना जिसे माननीय न्यायाधीशों द्वारा **ट्राइसंस केमिकल्स इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल (ऊपर)** में अधिकथित किया गया था पर विचार करते हुए माननीय न्यायाधीशों ने **राम बिरजी देवी बनाम उमेश कुमार सिंह, (2006)6 Supreme Court Cases 669,** में पैराग्राफ 11 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया;–

> *"11. fofèk dh bl lfuf'pr çfriknuk d çfr dkb vlgefr ugh gk ldrh g fd çkFkfedh vFkok ifjokn vfHk[kfMr dju d fy, mPp U;k;ky; dk vR;Ur vioknk e viuh vrfufgr vfèkdkfjrk dk ç;kx djuk pkfg,A Vkbl l dfedYl QDVh ekey e vfèkdfFkr fu.k;kèkj oreku ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k e ifjoknh dh enn ugh djrk gA lLFkkfir ifjokn çdV ugh djrk g fd èkkjk 420 d vèkhu vijkèk curk gA HkkO n0 l0 dh èkkjkvk 408/419/420 vkj 120B d vèkhu vijkèkk d fy, vihykFkhx.k d fo#) mu ij nMkfèkdkjh }kjk fy;k x;k lKku Li"Vr% U;k;ky; dh çfØ;k dk n#i;kx g vkj U;k; d fgr e bl U;k;ky; dk gLr{ki lehphu gA ;g vR;Ur viokn dk ekeyk g tgk mPp U;k;ky; dk vihykFkhx.k }kjk viu le{k vk{kfir nMkfèkdkjh d vuif{kr vkj vU;k;kfpr vkn'k dk vikLr dju d fy, viuh vrfufgr vfèkdkfjrk vkj 'kfDr dk ç;kx djuk pkfg, FkkA**

17. यदि दांडिक कार्यवाही केवल अभियुक्त को परेशानी कारित करने के लिए आरंभ की गयी है, इसका जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य होगा, ऐसी दांडिक कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और नागरिक के अधिकार में कटौती नहीं की जा सकती। उन्हें अन्वेषण की ओट में परेशान करने के लिए पुलिस को नहीं दिया जाना चाहिए। इन समस्त पहलूओं पर और ऊपर की गयी चर्चा पर विचार करते हुए धनबाद (बैंक मोड़) पी॰ एस॰ केस सं॰ 621 वर्ष 2012, जी॰ आर॰ केस सं॰ 2456 के तत्सम, और विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के न्यायालय में लंबित उक्त

मामले से संबंधित दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है। चूँकि प्रश्नगत भूमि से संबंधित अभिधान वाद सं॰ 104 वर्ष 2008 अवर न्यायालय में विचाराधीन है। इस आदेश में किए गए संप्रेक्षण किसी पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेंगे और उक्त अभिधान वाद के निपटान में न्यायालय प्रभावित किया गया महसूस नहीं करेगा। तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

राधेश्याम साहू

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 2177 of 2013. Decided on 18th April, 2013.

बालकों की मुक्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आर॰ टी॰ ई॰) अधिनियम, 2009—धारा 23 (1)—नियुक्ति–शिक्षक पात्रता परीक्षा (टी॰ ई॰ टी॰) की परीक्षा–परीक्षा तिथि घोषित कर दिए जाने के बाद यह याचिका दाखिल की गयी है–लगभग 1,90,000 छात्रों ने अध्यापकों की 2500 रिक्तियों के विरुद्ध आवेदन दिया है–परीक्षा प्रक्रिया जो जारी है को स्थगित नहीं किया जा सकता है–निर्देश के साथ रिट याचिका निपटायी गयी। (पैराएँ 3 एवं 4)

निर्णयज विधि.–2011(4) JLJR 387—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Tandon, For the Petitioner; Md. Sohail Anwar, For the JAC.

आदेश

अंतरिम अनुतोष के लिए जिस पर याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जोर दिया गया है, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, प्रत्यर्थी झारखंड एकेडमिक काउन्सिल (जे॰ ए॰ सी॰) ने दिनांक 5 सितंबर, 2012 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन विरचित नियमावली के अधीन शिक्षक पात्रता परीक्षा (टी॰ ई॰ टी॰) और शिक्षकों के चयन की प्रक्रिया आरंभ किया। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रथमत: बालकों की मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा (आर॰ टी॰ ई॰) अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन प्रदत्त शक्तियों के अधीन जारी दिनांक 23 अगस्त, 2010 के राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (संक्षेप में 'एन॰ सी॰ टी॰ ई॰) के मार्गदर्शक सिद्धांतों के मुताबिक केवल परीक्षा निकाय जे॰ ए॰ सी॰ को शिक्षक पात्रता परीक्षा (संक्षेप में 'टी॰ ई॰ टी॰') संचालित करने के लिए नियमावली निरुपित और अधिकथित करने की अधिकारिता है। जे॰ ए॰ सी॰ ने प्रक्रिया विहित नहीं किया है और टी॰ ई॰ टी॰ परीक्षा संचालित करने के लिए अनुदेश अधिकथित नहीं किया था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन राज्य द्वारा शक्ति के प्रयोग में विरचित नियमावली केवल शिक्षकों की नियुक्ति से संबंधित है और न कि टी॰ ई॰ टी॰ परीक्षा के लिए अनुदेश और मार्गदर्शक सिद्धांत के अधिकथन से। यह निवेदन भी किया गया है कि राज्य सरकार द्वारा विरचित नियमावली दिनांक 11 फरवरी, 2011 की अधिसूचना द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों के उल्लंघन में है। राज्य सरकार द्वारा विरचित नियमावली टी॰ ई॰ टी॰ परीक्षा के लक्ष्य तथा उद्देश्य को विनष्ट कर देगी जो एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ द्वारा जारी दिनांक 11 फरवरी, 2011 के मार्गदर्शक सिद्धांतों से प्रकट है,

विशेषत: जैसा खंड III के अधीन बनाया गया है। यह निवेदन किया गया है कि यदि राज्य सरकार द्वारा विरचित नियमावली के मुताबिक परीक्षा संचालित की जाएगी, यह शिक्षक गुणवत्ता के राष्ट्रीय मानक और बेंचमार्क के लक्ष्य को प्राप्त करने के बजाए यह निश्चय ही झारखंड राज्य में शिक्षकों की गुणवत्ता घटा देगी और शिक्षक की गुणवत्ता पर जोर देने के लिए एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ द्वारा दिया गया जोर नष्ट हो जाएगा। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि राज्य नियमावली के मुताबिक भाषा पेपर को दो भागों में विभाजित कर दिया गया है। भाषा I और भाषा II में पेपर I में आवेदकों को दो विकल्प दिए गए हैं अर्थात् आवेदक ''हिंदी'' अथवा ''अंग्रेजी'' चुन सकता है अथवा आवेदक जो सहायक उर्दू शिक्षक पद के आवेदक हैं, वे ''उर्दू'' और ''अंग्रेजी'' चुन सकते हैं। तब पेपर II (भाषा) में विकल्प इस तरीके से दिया गया है कि यह प्रतीत होता है कि शिक्षक के पद के लिए प्रतियोगिता राज्य स्तरीय प्रतियोगिता के लिए नहीं है बल्कि यह झारखंड राज्य के अंतर्गत जिला स्तर तक सीमित है। यह निवेदन भी किया है कि जिला के लिए भाषा विहित करने का युक्तियुक्त आधार नहीं है। यह निवेदन भी किया गया है कि उदाहरणस्वरुप, राँची जिला में तीन आदिवासी भाषाओं अर्थात् कुरुख, खरिया और मुंडारी विहित किया गया है और इस जिला के लिए नागपुरी, पंचपरगनिया, कुरमाली और बंगला के रूप में क्षेत्रीय भाषाओं को विहित किया गया है। यह निवेदन किया गया है कि राँची राजधानी है जहाँ छात्र इन भाषाओं का ज्ञान नहीं रख सकते हैं। अत:, ऐसे विभाजन द्वारा शिक्षक के पद के लिए और टी॰ ई॰ टी॰ परीक्षा के लिए भी अधिक उपयुक्त उम्मीदवारों को अपवर्जित कर दिया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि केंद्रीय मार्गदर्शक सिद्धांतों ने अनेक भाषाओं में से किसी भाषा को चुनने का अवसर आवेदकों को दिया है। जबकि झारखंड राज्य में अनेक भाषाएं हैं किंतु अनेक भाषाओं में से किसी एक भाषा को चुनने का विकल्प उम्मीदवारों को नहीं दिया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि इस न्यायालय ने पूर्विक अवसर पर **अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू, झारखंड बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य,** 2011 (4) JLJR 387, मामले में प्राथमिक विद्यालय शिक्षक के 18000 पदों के विरुद्ध की गयी संपूर्ण चयन प्रक्रिया को अपास्त कर दिया। उस रिट याचिका में समरुप आधारों को उठाया गया था किंतु उन्हें इस कारण से खुला छोड़ दिया गया था क्योंकि इस न्यायालय द्वारा संपूर्ण चयन अभिखंडित कर दिया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि राज्य सरकार द्वारा विरचित नियमावली द्वारा अधिरोपित निर्बंधन भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हैं।

3. जे॰ ए॰ सी॰ के और राज्य सरकार के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि परीक्षा प्रक्रिया नवंबर, 2012 में शुरू की गयी थी और दिनांक 26 अप्रिल, 2013 को अर्थात् आज के दिन से ठीक आठ दिन बाद परीक्षा ली जानी है। जे॰ ए॰ सी॰ के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि नियुक्तियाँ जिलावार हैं और नियमावली के अनुरुप हैं। यह निवेदन किया गया है कि यद्यपि याची ने अनेक आधारों पर नियमावली की वैधता को चुनौती दिया है किंतु प्रत्यर्थीगण परीक्षा संचालित कर रहे हैं और प्रक्रिया प्रबलित विधि के अनुरुप है और जब तक नियमावली का प्रवर्तन और प्रभाव स्थगित नहीं किया जाता है, कोई अंतरिम अनुतोष प्रदान करने का कारण नहीं है। यह निवेदन भी किया गया है कि 25000 शिक्षकों की नियुक्ति के ऐसे मामले में, जहाँ लगभग 1,90,000 उम्मीदवार हैं, अत्यन्त विलंब के बाद प्रार्थना की गयी है।

4. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है। यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 17 नवंबर, 2012 को विज्ञापन जारी

किया गया था और यह याचिका दिनांक 5 अप्रिल, 2013 को दाखिल की गयी है। परीक्षा तिथि घोषित कर दिए जाने के बाद यह याचिका दाखिल की गयी है। लगभग 1,90,000 छात्रों ने शिक्षकों की 25,000 रिक्तियों के विरुद्ध आवेदन दिया है। अत: इस चरण पर हमारा सुविचारित मत है कि परीक्षा प्रक्रिया जो जारी है को स्थगित नहीं किया जा सकता है और परीक्षा प्रक्रिया स्थगित करने का औचित्य नहीं है। किंतु हम यह स्पष्ट कर रहे हैं कि यदि रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है, तब उस स्थिति में प्रत्यर्थीगण संपूर्ण परीक्षा फीस वापस लौटाने के दायी हो सकते हैं अथवा आवेदकों को नए आवेदन के विरुद्ध फीस समायोजित करने के दायी हो सकते हैं यदि रिट याचिका अनुज्ञात करने के बाद न्यायालय उम्मीदवारों के नए आवेदनों के विरुद्ध फीस समायोजित करने का निर्देश देता है।

5. अत:, पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के साथ अंतरिम अनुतोष की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

6. किंतु, सुनवाई के लिए इस रिट याचिका को ग्रहण किया जाता है।

7. प्रत्यर्थीगण तीन सप्ताह की अवधि के भीतर प्रति शपथ पत्र दाखिल कर सकते हैं और याची, यदि आवश्यकता है, तत्पश्चात दो सप्ताह की अवधि के भीतर प्रत्युत्तर दाखिल कर सकता है।

इस मामले को दिनांक 11 जून, 2013 के लिए सूचीबद्ध किया जाए।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

मो॰ गुलाम अली एवं एक अन्य

cuke

मो॰ सुलेमान एवं अन्य

WP(C) No. 6928 of 2012. Decided on 16th April, 2013.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 13 नियम 4—दस्तावेजों को चिन्हित किया जाना—कतिपय दस्तावेजों के प्रदर्शों को चिन्हित करने से इनकार—याचीगण ने विलंबित चरण पर ऐसा आवेदन दाखिल किया है—किंतु, प्रक्रियात्मक कानूनी बारीकियों में जाने के बजाए न्यायालय को सारवान न्याय करने का प्रयास करना चाहिए और तद्द्वारा महत्वपूर्ण दस्तावेजों, जो पक्षों के बीच वास्तविक विवाद्यकों और विवादों के विनिश्चयकरण के लिए आवश्यक हैं को प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए—रिट याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 6 से 8)

निर्णयज विधि.—2012 (3) JLJR 248; 2009 (3) JCR 90 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. V. Shivnath, For the Petitioners; M/s. Ayush Aditya, S. Shekhar, For the Respondents.

आदेश

याचीगण ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके दिनांक 28.5.2012 और दिनांक 5.9.2012 के आदेशों को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा अवर न्यायालय ने कतिपय दस्तावेजों, जो याची के अनुसार मामले में अंतर्ग्रस्त विवाद्यक के विनिश्चयकरण के लिए आवश्यक थे, को प्रदर्शों के रूप में चिन्हित करने से इनकार कर दिया है।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए और आक्षेपित निर्णयों एवं अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का परिशीलन किया गया।

3. यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय में तीन वादों अर्थात् अभिधान वाद सं॰ 55/03, अभिधान वाद सं॰ 63 वर्ष 2003 और अभिधान बेदखली वाद सं॰ 13/2003 को दाखिल किया गया था। याचीगण

के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, विक्रय विलेख जो महत्वपूर्ण दस्तावेज है को अभिधान वाद सं॰ 63 वर्ष 2003 में प्रस्तुत किया गया था और चूँकि उक्त वाद लंबित है, याचीगण अभिधान वाद सं॰ 55/2003 में उक्त दस्तावेज प्रस्तुत करने की अवस्था में नहीं है।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदनों के समर्थन में **लक्ष्मी एवं एक अन्य बनाम चिन्नामल उर्फ रय्यामल एवं अन्य, 2009 (3) JCR 90 (SC)** मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है और उक्त निर्णय के पैराग्राफ 12 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया है कि अवर न्यायालय को सामान्यत: अभिलेख पर दस्तावेज प्रस्तुत किए जाने और चिन्हित किए जाने से इनकार नहीं करना चाहिए जो किसी पक्ष के मामला को सिद्ध करने के लिए आवश्यक है। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **मूतर धोबी बनाम परबिल धोबी,** 2012 (3) JLJR 248, मामले में दिए गए एक अन्य निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है। उक्त निर्णय के पैराओं 4 से 6 तक को निर्दिष्ट करके याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रक्रियात्मक कानूनी बारीकियों को आवश्यक दस्तावेजों, जो मामले में अंतर्ग्रस्त वास्तविक विवाद्यकों के विनिश्चयकरण के लिए आवश्यक हैं, को प्रस्तुत करने के लिए पक्षों के रास्ते में नहीं आना चाहिए।

5. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थीगण-वादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अभिधान वाद वर्ष 2003 का है और उक्त दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए प्रतिवादीगण के पास पर्याप्त अवसर उपलब्ध था। किंतु, उक्त दस्तावेजों को आरंभिक चरण पर प्रस्तुत नहीं किया गया था और, इसलिए, अवर न्यायालय ने सही प्रकार से और समुचित रूप से याचीगण-प्रतिवादीगण द्वारा दिए गए आवेदन को अस्वीकार कर दिया था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अवर न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने याचीगण-प्रतिवादीगण के आचरण को गंभीर रूप से ध्यान में लिया है और, तत्पश्चात, याचीगण-प्रतिवादीगण द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रतिशपथ पत्र और दिनांक 5.9.2012 के आदेश को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि याचीगण-प्रतिवादीगण ने अवर न्यायालय के समक्ष पुनर्विलोकन आवेदन दिया किंतु अवर न्यायालय द्वारा उक्त पुनर्विलोकन आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था और इस याचिका को दाखिल करने के पहले के समय पर याची द्वारा इस आदेश को चुनौती नहीं दिया गया था। यद्यपि यह वादीगण-प्रतिवादीगण की जानकारी में था। अत:, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस याचिका को दाखिल किए जाने के समय पर इस तात्विक तथ्य का दमन किया गया था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदनों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों को निर्दिष्ट किया है और इन पर विश्वास किया है:-

1. 2012 (2) SCC 196;

2. 2012 (2) SCC 300;

3. 2002 (1) SCC 535 vkj

4. 2009 (3) JCR 90 (SC).

प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों की दृष्टि में याचीगण-प्रतिवादीगण किसी अनुतोष को पाने के हकदार नहीं हैं जैसी प्रार्थना की गयी है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत **2009 (3) JCR 90 (SC)** में प्रकाशित मामलों में से एक को निर्दिष्ट करके और उक्त निर्णय के पैरा 17 (ii) और (iii) को निर्दिष्ट करके निवेदन किया कि उसमें प्रगणित सिद्धांतों और याचीगण-प्रतिवादीगण के आचरण को देखते हुए वे किसी अनुतोष के हकदार नहीं हैं जैसी प्रार्थना की गयी है।

6. पक्षों के परस्पर विरोधी पूर्वोक्त निवेदनों पर विचार करते हुए, यह प्रतीत होता है कि विक्रय विलेख, जिसे एक अन्य अभिधान वाद सं॰ 63/2003 में प्रस्तुत किया गया था, के प्रदर्श को प्रस्तुत करने और चिन्हित करने के लिए वर्ष 2012 का आवेदन याचीगण-प्रतिवादीगण द्वारा दिया गया था जो याचिका में परिशिष्ट-A के तहत संलग्न है। यह प्रतीत होता है कि उक्त आवेदन में पैरा 3 में निर्देश किया गया है कि दिनांक 21.7.2006 की याचिका विद्वान अवर न्यायालय को सूचना के रूप में दाखिल की गयी थी कि दस्तावेजों के उसी संवर्ग को एक अन्य मामले में अर्थात् अभिधान वाद सं॰ 63/2003 में प्रस्तुत किया गया है। आगे यह प्रतीत होता है कि अभिधान वाद सं॰ 55/2003 में वादीगण का साक्ष्य दिनांक 6 जनवरी, 2009 को बंद कर दिया गया था और तत्पश्चात प्रतिवादीगण ने अपना साक्ष्य शुरू किया और उनके साक्ष्य को दिनांक 13 जनवरी, 2011 को बंद किया गया था। आगे यह प्रतीत होता है कि दिनांक 28.4.2010 के बाद प्रतिवादीगण ने 15 से अधिक अवसर दिए जाने के बावजूद इस मामले में कोई साक्ष्य नहीं दिया है। आगे यह प्रतीत होता है कि साक्ष्य बंद करने के बाद दिनांक 13 जनवरी, 2011 के आदेश द्वारा मामला तर्क के लिए दिनांक 6.1.2012 को रखा गया था और, इसलिए, यह प्रतीत होता है कि दस्तावेजों, जो इस मामले में अंतर्ग्रस्त वास्तविक विवाद्यकों के विनिश्चयकरण के लिए महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं, को प्रस्तुत करने के लिए उनको अनुमति देने के अनुरोध के साथ समय के आरंभिक बिन्दु पर ऐसा आवेदन दाखिल करने का पर्याप्त अवसर याचीगण-प्रतिवादीगण को उपलब्ध था। इस प्रयोजन से, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन करके इसे न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया कि वैध कारणों से प्रतिवादीगण ऐसा आवेदन नहीं दे सके थे क्योंकि उन्हें इसको वर्तमान मामले में प्रस्तुत करने के लिए उक्त दस्तावेजों की प्रमाणित प्रति को प्राप्त करना था जबकि, दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त निर्दिष्ट तिथियों को प्रदर्शित किया है और निवेदन किया है कि प्रतिवादीगण के पास पर्याप्त अवसर उपलब्ध था, किंतु प्रतिवादीगण ने केवल कार्यवाही में विलंब करने की दृष्टि से विलंबित चरण पर ऐसा आवेदन दाखिल किया। आगे यह प्रतीत होता है कि दस्तावेजों के उसी संवर्ग को अभिधान वाद सं॰ 63/2003 में प्रस्तुत किया गया था और वर्तमान वाद भी वर्ष 2003 का है और वर्ष 2011 में साक्ष्य बंद कर दिया गया था और तत्पश्चात, मामला तर्क के चरण पर लंबित है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश से याचीगण-प्रतिवादीगण का आचरण स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि याचीगण-प्रतिवादीगण ने विलंबित चरण पर ऐसा आवेदन दाखिल किया है। किंतु, समय के इसी बिंदु पर, **2009 (3) JCR 90 (SC)** में प्रकाशित और याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट एवं विश्वास किए गए निर्णय की दृष्टि में, किसी पक्ष का मामला सिद्ध करने के लिए आवश्यक दस्तावेज होने के नाते प्रश्नगत दस्तावेज को प्रस्तुत करने से सामान्यत: इनकार नहीं किया जाना चाहिए और प्रदर्श के रूप में उक्त दस्तावेज को प्रस्तुत और चिन्हित करने के लिए अवसर देने की आवश्यकता थी और उस प्रयोजन से प्रक्रियात्मक विधि/बारीकियों को पक्षों के रास्ते में नहीं आना चाहिए क्योंकि अंतिम लक्ष्य पक्षों को सारवान न्याय प्रदान करना है। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट एवं विश्वास किया गया एक अन्य निर्णय, 2012 (3) JLJR 248, भी वर्तमान मामले को विनिश्चित करने के प्रयोजन से प्रासंगिक प्रतीत होता है क्योंकि वर्तमान मामले के तथ्य निर्दिष्ट मामले जिसे याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किया गया है के समरुप हैं। जहाँ तक निर्णयज विधियों, जिन्हें प्रत्यर्थीगण-वादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट एवं विश्वास किया गया है का संबंध है, ये वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांत की दृष्टि में इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि प्रक्रियात्मक बारीकियों में जाने के बजाए न्यायालय को सारवान न्याय करने का प्रयास करना चाहिए और तद्द्वारा महत्वपूर्ण दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए जो पक्षों के बीच वास्तविक विवाद्यकों और विवादों के विनिश्चयकरण के लिए आवश्यक है।

7. ऊपर चर्चा किए गए वर्तमान मामले में दस्तावेज अभिधान वाद सं॰ 63/2003 के अभिलेख पर थे और उक्त दस्तावेज अभिधान वाद सं॰ 55/2003 के विनिश्चयकरण के लिए आवश्यक था जैसा याचीगण-प्रतिवादीगण द्वारा दाखिल आवेदन में कथन किया गया है, अत: इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि दिनांक 28.5.2012 और दिनांक 5.9.2012 के आक्षेपित आदेशों को अपास्त करने की आवश्यकता है और उक्त दस्तावेज की प्रस्तुति के लिए याचीगण-प्रतिवादीगण को अवसर देने की आवश्यकता है। अवर न्यायालय को पक्षों को सुनने के बाद उक्त दस्तावेज को प्रदर्श के रूप में चिन्हित करने पर विचार करने का निर्देश भी दिया जाता है और, तत्पश्चात, प्रत्यर्थीगण-वादीगण को इस संबंध में साक्ष्य, यदि हो, देने का निष्पक्ष अवसर दिया जाए। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अपने आदेश में वर्णित याचीगण के आचरण की दृष्टि में याचीगण-प्रतिवादीगण पर 2500/- (दो हजार पाँच सौ मात्र) रुपयों का व्यय अधिरोपित करने का आदेश दिया जाता है। व्यय की राशि अवर न्यायालय में जमा की जाएगी और प्रत्यर्थीगण को इसका भुगतान किया जाएगा।

8. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

इफ्तिखार अहमद एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 246 of 2012. Decided on 7th May, 2013.

झारखंड खान एवं खनिज रियायत नियमावली, 2004—नियम 54 (7)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 4 एवं 482—स्टोन चिप्स का अवैध परिवहन—यदि भा॰ दं॰ सं॰ से भिन्न किसी अन्य विधि के अधीन कोई अपराध किया जाता है प्रवृत्त उस अधिनियम में अंतर्विष्ट प्रावधानों के अनुसार इसकी जाँच की जाएगी अथवा विचारण किया जाएगा—पुलिस सब-इंस्पेक्टर की प्रेरणा पर मामला दर्ज करना बिल्कुल अवैध है—परिणामस्वरुप, व्यक्ति जो मामला दर्ज करने के लिए प्राधिकृत नहीं है द्वारा दर्ज मामले में दाखिल आरोप-पत्र पर संज्ञान लेने वाला आदेश बिल्कुल दोषपूर्ण बन जाता है—दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 11 से 14)

निर्णयज विधि.—2009(2) JLJR 258—Referred.

अधिवक्तागण.—Mr. T.K. Mishra, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. आरंभ में यह आवेदन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413, 414, 120B के अधीन और खान अधिनियम की धारा 40 के अधीन तथा झारखंड खान एवं खनिज रियायत नियमावली, 2004 के नियम 54 (7) के अधीन भी संस्थापित पाकुड़ (मलपहाड़ी) ओ॰ पी॰ पी॰ एस॰ केस सं॰ 27 वर्ष 2011 की प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया था।

3. अभियोजन का मामला यह है कि गश्त के दौरान जब मलपहाड़ी चौकी पर पदस्थापित किसी एस॰ आई॰ ने कतिपय ट्रकों को आते देखा, उसने ट्रक रोकने के लिए चालकों को संकेत दिया। ट्रक रोके

जाने पर रजिस्ट्रेशन सं॰ WB65-0715, WB59A-1002 और WB59A 4445 के चालक भाग गए। तलाशी लिए जाने पर स्टोन चिप्स के परिवहन के संबंध में कोई दस्तावेज नहीं पाया गया था।

4. इस प्रकार, यह संदेह किया गया था कि ट्रक स्वामी ने क्रशर स्वामियों के साथ दुरभिसंधि में उच्चतम मूल्य पर इसे बेचने के लिए स्टोन चिप्स पश्चिम बंगाल ले जा रहे हैं।

5. उक्त अभिकथन पर, प्राथमिकी दर्ज की गयी थी जिसे भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413, 414, 120B के अधीन और खान अधिनियम की धारा 40 और झारखंड खान एवं खनिज रियायत नियमावली, 2004 के अधीन भी संस्थापित पाकुड़ (मलपहाड़ी) ओ॰ पी॰ पी॰ एस॰ केस सं॰ 27 वर्ष 2011 के रूप में दर्ज किया गया था।

6. अन्वेषण के बाद, आरोप-पत्र दाखिल किया गया था जिस पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413, 414, 120B और खान अधिनियम की धारा 40 और झारखंड खान एवं खनिज रियायत नियमावली, 2004 के नियम 54 (7) के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान दिनांक 5.9.2012 के आदेश के तहत लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

7. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि खान से पत्थर के अवैध निष्कासन और इसके परिवहन का अभिकथन झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के नियम 54 के अधीन अपराध गठित करता है जो एक विशेष विधान है जो कहता है कि यदि कोई उक्त नियमावली के प्रावधानों के उल्लंघन में खनिज का निष्कासन अथवा परिवहन करता है यह झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के नियम 54 के अधीन दंडनीय होगा और इस स्थिति के अधीन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413/414 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है और इसलिए, यदि अपराध झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के प्रावधानों के अधीन है, इसे केवल सरकार द्वारा सम्यक रूप से प्राधिकृत सक्षम अधिकारी अर्थात् उपनिदेशक, खान, अपर निदेशक, खान अथवा निदेशक, खान अथवा खान कलक्टर अथवा अधिकारी की प्रेरणा पर उक्त नियमावली के नियम 57 के निबंधनानुसार संस्थापित किया जा सकता है और केवल तब प्राथमिकी के आधार पर अपराध का संज्ञान लिया जा सकता है। किंतु इस मामले में पुलिस सब-इंस्पेक्टर यद्यपि सब-इंस्पेक्टर को झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के अधीन दंडनीय मामला दर्ज करने के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया है, द्वारा दर्ज मामले में आरोप-पत्र की प्रस्तुति पर भारतीय दंड संहिता और झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है और इसलिए संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है।

8. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त निवेदन के समर्थन में **भोतना महतो बनाम झारखंड राज्य,** 2009 (2) JLJR 258, में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

9. इसके विरुद्ध, राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिशपथ पत्र में दिए गए बयानों को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि चूँकि संज्ञान पहले ही लिया जा चुका है, अब विचारण न्यायालय को विचार करना है कि क्या भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध बनता है या नहीं और चूँकि याचीगण को भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध करता हुआ अभिकथित किया गया है, सब-इंस्पेक्टर मामला दर्ज करने के लिए सक्षम है।

10. मैं राज्य की ओर से किए गए निवेदन में सार नहीं पाता हूँ।

11. इस संबंध में, मैं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 में अंतर्विष्ट प्रावधान निर्दिष्ट कर सकता हूँ कि यदि भारतीय दंड संहिता से भिन्न किसी विधि के अधीन कोई अपराध किया जाता है, प्रवृत्त उस अधिनियम में अंतर्विष्ट प्रावधान के अनुसार इसका अन्वेषण जाँच अथवा विचारण किया जाएगा।

12. यहाँ वर्तमान मामले में, पूर्वोक्त नियमावली का नियम 57 विहित करता है कि पूर्वोल्लिखित व्यक्तियों की प्रेरणा पर प्राथमिकी दर्ज की जा सकती है जबकि राज्य का मामला कभी नहीं है कि किसी पुलिस थाना का एस॰ आई॰ मामला दर्ज करने के लिए सक्षम है। अतः, पुलिस सब-इंस्पेक्टर की प्रेरणा पर वर्तमान मामले का दर्जकरण बिल्कुल अवैध है। परिणामस्वरुप, व्यक्ति जो मामला दर्ज करने के लिए प्राधिकृत नहीं है द्वारा दर्ज मामले में आरोप-पत्र दाखिल किए जाने पर संज्ञान लेने वाला आदेश दोषपूर्ण बन जाता है।

13. तद्नुसार संज्ञान लेने वाला आदेश सहित पाकुड़ (मलपहाड़ी) ओ॰ पी॰ पी॰ एस॰ केस सं॰ 27 वर्ष 2011 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अपास्त की जाती है।

14. परिणामस्वरुप, इस आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

फिरोज आलम

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Revision No. 319 of 2013. Decided on 16th May, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 451 एवं 452—दांडिक मामले के संबंध में वाहन का अधिहरण—वाहन की निर्मुक्ति के लिए आवेदन—जब वाहन जब्त किया गया था, याची वाहन का रजिस्टर्ड स्वामी नहीं था यद्यपि उसने रजिस्टर्ड स्वामी से वाहन खरीदने का दावा किया था—प्रश्नगत वाहन के संबंध में याची के स्वामित्व अथवा अन्यथा के संबंध में आदेश पारित करने के लिए एक न्यायालय दूसरे न्यायालय पर जिम्मेदारी डाल रहा है—याची को अनावश्यक रूप से न्यायालय द्वारा परेशान किया जा रहा है—आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया और अवर न्यायालय को याची के आवेदन पर इसके गुणागुण पर आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 4 से 8)

अधिवक्तागण.—Mr. Ramesh Chandra Khatri, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची ने अपने वाहन की निर्मुक्ति के लिए आवेदन दाखिल किया है जिसे दांडिक मामले के संबंध में जब्त किया गया है जिसमें विचारण एस॰ टी॰ सं॰ 146 वर्ष 2012 में अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह के समक्ष लंबित है।

3. यह प्रतीत होता है कि जब वाहन जब्त किया गया था। याची वाहन का रजिस्टर्ड स्वामी नहीं था यद्यपि उसने रजिस्टर्ड स्वामी से वाहन खरीदने का दावा किया था। प्रत्यर्थी ने वाहन की निर्मुक्ति के लिए अपना आवेदन दाखिल किया जिसे पहले अपर सत्र न्यायाधीश-II, गिरीडीह द्वारा पारित दिनांक 5.7.2012 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि याची द्वारा दाखिल दस्तावेजों ने दर्शाया कि वाहन का रजिस्टर्ड स्वामी कोई स्वामी चरण राम था और न कि याची। याची ने उक्त आदेश को

दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 683 वर्ष 2012 में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दिया जिसे दिनांक 17.1.2013 के आदेश द्वारा यह संप्रेक्षित करते हुए निपटाया गया था कि याची ने स्वामीचरण राम से वाहन खरीदने का दावा किया किंतु इस तथ्य की दृष्टि में कि अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं था कि वाहन याची द्वारा खरीदा गया था, याची के पक्ष में वाहन निर्मुक्त करने से इनकार करते हुए विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह द्वारा पारित आदेश में अवैधता नहीं पायी गयी थी। किंतु, यह संप्रेक्षित किया गया था कि यदि याची के पास प्रश्नगत वाहन के संबंध में कोई दस्तावेज है, याची अवर न्यायालय के समक्ष नया आवेदन दाखिल कर सकता है और अवर न्यायालय को विधि के अनुरुप याची द्वारा दाखिल आवेदन, यदि हो, को निपटाने का निर्देश दिया गया था।

4. यह प्रतीत होता है कि तत्पश्चात याची ने पुनः प्रश्नगत वाहन की निर्मुक्ति के लिए अपना आवेदन दाखिल किया था और उक्त वाहन के स्वामित्व के संबंध में डी॰ टी॰ ओ॰ धनबाद से रिपोर्ट मंगायी गयी थी। किंतु ऐसा कोई निष्कर्ष प्रतीत नहीं होता है कि क्या याची के नाम में वाहन अंतरित किया गया था। या नहीं किंतु अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह द्वारा पारित दिनांक 20.2.2013 का आदेश दर्शाता है कि उन्होंने याची के वाहन की निर्मुक्ति के बिंदु पर आदेश पारित करने के लिए मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को निर्देश दिया। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने दिनांक 14.3.2013 के आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया कि इस तथ्य की दृष्टि में कि मामला पहले ही सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया जा चुका है, उन्हें किसी आदेश को पारित करने की शक्ति नहीं थी। तत्पश्चात अपर सत्र न्यायाधीश–II ने पुनः दिनांक 19.3.2013 को यह कथन करते हुए आदेश पारित किया कि न्यायालय मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 452 (3) के अधीन मामला विनिश्चित करने के लिए कहने के लिए सक्षम था और मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी का न्यायालय इस मामले में निर्णय लेने के लिए सक्षम था।

5. अवर न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के परिशीलन से यह प्रकट है कि प्रश्नगत वाहन के संबंध में याची के स्वामित्व अथवा अन्यथा के संबंध में आदेश पारित करने के लिए एक न्यायालय दूसरे न्यायालय पर जिम्मेदारी डाल रहा है। स्वीकृत रूप से, वाहन की निर्मुक्ति के लिए याची का आवेदन अस्वीकार करता हुआ पूर्व आदेश अपर न्यायाधीश II, गिरीडीह द्वारा पारित किया गया था जिसके विरुद्ध याची ने इस न्यायालय में पुनरीक्षण दाखिल किया था और इसे विधि के अनुरुप आवेदन निपटाने के लिए अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह को निर्देश देते हुए निपटाया गया था। मामले के उस दृष्टिकोण में मामला विनिश्चित करना अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह की जिम्मेदारी थी और उन्हें मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी पर यह जिम्मेदारी नहीं डालना था जिन्होंने संप्रेक्षित किया और मेरे दृष्टिकोण में सही प्रकार से संप्रेक्षित किया कि वह आदेश पारित करने के लिए सक्षम नहीं है क्योंकि मामला पहले ही सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया जा चुका है। तत्पश्चात भी, अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह ने यह कथन करते हुए कि उनके पास मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को आदेश पारित करने के लिए कहने का प्राधिकार था, पुनः मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी पर जिम्मेदारी डालने का प्रयास किया है।

6. अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय पर जिम्मेदारी डालकर याची को अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह द्वारा अनावश्यक रूप से परेशान किया जा रहा है। इस न्यायालय को वह तथ्य नहीं पता है कि क्यों अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह याची के वाहन की निर्मुक्ति के संबंध में आदेश पारित करने की जिम्मेदारी से बच रहे हैं किंतु प्रथम दृष्टया अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह का कृत्य अत्यन्त निदंनीय है।

7. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, एस॰ टी॰ सं॰ 146 वर्ष 2012 में अपर सत्र न्यायाधीश-II, गिरीडीह द्वारा पारित दिनांक 19.3.2013 का आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और अपर सत्र न्यायाधीश II, गिरीडीह को याची के आवेदन पर इसके गुणागुण पर आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है और यदि यह पाया जाता है कि याची वाहन का रजिस्टर्ड स्वामी है, इसे ऐसे वचनों/बंधों/प्रतिभूतियों, जैसा न्यायालय इस मामले के तथ्यों में सुयोग्य और समुचित समझता है, दिए जाने पर याची के पक्ष में निर्मुक्त किया जाएगा।

8. तद्नुसार, यह आवेदन उक्त निर्देश के साथ अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

मित्तन साहा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(C) No. 654 of 2012. Decided on 30th May, 2013.

बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914—धाराएँ 7 एवं 9—प्रमाण पत्र मामला—गिरफ्तारी वारंट—धारा 9 के अधीन याची द्वारा आपत्ति दाखिल नहीं की गयी—प्रमाण पत्र अधिकारी ने कोई वैकल्पिक उपाय नहीं पाते हुए बकाया की वसूली के लिए उसके विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी करना चुना है—प्रमाण पत्र कार्यवाही अभी भी लंबित है—याची को प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया—गिरफ्तारी वारंट का निष्पादन स्थगित किया गया। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.—Mr. Rakesh Kumar, For the Petitioner; JC to AG, For the Respondents.

आदेश

<u>आई॰ ए॰ सं॰ 3347 वर्ष 2013</u>

याची ने प्रमाण पत्र मामला सं॰ 41/2009-10 में प्रमाण पत्र अधिकारी, खान-सह-खान उपनिदेशक, संथाल परगना अंचल, दुमका द्वारा उसके विरुद्ध दिनांक 31 मार्च, 2011 को जारी गिरफ्तारी वारंट के निष्पादन का स्थगन इप्सित करते हुए इस अंतर्वर्ती आवेदन को दाखिल किया है।

2. याची के अनुसार, पहले जब गिरफ्तारी वारंट जारी और निष्पादित किया गया था, उसे इसका पता चला और वह प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ जिन्होंने दिनांक 15 अप्रिल, 2011 के अंतरिम आदेश जो, रिट याचिका के परिशिष्ट-3 में अंतर्विष्ट है द्वारा गिरफ्तारी का वारंट प्रास्थगन में रखा। उसकी ओर से यह निवेदन किया गया है कि अवैध खनन के अभिकथित कृत्यों के संबंध में दांडिक मामला भी संस्थापित किया गया था जो एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, राजमहल के न्यायालय में लंबित है और उसने उस आधार पर प्रमाण पत्र कार्यवाही में समय इप्सित किया था। यह निवेदन किया गया है कि तत्पश्चात् याची ने वर्तमान रिट याचिका में संपूर्ण प्रमाण पत्र कार्यवाही को अनेकों आधारों पर चुनौती दिया है कि बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914 की अनुसूची-I के अधीन विहित वस्तुओं के अधीन धन के बकाया के रूप में देय वसूली योग्य नहीं हैं। उसकी ओर से कथन किया गया है कि बगल के गाँव के कुछ लोगों की भूमि से पत्थरों को निकालने के संबंध में झारखंड खान खनिज रियायत नियमावली, 2004 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए उसके विरुद्ध मामला नहीं बनता है।

तद्नुसार, याची ने अपने विरुद्ध पहले जारी गिरफ्तारी वारंट सहित संपूर्ण प्रमाण पत्र कार्यवाही का अभिखंडन वर्तमान रिट याचिका में इप्सित किया था।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची ने प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के बाद एक या दूसरे बहाने समय इप्सित किया था किंतु विधि के ऐसे समस्त उपलब्ध अभिवचनों को करते हुए धारा 9 के अधीन अपना आपत्ति दाखिल नहीं किया है। यह प्रतीत होता है कि प्रमाण पत्र अधिकारी ने याची का आचरण देखते हुए उसके विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट निष्पादित करना चुना है जो स्वयं प्रमाण पत्र अधिकारी द्वारा प्रदान किए गए अंतरिम संरक्षण के कारण दो वर्षों से अधिक तक लंबित बना रहा। वह निवेदन करते हैं कि याची को प्रमाण पत्र अधिकारी के पास जाना चाहिए जो 1914 के अधिनियम के अधीन उसके द्वारा उठाए गए विधि एवं तथ्य के ऐसे प्रश्नों को ग्रहण कर सकता है।

4. मैंने पक्षों के अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर सामग्री और तथ्यों का परिशीलन किया है। यह प्रकट है कि याची ने धारा 7 के अधीन नोटिस और गिरफ्तारी वारंट जारी किए जाने के बाद प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ और अवैध खनन के कुछ अवैध कृत्यों के संबंध में दांडिक मामला लंबित रहने के कारण समय की प्रार्थना की और उसके अनुरोध पर दिनांक 15 अप्रिल, 2011 के आदेश द्वारा गिरफ्तारी वारंट का निष्पादन प्रास्थगन में रखा गया था। किंतु, याची ने उसको उपलब्ध तथ्य और विधि के अभिवचनों को करते हुए धारा 9 के अधीन अपनी समुचित आपत्ति दाखिल किए बिना मामले पर बैठा रहा। ऐसे परिस्थितियों में प्रमाण पत्र अधिकारी ने कोई वैकल्पिक उपाय नहीं पाते हुए बकाया की वसूली के लिए उसके विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी करना चुना है। पक्षों के निवेदन से प्रतीत होता है कि प्रमाण पत्र कार्यवाही अभी भी संबंधित प्राधिकारी के समक्ष लंबित है।

5. ऐसी परिस्थितियों में, याची को तीन सप्ताह के भीतर प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने और विधि तथा तथ्य के ऐसे समस्त अभिवचनों को करते हुए वर्ष 1914 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन अपनी आपत्ति दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है और प्रमाण पत्र अधिकारी तत्पश्चात याची की आपत्ति को अथवा अन्यथा भी, यदि पूर्वोक्त समय के भीतर याची अपनी आपत्ति दाखिल करने में विफल रहता है, विचार में लेते हुए विधि के अनुरुप अग्रसर होगा। यदि प्रमाण पत्र अधिकारी पाता है कि याची प्रमाण पत्र देयों अथवा ऐसे देयों जैसा प्रमाण पत्र अधिकारी द्वारा विनिश्चित किया गया है, का भुगतान करने का दायी है, वह तत्पश्चात इसकी वसूली के लिए विधि के अनुरुप अग्रसर होगा। विकल्प में, यदि वह पाता है कि याची की आपत्ति विधि और तथ्य में संपोषणीय है, वह उक्त कार्यवाही को छोड़ने के लिए विधि के अनुरुप समुचित निर्णय ले सकता है।

6. प्रदान की गयी पूर्वोक्त स्वतंत्रता की दृष्टि में याची के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट का निष्पादन आज के दिन से तीन सप्ताह की अवधि के लिए प्रास्थगन में बना रहेगा।

7. इस रिट याचिका और आई॰ ए॰ सं॰ 3347 वर्ष 2013 को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

रामू प्रसाद जायसवाल

cuke

राकेश नारायण

W.P. (C) No. 2806 of 2012. Decided on 9th May, 2013.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 47—बेदखली डिक्री के निष्पादन को चुनौती–अस्वीकरण–आवेदन याची/प्रतिवादी द्वारा अवर न्यायालय के समक्ष सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के अधीन मुख्यतः इस आधार पर दिया गया था कि अंतर्निहित अधिकारिता की कमी के कारण डिक्री अकृतता है–याची ने बेदखली वाद में विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध व्यथित और असंतुष्ट होकर किसी अपील को दाखिल नहीं किया है और विधि के अधीन उपलब्ध प्रभावकारी सांविधि का उपायों का सहारा लिए बिना याची सीधे निष्पादन न्यायालय के पास आया है और अंतर्निहित अधिकारिता के प्रश्न के संबंध में आपत्ति उठाया है–डिक्री निष्पादित करने वाला न्यायालय डिक्री से पीछे हट नहीं सकता है–रिट याचिका खारिज। (पैराएँ 11 से 14)

निर्णयज विधि.–1970 (1) SCC 670; (2006) 3 BLJR 2359 (Jhr.)—Relied; AIR 1954 SC 340; 1985 PLJR 490; AIR 1973 SC 2391; AIR 1977 SC 1201—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s. V. Shivnath, Nilesh Kumar, For the Petitioner; M/s. Manjul Prasad, S.S. Prasad, Praveen Kr., For the Respondent.

आदेश

याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके निष्पादन केस सं॰ 5/2011 में विद्वान मुंसिफ, पलामू, डालटेनगंज द्वारा पारित दिनांक 16.4.2012 के आदेश (परिशिष्ट–6), जिसके द्वारा विद्वान अवर न्यायालय ने सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के अधीन दाखिल दिनांक 24.2.2012 की याचिका को अस्वीकार कर दिया, को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए समुचित आदेश/रिट/निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना किया है।

2. याची और प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ताओं को सुना गया और आक्षेपित आदेश एवं अभिलेख पर उपलब्ध अन्य सामग्रियों का परिशीलन किया गया।

3. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि विद्वान अवर न्यायालय ने सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के विस्तार पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है। मुख्य प्रतिवाद, जिसे सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन में निष्पादन न्यायालय के समक्ष उठाया गया था, यह था कि अंतर्निहित अधिकारिता की कमी के कारण डिक्री अकृतता है और इसलिए, उक्त विवाद्यक निष्पादन न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है और निष्पादन न्यायालय को विस्तारपूर्वक उक्त आवेदन विनिश्चित करने की आवश्यकता है और उस प्रयोजन से सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को विविध मामला के रूप में दर्ज करने की आवश्यकता है और पक्षों को युक्तियुक्त अवसर देने के बाद इस पर विचार करने की आवश्यकता है। याची का मामला यह है कि प्रत्यर्थी/मूल वादी ने विचारण न्यायालय के समक्ष बेदखली वाद दाखिल किया और उक्त वाद बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की धारा 11(1) (b) और (c) के अधीन दाखिल किया गया था और इसलिए, अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रगणित विशेष प्रक्रिया अपनाकर उक्त वाद दाखिल किया गया है।

4. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने मुख्य याचिका के परिशिष्ट–3 अर्थात् निर्णीत ऋणी द्वारा दाखिल दिनांक 24.2.2012 की आपत्ति याचिका पर डिक्री धारक की ओर से दाखिल स्पष्टीकरण को निर्दिष्ट करते हुए पैराग्राफ सं॰ 3 एवं 4 से इंगित किया कि धारा 11 (1)(c) के अधीन बेदखली वाद दाखिल करने और अनुमति प्रदान करने जैसा धारा 14 (4) के अधीन अधिकथित किया गया है के संबंध में तथ्य मूल वादी द्वारा अपनाया गया है। किंतु इस तथ्य को अनदेखा करके विद्वान निष्पादन न्यायालय ने सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया।

5. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि अपील का सहारा लिए बिना सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन में याची द्वारा उठाए गए अंतर्निहित अधिकारिता की कमी के संबंध में प्रश्न पर निष्पादन न्यायालय को विचार करने की आवश्यकता है और याची के लिए बेदखली वाद में निर्णय और डिक्री को चुनौती देते हुए अपील दाखिल करना आवश्यक नहीं है।

6. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास किया है और उनको निर्दिष्ट किया है:–

(i) AIR 1954 SC 340;

(ii) 1985 PLJR 490;

(iii) AIR 1973 SC 2391;

(iv) AIR 1977 SC 1201

7. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि वाद जिसमें डिक्री पारित की गयी थी में पक्षों के बीच उद्भूत होने वाली डिक्री के निष्पादन, उन्मोचन अथवा संतुष्टि से संबंधित समस्त प्रश्नों को डिक्री निष्पादित करने वाला न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाएगा और न कि पृथक वाद में।

8. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची किसी अन्य उपाय का लाभ लिए बिना संहिता की धारा 47 का सहारा लेने का पात्र और हकदार है क्योंकि याची ने अंतर्निहित अधिकारिता की कमी के कारण डिक्री को चुनौती दिया है।

9. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विद्वान निष्पादन न्यायालय ने पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का परीक्षण करने पर और विधि के प्रावधानों पर भी विचार करते हुए विस्तृत आदेश पारित किया और याची का मामला गुणागुण पर नहीं है। आगे यह निवेदन किया गया है कि याची ने अपील दाखिल करके बेदखली वाद में पारित निर्णय और डिक्री को चुनौती नहीं दिया है और इसलिए, याची सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के अधीन आपत्ति दाखिल करके सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 का सहारा लेने के लिए हकदार नहीं है। प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि गुणागुण पर भी याची का कोई मामला नहीं है क्योंकि वाद–पत्र का कोरा पठन यह स्पष्ट करता है कि वाद धारा 11 (1) (c) तथा (d) के अधीन दाखिल नहीं किया गया था और अधिनियम की धारा 14 के अधीन वाद पर अग्रसर नहीं हुआ था। प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि निर्णय में कहीं पर भी यह कथन नहीं किया गया है कि निर्णय और डिक्री विशेष प्रक्रिया अपना कर पारित की गयी है जैसा अधिनियम की धारा 14 में परिकल्पित किया गया है। प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने प्रतिशपथ पत्र में किए गए प्रकथनों को भी निर्दिष्ट किया है।

10. प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्क्ता ने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित दो निर्णयों को निर्दिष्ट किया है और इन पर विश्वास किया है:–

(i) 1970 (1) SCC 670; vkj

(ii) (2006)3 BLJR 2359 (Jhr.)

11. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और आक्षेपित आदेश के परिशीलन पर यह पता चलता है कि सी० पी० सी० की धारा 47 के अधीन आवेदन याची/प्रतिवादी द्वारा विद्वान अवर न्यायालय के समक्ष मुख्यत: इस आधार पर दाखिल किया गया था कि अंतर्निहित अधिकारिता की कमी के कारण डिक्री अकृतता है और इसलिए, याची को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने और सम्यक प्रक्रिया का अनुसरण करने के बाद याची द्वारा दाखिल आपत्ति पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को विविध मामला के रूप में दर्ज करने की आवश्यकता है और संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को पूरी तरह से सुने जाने की आवश्यकता है और इसे विद्वान निष्पादन न्यायालय द्वारा संक्षिप्त रूप से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा प्रचारित इस प्रतिपादना को इस सरल कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि याची ने बेदखली वाद में विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित और असंतुष्ट होकर कोई अपील दाखिल नहीं किया है और विधि के अधीन उपलब्ध प्रभावकारी सांविधिक उपाय का सहारा लिए बिना सीधा निष्पादन न्यायालय के पास आया है और अंतर्निहित अधिकारिता के प्रश्न के संबंध में आपत्ति उठाया है।

12. मैंने याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों का परिशीलन किया है। उक्त निर्णयों में संगणित सिद्धांत विधि की सुस्वीकृत प्रतिपादना है। किंतु, प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए उक्त सिद्धांतों को लागू करने की आवश्यकता है। उन मामलों में, जिन्हें याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट किया गया है और विश्वास किया गया है, पक्षों ने अपीलीय प्राधिकारी का सहारा लिया है और तत्पश्चात निष्पादन न्यायालय के समक्ष प्रश्न उठाया गया था, जबकि वर्तमान मामले में याची ने विधि के अधीन उपलब्ध प्रभावकारी सांविधिक उपाय का सहारा लिए बिना सीधा निष्पादन न्यायालय के पास आया है और अंतर्निहित अधिकारिता के प्रश्न के संबंध में आपत्ति उठाया है। अत:, इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि निर्णय जिन्हें याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट किया गया है और विश्वास किया गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर प्रयोज्य नहीं है। जहाँ तक प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट और विश्वास किए गए निर्णयों का संबंध है, यह सुस्वीकृत सिद्धांत है कि डिक्री निष्पादित करने वाला न्यायालय डिक्री से पीछे हट नहीं सकता है। अंतर्निहित अधिकारिता की कमी के संबंध में प्रश्न याची द्वारा अपीलीय न्यायालय में उठाया जा सकता है क्योंकि डिक्री की वैधता एवं विधिकता को सदैव अपील में चुनौती दी जा सकती है किंतु जैसा ऊपर कथन किया गया है, याची ऐसा सहारा लिए बिना सीधे संहिता की धारा 47 के अधीन याचिका दाखिल करके निष्पादन न्यायालय के पास गया है।

13. याची और प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ताओं ने अंतर्निहित अधिकारिता के प्रश्न से संबंधित मामले के गुणागुण के बारे में तर्क किया है। इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि उक्त प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह वर्तमान याची द्वारा अपील दाखिल करने की स्थिति में उसके राह में आ सकता है। किंतु प्रथम दृष्टया अभिवचनों से प्रकट होता है कि वाद धारा 11 (b) तथा (c) में अंतर्विष्ट प्रावधान तक सीमित नहीं था और विशेष प्रक्रिया अपना कर झारखंड भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 2000 की धारा 14 के अधीन इसका विचारण नहीं किया गया था। किंतु समुचित फोरम के समक्ष इस प्रतिवाद के गुणागुणों का परीक्षण किया जा सकता है।

14. इस रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं है। तद्नुसार, इस रिट याचिका को खारिज किया जाता है।

15. पहले प्रदान की गयी तदंतरिम अनुतोष रिक्त हो जाएगा।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

तनवीर अंसारी उर्फ तनमीर अंसारी

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Revision No. 453 of 2013. Decided on 22nd May, 2013.

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 12—जमानत–अपहरण एवं बलात्कार–जमानत आवेदन का अस्वीकरण–याची का कोई दांडिक पूर्ववृत नहीं है–आक्षेपित आदेश पारित करने के पहले परिवीक्षा रिपोर्ट नहीं मंगायी गयी थी–अपचारी का पिता अपने पुत्र की देखभाल करने के लिए तैयार है और वह जमानत पर याची की निर्मुक्ति के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने के लिए तैयार है–यह कहीं नहीं दर्शाया गया है कि जमानत पर अपचारी की निर्मुक्ति उसे किसी अपराधी की संगति में लाएगी अथवा उसे नैतिक, शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक खतरों में डालेगी–जमानत प्रदान किया गया। (पैराएँ 3, 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–M/s. K.P. Deo & Rajesh Kumar, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह दांडिक पुनरीक्षण दांडिक अपील सं॰ 28 वर्ष 2013 के संबंध में विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 30 मार्च, 2013 के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इस आधार पर याची को जमानत पर निर्मुक्त करने से इनकार कर दिया है कि उसने अवयस्क लड़की का अपहरण किया था और उसके साथ बलात्कार भी किया।

3. यह निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेशों को पारित करते हुए विद्वान जे॰ जे॰ बोर्ड द्वारा अथवा विद्वान प्रधान जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा जे॰ जे॰ अधिनियम की धारा 12 की आत्मा को विचार में नहीं लिया गया है। यह कहीं नहीं उल्लिखित किया गया है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार प्रतीत होते हैं कि याची की निर्मुक्ति से उसके किसी ज्ञात अपराधी की संगति में लाने की अथवा उसको नैतिक, शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक खतरों में डालने की संभावना है अथवा उसकी निर्मुक्ति न्याय के उद्देश्य को पराजित करेगी। इसके अतिरिक्त, याची का कोई दांडिक पूर्ववृत्त नहीं है। आक्षेपित आदेश पारित करने के पहले परिवीक्षा रिपोर्ट नहीं मंगायी गयी थी। अपचारी का पिता पुत्र की देखभाल करने के लिए सदैव तैयार है और जमानत पर याची की निर्मुक्ति के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने के लिए सदैव तैयार है।

4. राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने जमानत की प्रार्थना का विरोध किया।

5. मैं स्वीकार करता हूँ कि अवर न्यायालय किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 12 के अधीन प्रगणित जमानत के निर्दिष्ट प्रावधान पर विचार करने में विफल रहे हैं। यह कहीं नहीं उपदर्शित किया गया है कि अपचारी की जमानत पर निर्मुक्ति उसको किसी ज्ञात

अपराधी की संगत में लाएगी अथवा उसे नैतिक, शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक खतरों में डालेगी। चूँकि अपचारी लड़के का पिता उसकी देखभाल करने के लिए सदैव तैयार है, मैं जमानत की प्रार्थना पर विचार करने का इच्छुक हूँ। तद्नुसार, केरो पी॰ एस॰ केस सं॰ 35 वर्ष 2012, जी॰ आर॰ केस सं॰ 480 वर्ष 2012 के तत्सम के संबंध में, इस शर्त के अध्यधीन कि जमानतदारों में से एक अपचारी का पिता होगा और वह यह वचन भी देगा कि वह भविष्य में बालक की देखभाल करेगा ताकि वह भविष्य में ऐसी गतिविधि में लिप्त नहीं हो सके, विद्वान किशोर न्याय बोर्ड, लोहरदग्गा के न्यायालय की संतुष्टि हेतु समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ 10,000/- रुपयों का जमानत बंध प्रस्तुत करने पर जमानत पर अपचारी अर्थात् तनवीर अंसारी उर्फ तनमीर अंसारी को निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है।

6. इन संप्रेक्षणों के साथ यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है और दांडिक अपील सं॰ 28 वर्ष 2013 के संबंध में विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 30 मार्च, 2013 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vkykd flg] U;k;efr

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

cuke

श्री संजय कुमार एवं अन्य

L.P.A. No. 267 of 2012. Decided on 6th February, 2013.

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 17B—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—धारा 17B किसी तरीके से अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्तियों को दुर्बल नहीं करती है अथवा इसमें हस्तक्षेप नहीं करती है–न्यायालय अभी भी अंतिम प्राप्त मजदूरी की सटीक मात्रा की तुलना में कम राशि अधिनिर्णीत करने का और प्रश्न पर विचार करने का स्वविवेक रखता है–उच्च न्यायालय धारा 17B के अधीन अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर सकता है यदि मामला विरल मामलों में विरलतम प्रकृति का नहीं है और ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल यदा-कदा और न कि धारा 17B की आत्मा को विनष्ट करने के लिए किया जा सकता है। (पैराएँ 9 एवं 10)

निर्णयज विधि.–1992 (2) LLJ 201; 1987-II-LLJ 210—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s Rajesh Shankar, Lokess Kumar, For the Appellants; M/s Sumeet Gadodia, Dhananjay Kumar Pathak, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. अपीलार्थी राज्य डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 3919 वर्ष 2008 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 24.1.2012 के आदेश और दिनांक 25.1.2012 को पारित उसी प्रभाव के आदेश से व्यथित है। यहाँ यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि पृथक रूप से पारित इन दोनों आदेशों द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनेक अंतर्वर्ती आवेदनों को इसी अनुतोष के साथ विनिश्चित किया गया है कि प्रत्यर्थी-अपीलार्थी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 17B के प्रावधानों का अनुपालन करेगा।

3. प्रत्यर्थी कर्मकार के विद्वान अधिवक्ता श्री सुमित गडोडिया द्वारा की गयी आरंभिक आपत्ति यह है कि वर्ष 1947 के अधिनियम की धारा 17-B विधि का आज्ञापक प्रावधान है और जब एक बार श्रम

न्यायालय द्वारा अधिनिर्णय पारित किया जाता है, उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अधीन और माननीय सर्वोच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अनुतोष को निर्बंधित नहीं कर सकते हैं जिसे अधिनियम की धारा 17B के अधीन कर्मकार को उपलब्ध कराया गया है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि **(1999)2 SCC 106** में रिपोर्ट किए गए **देना बैंक बनाम किर्तिकुमार टी॰ पटेल** के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उलट दिया गया है कि धारा 17B कहीं नहीं अधिकथित करती है कि आत्यंतिक मामलों में भी यदि यह प्रदर्शित किया जाता है कि पारित अधिनिर्णय अधिकारिता विहीन है अथवा अन्यथा अकृतता, घोर रूप से गलत अथवा विकृत है, उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेदों 226 और 136 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करने से रोका गया है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **(1999)9 SCC 229** में रिपोर्ट किए गए **चौ॰ सरय्या बनाम कार्यपालक अभियंता, पंचायत राज विभाग एवं एक अन्य** के मामले में दिए गए एक अन्य निर्णय पर भी विश्वास किया, जिसमें भी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 17B के प्रावधान का परीक्षण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया है और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अधिनियम की धारा 17B के प्रावधानों के अनुपालन के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्देश में हस्तक्षेप करने में गंभीर गलती किया है।

4. अपीलार्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश शंकर ने जोरदार निवेदन किया कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने **नियोक्ता, सेंट्रल माइन प्लानिंग एंड डिजाइन इंस्टिच्यूट लि॰ के संबंध में बनाम भारत संघ एवं अन्य,** 2002 (1) JLJR 134,मामले में **देना बैंक (ऊपर)** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा 10 पर विचार करने के बाद और विवाद्यक पर चर्चा के बाद अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ संविधि पुस्तिका पर धारा 17B होने के बावजूद उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति को अंतिम प्राप्त मजदूरी का भुगतान करने के अनुतोष को प्रदान करने से इनकार कर सकता है। किंतु, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश शंकर ने स्वयं अपने शोध के बाद सिविल अपील सं॰ 7249 वर्ष 2001 में पारित सर्वोच्च न्यायालय के वेबसाइट से इंटरनेट के माध्यम से एक आदेश पाया जिसके द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 22 फरवरी, 2002 के आदेश के तहत **सेंट्रल माइन प्लानिंग एंड डिजाइन इंस्टिच्यूट लि॰ के प्रबंधन के संबंध में नियोक्ता बनाम भारत संघ एवं अन्य** मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय को अपास्त कर दिया।

5. ऐसी अवस्था के बावजूद, अपीलार्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि ऐसी विधि नहीं हो सकती है कि अकृतता भी अनुतोष का आधार बन सकती है और उस स्थिति में भी, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेदों 226 और 136 के अधीन न्याय करने के लिए समुचित आदेश पारित कर सकते हैं कि ताकि उस हानि से जिसे उस आदेश जो अकृतता है, द्वारा कारित किया जा सकता है अथवा उस आदेश जिसे पूर्णत: अधिकारिता के बिना पारित किया गया है से व्यथित पक्ष को अनुतोष दिया जा सके। केवल यही नहीं, ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहाँ स्वयं अधिनिर्णय से कपट प्रकट है और उस स्थिति में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अधीन हस्तक्षेप नहीं कर सकता है और सर्वोच्च न्यायालय भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। अत:, राज्य के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, राज्य का अभी भी दृष्टिकोण है कि विरल मामलों में से विरलतम में और आत्यंतिक परिस्थितियों में उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन आदेश जिसे पूर्णत: अधिकारिता के बिना पारित किया गया है अथवा जो अकृतता है जो वस्तुत: कपट का परिणाम हो सकती है, से उद्भूत होने वाले लाभ को स्थगित करके न्याय करने के लिए समुचित आदेश पारित कर सकता है।

6. राज्य–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **गोदरेज एंड ब्वायस मैन्यूफैक्चरिंग कं॰ लि॰ मद्रास बनाम प्रमुख श्रम न्यायालय, मद्रास एवं एक अन्य, 1992 (2) LLJ 201,** मामले में दिए गए मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ के निर्णय पर विश्वास किया है। **सेंट्रल माइन प्लानिंग एंड डिजाइन इंस्टिच्यूट लि॰ के प्रबंधन के संबंध में नियोक्ता बनाम भारत संघ एवं अन्य** मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा बाद में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्णपीठ के निर्णय का अनुसरण किया गया है।

7. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन पर विचार किया है और मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि और **व्यास बैंक लि॰ बनाम महासचिव, अखिल भारतीय व्यास बैंक कर्मचारी यूनियन एवं अन्य, 1996 (1) LLJ 420,** मामले में दिए गए कर्नाटक उच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय और उक्त निर्दिष्ट निर्णयों का परिशीलन किया है।

8. गोदरेज एंड ब्वायस मैन्यूफैक्चरिंग कं॰ लि॰, मद्रास मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्णपीठ के निर्णय के पैराग्राफों 11 और 12 को उद्धृत करना समुचित होगा जो निम्नलिखित है:–

"11. U;kf;d er dk erD; ;g g fd vfèkfu;e dh èkkjk 17B e çfr"Bkfir fu;e e dkb nx.k ugh g D;kfd ;g v loèkkfud ugh g vkj ;|fi ;g fd lh rjhd l Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 226 d vèkhu bl U;k;ky; dh 'kfDr dk vfry?ku vFkok vfrØe.k ugh djrh g] ***;g bl viokn fd ;fn bl vofèk vFkok mld fdlh Hkkx d nkjku og dgh vkj ykHknk;h : i l fu;kftr Fkk] og ykHknk;h fu;ktu dh vofèk d fy, ,lh etnjh dk gdnkj ugh gksxk] d lkFk U;k;ky; e dk;okgh yfcr jgu dh vofèk d nkjku fdlh fu;e d vèkhu mldk vuK; fdlh fuokg HkÙkk lfgr mld }kjk vfre çkIr etnjh dk Hkxrku dju dk nkf;Ro fu;kDrk ij vkj bld foijhr bl çkIr dju dk vfèkdkj dedkj e lftr djrk gA*** *fp=e ,M d0 fy0 ekey (Åij) e bl U;k;ky; dh [kMihB }kjk lgh çdkj l dFku fd;k x;k g fd* ***èkkjk 17B dk vFk çklfxd rF;k dk è;ku e yr g, lefpr vkn'kk dk ikfjr dju d fy, Hkkjr d lfoèkku d vuPNnk 226 vkj 227 d vèkhu mPp U;k;ky; dh lokxh.k 'kfDr;k dk oki l yr g, vFkok fu;f=r djr g, d :i e ugh yxk;k tk ldrk gA*** *og lefpr vkn'k lno U;k;ky; e dk;okgh yfcr jgu d nkjku i.k etnjh d Hkxrku d fy, dedkj dh enn djxk tc rd vfèkfu.k; dk vÑrrk vFkok vfèkdkfjrk d fcuk ikfjr çnf'kr ugh fd;k tkrk gA lfoèkku d vuPNn 226 d vèkhu U;k;ky; dh vfu;f=r 'kfDr dk mi;kx vfèkfu;e dh èkkjk 17B d vèkhu dedkj dk çnku fd, x, lkfofèkd vfèkdkj dk fou"V dju d fy, ugh fd;k tk ldrk g vFkkr okndkyhu vfèkdkj ft l dedkj dh dfBukb gVku d fy, vkj fgrk d lj{k.k d fy, ekU; rk nh x;h g tl k geu n[kk gA dedkj dk ek= blfy, etnjh d i.k opu l ihfMr gku d fy, clgkjk ugh NkMk tk ldrk g D;kfd fu;kDrk u Hkkjr d lfoèkku d vuPNnk 226 vkj 136 d vèkhu dk;okgh djuk puk g vkj bl vkjHk fd;k gA* ***;g ykHknk;h foèkku tk lhfer lhek e çoÙk gkrk g] Lo; èkkjk }kjk vfèkdfFkr 'krk d vè;èkhu g vkj fd èkkjk dgh ugh vfèkdfFkr*** *djrh g fd vkR;frd ekeyk e tgk ;g çnf'kr fd;k tkrk g fd ikfjr vfèkfu.k; vfèkdkfjrkfoghu g vFkok vU;Fkk vÑrrk g] mPp U;k;ky; vFkok lokPp U;k;ky; dk lfoèkku d vuPNnk 226 vkj 136 d vèkhu viuh 'kfDr dk ç;kx dju l oftr fd;k x;k gA*

12. fun'k dk fu"df"kr dju vkj bldk mÙkj nu d igy ***ge ;g lçf{kr dju d fy, etcj g fd doy bl vkèkkj ij fd ;g vfèkdkfjrkfoghu***

g vFkok vU;Fkk vÑrrk g] vfèkfu.k; dk nh x;h pukrh vfèkfu;e dh èkkjk 17B d çoru dk fuyfcr dju d fy, i;klr ugh gkxhA ekey dk vfre U;k; fu.k;u] tgk vfèkfu.k; vfèkdkfjrk foghu g vFkok vU;Fkk vÑrrk g] lkekU;r% U;k; dk mí'; ijk djxkA fdr dedkj] tk dk;okgh d yfcr jgu d nkjku vfèkfu.k; d fØ;kUo;u dh çrh{kk djxk] doy U;k;ky; e dk;okgh d yfcr jgu dh vofèk d nkjku vfre Hkxrku fd, x, nj ij etnjh çklr djxkA ;g fu;kDrk ij fdlh xHkhj ifj.kke okyk ck> ugh g fdr ;g ml çdkj dk opu gk ldrk g tk dedkj vkj mld ifjokj dk ?kkj ldV e Mky ldrk gA ;fn ge bl vkèkkj ij vxlj gkr g fd vfre vkn'k ikfjr dju dh U;k;ky; dh 'kfDr vrfje vkn'k ikfjr dju dh 'kfDr lfEefyr djrh g] rc ge dg ldr g fd 'kfDr vfèkfu;e dh èkkjk 17B d vèkhu fu;kDrk d nkf;Ro dk fuyfcr dju rd vkj rnulkj okndkyhu etnjh çklr dju d dedkj d vfèkdkj rd foLrkfjr gkxhA fdr] ;g doy fojy ekeyk e fojyre e lHko gkxkA vU;Fkk] ;g mlh ç;ktu dk ijkLr dj nxk ftld fy, bl èkkjk dk vfèkfu;e e ij%LFkkfir fd;k x;k gA fu;kDrk@çcèku dh dkb Hkh l[;k gk ldrh g tk ,l vkèkkjk fd vfèkfu.k; vfèkdkfjrk foghu g vFkok vÑrrk g ij vfèkfu.k; dk pukrh nu okyh ;kfpdkvk vkj dk;okfg;k dk lQyrkiod txkM dj yxA U;k;ky; Lo; dk Ny lkèku dk f'kdkj cuu ugh n ldrk g vkj fu;kDrk@çcèku dk ,l lkfofèkd nkf;Ro l cp fudyu d fy, gfFk;kj d :i e vrfje vkn'k dk mi;kx dju dh vuefr ugh n ldrk gA bl çdkj] rF; dh dkb xyrh vFkok fofèk dh Hkh dkb xyrh doy fdlh vrfje vkn'k dk tkjh dju d fy, i;klr ugh gkxhA fdr] ;fn xyrh ,lh g tk vfèkdj.k dh vfèkdkfjrk dh tM rd tkrh g vkj vfèkfu;e dh èkkjk 17B d çHkko dk vun[kk dju d fy, U;k;ky; d ikl i;klr lkexh g] U;k;ky; okndkyhu etnjh d Hkxrku dk vkn'k nu l budkj dj ldrk gA ckEc mPp U;k;ky; u ,yçk bVju'kuy fyO cuke dO chO tk'kh ,o vU; (Åij) e ijk 8 (i"B 215) e bl lrdrk dk bu 'kCnk e minf'kr fd;k g fd%

^^-----vkR;frd ekey tgk ;g çnf'kr fd;k x;k g fd ikfjr vfèkfu.k; vfèkdkfjrk foghu g vFkok vU;Fkk vÑrrk g---------**

U;k;ky; vfèkfu;e dh èkkjk 17B d fucèkukulkj vkn'k ikfjr dju l budkj dj ldrk gA ml fu.k; e vkj fp=e ,M diuh (Åij) e bl U;k;ky; dh [kMihB d fu.k; e 'kCn ^^vFkok ?kkj :i l xyr vFkok foÑr** dk doy mnkgj.kkRed vFk d :i e le>uk gkxk tc U;k;ky; vfèkfu.k; dk vÑrrk eku ldrk gA

9. कारणों को देने के बाद, मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 17B किसी तरीके से भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति को दुर्बल नहीं करती है अथवा इसमें हस्तक्षेप नहीं करती है और न्यायालय के पास प्रश्न पर विचार करने और प्राप्त की गयी पिछली मजदूरी की सटीक मात्रा की तुलना में कम राशि अधिनिर्णीत करने का स्वविवेक है। इस चरण पर, यह उल्लेख करना समुचित होगा कि मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष विवाद्यक यह था कि क्या उच्च न्यायालय मजदूरी जो औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 17B के अधीन अनुज्ञेय है की तुलना में कम मजदूरी अधिनिर्णीत करने के लिए अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। किंतु इस प्रश्न को विनिश्चित करते हुए और अधिनियम की धारा 17B के अधीन किसी अधिनिर्णय को पारित करते हुए मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने विस्तारपूर्वक अधिनिर्णय में हस्तक्षेप के मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति और अनुच्छेद 136 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति पर विचार किया है।

सेंट्रल माइन प्लानिंग एण्ड डिजाइन के प्रबंधन के संबंध में नियोक्ता बनाम भारत संघ एवं अन्य (ऊपर) मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ ने निर्णय के पैरा 10 में देना बैंक के मामले पर विचार किया। इस न्यायालय के उक्त निर्णय के पैरा 10 को यहाँ नीचे उद्धृत किया गया जाता है:–

"10. ge enkl mPp U;k;ky; dh i.kihB }kjk xknjt ,M Cok; l (Åij) e vfHk0;Dr nf"Vdk.k vkj vfèkdfFkr fu.k;kèkkj d lkFk lEekui.k lgefr e gA blh çdkj l] nuk cd (Åij) e lokPp U;k;ky; d ekuuh; U;k;kèkh'kk u iu% bl rF; dk çk[;ku fd;k fd ey 'kfDr vHkh Hkh lfoèkku d vuPNn 226 l mnHkr gkrh gA vr%] ekey d leLr çklfxd igyvk ij fopkj dju ij gekjk nf"Vdk.k g fd vfèkfu;e dh èkkjk 17B lfoèkku d vuPNn 226 d vèkhu bldk çnUk mPp U;k;ky; dh vfu;f=kr 'kfDr vkj lokxh.k vfèkdkfjrk dk okil ugh yrh g vkj vfèkfu;e dh ml èkkjk dk iBu lfoèkku d vuPNn 226 d lkFk djuk gkxkA vr% gekjk nf"Vdk.k g fd ***tc dHkh fjV ;kph Je U;k;ky; vFkok vk|kfxd vfèkdj.k }kjk ikfjr vfèkfu.k; dk pukrh nrk g vkj vfèkfu.k; d ey vfèkdkfjrk igyvk d lcèk e çfrokn djrk g vFkok vfèkfu.k; dk n[kr gh çdV fofèk dh fdlh Li"V xyrh dk U;k;ky; d è;ku e ykrk g vkj bl çdkj lr"V U;k;ky; çFke n"V;k iokDr çfroknk (vfHky[k ij lkexh }kjk lE;d :i l lefFkr) d x.ktx.k d çfr fun'k e fd Je U;k;ky; vFkok vk|kfxd vfèkdj.k u vfèkfu.k; (bl çdkj vfèkfu.k; fofèk dh nf"V e foÑrrk vFkok vÑrrk d :i e dgk tk ldrk g) ikfjr dju e ek= blfy, xyrh fd;k D;kfd èkkjk 17B lfofèk ifLrdk e g] dkb vkKkid vko';drk ugh g fd ,l ekeyk e Hkh tgk mPp U;k;ky; çFke n"V;k vfèkfu.k; e ,lh voèkrk d ckj e lr"V g] bl mPp U;k;ky; e dk;okgh yfcr jgu d nkjku çR;Fkh dk vfre çklr etnjh dk Hkxrku dju dk fun'k fjV ;kph dk nr g, vkn'k ikfjr djuk gh gkxkA bl çdkj] ge ;g dgu e ldkp ugh g fd ,l ekey gk ldr g tgk lfofèk ifLrdk ij èkkjk 17B gku d ckotn mPp U;k;ky; fdlh 0;fDr dk vfre çklr etnjh dk Hkxrku dju dk vurk"k çnku dju l budkj dj ldrk gA* *blh le; ij ge tYnh l tkMuk gkxk fd ekey] tgk mPp U;k;ky; vfèkfu;e dh èkkjk 17B d vèkhu vkn'k ikfjr dju l budkj dj ldrk g] dk fojy ekeyk e fojyre gkuk gh gkxkA vfèkfu;e dh èkkjk 17B d vèkhu vurk"k çnku djuk vkj vfre çklr etnjh d Hkxrku dk fun'k nr g, vkn'k ikfjr djuk lkeU;r% fu;e g(èkkjk 17B d vèkhu vurk"k çnku dju l budkj djuk viokn g tlk ;g fojy ekeyk e fojyre e gkxkA ekey doy ogh gk ldr g tgk vfèkfu.k; dk vfèkdkfjrk dh =fV vFkok vfèkfu.k; dk n[kr gh çdV xyrh d ey fook|d ij pukrh nh x;h gA vfèkdkfjrk dh =fV dk ,d mnkgj.k i{kk d chp dedkj vkj fu;kDrk d lcèk dh vuifLFkfr d ckj e gk ldrk gA ;fn mPp U;k;ky; d le{k vfèkfu.k; dk pukrh nu okyk fjV ;kfpdk okLrfod :i l lnHkkoi.k :i l] xHkhjrkiod bl lcèk dh vuifLFkfr dk ç'u mBkrk g vkj mPp U;k;ky; fjV ;kph d ,l lokn] ftl vfHky[k ij miyCèk lkexh }kjk lE;d :i l lefFkr djuk gkxk] d çfr fun'k e ijh rjg çFke n"V;k lr"V g vkj mPp U;k;ky; çFke n"V;k bl fu"d"k ij vkrk g fd oLrr% i{kk d chp ,l lcèk d ç'u d lcèk e vR;r xHkhj lng fo|eku g] ;g* ***vfèkfu;e dh èkkjk 17B d vèkhu vkn'k ikfjr dju l budkj dj ldrk g vkj bl çdkj çR;Fkh dk vfre çklr etnjh dk Hkxrku dju d fy, fjV ;kph dk fun'k tkjh dju l budkj dj ldrk gA pfd bl x.kuk@vkèkkj ij U;k;ky; dh lrf"V çFke n"V;k fcYdy Li"V***

gkuh gkxh] ;g dguk vuko';d g fd vfèkfu;e dh èkkjk 17B d vèkhu vurk"k çnku dju l budkj djr g, ge vR;r lrdrkiod ÑR; dju dh t:jr gA

10. इस न्यायालय की खंडपीठ ने यह अभिनिर्धारित करने के बाद कि धारा 17B भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति पर निर्बंधन नहीं है, संप्रेक्षित किया कि ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ कानूनी पुस्तक पर धारा 17B होने के बावजूद उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति को अंतिम प्राप्त मजदूरी का भुगतान किए जाने का अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर सकता है। किंतु, जैसा **गोदरेज एण्ड ब्वायस मैन्यूफैक्चरिंग कं॰ लि॰** मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ द्वारा किया गया है, इस न्यायालय की खंडपीठ ने भी संप्रेक्षित किया कि उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 17B के अधीन अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर सकता है यदि मामला विरल मामलों में विरलतम प्रकृति का नहीं है और ऐसी शक्ति का उपयोग केवल यदा-कदा किया जा सकता है और न कि धारा 17B की आत्मा विनष्ट करने के लिए और ऐसा इनकार केवल तब किया जा सकता है जब न्यायालय प्रथम दृष्टया पाता है कि पारित अधिनिर्णय पूर्णतः अधिकारिता विहीन था अथवा अकृतता है।

11. एलप्रो इंटरनेशनल लि॰ बनाम के॰ बी॰ जोशी एवं अन्य, 1987-II-LLJ-210, मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा समरुप दृष्टिकोण अपनाया गया है। **देना बैंक (ऊपर)** मामले में पैरा 16 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उक्त निर्णय पर विचार किया गया है। विवाद्यक, जिस पर माननीय उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, पर बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा भी विचार किया गया है और, इसलिए, हम **देना बैंक (ऊपर)** के निर्णय का पैरा 16 उद्धृत करते हैं जो निम्नलिखित है:-

16. ,yçk bVju'kuy fy0 cuke d0 ch0 tk'kh e ckEc mPp U;k;ky; dk [kMihB èkkjk 17B e çkoèkkuk dh oèkrk dk bl vkèkkj ij nh x;h pukrh ij fopkj dj jgk Fkk fd ;g vLi"V vkj euekuk g D;kfd ,l dkb çkoèkku ugh cuk;k x;k g fd Hkxrku dh x;h jkf'k dk D;k gkxk ;fn fu;kDrk vrr% lQy gkrk g vkj vfèkfu.k; vfHk[kfMr vkj vikLr dj fn;k tkrk g vkj blfy,] ;g lfoèkku d vuPNn 14 dk mYy?ku djrk gA ;g vkxg Hkh fd;k x;k Fkk fd mDr çkoèkku lfoèkku d vuPNnk 226 vkj 136 d vèkhu mPp U;k;ky; vkj bl U;k;ky; dh 'kfDr;k dk vfrØe.k djrk gA mPp U;k;ky; u nkuk çfroknk dk vLohdkj dj fn;k gA ;g vfHkfuèkkfjr fd;k x;k Fkk fd ;fn fu;kDrk vrr% ednek e lQy gkrk g] èkkjk 17B d vèkhu Hkxrku dh x;h jkf'k dk D;k gkxk d çfr çkoèkku dh vuifLFkfr èkkjk dk Li"V vFkok euekuk ugh cukrh g D;kfd ***èkkjk 17B d vèkhu tk Hkxrku fd;k tkuk g fuokg HkÙkk dh çÑfr dk g tk vk|kfxd fu;ktu (LFkk;h vkn'k) vfèkfu;e] 1946 dh èkkjk 10A d vèkhu Hkxrku ;kX; g tk tkp d ifj.kke dk è;ku e fy, fcuk u rk okil fd, tku ;kX; g vkj u gh olyuh;A Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 226 d vèkhu mPp U;k;ky; dh 'kfDr vkj vuPNn 136 d vèkhu bl U;k;ky; dh 'kfDr d vfrØe.k d vkèkkj ij pukrh d lcèk e mPp U;k;ky; dk nf"Vdk.k Fkk fd èkkjk 17B doy dk;okgh d ifj.kke dk è;ku e fy, fcuk mPp U;k;ky; vkj lokPp U;k;ky; d le{k dk;okfg;k d yfcr jgu d nkjku fu;kDrk }kjk dedkj dk etnjh dk Hkxrku çR;kHkr djrk g vkj og Hkh mDr èkkjk vkj ijUrd }kjk vfèkdfFkr 'krk d vè;èkhu vkj ;g lcfèkr dedkj ij U;k;ky; d le{k ;g dFku djr g, fd og dk;okgh yfcr jgu d nkjku fdlh LFkkiu e fu;kftr ugh g 'kiFk i= nkf[ky dju dh ckè;rk vfèkjkfir djrh g vkj ;g fu;kDrk dk ,l etnjh dk***

> *Hkxrku dju dh mldh ckè;rk l foeDr djrk g ;fn og U;k;ky; dh lrf"V d çfr ;g fl) dju e l{ke g fd dedkj vU;Fkk fu;kftr Fkk vkj i;klr ikfjJfed çklr dj jgk FkkA mPp U;k;ky; u lçf{kr fd;k g fd èkkjk 17B dgh ugh vfèkdfFkr djrh g fd vkR;frd ekeyk e ;fn ;g çnf'kr fd;k tkrk g fd ikfjr vfèkfu.k; vfèkdkfjrk foghu g vFkok vU;Fkk vÑrrk g vFkok ?kkj :i l xyr vFkok foÑr g] mPp U;k;ky; vFkok lokPp U;k;ky; dk lfoèkku d vuPNnk 226 vkj 136 d vèkhu viuh 'kfDr;k dk ç;kx dju l ckfèkr fd;k x;k gA ml nf"Vdk.k l mPp U;k;ky; u vfHkfuèkkfjr fd;k g fd èkkjk 17B fdlh :i e lfoèkku d vuPNn 226 d vèkhu mPp U;k;ky; dh 'kfDr vkj vuPNnk 136 d vèkhu lokPp U;k;ky; dh 'kfDr dk vfrØe.k ugh djrh g vFkok bu ij vè;kjkgh gkrh gA***

तत्पश्चात, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देना बैंक मामले के पैरा 23 में विनिर्दिष्ट: उक्त दृष्टिकोण को पलट दिया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

> *"23. ...... fdr ge ,yçk bVju'kuy fyO e ckEc mPp U;k;ky; d nf"Vdk.k d lkFk lger gku e v{ke g fd lfoèkku d vuPNnk 226 vkj 136 d vèkhu 'kfDr d ç;kx e èkkjk 17 d vèkhu çnku fd, x, ykHk l dedkj dk budkj djr g, vkn'k ikfjr fd;k tk ldrk gA èkkjk 17B d vèkhu ,l vfèkdkj d çnku dk lfoèkku d vuPNnk 226 vkj 136 d vèkhu mPp U;k;ky; vFkok lokPp U;k;ky; dh 'kfDr;k ij fucèku d :i e ugh ekuk tk ldrk gA***

अत:, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 17B के अधीन अधिकार के प्रदान को भारत के संविधान के अनुच्छेदों 226 और 136 के अधीन उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों पर निर्बंधन के रूप में नहीं माना जा सकता है, **देना बैंक (ऊपर)** मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विपरीत कोई दृष्टिकोण अच्छी विधि नहीं है।

12. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **हिंदुस्तान वी॰ ओ॰ निगम लि॰ द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए कर्मकार बनाम हिंदुस्तान वेजीटेबल ऑयल कॉरपोरेशन लि॰ एवं अन्य, (2000)9 SCC 534,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय को अपास्त कर दिया और संप्रेक्षित किया कि धारा 17B के अधीन आवेदन को अत्यन्त तत्परता के साथ और रिट याचिका के निपटान के पहले निपटाने की आवश्यकता है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, उक्त निर्णय की दृष्टि में राज्य को अधिनियम की धारा 17B के प्रावधानों का अनुपालन करने का निर्देश दिया जा सकता है कि जिसके लिए आदेश पारित किया गया है और जिसमें हमारे द्वारा इस निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया गया है। अत: **हिंदुस्तान वी॰ ओ॰ निगम लि॰ द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए कर्मकार बनाम हिंदुस्तान वेजीटेबल ऑयल कॉरपोरेशन लि॰ एवं अन्य** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आलोक में अत्यन्त तत्परता के साथ विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश का अनुपालन करने की आवश्यकता है।

13. उक्त कारणों की दृष्टि में, यह एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किए जाने योग्य है और इसलिए, इसे खारिज किया जाता है। परिणामस्वरुप, स्थगन याचिका भी खारिज की जाती है।

किंतु, इस मामले के तथ्यों में, विशेषत: कर्मचारियों की विशाल संख्या की अंतर्ग्रस्तता की दृष्टि में हम विद्वान एकल न्यायाधीश से अप्रिल, 2013 के अंत तक शीघ्रातिशीघ्र रिट याचिका विनिश्चित करने का अनुरोध करते हैं।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

मो॰ इसरायल अंसारी

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No.1259 of 2012. Decided on 19th March, 2013.

जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001—खंड 10—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 419 एवं 420—आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धारा 7—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल–संज्ञान–लाभार्थियों को चावल वितरित नहीं किया गया–जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001 आरंभ होने के बाद एकीकरण आदेश के प्रावधान प्रयोज्य नहीं होंगे जहाँ तक ये पी॰ डी॰ एस॰ वस्तुओं के वितरण से संबंधित मामले से संबंधित हैं–इसके अतिरिक्त, अंचलाधिकारी को राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत नहीं किया गया है–अंचलाधिकारी को तलाशी लेने और अभिग्रहण करने का ऐसा प्राधिकार नहीं है और तद्द्वारा अंचलाधिकारी द्वारा ली गयी तलाशी और किया गया अभिग्रहण बिल्कुल अवैध होगा और यदि ऐसे तलाशी और जब्ती पर मामला लाया जाता है, यह दूषित हो जाता है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया गया और भा॰ दं॰ सं॰ के अपराधों पर आदेश पारित करने के लिए मामला अवर न्यायालय को वापस भेजा गया। (पैराएँ 8 से 19)

निर्णयज विधि.–1998(2) PLJR 330; 2007(2) PLJR 103—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

आदेश

यह आवेदन दिनांक 3.7.2012 के आदेश जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 419 और 420 के अधीन और आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया है, सहित जसीडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 3 वर्ष 2012 (जी॰ आर॰ सं॰ 39 वर्ष 2012) की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

2. अभियोजन का मामला यह है कि याची डीलर ने जन वितरण योजना के अधीन लाभार्थियों के बीच इसके वितरण के लिए एस॰ एफ॰ सी॰ के गोदाम से 135.60 क्विंटल चावल उठाया किंतु उसने प्रति व्यक्ति 40 कि॰ ग्रा॰ की दर पर चावल वितरित नहीं किया था और इसलिए गाँव वालों ने सूचक के पास परिवाद किया। ऐसा परिवाद पाने पर, सूचक–अंचलाधिकारी, जसीडीह को जाँच करने के लिए कहा गया था। उस क्रम के दौरान, जब उसने याची से पूछा तो उसने बताया कि वह पहले ही कार्डधारकों के बीच चावल वितरित कर दिया है किंतु कार्डधारक जो वहाँ एकत्रित थे कहने लगे कि उन्होंने चावल नहीं पाया है और चावल वितरित किए बिना याची ने उनके द्वारा प्राप्त किए गए चावल की प्रविष्टियाँ रजिस्टर में दर्ज किया है जब स्टॉक रजिस्टर सत्यापित किया गया था, यह पाया गया था कि कार्डधारकों को चावल के वितरण के संबंध में प्रविष्टियाँ की गयी हैं और कार्डधारकों के नाम के सामने बायें अंगूठे का निशान भी लिया गया था किंतु उन कार्ड धारकों ने दुकान से वस्तु पाने के बाद बायें अंगूठे का निशान कभी नहीं लगाया था।

3. ऐसे अभिकथन पर, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 419 और 420 के अधीन और आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन भी दंडनीय अपराधों के लिए जसीडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 3 वर्ष

2012 के रूप में मामला दर्ज किया गया था। आरोप–पत्र दाखिल किए जाने पर जब दिनांक 3.7.2012 के आदेश के तहत याची के विरुद्ध पूर्वोक्त अपराधों का संज्ञान लिया गया था, इसे इस न्यायालय में चुनौती दी गयी थी।

4. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अतानु बनर्जी निवेदन करते हैं कि केंद्र सरकार ने दिनांक 31.8.2001 के प्रभाव से पी॰ डी॰ एस॰ डीलर पर प्रयोज्य समस्त नियंत्रण आदेशों को निरस्त कर दिया जब इसने जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001 प्रख्यापित किया जिसके द्वारा जन वितरण प्रणाली आदेश का परिशिष्ट 6 विहित करता है कि जन वितरण प्रणाली से संबंधित वस्तुओं के विक्रय और वितरण को नियमित करने के लिए राज्य सरकारों को आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अधीन आदेश जारी करना है किंतु राज्य सरकार, झारखंड ने जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001 की धारा 3 के अधीन ऐसा कोई आदेश जारी नहीं किया है और तद्द्वारा पी॰ डी॰ एस॰ डीलरों, जिन्होंने योजना के लाभार्थियों को आवश्यक वस्तुओं के वितरण के मामले में अवैधता एवं अनियमितता में स्वयं को लिप्त किया, को अभियोजित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, याची के विरुद्ध अभियोजन दूषित हो जाता है।

5. दूसरा तर्क यह है कि उक्त आदेश के अधीन राज्य सरकार को उक्त आदेश के खंड 10 के निबंधनानुसार तलाशी एवं जब्ती की शक्ति के साथ किसी व्यक्ति को प्राधिकृत करने की आवश्यकता है किंतु राज्य सरकार आज की तिथि तक उक्त आदेश के खंड 10 के निबंधनानुसार तलाशी एवं जब्ती करने के लिए किसी व्यक्ति को प्राधिकृत करते हुए प्राधिकृत कारण के साथ आगे नहीं आयी है। अतः, यदि ऐसे व्यक्ति जिसे उक्त आदेश के खंड 10 के निबंधनानुसार प्राधिकृत नहीं किया गया है, द्वारा की गयी कोई तलाशी और जब्ती बिल्कुल अवैध बन जाती है और ऐसी जब्ती पर आधारित अभियोजन दूषित हो जाएगा और इस स्थिति के अधीन, संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है।

6. राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि जन वितरण प्रणाली के अधीन डीलर बिहार व्यापारिक वस्तु (अनुज्ञप्ति एकीकरण) आदेश, 1984 द्वारा शासित होते हैं और उस प्रावधान के अधीन वस्तुओं के वितरण से संबंधित मामलों पर विचार करने के लिए पी॰ डी॰ एस॰ डीलर को अनुज्ञप्ति दी जा रही है और इसलिए, जब तक एकीकरण आदेश विनिर्दिष्टतः किसी पश्चातवर्ती आदेश द्वारा निरस्त नहीं किया जाता है, उक्त एकीकरण आदेश के प्रावधान लागू बने रहेंगे और तद्द्वारा प्राथमिकी का अभिखंडन कभी नहीं अपेक्षणीय है।

7. राज्य सरकार की ओर से की गयी प्रतिपादना उस प्रावधान के विपरीत प्रतीत होती है जैसा जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001 के खंड 14 में अंतर्विष्ट है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"14.* ***vkn'k d çkoèkku jkT; ljdkjk d io vkn'kk ij vfHkHkkoh gkx-*** *&bl vkn'k d çkoèkkuk dk bl vkn'k d vkjHk gku d igy flok, ,l vkjHk d igy mld vèkhu fd, x, vFkok fd, tku l yki fd, x, fdlh pht d lcèk e jkT; ljdkj }kjk vFkok ,l jkT; ljdkj d vfèkdkjh }kjk ikfjr fdlh vkn'k e vrfo"V foijhr fdlh pht d ckotn çHkko gkxkA**"*

8. पूर्वोक्त आदेश के प्रावधान के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि जन वितरण प्रणाली के अधीन डीलर से संबंधित समस्त प्रावधान खंड 14 में अंतर्विष्ट प्रावधान के फलस्वरुप निरस्त किए जाने के तुल्य होंगे।

9. ऐसी स्थिति में, जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001 के आरंभ होने के बाद एकीकरण आदेश के प्रावधान काम में लाए जाने योग्य नहीं होंगे जहाँ तक यह पी॰ डी॰ एस॰ वस्तुओं से संबंधित मामलों से संबंधित है।

10. अब मामले के अन्य पहलू पर आते हुए, याची की ओर से तर्क दिया गया है कि अंचलाधिकारी, जिसने तलाशी एवं जब्ती किया जिस पर मामला दर्ज किया गया था, को तलाशी एवं जब्ती करने के लिए राज्य सरकार ने प्राधिकृत नहीं किया है। याची द्वारा किए गए इस अभिवचन को राज्य सरकार द्वारा प्रतिवादित नहीं किया गया है।

11. ऐसी स्थिति में, उक्त आदेश के खंड 10 को निर्दिष्ट करने की जरूरत है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

"10. **ryk'kh ,o tCrh dh 'kfDr-**&(1) jkT; ljdkj }kjk çkfèkÑr çkfèkdkjh ,l vfHky[kk vFkok nLrkost ftUg mld }kjk ijh{k.k d fy, vko';d ekuk tk ldrk g] dk fujh{k.k vFkok leu dju d fy, vkj viu le{k çLrr fdlh vfHky[k vFkok nLrkot d m)j.k vFkok çfr;k dk yu d fy, l{ke gkxkA

(2) ;fn mDr çkfèkdkjh d ikl ifjokn çklr dju vFkok vU;Fkk ij ;g fo'okl dju dk dkj.k g fd bl vkn'k d çkoèkkuk dk mYy?ku fd;k x;k g vFkok bl vkn'k dk vuikyu ljf{kr dju dh nf"V l] og mfpr eY; ndku d 0;olk; d l0;ogkjk d çfr çklfxd mfpr eY; ndku vFkok fdlh ifjlj e ço'k dj ldrk g] fujh{k.k dj ldrk g vFkok ryk'kh y ldrk gA

(3) mDr çkfèkdkjh ,l [kkrk&cgh vFkok vko';d oLrvk d LVkd dh ryk'kh y ldrk g] tCrh dj ldrk g vFkok gVk ldrk g tgk ,l çkfèkdkjh d ikl ;g fo'okl dju dk dkj.k g fd bl vkn'k d çkoèkkuk d mYy?ku e budk mi;kx fd;k x;k g ;k fd;k tk,xk]

(3A) mi[kM (3) d vèkhu ryk'kh ,o tCrh lpkfyr dju okyk çkfèkdkjh jkT; ljdkj dk vFkok bl fufeÙk bld }kjk çkfèkÑr vfèkdkjh dk ml [kM d vèkhu mud }kjk lpkfyr ryk'kh vkj bl çdkj tCr fd, x, vko';d oLrvk d LVkd dk fooj.k lfpr djxkA

(4) ryk'kh ,o tCrh l lcfèkr nM çfØ;k lfgrk] 1973 dh èkkjk 100 d çkoèkku ;Fkklkko bl vkn'k d vèkhu ryk'kh ,o tCrh ij ykx gkxA

12. पूर्वोक्त प्रावधान के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि केवल राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत प्राधिकारी जन वितरण प्रणाली डीलर द्वारा की गयी अनियमितता के बारे में परिवाद की प्राप्ति पर किसी स्थान की तलाशी एवं जब्ती के लिए सक्षम होगा।

13. चूँकि इससे इनकार नहीं किया गया है कि अंचलाधिकारी राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत किया गया है, यह समझा जाएगा कि अंचलाधिकारी के पास तलाशी एवं जब्ती के लिए प्राधिकार नहीं है और तद्द्वारा अंचलाधिकारी द्वारा की गयी कोई तलाशी एवं जब्ती बिल्कुल अवैध होगी और यदि ऐसी तलाशी एवं जब्ती पर मामला लाया जाता है, यह दूषित हो जाता है।

14. पूर्वोक्त प्रतिपादनाएं **नारायण प्रसाद उर्फ श्री नारायण साव एवं अन्य बनाम बिहार राज्य,** 1998 (2) PLJR 330, और **महेश्वर प्रसाद एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य,** 2007 (2) PLJR 103, में अधिकथित की गयी है जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001 के आरंभ होने पर जन वितरण प्रणाली से संबंधित पूर्व आदेश प्रभावहीन हो जाएँगे।

15. इसी समय पर, यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001 के खंड 10 के निबंधनानुसार किसी प्राधिकार की अनुपस्थिति में किसी व्यक्ति द्वारा की गयी तलाशी एवं जब्ती बिल्कुल अवैध बन जाएगी।

16. इस प्रकार, कोई संदेह नहीं बना रहता है कि अंचलाधिकारी द्वारा की गयी तलाशी एवं जब्ती बिल्कुल अवैध है और ऐसी जब्ती के आधार पर अभियोजन पोषणीय नहीं होगा।

17. तद्नुसार, न्यायालय आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने में न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है। अत:, आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन दिनांक 3.7.2012 के संज्ञान लेने वाले आदेश का वह भाग एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है।

18. जहाँ तक भारतीय दंड संहिता से संबंधित अपराध का संबंध है, अगर प्राथमिकी में किए गए अभिकथनों को सत्य भी माना जाए, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 419 अथवा 420 के अधीन अपराध नहीं बनता है और, इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 419 और 420 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने वाला दिनांक 3.7.2012 का आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

19. चूँकि भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध से संबंधित अन्य अभिकथन भी प्रतीत होते हैं, मामला संज्ञान के बिंदु पर विधि के अनुरुप आदेश पारित किए जाने के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष वापस भेजा जाता है।

20. इस संप्रेक्षण के साथ यह आवेदन निपटाया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o Jh pn'k[kj] U;k;efrx.k

महादेव गोप एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

I.A. No. 1105 of 2013 in Cr. Appeal (DB) No. 1088 of 2012. Decided on 6th March, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 14 एवं 21—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 374—अपील–अधिवक्ता के माध्यम से अपील दाखिल करने में दोषसिद्धों द्वारा सामना की गयी मुश्किलें–विधिक सहायता प्रदान करना राज्य का सांविधिक कर्तव्य है–न्याय तक पहुँच दोषसिद्ध को धनी अथवा शक्तिशाली व्यक्ति के साथ तुलना में समान बनाता है–संविधान का अनुच्छेद 14 समानता का अधिकार प्रत्याभूत करता है और इस प्रकार के दोषसिद्धों को एक-दूसरे के बराबर बनाना राज्य का कर्तव्य है–विधिक सेवा प्राधिकारियों को पत्र लिखना संबंधित कारा अधीक्षक का कर्तव्य है भले ही कोई दोषसिद्ध सरकार के व्यय पर विधिक सहायता लेने के लिए तैयार नहीं है–यह रिपोर्ट पाने के लिए कि क्या इन पाँच केंद्रीय कारा में किसी दोषसिद्ध ने गरीबी और बुरी आर्थिक दशा के कारण अपील दाखिल नहीं किया है, झारखंड राज्य में पाँच केंद्रीय कारा के लिए पाँच कमिटि नियुक्त की गयी। (पैराएँ 3, 4, 5, 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Sahani, For the Appellants; M/s R. Mukhopadhyay, T. N. Verma, For the Respondent.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–यह अंतर्वर्ती आवेदन केंद्रीय कारा, हजारीबाग से दांडिक अपील दाखिल करने में 3430 दिनों के विलंब की माफी के लिए दाखिल किया गया है। यह आवेदक (मूल आवेदक) विगत अनेक वर्षों से कारा में था और अंतर्वर्ती आवेदन में यह कथन किया गया है कि बुरी आर्थिक दशा के कारण वह अपील दाखिल करने की अवस्था में नहीं था।

2. सुनवाई की पूर्व तिथि पर अर्थात् दिनांक 4.3.2013 को इस न्यायालय द्वारा झारखंड राज्य में पाँच केंद्रीय कारा के समस्त अधीक्षकों को बुलाते हुए विस्तृत आदेश पारित किया गया था। झारखंड राज्य में पाँच केंद्रीय कारा हैं अर्थात्–

(I) fcjlk eMk dnh; dkjk] gkrokj] ***jkph***

(ii) dnh; dkjk] ***iyke(***

(iii) dnh; dkjk] ***nedk(***

(iv) dnh; dkjk] ?kk?khMhg] ***ioh fIgHke] te'knij*** *vkj*

(v) dnh; dkjk] ***gtkjhckxA***

ये पाँच पृथक जिलों में अवस्थित केंद्रीय कारा हैं। पाँच केंद्रीय कारा के अधीक्षक अर्थात् श्री डी॰ के॰ प्रधान (बिरसा मुंडा केंद्रीय कारा, होतवार, राँची); श्री उदय कुमार कुशवाहा (केंद्रीय कारा पलामू); श्रीमती रुपम प्रसाद (केंद्रीय कारा, दुमका); श्रीमती ऑलिव ग्रेस कूल्लु केंद्रीय कारा घाघीडीह, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर) और मो॰ मुसुदुल हसस (केंद्रीय कारा, हजारीबाग) आज कारा द्वारा रखे गए कतिपय रजिस्टरों के साथ न्यायालय में उपस्थित हुए हैं।

3. हमने रजिस्टरों का परिशीलन किया है जिन्हें उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष लाया है। इन रजिस्टरों के परिशीलन पर, जिन्हें समस्त केंद्रीय कारा के अधीक्षकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है, हम पाते हैं कि उन्होंने समुचित रूप से ऐसे रजिस्टर मेनटेन नहीं किया है। हम केंद्रीय कारा द्वारा रखे गए अभिलेख के साथ संतुष्ट नहीं है विशेषत: इस बिन्दु पर कि क्या दोषसिद्ध ने वास्तव में अपील दाखिल किया है या नहीं। इन समस्त रजिस्टरों का परिशीलन केंद्रीय कारा के अधीक्षकों, विद्वान एस॰ सी॰ II श्री आर॰ मुखोपाध्याय और ए॰ पी॰ पी॰ की मदद से किया गया है और इन रजिस्टरों को देखते हुए हम पाते हैं कि झारखंड राज्य ने दांडिक अपील संख्या, जिसे दोषसिद्ध द्वारा दाखिल किया गया है, के बारे में समुचित रूप से विवरण का उल्लेख नहीं किया है। केंद्रीय कारा के अधीक्षकों के लिए रजिस्टर में यह दर्ज करना पर्याप्त नहीं है कि दोषसिद्ध बाहर से अपील दाखिल करने जा रहा है। रजिस्टर में जिसे इंगित करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या दोषसिद्ध ने वस्तुत: अपील दाखिल किया है। इन दोनों पद विन्यासों के बीच विशाल अंतर है और इन दोनों के बीच बड़ा अंतर है। अधिवक्ता के माध्यम से जो जेल से बाहर है अथवा पैरवीकार के माध्यम से जो कारा से बाहर है, अपील दाखिल करना दोषसिद्ध की कामना है किंतु कभी-कभी इन बाहरी व्यक्तियों द्वारा वस्तुत: अपील दाखिल नहीं की जाती है और हमारा सामना अनेक दोषसिद्धों से हुआ है जो दोषसिद्धि के एक दशक बाद भी अपना दांडिक अपील दाखिल नहीं कर सके थे। इन प्रकार के मामलों के बारे में कुछ तथ्यों को दिनांक 4.3.2013 के आदेश में उद्दीप्त किया गया था और यह मामला भी अपवाद नहीं है। 3430 दिनों के विलंब का अर्थ है नौ वर्ष 5 माह से अधिक का विलंब। व्यक्ति को दोषसिद्ध और आजीवन कारावास से दंडादेशित किया गया है किंतु संबंधित कारा के अधीक्षक ने इस प्रकार के दोषसिद्ध का तनिक भी ख्याल नहीं किया है। केवल यह उल्लेख करके कि ''दोषसिद्ध से पूछे जाने पर यह कथन किया गया है कि निजी अधिवक्ता द्वारा अपील दाखिल की जाएगी'' कारा अधीक्षक का कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता है। यह जेल प्राधिकारी द्वारा रजिस्टर में की प्रविष्टि है। कुछ युक्तियुक्त अवधि के बाद कारा अधीक्षक द्वारा दोषसिद्ध के उत्तर का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए था क्योंकि विधिक सहायता प्रदान करना राज्य का सांविधिक कर्तव्य है। न्याय तक पहुँच दोषसिद्ध को धनी अथवा शक्तिशाली व्यक्ति की तुलना में समान बनाता है। संविधान का अनुच्छेद 14

समानता का अधिकार प्रत्याभूत करता है और इस प्रकार के दोषसिद्धों को अन्य के साथ बराबर बनाना अर्थात् उनके साथ, जो तत्परतापूर्वक अपील दाखिल कर रहे है, बराबर बनाना राज्य का कर्तव्य है। राज्य विधि में समान अवसर अथवा विधि का समान संरक्षण प्रदान करने में अपने कर्तव्य का पालन करने में विफल रहा है जैसा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन प्रत्याभूत किया गया है। कारा अधीक्षक Loco Parentis अवस्था में है। यदि परिवार में बालक खाना नहीं खा रहा है, माता-पिता सदैव उसे भोजन की आपूर्ति करेंगे और येन-केन-प्रकारेण उसकी आवश्यकता परिपूर्ण करेंगे। इसी प्रकार, से यदि कोई दोषसिद्ध सरकार के खर्च पर विधिक सहायता लेने के लिए तैयार नहीं है और यदि उसकी इच्छा है कि वह निजी अधिवक्ता के माध्यम से अपील दाखिल करेगा और यदि ऐसी अपील दाखिल नहीं की जाती है, तब युक्तियुक्त समय के बाद विधिक सेवा प्राधिकारों को पत्र लिखना संबंधित कारा के अधीक्षक का कर्तव्य है। यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि प्रत्येक केंद्रीय कारा में एक विधिक सहायता कोष्ठ है। सामान्यत:, विधिक सहायता कोष्ठ का उपयोग उन व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो दोषसिद्ध के रूप में अथवा विचाराधीन कैदी के रूप में कारा में है। यह विधिक सहायता कोष्ठ का सीमित उपयोग है। मोटे तौर पर, इस प्रकार के विधिक सहायता कोष्ठ का उपयोग केंद्रीय कारा अधीक्षक द्वारा किया जा सकता है। उन्हें अधिवक्ताओं, जो कारा में विधिक सहायता कोष्ठ में उपस्थित हो रहे हैं और जिन्हें सामान्यत:, झारखंड राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण (इसके बाद संक्षिप्तता के लाभ के लिए ''झालसा'' के रूप में निर्दिष्ट) द्वारा नियुक्त किया जाता है, को सूचित करना चाहिए था कि कुछ व्यक्तियों/दोषसिद्धों ने पहले निजी अधिवक्ता के माध्यम से अपील दाखिल करना चाहा था किंतु किसी भी कारण से उन्होंने अपील दाखिल नहीं किया है और इसलिए, तत्परतापूर्वक विधिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए। इसे केंद्रीय कारा अधीक्षक द्वारा स्वयं अपने केंद्रीय कारा में विधिक सहायता कोष को सूचित किया जाना चाहिए था अथवा उन्हें प्रत्यक्षत: ''झालसा'' को पत्र लिखना चाहिए था। हमने केंद्रीय कारा में रखे गए रजिस्टरों में अनेक प्रविष्टियों को देखा है कि दोष सिद्ध वर्षों से कारा में है किंतु उनके पास दोषसिद्धि आदेश की प्रमाणित प्रति नहीं है। शायद यह भी अपील दाखिल नहीं करने का कारण हो सकता है। यह विधि की दृष्टि में कारण नहीं है। प्रमाणित प्रति की अनुपस्थिति में भी केंद्रीय कारा अधीक्षक द्वारा ''झालसा'' को पत्र लिखा जा सकता था और बदले में ''झालसा'' संबंधित विचारण न्यायालय से ''झालसा'' द्वारा नियुक्त अधिवक्ताओं के पैनल के माध्यम से प्रमाणित प्रति प्राप्त करेगा। राज्य प्राधिकारियों को इसे ध्यान में रखना चाहिए था कि केंद्रीय कारा अधीक्षक के लिए एक भी औचित्यपूर्ण कारण नहीं है कि क्यों अपनी दोषसिद्धि के बाद दोषसिद्धों द्वारा अपील दाखिल नहीं की गयी थी और भले ही दोषसिद्ध कहते हैं कि वे अपील दाखिल करना नहीं चाहते हैं, यह केंद्रीय कारा अधीक्षक का पवित्र कर्तव्य है क्योंकि वह Loco Parentis अवस्था में है और उन व्यक्तियों जो कारा में हैं को मुफ्त विधिक सहायता प्रदान करना उक्त प्राधिकारी का संवैधानिक कर्तव्य भी है। यह केंद्रीय कारा अधीक्षक का स्वविवेक नहीं बल्कि इसे प्रदान करना उसका सांविधिक और संवैधानिक कर्तव्य भी है और इसलिए बहाना जो हमने पूर्वोक्त अधीक्षकों से सुना है कि कभी-कभी दोषसिद्ध अपील दाखिल करने के लिए तैयार नहीं है, विधिक सहायता नहीं प्रदान करने का कारण बिल्कुल नहीं है। कारा से दाखिल अनेक दांडिक अपीलों में ऐसे आदेश हैं जिन्हें अभिलेख पर साक्ष्य को देखते हुए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 389 के अधीन दंडादेश के निलंबन के लिए पारित किया गया है। ऐसे एक दांडिक अपील सं॰ 1129 वर्ष 2012 में, जिसे विधिक सहायता प्रदान करने के लिए कारा से दाखिल किया गया था, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 389 के अधीन दंडादेश के निलंबन का आदेश है। दंडादेश के निलंबन का इस प्रकार का लाभ अभियुक्त को नहीं दिया जा सकता था, क्योंकि अपील दाखिल नहीं की गयी है क्योंकि उनको विधिक सहायता प्रदान नहीं की गयी है। हम केंद्रीय कारा अधीक्षकों के मौखिक स्पष्टीकरण से बिल्कुल संतुष्ट नहीं हैं और न ही हम उनके रजिस्टरों में डाटा रखे जाने के तरीके से संतुष्ट

हैं विशेषत: विधिक सहायता प्रदान करने के बारे में और विशेषत: इस तथ्य के बारे में कि क्या वस्तुत: दांडिक अपील दाखिल की गयी है या नहीं। आज भी केंद्रीय कारा अधीक्षक यह सत्यापित करने के लिए समय इप्सित कर रहे हैं कि क्या उनके अपने-अपने कारा में ऐसे दोष सिद्ध हैं जिन्होंने दांडिक अपील दाखिल नहीं किया है। वे स्वयं निश्चित नहीं हैं। पूर्वोक्त कन्द्रीय कारा के प्रत्येक अधीक्षक द्वारा यही कथन किया गया है और वे एक सप्ताह का समय मांग कर रहे थे।

4. जैसा दिनांक 4.3.2013 के आदेश में कथन किया गया है, जब इस न्यायालय ने केंद्रीय कारा, राँची जो बिरसा मुंडा केंद्रीय कारा के नाम से भी ज्ञात है का दौरा अगस्त, 2012 में किया, कारा अधीक्षक द्वारा दिया गया उत्तर यह था कि एक भी दोषसिद्ध नहीं है जिसने अपील दाखिल नहीं किया है किंतु 10 दिनों के भीतर कारा अर्थात् बिरसा मुंडा केंद्रीय कारा से लगभग 130 पत्र प्राप्त किए गए हैं कि समस्त 130 दोषसिद्ध अपील दाखिल करना चाहते हैं और उनकी दोषसिद्धि वर्ष 1999, 2000, 2001 आदि की हैं। इसे सहन नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक केंद्रीय कारा और जिला कारा का दौरा करने का समय हमारे पास नहीं है। हमारे पास दोषसिद्धों के इस प्रकार के मामलों, जिन्होंने गरीबी के कारण दांडिक अपील दाखिल नहीं किया है, को प्रत्येक केंद्रीय कारा, जिला कारा और उपकारा का दौरा करके सत्यापित करने का समय नहीं है। केंद्रीय कारा, राँची का एक उदाहरण पर्याप्त है। रजिस्टरों जिन्हें केंद्रीय कारा अधीक्षकों द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया को देखते हुए और केंद्रीय कारा अधीक्षकों की ओर से संकोच को देखते हुए कि वे आज के दिन तक भी निश्चित नहीं हैं कि प्रत्येक दोषसिद्ध ने अपील दाखिल किया है। यह उत्तर चौंकाने वाला है।

5. अत:, हम यह रिपोर्ट पाने के लिए कि क्या इन पाँच केंद्रीय कारा के किसी दोषसिद्ध ने गरीबी और बुरी आर्थिक दशा के कारण अपील दाखिल नहीं किया है, झारखंड राज्य में पाँच केंद्रीय कारा में निम्नलिखित पाँच कमिटियाँ नियुक्त करते हैं:-

(i) बिरसा मुंडा केंद्रीय कारा, होतवार, राँची के लिए अधिवक्ताओं, जो इस कारा का दौरा करेंगे और विधिक सहायता प्रदान करने और न्याय तक पहुँच उपलब्ध कराने के मामले के पूर्वोक्त पहलूओं को सत्यापित करेंगे, द्वारा गठित कमिटि निम्नलिखित है:-

(i) Jh vrku cuh

(ii) lJh verk cuh]

(iii) Jh ;kx'k ekuh

(ii) लोकनायक जयप्रकाश नारायण केंद्रीय कारा, हजारीबाग के लिए अधिवक्ताओं, जो इस कारा का दौरा करेंगे और विधिक सहायता प्रदान करने और न्याय तक पहुँच उपलब्ध कराने के मामले के पूर्वोक्त पहलूओं को सत्यापित करेंगे, द्वारा गठित कमिटि निम्नलिखित है:-

(i) Jherh jf'e dekj

(ii) Jh jfer lR;n

(iii) Jherh 'ork flg]

(iii) केंद्रीय कारा, दुमका के लिए अधिवक्ताओं, जो इस कारा का दौरा करेंगे और विधिक सहायता प्रदान करने और न्याय तक पहुँच उपलब्ध कराने के मामले के पूर्वोक्त पहलूओं को सत्यापित करेंगे, द्वारा गठित कमिटि निम्नलिखित है:-

(i) MkO ,p0 okfjl]

(ii) Jh jkt'k dekj egFkk]

(iii) lJh fç;k J"B

(iv) केंद्रीय कारा, पलामू के लिए अधिवक्ताओं, जो इस कारा का दौरा करेंगे और विधिक सहायता प्रदान करने और न्याय तक पहुँच उपलब्ध कराने के मामले के पूर्वोक्त पहलूओं को सत्यापित करेंगे, द्वारा गठित कमिटि निम्नलिखित है:–

(i) Jh eukt VMu]

(ii) lJh c['kh foHkk]

(iii) Jh nhid dekj Hkkjrh

(v) केंद्रीय कारा, घाघीडीह, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर के लिए अधिवक्ताओं, जो इस कारा का दौरा करेंगे और विधिक सहायता प्रदान करने और न्याय तक पहुँच उपलब्ध कराने के मामले के पूर्वोक्त पहलूओं को सत्यापित करेंगे, द्वारा गठित कमिटि निम्नलिखित है:–

(i) Jh jfo çdk'k]

(ii) lJh ufyuh >k]

(iii) Jh jkgy lkc]

(vi) उक्त समस्त कमिटि सदस्य ''झालसा'' के पैनल के अधिवक्ता हैं। उन्हें ''झालसा'' द्वारा वाहन प्रदान किया जाएगा। वे उन कारा में जाएँगे, जैसा यहाँ ऊपर कथन किया गया है और प्रत्येक कमिटी में क्रमांक 1 पर मौजूद अधिवक्ता दौरा की तिथि और समय नियत करेंगे और वे ''झालसा'' को पूर्वसूचना देंगे ताकि उनको संयुक्त रूप से वाहन दिया जाएगा।

(vii) हम कारा के उक्त प्राधिकारियों को एतद् द्वारा निर्देश देते हैं कि इन कमिटियों को कारा में प्रवेश करने की अनुमति दी जाएगी और कमिटी सदस्यों को दोषसिद्धों के साथ वार्तालाप करने की अनुमति दी जाएगी ताकि वे पता कर सकें कि उन्हें विधिक सहायता की आवश्यकता है या नहीं। वे केंद्रीय कारा अधीक्षकों द्वारा रखे गए रजिस्टरों को सत्यापित करने के हकदार भी होंगे और कारा प्राधिकारी इन कमिटियों के साथ सहयोग करेंगे। प्रत्येक कमिटि में अधिवक्ता सं॰ 1 उक्त कमिटि की अध्यक्षता करेगा। वह ''झालसा'' के और विद्वान एस॰ सी॰ II श्री आर॰ मुखोपाध्याय को संसूचित करेगा ताकि वह उनके प्रवेश और निकास के बारे में और पूर्वोक्त दस्तावेजों के सत्यापन के लिए और कारा के कैदियों के साथ प्रत्यक्षत: वार्तालाप के लिए संबंधित कारा प्राधिकारी को सूचित कर सकें।

6. हम यह भी निर्देश देते हैं कि यह दौरा सुनवाई की अगली तिथि को अथवा इसके पहले संचालित किया जाएगा और वे अपने संप्रेक्षणों के बारे में अपने सुझावों के साथ लिखित में पृथक रूप से इस न्यायालय को अपना रिपोर्ट देंगे। रिपोर्ट में कम से कम निम्नलिखित डाटा होना चाहिए:–

(a) nkjk dh frfFk ,o le;(

(b) mud }kjk lR;kfir jftLVjk d çdkj(

(c) dkjk dfn;k ftud lkFk mUgku ckr fd;k g] fo'k"kr% ftUg vkthou dkjkokl vFkok 10 o"kk l vfèkd dk dkjkokl vfèkfu.khr fd;k x;k g(

(d) çR;d dfeVh e efgyk vfèkoDrk g tk efgyk okM dk Hkh nkjk djxh(

(e) dkjk e j lkb] iLrdky;] fMLiilj h vFkok fpfdRlh; lfoèkk d ckj e mud lç{k.k(

(f) ; dfefV;k vfHkky[k dk lefpr :i l vkj vko';drkuq kj [ku d fy,] fo'k"kr% fofèkd lgk;rk çnku dju d fy, lcfèkr dnh; dkjk vèkh{kdk l Hkh l>ko yx D;kfd vkt Hkh [ky U;k;ky; e bu dnh; dkjk vèkh{kdk d ikl vud l>ko g tl jftLVj e vihy l[;k gkuh pkfg,] vufre tekur@vLFkk;h tekur@vLFkk;h vofèk d fy, nMkn'k d fuycu d fnuA jftLVj e bu fooj.kk dk mYy[k gkuk pkfg, vkj ,lk dkye Hkh ;fn vfHk;Dr le; ij vkRelei.k ugh dj jgk g(

*(g) ; **dfefV;k Ng o"k dh vk; d uhp dh lrku d lkFk tsy e efgyk** nk"kfl)k vFkok fopkjkèkhuk d ckj e fjikV e bfxr djxh(*

*(h) ; dfefV;k fjikV e ; Hkh bfxr djxh fd D;k dkb nk"kfl) g **tk yc le; l chekj g vkj ;fn mÙkj gk g] chekjh dk çdkj vkj çÑfr(***

(i) ; dfefV;k ;g Hkh bfxr djxh fd D;k dkjk e 'kkjhfjd :i l fodykx nk"kfl) g] ;fn mÙkj gk g] uke] l= U;k;ky;@fopkj.k U;k;ky; l[;k] vkfn(

(j) ; dfefV;k iFkd jftLVjk ftUg chekj nk"kfl)k@fopkjkèkhuk d fy, j[kk tkrk g d ckj e dkjk MkDVj d lkFk Hkh okrkyki djxh(

*(k) ; dfefV;k efMdy fDyfud dk nkjk Hkh djxhA **o dkjk MkDVj l fo'k"kr% iNxh fd D;k mud dkjk e dkb ekufld :i l chekj nk"kfl) g(***

(l) ; dfefV;k mudk vkifr fd, x, Hkkstu dh çÑfr dk Hkh lR;kfir djxh(

*(m) ; dfefV;k **ofj"B ukxfjdk dh** voLFkk dk irk Hkh yxk,xh] **fo'k"kr% tk chekj g vkj bl rF; d çfr fo'k"k lnHk e fd o dc l dkjk e g] ty** çkfèkdkfj;k }kjk j[k x, jftLVjk d lefpr lR;kiu ij fjikV e fcYdy lgh :i e **efgyk nk"kfl)k@fopkjkèkhuk] ofj"B ukxfjdk] dkjk e chekj 0;fDr;k] fodykx 0;fDr;k] vkfn dk vkdMk ifjyf{kr fd;k tk,xk(***

(n) nk"kfl)k ,o fopkjkèkhuk dk j[ku dh dkjk dh egÙke {kerk(

(o) dkjk e nk"kfl)k vkj fopkjkèkhu dfn;k dh okLrfod l[;k rkfd ;g vklkuh l irk yxk;k tk ld fd D;k dkjk e {kerk l vfèkd dnh gA

7. सुनवाई की अगली तिथि को अथवा इसके पहले इस न्यायालय को कमिटियों द्वारा दी जाने वाली <u>रिपोर्ट की ये न्यूनतम आवश्यकताएँ हैं। कमिटि कारा के बारे में अन्य प्रासंगिक तथा उल्लेखनीय तथ्यों को भी इंगित कर सकती है।</u>

8. यदि ये कमिटियाँ उसी दिन वापस लौटने की अवस्था में नहीं हैं, तब हम सरकारी अतिथि गृह अथवा ऐसी अन्य वास-सुविधा में इन कमिटियों के सदस्यों को रहने-खाने की पर्याप्त सुविधाओं को प्रदान करने का निर्देश एतद् द्वारा राज्य प्राधिकारियों को देते हैं और महिला अधिवक्ता जो कमिटि की सदस्या हैं को पृथक कमरा दिया जाएगा।

9. ये कमिटियाँ ''झालसा'' को वाउचर प्रस्तुत करने पर टंकण, आदि के किसी वास्तविक खर्च की प्रतिपूर्ति की हकदार होंगी।

10. इस आदेश की प्रति इस अंतर्वर्ती आवेदक के पक्षों के अधिवक्ताओं को और कमिटियों के अधिवक्ताओं को भी दी जाएगी।

11. मामला दिनांक 20 मार्च, 2013 के लिए स्थगित किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

शीतल ओराँव एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 465 of 2013. Decided on 18th April, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 341 एवं 323—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—दोषपूर्ण अवरोध एवं उपहति–संज्ञान–पुलिस अधिकारी का अभियोजन–मामले के दो विवरण हैं–इस चरण पर अभिकथन की सत्यता को अभिनिश्चित करना उच्च न्यायालय के लिए समुचित नहीं होगा बल्कि इसे केवल विचारण के दौरान अभिनिश्चित किया जा सकता है–संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित नहीं किया जा सकता है। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Mukesh Kumar Sinha, For the Petitioners; Mr. APP, For the State; Mr. Dilip Kumar Prasad, For the Opp. Party No. 2.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अधिवक्ता तथा वि॰ प॰ सं॰ 2 के अधिवक्ता सुने गए।

2. सी॰ पी॰ केस सं॰ 547 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 8.2.2013 का आदेश जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341 और 343 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अपराध का संज्ञान लिया गया था, चुनौती के अधीन है।

3. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मुकेश कुमार सिन्हा निवेदन करते हैं कि ऐसा हुआ कि दिनांक 18.3.2008 को ग्रिजेश कुमार जो इस आवेदन को उद्भूत करने वाले मामले का सूचक हुआ करता है याची सं॰ 1 जो समय के प्रासंगिक बिंदु पर एस॰ पी॰, धनबाद के रूप में पदस्थापित था की गोपनीय शाखा में आया। उसने सर्विस रिवाल्वर दिखाते हुए याचीगण को गाली देना शुरू किया और तद्द्वारा कार्यालय के कार्यों में बाधा उत्पन्न किया। ऐसी स्थिति में, याची सं॰ 1 के आवासीय कार्यालय के स्टाफ में से एक किसी मुन्ना सिंह द्वारा दिनांक 22.3.2008 को प्राथमिकी दर्ज की गयी थी जिसे भारतीय दंड संहिता की धाराओं 452, 353, 504 और 34 के अधीन दर्ज किया गया था। दो दिन बाद अर्थात् दिनांक 24.3.2008 को ग्रिजेश कुमार ने परिवाद याचिका दाखिल किया और उसमें अभिकथित किया कि उसने मैथन पुलिस थाना के प्रभारी–अधिकारी के रूप में पदस्थापित किए जाने के लिए किसी समोद प्रसाद सिन्हा के माध्यम से एस॰ पी॰ धनबाद को पाँच लाख रुपया दिया था किंतु जब पदस्थापना नहीं की गयी थी, उसने समोद प्रसाद सिन्हा को याद कराया जिसने उसे सदैव आश्वासन दिया कि कुछ दिनों में ही कुछ किया जाएगा। जब कुछ नहीं किया गया था, परिवादी समोद प्रसाद सिन्हा के साथ दिनांक 18.3.2008 को एस॰ पी॰ के आवास गया और उसे कार्यालय के अंदर बुलाया गया। जहाँ अन्य के साथ याची सं॰ 1 भी वहाँ उपस्थित था। याची सं॰ 1 द्वारा कहा गया था कि दो लाख रुपयों की राशि उसे लौटा

दी जाएगी, जिस पर परिवादी ने और समोद कुमार सिन्हा ने भी शेष तीन लाख रुपया लौटाने का अनुरोध किया। जैसे ही उन्होंने तीन लाख रुपया मांगा, उन पर प्रहार किया गया था और ग्रिजेश कुमार से कागज के टुकड़ा पर कुछ लिखवाया गया था। ऐसे अभिकथन पर परिवाद मामला दाखिल किया गया था और ऐसी परिवादी याचिका दाखिल किए जाने पर परिवादी का सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान दर्ज किया गया था जिसमें, याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, बिल्कुल भिन्न कहानी सुनायी गयी थी जिसमें यह कथन किया गया था कि धन दिया गया था, क्योंकि तीन विभागीय कार्यवाही लंबित थी, ताकि परिवादी को समस्त तीनों विभागीय कार्यवाही में आरोपों से विमुक्त किया जा सके। परिवादी किसी विशेष पुलिस थाना में पदस्थापित किए जाने के लिए धन देने के बारे में स्वीकार कभी नहीं करता है और सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर परिवादी द्वारा दिया गया यह विरोधाभासी बयान परिवाद याचिका को खारिज करने के लिए विद्वान अवर न्यायालय के लिए पर्याप्त था। किंतु, विद्वान अवर न्यायालय ने इसे दृष्टि में रखते हुए कि इसमें किए गए अभिकथन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध से संबंधित है जिसका संज्ञान केवल भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधान के अधीन पदनामित विशेष न्यायालय द्वारा लिया जा सकता है, परिवादी को परिवाद वापस लौटा दिया। सक्षम न्यायालय में परिवाद दाखिल करने के बजाए परिवादी ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण दाखिल किया जिसे दिनांक 7.4.2010 के आदेश के तहत अवर न्यायालय को विधि के अनुरुप नया आदेश पारित करने का निर्देश देते हुए निपटाया गया था। पुनः याची को सक्षम न्यायालय के समक्ष मामला दाखिल करने की सलाह दी गयी थी। परिवादी ने पुनः पुनरीक्षण, आवेदन दाखिल किया जिसे विधि के अनुरुप आदेश पारित करने के लिए मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को निर्देश देते हुए निपटाया गया था और केवल, तत्पश्चात भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341 और 323 के अधीन अपराध का संज्ञान लेते हुए आदेश पारित किया गया था। आगे यह निवेदन किया गया है कि चूँकि परिवादी याची सं॰ 1 के कार्यालय के गोपनीय कक्ष में गया था; अतः भारतीय दंड संहिता की धारा 341 के अधीन अपराध नहीं बनता है। इसी प्रकार से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि परिवादी के विरुद्ध पहले ही मामला दर्ज किया गया है, याचीगण के विरुद्ध दर्ज कोई पश्चातवर्ती मामला द्वेष से कलंकित कहा जा सकता है और, इसलिए, न्यायालय को अपराध का संज्ञान नहीं लेना चाहिए और तद्द्वारा न्यायालय ने पूर्वोक्तानुसार अपराध का संज्ञान लेकर अवैधता किया है।

4. इसके विरुद्ध, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दिनांक 24.3.2008 को परिवाद दाखिल करने का कारण है क्योंकि वर्तमान परिवाद दाखिल करने के पहले सूचक ने उच्चतर प्राधिकारी के समक्ष परिवाद दाखिल किया था किंतु जब कोई कार्रवाई नहीं की गयी थी, विरोधी पक्षकार के पास न्यायालय के समक्ष परिवाद याचिका दाखिल करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था जिसमें परिवादी द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि उसे और कोई समोद प्रसाद सिन्हा को टेलीफोन पर याची सं॰ 1 के आवासीय कार्यालय पर आने के लिए कहा गया था और केवल उसके निर्देश पर परिवादी समोद प्रसाद सिन्हा के साथ एस॰ पी॰ के कार्यालय गया था जहाँ याचीगण और अन्य व्यक्तियों ने उसको गलत रूप से अवरुद्ध किया और उसे प्रहार के अध्यधीन भी किया गया था और तद्द्वारा न्यायालय अपराध का संज्ञान लेने में बिल्कुल सही है।

5. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर यह प्रतीत होता है कि दो विवरण हैं, एक याची का जो दिनांक 22.3.2008 को दर्ज प्राथमिकी में है और दूसरा परिवादी का जो परिवाद याचिका में है। अतः इस चरण पर अभिकथन की सत्यता अभिनिश्चित करना इस न्यायालय के लिए समुचित नहीं होगा बल्कि इसे केवल

विचारण के दौरान अभिनिश्चित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में, संज्ञान लेने वाले आदेश का अभिखंडन कभी नहीं अपेक्षणीय है और इसलिए इस आवेदन को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

रियाज खान फरीदी

cuke

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cr. M.P. No. 2635 of 2012. Decided on 5th April, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 120B, 420, 467, 468 एवं 471—भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988— धाराएँ 13 (1) (c), 13 (1) (d) एवं 13 (2)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—लोक सेवक द्वारा छल, षडयंत्र और कूटरचना–संज्ञान–सरकार को विपुल धनीय हानि कारित करते हुए खरीद प्राथमिकता नीति को अनदेखा करते हुए दवा की खरीद–किसी साक्ष्य की अनुपस्थिति में याची के विरुद्ध सामने आने वाली परिस्थितियाँ/अभिकथन कि इस याची ने बाजार दर की तुलना में अधिक उच्चतर दर पर रोगाणुनाशकों और फॉगर मशीन को उस फर्म को बेचा जिसने सरकार से बेहिसाब से पैसा लिया और लूट को इस याची के साथ बाँटा गया था, शायद ही आरोप सिद्ध करेगा भले ही अभियोजन का मामला स्वीकार किया जाता है कि इस याची ने निविदा को अंतिम रूप दिए जाने के पहले अन्य अभियुक्तगण के साथ बैठक किया था और कि उसने निविदा की प्रक्रिया में भाग लिया था–आक्षेपित आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 13, 14, 16, 17 एवं 18)

निर्णयज विधि.–AIR 1960 SC 866—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s Ajit Kumar Sinha, Imtiyaz Ahmad, Pandey Neerj Rai, Rohit Ranjan Sinha, For the Petitioner; M/s. M. Khan, N. Roy, For the C.B.I..

आदेश

यह आवेदन दिनांक 10.8.2011 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 120B, 420, 467, 468, 471 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 13 (1) (c), 13 (1) (d) सह पठित धारा 13 (2) के अधीन भी दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया है, सहित आर॰ सी॰ सं॰ 11 (A) वर्ष 2009 AHD-R की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

2. अभियोजन का मामला यह है कि वित्तीय वर्ष 2007-08 के दौरान स्वास्थ्य विभाग, झारखंड सरकार ने एन॰ आर॰ एच॰ एम॰ के रूप में ज्ञात योजना के अधीन नियत कीमत पर दवा खरीदने के लिए निविदा आमंत्रित किया। वित्तीय वर्ष 2008-09 के लिए भी वित्तीय वर्ष 2007-08 के लिए अनुमोदित दर पर निविदा आमंत्रित करने के बाद दवा खरीदी गयी थी किंतु उस समय तक 'खरीद प्राथमिकता नीति' प्रभाव में आ गयी थी जिसके द्वारा कतिपय दवाओं को अनिवार्य रूप से सरकारी मैन्यूफैक्चरिंग कंपनियों से खरीदा जाना था और यदि दवाइयाँ खरीदी जाती, डिस्काउंट का नियत प्रतिशत ग्राह्य था किंतु उक्त नीति को पूरी तरह अनदेखा करते हुए दवाइयाँ खरीदी गयी थी जिसके परिणामस्वरुप झारखंड राज्य को

विपुल धनीय हानि कारित किया गया था जबकि लोक सेवकों ने और निजी आपूर्तिकर्ताओं ने भी दोषपूर्ण धनीय लाभ प्राप्त किया।

3. आगे यह अभिकथित किया गया है कि करोड़ों रुपए मूल्य वाले अस्पताल में उपयोग किए जानेवाले औषधियों/उपकरणों/यंत्रों/विविध वस्तुओं के मेसर्स सत्य साई एजेंसी, मेसर्स जे॰ आर॰ फार्मा, मेसर्स कल्याण इंटरप्राइजेज, मेसर्स मेधावी एसोसिएट्स, मेसर्स पी॰ डी॰ पी॰ एल॰, मेसर्स अन्नू इंटरप्राइजेज, मेसर्स एंडोलैब, मेसर्स हिंदुस्तान एंटीबायोटिक्स, मेसर्स यू॰ पी॰ डी॰ पी॰ एल॰, मेसर्स सावित्री सेल्स, मेसर्स हिन्दुस्तान लेटेक्स, मेसर्स यूनिक फार्मा, मेसर्स लक्ष्मी मेडिकल एजेंसीज, मेसर्स जी॰ आर॰ एसोसिएट्स, मेसर्स प्रभात ड्रग हाऊस, मेसर्स गौरव इंटरप्राइजेज, मेसर्स प्लास्टीक सर्ज इंडिया प्रा॰ लि॰, मेसर्स निकोलस पीरामल इंडिया लिमिटेड, मेसर्स नंद किशोर फोगला, से खरीदा गया था किंतु ये खरीद आवश्यकता आधारित नहीं थी क्योंकि खरीदी गयी औषधियाँ तथा चिकित्सीय यंत्र/उपकरण वास्तविक आवश्यकता से कहीं अधिक थे।

4. इस संबंध में अभिकथित किया गया है कि 510 लीटर क्षमता वाले नाइट्रोजन ऑक्साइड सिलेंडरों को विपुल मात्रा में खरीदा गया था जिनकी आपूर्ति उन पी॰ एच॰ सी॰/सी॰ एच॰ सी॰ को की जानी थी जहाँ एनेस्थेटिस्ट पदस्थापित थे किंतु झारखंड राज्य में शायद ही कोई पी॰ एच॰ सी॰/सी॰ एच॰ सी॰ है जहाँ एनेस्थेटिस्ट पदस्थापित हैं और इस प्रकार यह अनुपयोगित पड़ा रहा। इसी प्रकार से, कुछ औषधियाँ खरीदी गयी थी जिन्हें विरले ही डॉक्टरों द्वारा लिखा जाता है। इसी तरह से, फॉगर मशीन (जो इस मामले में विषय वस्तु है) सहित कुछ उपकरणों को वास्तविक आवश्यकता की तुलना में कई गुणा अधिक कीमत पर खरीदा गया था।

5. आगे यह अभिकथित किया गया है कि साहिय्या किट, औषधियों और यंत्रों की खरीद के लिए बजट आवंटन उन वस्तुओं की खरीद में निवेशित राशि की तुलना में बहुत ही कम था। राज्य सरकार द्वारा किए गए बजट आवंटन में से रोगाणुनाशक माइक्रोजेन D125 की 50,000 इकाईयों, फॉगर मशीन की 300 इकाईयों और डिस्पेंसर को क्रमश: 14.74 करोड़ रुपया 5.15 करोड़ रुपया और 19,57,000/- रुपया के लिए खरीदा गया है और कि 48.58 करोड़ रुपया मूल्य वाले औषधियों और चिकित्सीय यंत्रों को मेसर्स नंद किशोर फोगला से खरीदा गया है जो फर्म औषधियों एवं चिकित्सा उपकरणों का प्राधिकृत डीलर/आपूर्तिकर्ता नहीं था। उन औषधियों और यंत्रों को बेहिसाब दर पर और आधिक्य में आवश्यकता अभिनिश्चित किए बिना खरीदा गया है और वह भी औषधियों एवं यंत्रों की आत्यधिक उपभोग आवश्यकता दर्शाने के लिए झूठे दस्तावेजों को प्राप्त करके।

6. इस प्रकार, यह अभिकथित किया गया है कि तत्कालीन सचिव, स्वास्थ्य विभाग, झारखंड सरकार, राज्य आर॰ सी॰ एच॰ अधिकारी, नामकुम, राँची एवं स्वास्थ्य विभाग के अन्य पदधारियों ने लोक सेवकों के रूप में अपनी आधिकारिक हैसियत का दुरुपयोग करके आपूर्तिकर्ताओं के साथ दुरभिसंधि में कपटपूर्वक एवं गैर ईमानदार रूप से ऐसी आवश्यकता हुए बिना और 'राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन॰ आर॰ एच॰ एम॰)'' को आवंटित निधि आवंटन के परे 19 आपूर्तिकर्ताओं से 1,30,50,79,951.74 रुपये मूल्य की औषधियों/चिकित्सीय यंत्रों/उपकरणों/विविध वस्तुओं को खरीदा।

7. ऐसे अभिकथन पर, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 120B, 420, 467, 468, 471 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 13 (1) (c), 13 (1) (d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन भी आर॰ सी॰ सं॰ 11A वर्ष 2009 AHD-R के रूप में मामला दर्ज किया गया था। मामले का अन्वेषण किया गया था। अन्वेषण के समापन पर, आरोप-पत्र दाखिल किया गया था और दिनांक 10.8.2011 के आदेश के तहत याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 120B, 420, 467, 468, 471 के

अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 13 (1) (c), 13(1) (d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन भी अपराधों का संज्ञान लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

8. याची के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री अजित कुमार सिन्हा ने निवेदन किया कि मेसर्स माइक्रोजेन हाइजिन प्रा॰ लि॰ (मेसर्स माइक्रोजेन इंडिया) जिसका मुख्यालय मुंबई में है के पास मेसर्स माइक्रोजेन इन कॉरपोरेशन न्यू जर्सी, यू॰ एस॰ ए॰, औषधि/यंत्र के विश्वविख्यात निर्माता द्वारा निर्मित औषधियों का आयात करने का लाइसेंस है और मेसर्स माइक्रोजेन इंडिया इसका अनन्य एजेंट है। मेसर्स माइक्रोजेन इनकॉरपोरेशन के अनेक उत्पादों की भारत में अनेक राज्य सरकारों को और संस्थानों तथा कॉरपोरेट अस्पतालों को भी मेसर्स सोनांचल इंटरप्राइजेज, राँची जिसका सरोकार झारखंड राज्य में उत्पादों की आपूर्ति के साथ है सहित अनेक परेषिती एजेंटों के माध्यम से आपूर्ति की जा रही है। अपने व्यवसाय प्रोन्नत करने के लिए और बेहतर यंत्रों/दवाओं को उपलब्ध कराने के लिए याची उत्पादों के लाभ और गुण के बारे में स्पष्ट करने के लिए तत्कालीन सचिव, ड्रग नियंत्रक एवं अन्य पदधारियों से मिला था।

9. यह निवेदन किया गया था कि जुलाई, 2008 में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, झारखंड सरकार द्वारा रोगाणुनाशक, फॉगर मशीनों और डिसपेंसरों तथा अन्य सामग्री एवं औषधि की आपूर्ति के प्रयोजन से सरकारी एवं निजी निर्माताओं से निविदा आमंत्रित करते हुए निविदा जारी की गयी थी। उस निविदा को रद्द कर दिया गया था। बाद में, एक अन्य एन॰ आई॰ टी॰ एक खंड को अंतर्विष्ट करते हुए जारी किया गया था कि चालू वित्तीय वर्ष में 12 करोड़ रुपयों का टर्न ओवर रखनेवाला निर्माता निविदा में भाग लेने का पात्र होगा। चूँकि याची का फर्म अर्हित नहीं था, कंपनी ने कोई निविदा नहीं दिया था। एन॰ आई॰ टी॰ जारी किए जाने के बाद एक व्यक्ति वितरक के रूप में मेसर्स नंद किशोर फोगला को नियुक्त करने के लिए याची के पास आया। बाद में, मेसर्स नंद किशोर फौगला का पत्र प्राप्त किया गया था जिसमें रोगाणुनाशक और फॉगर मशीनों की आपूर्ति करने के लिए निविदा में भाग लेने के लिए उसको सक्षम बनाते हुए कतिपय दस्तावेजों को प्रदान करने का अनुरोध किया गया था। तद्नुसार, मेसर्स माइक्रोजेन इंडिया ने अपने उत्पादों, रोगाणुनाशक D125 और फॉगर मशीनों की आपूर्ति करने के लिए इस शर्त पर, मेसर्स नंद किशोर फोगला को प्राधिकृत किया कि अग्रिम भुगतान पर परेषिती एजेंट मेसर्स सोनांचल इंटरप्राइजेज के माध्यम से सप्लाई आर्डर की आपूर्ति की जानी चाहिए। निविदा दाखिल किए जाने पर, मेसर्स नंद किशोर फोगला को 50,000 लीटर रोगाणुनाशक और 300 फॉगर मशीनों की आपूर्ति के लिए संकर्म आदेश अधिनिर्णीत किया गया था। उस पर जब याची की कंपनी को आपूर्ति आदेश जारी किया गया था, इसने मेसर्स सोनांचल इंटरप्राइजेज के माध्यम से पूर्वोक्त उत्पादों की आपूर्ति की जिसने मेसर्स नंद किशोर फोगला से भुगतान प्राप्त किया। पूर्वोक्त सामग्रियों और अन्य औषधियों एवं यंत्रों की आपूर्ति पर, जब सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा सूचना प्राप्त की गयी थी कि सरकार के पदधारियों द्वारा आपूर्तिकर्ताओं के साथ साँठ-गाँठ करके गुप्त रूप से खरीद किया गया था जिसके द्वारा राज्य सरकार को बड़ी सीमा तक नुकसान कारित किया गया था, कतिपय व्यक्तियों, सरकारी पदधारियों तथा आपूर्तिकर्ताओं के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया था किंतु याची के विरुद्ध नहीं। अन्वेषण के दौरान याची को माइक्रोजेन इनकॉरपोरेशन, यू॰ एस॰ ए॰ से उगाही से संबंधित सीमा शुल्क अनापत्ति दस्तावेज, 50,000 लिटर रोगाणुनाशक का आपूर्ति विवरण कंपनी द्वारा दाखिल टेक्निकल बोली की कार्यालय प्रति, रोगाणुनाशक तथा फॉगर मशीनों की संस्थागत आपूर्ति के लिए कंपनी का थोक मूल्य और राज्य सरकार को फॉगर मशीन तथा डिस्पेंसर की आपूर्ति का विवरण, आदि दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए कहते हुए नोटिस जारी किया गया था।

10. उसके अनुसरण में, यह सूचित किया गया था कि मेसर्स माइक्रोजेन इंडिया ने भाग कभी नहीं लिया था, बल्कि माइक्रोजेन इनकॉरपोरेशन के उत्पादों के विक्रय के प्राधिकृतकरण से संबंधित तमाम प्रासंगिक कागजातों और अन्य दस्तावेजों को मेसर्स नंद किशोर फोगला को सौंपा गया था जिसने निविदा में भाग लिया था। जब इसे आपूर्ति आदेश पंचाट किया गया था, इसने फॉगर मशीनों और रोगाणुनाशकों की आपूर्ति करने का अनुरोध याची की कंपनी से किया था जिसकी आपूर्ति याची के परेषिती एजेन्ट मेसर्स सोनांचल इंटरप्राइजेज द्वारा की गयी थी। याची के परेषिती एजेन्ट मेसर्स सोनांचल इंटरप्राइजेज ने 1300/- रुपया प्रति लीटर की दर पर रोगाणुनाशक (D125) की आपूर्ति की थी किंतु याची को पता चला कि उक्त मेसर्स नंद किशोर फोगला ने मूल्य 2948/- रुपया प्रति लीटर की दर पर उद्धृत किया था और इसी प्रकार से फॉगर मशीन की आपूर्ति 15,000/- प्रति मशीन की दर पर की गयी थी जबकि फॉगर मशीन की कीमत 1,71,722/- रुपया प्रति मशीन की दर पर उद्धृत की गयी थी और तद्द्वारा जो भी गलती की गयी थी, वह मेसर्स नंद किशोर फोगला द्वारा की गयी थी। सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा अन्वेषण के दौरान यह तथ्य पाया गया था और इसे आरोप-पत्र में दर्ज किया गया था। सी॰ बी॰ आई॰ ने अन्वेषण के क्रम में मेसर्स नंद किशोर फोगला के मैन्यूफैक्चरिंग/प्रबंधक निदेशक राजेश फोगला का बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन दर्ज करवाया जिसमें उसने स्वीकार किया है कि औषधियों/सामग्रियों की आपूर्ति पर प्राप्त किया गया धन घूस के रूप में तत्कालीन मंत्री, सचिव और अन्य सरकारी पदधारियों को दिया गया है, फिर भी याची को मामले में इस तथ्य के बावजूद आरोप-पत्रित किया गया था कि याची की कंपनी को धन का भुगतान उस दर पर किया गया था जिस पर फॉगर मशीनों और रोगाणुनाशकों की आपूर्ति मेसर्स नंद किशोर फोगला को की गयी थी और कि इस याची को सह-अभियुक्त राजेश फोगला के अनुसार अवैध धन का भुगतान कभी नहीं किया गया था और तद्द्वारा याची को कोई अपराध करता हुआ नहीं कहा जा सकता है।

11. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याची को अभियोजित इसलिए किया जा रहा है क्योंकि उसने सी॰ बी॰ आई॰ के अनुसार राजेश फोगला के साथ षडयंत्र किया और निविदा प्रक्रिया में भाग लिया किंतु इस तथ्य को ध्यान में नहीं लिया कि उक्त राजेश फोगला अथवा किसी अन्य गवाह ने उच्चतर दर पर पूर्वोक्त दो सामग्रियाँ खरीदने के बारे में कभी नहीं प्रकट किया है और कि यह सह-अभियुक्त राजेश फोगला का बयान है कि निविदा कागज के ऊपर याची के हस्ताक्षर को अन्य अभियुक्त द्वारा कूटरचित किया गया था और कि याची को अन्य अभियुक्तगण के अवैध कृत्य द्वारा किसी तरीके से कोई लाभ नहीं हुआ था और इसलिए, जो भी सामग्री संग्रहित की गयी है, इस याची की सह अपराधिता नहीं दर्शाती है और फिर भी याची के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया है जो तथ्यों एवं परिस्थितियों में अभिखंडित किए जाने योग्य है।

12. इसके विरुद्ध, सी॰ बी॰ आई॰ के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री खान ने प्रतिशपथ पत्र में दिए गए बयानों को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि याची की प्रेरणा पर पहली निविदा रद्द की गयी थी और पुनर्निविदा जारी की गयी थी और कि याची ने अन्य अभियुक्त लोक सेवकों के साथ षडयंत्र किया और मेसर्स नंद किशोर फोगला ने निविदा में भाग लिया था और रोगाणुनाशकों, फॉगर मशीनों और डिस्पेंसरों का बेहिसाब दर उद्धृत किया था और कि पदधारियों ने मेसर्स नंदकिशोर फोगला के माध्यम से उसकी कंपनी का पक्ष लिया था और कि रोगाणुनाशक की बाजार/खरीद दर 1200/- रुपया प्रति लीटर थी जबकि मेसर्स नंद किशोर फोगला द्वारा 2948/- रुपया प्रति लीटर की दर उद्धृत की गयी थी और फॉगर मशीन की बाजार/खरीद दर 15000/- प्रति मशीन थी जबकि मेसर्स नंद किशोर फोगला द्वारा 1,71,722/- रुपया

प्रति मशीन की दर उद्धृत की गयी थी जो बाजार दर की तुलना में अत्यन्त अधिक था और फिर भी मेसर्स नंद किशोर फोगला को आपूर्ति आदेश दिया गया था और तद्द्वारा समस्त अभियुक्तगण ने एक–दूसरे के साथ षडयंत्र करके राजकीय कोष को भारी हानि पहुँचाया और इन परिस्थितियों के अधीन संज्ञान लेने वाले आदेश का अभिखंडन कभी नहीं अपेक्षणीय है।

13. इस प्रकार, एक ओर, याची का मामला यह है कि याची की कंपनी मेसर्स माइक्रोजेन इंडिया लि॰ ने निविदा प्रक्रिया में भाग लेने का पात्र नहीं होने के नाते, क्योंकि इसका वार्षिक टर्न ओवर 12 करोड़ रुपया से अधिक कभी नहीं था, अपनी निविदा दाखिल नहीं किया था और कि याची की कंपनी ने रोगाणुनाशक D125 और फॉगर मशीन की आपूर्ति क्रमश: 1200/- रु॰ प्रति लीटर और 15000/- रुपया प्रति मशीन की दर पर अपने परेषिती एजेंट मेसर्स सोनांचल इंटरप्राइजेज के माध्यम से मेसर्स नंद किशोर फोगला को किया था किंतु मेसर्स नंदकिशोर फोगला जिसको आपूर्ति आदेश दिया गया था ने रोगाणुनाशक के लिए 2948/- रुपया प्रति लीटर प्रभारित किया था जबकि उसने फॉगर मशीन के लिए 1,71,722/- रुपया प्रति मशीन प्रभारित किया था जिस तथ्य को अन्वेषण के दौरान सही पाया गया है जो आरोप–पत्र से प्रतीत होगा। उसके बावजूद याची, मेसर्स माइक्रोजेन इंडिया लि॰ के कार्यपालक निदेशक, के विरुद्ध आरोप–पत्र इस कारण से दाखिल किया गया था कि अन्वेषण के दौरान यह पता चता कि इस याची ने भी निविदा प्रक्रिया में भाग लिया था और निविदा के अंतिमकरण के पहले इस याची की बैठक अन्य अभियुक्तगण के साथ हुई थी यद्यपि इस तथ्य से याची की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन दिए गए सह–अभियुक्त राजेश फोगला के बयान को निर्दिष्ट करते हुए इनकार किया गया है जिसमें कथन किया गया था कि निविदा कागज के ऊपर याची के हस्ताक्षर को कूटरचित किया गया था। किंतु, इस तथ्य को सत्य मानते हुए यह विचार करना होगा कि क्या संज्ञान लेने वाले आदेश को न्यायोचित ठहराते हुए याची के विरुद्ध सामग्री है।

14. अभियोजन का मामला यह है कि राजेश फोगला नंद किशोर फोगला का पुत्र, मेसर्स नंद किशोर फोगला का प्रबंध निदेशक, ने स्वास्थ्य विभाग के मंत्री, सचिव और अन्य पदधारियों के बीच लूट बाँटने के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अपने बयान में प्रकट किया है। उसने याची के साथ लूट बाँटे जाने के बारे में कहीं कुछ भी नहीं कहा है और न ही इस याची के साथ लूट बाँटे जाने को दर्शाती हुई सामग्री है। उसकी अनुपस्थिति में, क्या, जैसा ऊपर कथन किया गया है, याची के विरुद्ध संग्रहित सामग्री आरोप सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होगी? यदि ऐसा नहीं है, तब निश्चय ही **आर॰ पी॰ कपूर बनाम पंजाब राज्य, AIR 1960, SC 866,** मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में संज्ञान लेने वाले आदेश को निश्चय ही दोषपूर्ण कहा जा सकता है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए अथवा अन्यथा न्याय का उद्देश्य सुरक्षित करने के लिए समुचित मामले में कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग किया जा सकता है।

15. माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित कोटियों को अधिकथित किया है जहाँ माननीय न्यायाधीशों के मुताबिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग किया जा सकता है और किया जाना चाहिए:–

1. tgk ;g Li"Vr% çrhr gkrk g fd mDr dk;okgh d lLFkkiu vFkok tkjh jgu d fo#) fofèkd otuk gA

2. tgk çkFkfedh vFkok ifjokn e fd, x, vfHkdFku] Hky gh mUg mud T;k dk R;k fy;k tkrk g vkj mudh li.krk e Lohdkj fd;k tkrk g] vfHkdfFkr vijkèk xfBr ugh djr gA

3. , l ekeyk e tgk vfHk;Drx.k d fo#) fd, x, vfHkdFku vfHkdfFkr

vijkèk xfBr djr g fdr ekey d leFku e fofèkd lk{; ugh fn, x, g vFkok fn, x, lk{; Li"Vr% vkjki fl) dju e foQy gA

16. मेरे दृष्टिकोण में, वर्तमान मामला तीसरी कोटि में आता है क्योंकि जैसा ऊपर कथन किया गया है, याची के विरुद्ध सामने आने वाली परिस्थितियाँ/अभिकथन ऐसे किसी साक्ष्य की अनुपस्थिति में कि इस याची ने बाजार दर की तुलना में अत्यन्त उच्चतर दर पर रोगाणुनाशकों और फॉगर मशीनों को मेसर्स नंद किशोर फोगला को बेचा जिसने सरकार से बेहिसाब पैसा वसूला और कि इस याची के साथ लूट बाँटा गया था और कि इस याची ने राजेश फोगला के साथ मौनानुकूलता में विभिन्न व्यक्तियों के साथ लूट बाँटा था, शायद ही आरोप सिद्ध करेंगे भले ही अभियोजन का मामला स्वीकार किया जाता है कि इस याची ने निविदा के अंतिमकरण के पहले अन्य अभियुक्तगण के साथ बैठक किया था और कि उसने निविदा प्रक्रिया में भाग लिया था।

17. ऐसी स्थिति में, याची के विरुद्ध किसी कार्यवाही को जारी रखना निश्चय ही न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य होगा।

18. तद्नुसार, संज्ञान लेने वाला आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है। परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

ललन सिंह एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Revision No. 11 of 2012. Decided on 25th April, 2013.

खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957—धारा 22—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 379 एवं 411—बिहार लघु खनिज रियायत नियमावली, 1972—नियम 40—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—चुरायी गयी संपत्ति (खनिज) की चोरी और कब्जा–उन्मोचन आवेदन का अस्वीकरण–पुलिस केस के आधार पर अपराध का संज्ञान वर्ष 1957 के अधिनियम की धारा 22 के अधीन वर्जित है–किंतु खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 अथवा उसके अधीन बनायी गयी नियमावली में बनाए गए किसी प्रावधान दंड प्रक्रिया संहिता के प्रतिकूल नहीं है–खनिजों एवं लघु खनिजों की चोरी से संबंधित मामले इस राज्य में विपुलता में है–इस संबंध में विधि को अंतिम रूप से सुनिश्चित करने की आवश्यकता है ताकि समस्त अभियोजन तकनीकी आधारों पर ही नहीं गिर जाएँ–भावी मार्गदर्शन के लिए मामला वृहत पीठ को निर्दिष्ट किया गया। (पैराएँ 5 से 10)

निर्णयज विधि.–2006 (3) East. Cr. C. 50 (Jhr); 2006 (4) JCR 218 (Jhr.); 2009(2) JLJR 250; 2009 (3) JLJR 724; 2012 (2) JCR 43 (Jhr); 2013(1) JCR 535 (Jhr)—Referred; 2011(4) JCR 43 (Jhr); 2013(1) JCR 520 (Jhr)—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Raja Ravi Shekhar Singh; For the Petitioner; Mr. Suchendra Prasad, For the State.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याचीगण जी॰ आर॰ सं॰ 48 वर्ष 1999/टी॰ आर॰ सं॰ 1591 वर्ष 2011 में श्री एम॰ के॰ त्रिपाठी, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राजमहल द्वारा पारित दिनांक 21.12.2011 के आदेश से व्यथित

है जिसके द्वारा याचीगण द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 239 के अधीन उन्मोचन के लिए दाखिल आवेदन अवर न्यायालय द्वारा यह निष्कर्षित करते हुए खारिज कर दिया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379, 411 के अधीन और बिहार लघु खनिज रियायत नियमावली, 1972 के नियम 4(1) के अधीन उनके विरुद्ध अपराध स्पष्ट रूप से बनाए गए हैं।

3. मामले के तथ्य संक्षिप्त हैं। दिनांक 23.1.1999 को पुलिस के ए॰ एस॰ आई॰ द्वारा दो ट्रकों को पकड़ा गया था जिन्हें पत्थर के बोल्डरों से लदा पाया गया था। पकड़े गए ट्रकों के चालकों द्वारा पत्थर के बोल्डरों से संबंधित कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया था और ट्रकों के चालकों ने यह सूचित भी किया कि याची सं॰ 1 और 3, क्रमशः ललन सिंह और राजेश्वर प्रसाद सिंह उर्फ राजेश्वर सिंह, द्वारा पत्थरों का अवैध रूप से खनन किया जा रहा था और इन्हें याची सं॰ 4 शांति देवी जो याची सं॰ 3 राजेश्वर प्रसाद सिंह की पत्नी भी हैं के क्रशर तक ढोया जा रहा था। याची सं॰ 2 नेजमादीन उर्फ निजामुद्दीन पुलिस द्वारा पकड़े गए ट्रकों से एक का चालक है। पुलिस के ए॰ एस॰ आई॰ के स्व बयान पर याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379 और 411 के अधीन और बिहार लघु खनिज रियायत नियमावली, 1972 के नियम 40 के अधीन भी अपराधों के लिए प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

4. यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण के बाद पुलिस द्वारा आरोप-पत्र दाखिल किया गया है और संज्ञान भी लिया गया है। बाद में, याचीगण ने उन्मोचन के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 239 के अधीन आवेदन दाखिल किया जिसे अवर न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

5. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याचीगण के विरुद्ध लिया गया संज्ञान और अवर न्यायालय में आगे की कार्यवाही बिल्कुल अवैध है क्योंकि वर्तमान मामला विशेष संविधि द्वारा शासित होता है और उसमें विशेष प्रावधान अधिकथित किए गए हैं और इस प्रकार याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379 और 411 के अधीन सामान्य प्रावधानों के अधीन अपराध बनता हुआ नहीं कहा जा सकता है। यह निवेदन भी किया गया है कि याचीगण के विरुद्ध अभियोजन विशेष संविधि अर्थात् खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 22 के मुताबिक आरंभ नहीं किया गया है जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवाद मामला दाखिल किए जाने का प्रावधान करता है और तद्नुसार, याचीगण के विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही बिल्कुल अवैध है और अभिखंडित किए जाने योग्य है। अपने प्रतिवाद के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने **अजय कृष्ण तिवारी बनाम झारखंड राज्य, 2006 (3) East Cr.C. 50 (Jhr); नारायण महतो उर्फ नारायण चंद्र महतो बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2006 (4) JCR 218 (Jhr) भोथना महतो बनाम झारखंड राज्य,** 2009 (2) JLJR 258; **बी॰ मुथुरमन उर्फ बाला सुब्रमण्यम एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य, 2009 (3) JLJR 724; गुलाब भगत एवं एक अन्य बनाम मनरुल शेख उर्फ हक एवं एक अन्य, 2012 (2) JCR 43 (Jhr); पंचम सिंह बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य, 2013 (1) JCR 535 (Jhr)** मामलों में इस न्यायालय के अनेक निर्णयों पर विश्वास किया है जिनमें, समरुप परिस्थितियों में, उन मामलों के याचीगण के विरुद्ध दांडिक अभियोजन यह अभिनिर्धारित करते हुए अभिखंडित कर दिया गया था कि पुलिस मामले के आधार पर मामले का संज्ञान खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 22 के अधीन वर्जित था और अपराध भारतीय दंड संहिता के अधीन सामान्य विधि द्वारा शासित नहीं होंगे। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है और यह याचीगण के उन्मोचन के लिए सुयोग्य मामला है।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि पुनरीक्षण अधिकारिता में आपेक्षित आदेश में अवैधता नहीं है जो हस्तक्षेप योग्य हो। क्योंकि विधि **मो॰ अबरार आलम एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य, 2011 (4) JCR 43** में सुनिश्चित कर दी गयी है। उक्त मामले में, समरुप परिस्थितियों में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379 एवं 419 के अधीन अपराध संज्ञेय अपराध हैं और भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय हैं। अत:, कोई भी प्राथमिकी दर्ज कर सकता है। जहाँ तक खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम की धारा 22 का संबंध है, वह केवल उक्त अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराधों पर और न कि भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराधों पर प्रयोज्य है। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 5 भी इस तथ्य की दृष्टि में कि यह दंड प्रक्रिया संहिता का व्यावृत्ति खंड है, मामले पर प्रयोज्य नहीं है जो केवल की गयी कार्यवाही को व्यावृत्त करती अथवा विधि जो प्रवृत्त है और जो दंड प्रक्रिया संहिता में बनाए गए प्रावधानों के विपरीत नहीं है। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 अथवा उसके अधीन बनाए गए नियमावली में बनाए गए किसी प्रावधान के प्रतिकूल नहीं है। उक्त मामले में अपराध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379 और 413 के अधीन किया गया अभिकथित किया गया है और इन अपराधों के विचारण के लिए वर्ष 1957 के अधिनियम के अधीन प्रक्रिया विहित नहीं की गयी है।

7. अनिल खिरवाल बनाम झारखंड राज्य, 2013 (1) JCR 520 (Jhr.) मामले में इस न्यायालय द्वारा यही दृष्टिकोण अपनाया गया था जिसमें याचीगण के विरुद्ध टिस्को लि॰ की पट्टाधृत खानों में चोरी करने का अभिकथन था और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379 एवं 411 के अधीन और खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 21(1)(4) के अधीन अपराधों के लिए पुलिस केस के आधार पर मामला संस्थापित किया गया था। इस न्यायालय ने **मो॰ अबरार आलम मामले (ऊपर)** में दिए गए निर्णय पर विचार करते हुए और यह पाते हुए कि 1957 के अधिनियम के प्रावधान चोरी के विनिर्दिष्ट अपराध पर विचार नहीं कर रहे थे, यह अभिनिर्धारित किया कि याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन अपराध स्पष्टत: बनता है और अपराध संज्ञेय अपराध होने के कारण पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज प्राथमिकी के आधार पर दांडिक अभियोजन संस्थापित किया जा सकता था।

8. इस प्रकार पूर्वोक्त निर्णयों की चर्चा से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीशों के बीच मतभेद है क्योंकि ऊपर उद्धृत समस्त निर्णय विद्वान एकल न्यायाधीशों द्वारा पारित किए गए हैं।

9. खनिजों एवं लघु खनिजों की चोरी से संबंधित मामले इस राज्य में विपुल मात्रा में हैं। कोयला, लौह अयस्क एवं अन्य खनिजों की चोरी से संबंधित मामले झारखंड राज्य में अनेक हैं जिसमें केवल पुलिस रिपोर्ट पर मामला दर्ज किया गया है। मामले के इस दृष्टिकोण में यह आवश्यक है कि इस संबंध में वृहत पीठ द्वारा विधि सुनिश्चित की जाए ताकि विधि के अनुरुप मामलों को दर्ज करने में समस्त मामलों में राज्य की मशीनरी द्वारा एक रूप से इसका अनुसरण किया जाए ताकि केवल तकनीकी आधारों पर समस्त अभियोजन निरर्थक नहीं हो जाए। मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि इस संबंध में विधि को अंतिम रूप से सुनिश्चित करने की आवश्यकता है और विद्वान एकल न्यायाधीशों के प्रतिकूल निर्णयों की दृष्टि में भावी मार्गदर्शन के लिए यह समुचित होगा कि विधि वृहत पीठ द्वारा अंतिम रूप से सुनिश्चित की जाए।

10. तद्नुसार, इस संबंध में विधि सुनिश्चित करने के लिए वृहत पीठ गठित करने के लिए मामला माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

मोहर लाल महतो

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 6253 of 2012. Decided on 1st April, 2013.

भारतीय वन अधिनियम, 1927—धाराएँ 33 एवं 53—वाहन का अधिहरण–वाहन की निर्मुक्ति के लिए प्रार्थना–याची पर्याप्त सुरक्षा और अन्य उपायों, जैसा कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान ऐसे वाहन की निर्मुक्ति के लिए अधिहरण प्राधिकारी द्वारा आवश्यक बनाया जा सकता है, को देने का वचन देता है क्योंकि एकमात्र उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कार्यवाही लंबित रहने के दौरान वाहन स्वाभाविक क्षय के अध्यधीन नहीं किया जाता है–याची को एक बार फिर इस संबंध में अधिहरण प्राधिकारी के पास जाने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.–(2002)10 SCC 283—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Shailendra Kumar Sinha, For the Petitioner; J.C. to S.C.-1, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता सुने गए।

2. याची कोयला खान अधिनियम और भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अभिकथित उल्लंघन के लिए उक्त वाहन के विरुद्ध आरंभ किए गए अधिहरण केस सं॰ 16 वर्ष 2011 के लंबित रहने के दौरान दिनांक 25.2.2011 को जब्त किए गए रजिस्ट्रेशन सं॰ JH-2H-6400 वाले अपने वाहन की निर्मुक्ति के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 3 डिविजनल वन अधिकारी, पूर्वी डिविजन, रामगढ़ को निर्देश दिया जाना इप्सित करता है।

3. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि वाहन खुले स्थान पर पड़ा है और स्वाभाविक क्षय, मूल्य में गिरावट के अध्यधीन है। ऐसी परिस्थितियों में, याची ने **सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, (2002)10 SCC Page 283,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है और निवेदन करता है कि यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अपराध के संबंध में जब्त किए गए बहुमूल्य वस्तुओं और वाहनों को अत्यंत लंबी अवधि के लिए अभिरक्षा में नहीं रखा जाना चाहिए। यदि वाहन स्वामी इसकी निर्मुक्ति के लिए आता है, आवश्यक होने पर आवश्यक पंचनामा तैयार करने के बाद त्वरित कार्रवाई की जानी चाहिए, पहचान के लिए और साक्ष्य दर्ज करने के लिए कदम उठाए जाएँगे, और अन्य समुचित उपाय अपनाने होंगे ताकि यदि संपत्ति प्राकृतिक को पर्याप्त सुरक्षा हेतु कदम उठाने और क्षतिपूर्ति बंध पत्र अथवा अन्य सुरक्षा उपाय करने के बाद याची/स्वामी के पक्ष में वाहनों की निर्मुक्ति के लिए समुचित कदम भी उठाना चाहिए जैसा यह मामले की परिस्थितियों में समुचित समझता है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने अपने पूर्वोक्त प्रतिवाद के समर्थन में अगस्त, 2006 के डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 247 वर्ष 2006 और दिनांक 17.11.2011 के डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 5507 वर्ष 2011 में

परिशिष्ट–4 श्रृंखला के तहत इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णयों पर भी विश्वास किया है।

5. प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता उपस्थित हुए और अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया। प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता का गुणागुण पर प्रतिवाद यह है कि याची के वाहन को वन अपराध में अंतर्ग्रस्त पाया गया था जिसके संबंध में अधिहरण कार्यवाही भी आरंभ की गयी थी और याची उक्त वाहन की निर्मुक्ति के लिए सीधा इस न्यायालय के पास आया है, यद्यपि मूल प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील तथा पुनरीक्षण का अधिक्रम है। इसके अतिरिक्त, अधिहरण केस सं॰ 16 वर्ष 2011 में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया है।

6. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि उसने कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान ऐसे वाहन की निर्मुक्ति के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 3 के समक्ष आवेदन दिया है किंतु उस पर आदेश पारित नहीं किया गया है।

7. मैंने पक्षों के अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है और अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्री का परिशीलन किया है। जैसा पक्षों के निवेदनों से प्रतीत होगा, वाहन संख्या JH-02H-6400 को भारतीय वन अधिनियम, 1927 के प्रावधान के अभिकथित उल्लंघन के लिए अधिहरण केस सं॰ 16 वर्ष 2011 में डिविजनल वन अधिकारी, रामगढ़ के समक्ष अधिहरण कार्यवाही के अध्यधीन किया गया है। याची कार्यवाही लंबित रहने के दौरान ऐसे वाहन की निर्मुक्ति के लिए पर्याप्त सुरक्षा एवं अन्य उपाय करने का वचन देता है जैसा अधिहरण प्राधिकारी द्वारा आवश्यक बनाया जा सकता है क्योंकि एकमात्र उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि वाहन कार्यवाही लंबित रहने के दौरान प्राकृतिक क्षय के अध्यधीन न हो।

8. इन परिस्थितियों में, याची को एक बार फिर अधिहरण प्राधिकारी, प्रत्यर्थी सं॰ 3 के समक्ष आवेदन देने का निर्देश दिया जाता है जो विधि के अनुरुप इस पर विचार करेंगे। यह आवश्यक पंचनामा, वाहन की पहचान के लिए कदम और अन्य समुचित उपायों की तैयारी आवश्यक बना सकता है ताकि यदि वाहन प्राकृतिक क्षय के अध्यधीन होता है, कार्यवाही के दौरान साक्ष्य उपलब्ध हो। अधिहरण प्राधिकारी ऐसे वाहन की निर्मुक्ति की अनुमति देते हुए ऐसी परिस्थिति में पर्याप्त सुरक्षा/क्षतिपूर्ति बंधपत्र और अन्य सुरक्षात्मक कदम उठा सकता हैं। पूर्वोक्त कार्य याची के आवेदन की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह के भीतर किया जाए।

9. तद्नुसार, पूर्वोक्त निबंधनों में रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

उमेश कुमार (744 में)

संजीव कुमार (750 में)

देवाशीष महापात्र (752 में)

cuke

झारखंड राज्य निगरानी के माध्यम से एवं एक अन्य (सभी में)

Cr. M.P. Nos. 744, 750, 752 of 2013. Decided on 21st March, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 73, 82 एवं 83—गैर जमानती गिरफ्तारी वारंट–एक ओर, व्यक्ति के अधिकार, स्वतंत्रता और विशेषाधिकार तथा दूसरी ओर राज्य के बीच संतुलन

स्थापित करना न्यायालय के लिए आवश्यक है–केवल अन्वेषण में अभियोजन/पुलिस की मदद और सहायता करने के लिए गिरफ्तारी वारंट जारी नहीं किया जा सकता है–अभियुक्तगण गिरफ्तारी से बच नहीं रहे हैं बल्कि वे अन्वेषण में सहयोग कर रहे हैं–आदेशिका और गिरफ्तारी वारंट जारी करने वाले आदेशों को अभिखंडित किया गया। (पैराएँ 12 से 18)

निर्णयज विधि.–1997 (2) East Cr. Case 124 (SC); (2012)9 SCC 791—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s R.S. Mazumdar, Indrajeet Sinha, K. Sarkhel, For the Petitioners; Mr. Shailesh, For the Vigilance.

आदेश

दांडिक विविध याचिका सं॰ 744/2013 में याची के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता याचिका के प्रार्थना अंश के पैरा 11 और 20 में आवश्यक शुद्धि करने की अनुमति इप्सित करते हैं।

2. अनुमति प्रदान की जाती है।

3. एक ही आक्षेपित आदेश से उद्भूत होने वाले इन तीनों आवेदनों को एक साथ सुना जा रहा है और इस एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

4. याचीगण के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और निगरानी के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

5. इन समस्त आवेदनों को निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 2/2011 (विशेष केस सं॰ 2 वर्ष 2011) में विद्वान विशेष न्यायाधीश, निगरानी, राँची द्वारा पारित दिनांक 7.2.2013 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन इन याचीगण के विरुद्ध गैर जमानती गिरफ्तारी वारंट जारी करने का आदेश दिया गया था।

6. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याचीगण निगरानी केस सं॰ 2/2011 में अभियुक्त हैं जिसे इस अभिकथन पर दर्ज किया गया है कि इन याचीगण सहित अभियुक्तगण ने एक-दूसरे के साथ दुरभिसंधि में ठेकेदार मेसर्स रामजी पावर कंस्ट्रक्शन लिमिटेड को भुगतान करके झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड को भारी नुकसान कारित किया। अन्वेषण के दौरान जब इन याचीगण को अन्वेषण अधिकारी द्वारा परिप्रश्न के लिए बुलाया गया था, उन्होंने प्रत्युत्तर दिया था और दिनांक 24.3.2011 को उपस्थित हुए। तत्पश्चात, अन्वेषण अधिकारी द्वारा याचीगण को किसी परिप्रश्न के लिए कभी नहीं बुलाया गया था। अचानक, अन्वेषण अधिकारी द्वारा संबंधित न्यायालय के समक्ष तलब दाखिल किया गया था जिसमें यह कथन किया गया था कि इन याचीगण सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी है जिसमें अभिकथन किया गया है कि अभियुक्तगण ने एक-दूसरे के साथ दुरभिसंधि में ठेकेदार मेसर्स रामजी पावर कंस्ट्रक्शन लिमिटेड को भुगतान करके झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड को भारी नुकसान कारित किया और, इसलिए, अभियुक्तगण के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी किया जाए। ऐसे तलब पर, दिनांक 7.2.2013 को आदेश पारित किया गया था जिसके द्वारा याचीगण के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी करने का आदेश दिया गया था।

7. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री आर॰ एस॰ मजूमदार एवं विद्वान अधिवक्ता इंद्रजीत सिन्हा निवेदन करते हैं कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 73 में अंतर्विष्ट प्रावधान के अनुकूल कभी नहीं प्रतीत होता है क्योंकि केवल आई॰ ओ॰ द्वारा प्रस्तुत तथ्य कि उनके विरुद्ध मामला दर्ज किया गया है को ध्यान में लेते हुए गिरफ्तारी वारंट जारी किए जाने का आदेश दिया गया है जो गिरफ्तारी वारंट जारी किए जाने की अपेक्षा करते हुए दं॰ प्र॰ सं॰

की धारा 73 के अधीन अनुबंधित शर्त को परिपूर्ण कभी नहीं करता है और, तद् द्वारा, न्यायालय ने निश्चय ही आक्षेपित आदेश पारित करने में अवैधता किया। विद्वान अधिवक्ता **रघुवंश दीवानचंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य, (2012)9 SCC 791,** मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन करते हैं कि विधि का शासन बनाए रखने के लिए और समाज को सामंजस्यपूर्ण बनाए रखने के लिए एक ओर व्यक्ति और दूसरी ओर राज्य के अधिकार, स्वतंत्रता और विशेषाधिकार के बीच संतुलन बनाना न्यायालय के लिए आवश्यक है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को दृष्टि में रखते हुए न्यायालय को यांत्रिक रूप से तलब पर गिरफ्तारी वारंट जारी नहीं करना चाहिए था, बल्कि न्यायालय को व्यक्ति के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी करते हुए दं० प्र० सं० की धारा 73 में अंतर्विष्ट प्रावधान का पालन करना चाहिए था। चूँकि आक्षेपित आदेश शर्तों जैसा दं० प्र० सं० की धारा 73 के अधीन विहित किया गया है को परिपूर्ण किए बिना पारित किया गया है, आक्षेपित आदेश अवैधता से पीड़ित है और अपास्त कर दिए जाने योग्य है।

8. इसके विरुद्ध, निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेश निवेदन करते हैं कि याचीगण के विरुद्ध पहले ही पर्याप्त साक्ष्य संग्रहित कर लिया गया है और तद्द्वारा, यदि न्यायालय ने आई० ओ० द्वारा दाखिल तलब के आधार पर गिरफ्तारी वारंट जारी किया है, कोई अवैधता नहीं की गयी है और कि यद्यपि बयान दिया गया है कि याचीगण ने आई० ओ० के बुलावा का प्रत्युत्तर दिया था, किंतु किसी अनुदेश की अनुपस्थिति में वह उस तथ्य को स्वीकार करने की अवस्था में नहीं है और कि चूँकि यह ऐसा मामला है जहाँ इन याचीगण सहित अभियुक्तगण ने एक-दूसरे के साथ षडयंत्र करके ठेकेदार रामजी पावर कंस्ट्रक्शन लिमिटेड को करोड़ों रुपयों का भुगतान करके झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड को भारी नुकसान पहुँचाया, आक्षेपित आदेश का अभिखंडन अपेक्षणीय कभी नहीं हैं और कि पुलिस के पास व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति है यदि वह संज्ञेय मामले में अभियुक्त है। विधि की इस प्रतिपादना पर कोई विवाद नहीं है कि पुलिस अथवा अन्वेषण एजेंसी को संज्ञेय मामले में गिरफ्तारी वारंट की अनुपस्थिति में किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति है किंतु उस शक्ति को दं० प्र० सं० की धारा 41 के अधीन उल्लिखित शर्तों द्वारा सीमित किया गया है। जहाँ तक गिरफ्तारी वारंट जारी किए जाने से संबंधित मामले का संबंध है, वही विधि के अनुरुप जारी किया गया प्रतीत कभी नहीं होता है।

9. इस संदर्भ में, मैं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 के प्रावधान को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"73. **okj.V fdlh Hkh 0;fDr dk fufn"V gk ldx-**&(1) e[; U;kf;d eftLVV ;k iFke ox eftLVV fdlh fudy Hkkx fl)nk"k] mn?kkf"kr vijkèkh ;k fdlh ,l 0;fDr dk tk fdlh vtekurh; vijkèk d fy, vfHk;Dr g vkj fxj¶rkjh l cp jgk g] fxj¶rkj dju d fy, okj.V viuh LFkkuh; vfèkdkfjrk d vUnj d fdlh Hkh 0;fDr dk fufn"V dj ldrk gA*
>
> *(2) ,lk 0;fDr okj.V dh ikflr dk fyf[kr :i e vfHkLohdkj djxk vkj ;fn og 0;fDr] ftldh fxj¶rkjh d fy, okj.V tkjh fd;k x;k g] mll Hkkj lkèku d vèkhu fdlh Hkfe ;k vU; lifÙk e g ;k io'k djrk g rk og mls okj.V dk fu"iknu djxkA*
>
> *(3) tc og 0;fDr] ftld fo:) ,lk okj.V tkjh fd;k x;k g] fxj¶rkj dj fy;k tkrk g] rc og okj.V lfgr fudVre ifyl vfèkdkjh d goky dj fn;k tk,xk] tk ;fn èkkjk 71 d vèkhu ifrHkfr ugh yh xbZ g rk] mls mls ekey e vfèkdkfjrk j[ku oky eftLVV d le{k fHktok,xkA**

10. धारा के कोरे परिशीलन से यह स्पष्ट है कि यह व्यक्ति के तीन वर्गों अर्थात् (i) फरार दोषसिद्ध,

(ii) उद्घोषित अपराधी और (iii) व्यक्ति जो गैर जमानतीय अपराध का अभियुक्त है और गिरफ्तारी से बच रहा है उसका गिरफ्तारी वारंट जारी करने के लिए दंडाधिकारी को शक्ति प्रदत्त करता है।

11. राज्य सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से बनाम दाउद इब्राहिम कसकर, 1997 (2) East Cr. Case 124 (SC): AIR 1997 SC 2494 मामले में माननीय न्यायाधीशों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 के अधीन प्रतिष्ठापित पूर्वोक्त प्रावधान को और विधि आयोग की अपनी '11वीं रिपोर्ट में अनुशंसा को भी विचार में लेते हुए उक्त निर्णय के पैराग्राफ 20 में संप्रेक्षित किया:–

*^^fd èkkjk 73 okjaV tkjh dju d fy, nMkfèkdkjh dk 'kfDr çnku djrh g vkj fd vUo"k.k d nkjku mld }kjk bldk ç;kx fd;k tk ldrk g] dk lfgrk dh èkkjk 155 d çfr fun'k e vfèkd vPNh rjg l le>k tk ldrk gA t lk igy gh xkj fd;k x;k g] bl èkkjk d vèkhu ifyl vfèkdkjh nMkfèkdkjh d vkn'k l vlK; ekey dk vUo"k.k dj ldrk g] og lK; ekey d lcèk e bl 'kfDr dk ç;kx dj ldrk g flok, bld fd og okjaV d fcuk fxj¶rkjh ugh dj ldrk gA ;fn nMkfèkdkjh d vkn'k l ifyl vlK; vkj xj&tekurh; vijkèk (mnkgj.kLo#i Hkkjrh; nM lfgrk d Hkkx ı dh èkkjk 466 vFkok 467) e vUo"k.k dj ldrk g vkj ;fn vUo"k.k d nkjku vUo"k.k vfèkdkjh vijkèk d vfHk;Dr 0;fDr dk fxj¶rkj dju dk vk'k; j[krk g] ml nMkfèkdkjh l fxj¶rkjh okjaV bfllr vkj çkIr djuk gkxkA ;fn vfHk;Dr fxj¶rkjh l cprk g] vUo"k.k vfèkdkjh d ikl ,dek= [kyk jkLrk èkkjk 73 d vèkhu viuh 'kfDr dk lfuf'pr djuk vkj rRi'pkr mn?kk"k.kk ,o ddh l lcfèkr 'kfDr lfuf'pr djuk gA ,lh lHkk0; fLFkfr e] nMkfèkdkjh oèk :i l èkkjk 73 d vèkhu viuh 'kfDr dk ç;kx dj ldrk g D;kfd fxj¶rkj fd;k tku okyk 0;fDr ^^xj tekurh; vijkèk dk vfHk;Dr g vkj fxj¶rkjh l cp jgk gA***

12. परिणामस्वरुप, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संहिता की धारा 73 सामान्य प्रयोज्यता की है और कि अन्वेषण के क्रम में न्यायालय उसके अधीन शक्ति के प्रयोग में अन्य बातों के साथ साथ किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए जो गैर जमानतीय अपराध का अभियुक्त है और गिरफ्तारी से बच रहा है, गिरफ्तारी वारंट जारी कर सकता है।

13. ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए यह भी संप्रेक्षित किया गया था कि केवल अन्वेषण में अभियोजन/पुलिस की मदद और सहायता करने के लिए गिरफ्तारी वारंट जारी नहीं किया जा सकता है।

14. इस प्रकार, प्रश्न यह है कि क्या विद्वान न्यायाधीश ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 (1) के प्रावधान के अनुरुप याची के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी किया है?

15. विधान मंडल की ओर से उस प्रभाव का विधान बनाने के लिए प्रयोजन प्रातीत होता है क्योंकि विधि का शासन बनाए रखने के लिए और समाज में सामंजस्य बनाए रखने के लिए एक ओर व्यक्ति के अधिकार, स्वतंत्रता और विशेषाधिकार और दूसरी ओर राज्य के बीच संतुलन बनाना न्यायालय के लिए आवश्यक है।

16. इस संदर्भ में, मैं **रघुवंश दीवानचंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य, 2012 (9) SCC 791,** में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

"10. bl ij 'kk;n gh tkj nu dh t:jr g fd pfd xj tekurh okjaV dk fu"iknu 0;fDr dh Lor=rk e dVkrh vrxLr djrk g] fxj¶rkjh okjaV ;=or tkjh ugh fd;k tk ldrk g cfYd doy ;g nt fd, tku d ckn fd ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k e bldh vko';drk g] bl tkjh fd;k tk ldrk gA

*U;k;ky;k dk xj tekurh okjV tkjh dju dk fun'k nr g, vR;Ur pkdUuk vkj lrd gkuk gkxk ojuk nk"ki.k fujkèk Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 21e ifjdfYir loèkkfud vkKk dh voKk d rY; gkxkA lkFk gh] bll budkj ugh fd;k tk ldrk g fd 0;fDr dk dY;k.k lenk; d dY;k.k ij vfHkHkkoh gkxkA vr%] fofèk dk 'kklu vkj lekt e lketL; cuk, j[ku d fy, ,d vkj 0;fDr d vkj nljh vkj jkT; d vfèkdkj] Lor=rk vkj fo'k"kkfèkdkj d chp lryu cuk, j[kuk U;k;ky;k d fy, vko';d gA oLrr% ;g ,d tfVy dk; gA tl dkjnk tk] U;k;efr u dgk g] ^^,d vkj lkekftd vko';drk g fd vijkèk dk neu fd;k tk,A nljh vkj] lkekftd vko';drk g fd in dk n:i;kx djd fofèk dk mYy?ku ugh fd;k tk, fdlh Hkh p;u e [krjk gA***

*11. pkg tk Hkh gk] ;g U;k;ky; dk r; djuk g ftl ;g fofuf'pr dju dk Lofood fn;k x;k g] fd ,d vkj fofèk çoru dh vko';drk vkj nljh vkj fofèk çoru ,tfl;k d euekuiu l ukxfjd d lj{k.k d chp lryu LFkkfir dju d fy, D;k vfHk;Dr dh mifLFkfr tekurh vFkok xj tekurh okjV }kjk lfuf'pr djk;h tk ldrh gA ekey dh luokb dh frfFk ij U;k;ky; e mifLFkr gku e mldh foQyrk ij vfHk;Dr d fo#) lefpr okjV tkjh dju dh U;k;ky; dh 'kfDr rFkk vfèkdkfjrk ij fookn ugh fd;k tk ldrk gA fQj Hkh] vU; ckrk d lkFk vrxLr vijkèk dh çÑfr rFkk xHkhjrk] vfHk;Dr d foxr vkpj.k(mldh vk; vkj mld Qjkj gku dh lHkkouk dk è;ku e j[kr g, U;k;kfpr :i l vkj u fd eueku :i l ,lh 'kfDr dk ç;kx djuk gkxkA***

17. मामले के तथ्यों पर आते हुए यह प्रतीत होता है कि न्यायालय ने आई॰ ओ॰ द्वारा दाखिल तलब पर, जिसने कथन किया गया है कि याचीगण और अन्य व्यक्ति, जो मामले में अभियुक्त हैं, ने एक-दूसरे के साथ दुरभिसंधि करके ठेकेदार मेसर्स रामजी पावर कंस्ट्रक्शन लिमिटेड को भुगतान करके झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड को भारी नुकसान कारित किया, गिरफ्तार वारंट जारी किया जो धारा 73 में अंतर्विष्ट प्रावधान के अनुकूल कभी नहीं प्रतीत होता है। न्यायालय को यह रिपोर्ट कभी नहीं दिया गया है कि अभियुक्तगण गिरफ्तारी से बच रहे हैं बल्कि इसके विपरीत याचीगण की ओर से बयान दिया गया है कि जब कभी अन्वेषण अधिकारी द्वारा परिप्रश्न के लिए याचीगण को बुलाया गया था, वे उपस्थित हुए थे। इन परिस्थितियों के अधीन, दिनांक 7.2.2013 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, दिनांक 13.3.2013 का आदेश, जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध धारा 82 के अधीन आदेशिका जारी करने का आदेश दिया गया है, भी अपास्त किया जाता है क्योंकि यह भी विधि के अनुरुप जारी किया गया प्रतीत नहीं होता है।

18. किंतु, यह कहना अनावश्यक होगा कि अन्वेषण अधिकारी विधि के अनुरुप अन्वेषण, जाँच और विचारण से संबंधित मामले में कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होगा।

---

ekuuh; Jh pn'k[kj] U;k;efr

राम चंद्र प्रसाद

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 4179 of 2002. Decided on 22nd February, 2013.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

झारखंड सेवा संहिता, 2000—नियम 97—निलंबन–दंड का आक्षेपित आदेश पारित करने के पहले याची को कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया–यह निर्देश देते हुए कि निलंबन की अवधि के दौरान याची केवल निर्वाह भत्ता का हकदार होगा, आक्षेपित आदेश विधि के अनुरुप पारित नहीं किया गया था–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात।

(पैराएँ 14 से 16)

निर्णयज विधि.–AIR 1968 SC 240; (1997)11 SCC 374—Relied; 2003 (3) JCR 102 (Jhr); AIR 1973 SC 1124; (2003) Supp OLR 655; 1976 LAB I.C. 1047—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s A. K. Sahani, Ajit Kumar, For the Petitioners; Mr. Binoda Nand Tiwary, For the Respondents.

आदेश

याची ने दिनांक 8.4.2002 के आदेश को चुनौती दिया है जिसके द्वारा यह आदेश दिया गया है कि निलंबन की अवधि के दौरान याची केवल निर्वाह भत्ता का हकदार होगा।

2. याची को दिनांक 1.9.1998 के कार्यालय आदेश द्वारा निलंबन के अधीन रखा गया था। उस पर दिनांक 22.9.1998 का आरोप ज्ञापन तामील किया गया था और उसने दिनांक 14.1.1999 को अपना कारण बताओ उत्तर दाखिल किया। एक जाँच रिपोर्ट दाखिल की गयी थी जिसमें आरोप सं॰ 1 और 3 को सिद्ध पाया गया था। आरोप सं॰ 2 सामग्रियों की अल्प आपूर्ति से संबंधित था जिसे याची के विरुद्ध सिद्ध नहीं किया गया था। समेकित प्रभाव से एक वेतन वृद्धि को रोकते हुए दिनांक 7.3.2001 का दंड का आदेश पारित किया गया था। दिनांक 4.4.2001 के आदेश द्वारा याची के सिद्ध अवचार की दृष्टि में यह आदेश दिया गया था कि निलंबन की अवधि के दौरान याची केवल निर्वाह-भत्ता का हकदार होगा। याची ने दिनांक 4.4.2001 के आदेश को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2805 वर्ष 2001 दाखिल किया। रिट याचिका इस निर्देश के साथ निपटायी गयी थी कि यदि तीन सप्ताह के भीतर याची द्वारा किसी अपील को दाखिल किया जाता है, अपीलीय प्राधिकारी प्राथमिकत: चार माह की अवधि के भीतर सुतार्किक आदेश द्वारा याची का दावा विनिश्चित करेगा। तत्पश्चात्, याची ने अपील दाखिल किया जिसे दिनांक 8.4.2002 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। याची ने वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके दिनांक 8.4.2002 के आदेश को चुनौती दिया है।

3. यह प्रतिवाद करते हुए प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है कि चूँकि याची को उसके विरुद्ध विरचित आरोपों से पूर्णत: विमुक्त नहीं किया गया था और उसे दंड अधिनिर्णीत किया गया है, दिनांक 22.8.1998 से दिनांक 7.3.2001 की निलंबन अवधि को कर्तव्य पर मौजूद होने की अवधि के रूप में नहीं माना गया था और बिहार सेवा संहिता के नियम 97 के निबंधनानुसार याची को निलंबन अवधि के लिए निर्वाह भत्ता का भुगतान किया गया है।

4. दोनों पक्षों के अधिवक्ता सुने गए और अभिलेख पर दस्तावेजों का परिशीलन किया गया।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि दिनांक 4.4.2001 का आदेश पारित करने के पहले याची को द्वितीय कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था और इसलिए, दिनांक 4.4.2001 का आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर अभिखंडित किए जाने का दायी है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष याची की ओर से इस बिंदु पर विनिर्दिष्टत: तर्क किया गया था किंतु अपीलीय प्राधिकारी ने गलत रूप से याची की अपील को खारिज कर दिया है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने **शराफत हुसैन बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, 2003 (3) JCR 102 (Jhr.)** मामले में निर्णय पर विश्वास किया है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **शादी लाल गुप्ता बनाम पंजाब राज्य, AIR 1973 SC 1124,** और **शिव प्रकाश सिंह बनाम महानिदेशक, केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल, (2003)Supp OLR 665,** और **पूर्णानंद बेउरा बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य, 1976 LAB.I.C. 1047** में प्रकाशित मामलों में दिए गए निर्णयों पर विश्वास किया है।

7. शादी लाल गुप्ता बनाम पंजाब राज्य, AIR 1973 SC 1124, मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि पंजाब सिविल सेवा (दंड एवं अपील) नियमावली, 1952 के अधीन अपचारी कर्मचारी लघु दंड के मामले में कारण बताओ नोटिस दिए जाने का हकदार नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

> *"6. ..... fu;e 8 bl l vfèkd fdl h pht dk vko';d ugh cukrk g fd vfHkdFku] ftud vkèkkj ij lcfèkr vfèkdkjh dk vkjkfir fd;k x;k g] dk ml crk;k tkuk pkfg, vkj ml mud lcèk e fdl h vH;konu dk nu dk volj nuk pkfg,A ml nM d ckj e crku dh vko';drk ugh g ftl ml ij vfèkjkfir fd;k tkuk bfllr fd;k x;k g] ml ij vkjki&i= rkehy fd, tku d le; ij vFkok fdl h vU; pj.k ijA fu;e 7 }kjk vkPNkfnr ekey l vleku@fHkUu ml ij vfèkjkfir fd, tku d fy, bfllr nM d lcèk e tkp ijh gk tku d ckn nljh ckj volj fn, tku dk ç'u ugh gA*
>
> *7. fu;ekoyh dk fu;e 7 mu ekeyk ij fopkj djrk g tgk c[kkLrxh gVk, tku vFkok J.kh e ?kVk, tku dk e[; nM vfèkjkfir fd, tku d fy, çLrkfor g vkj ml fu;e dk mifu;e (6) fofufn"Vr% çkoèkkfur djrk g fd ,l ekey e vfèkjkfir fd, tku oky nM d lcèk e nM nu oky çkfèkdkjh }kjk vufre fu"d"k ij igpu d ckn vfHk;Dr vfèkdkjh dk tkp çkfèkdkjh dh fjikV dh çfr dh vkifr dh tk,xh vkj ml ij vfèkjkfir fd, tku d fy, çLrkfor fo'k"k nM d fo#) dkj.k crku d fy, dgk tk,xkA fu;e 8 d vkjHk e vku oky 'kCn ^^fu;e 7 d çkoèkkuk ij çfrdy çHkko Mky fcuk** dk ykHk fy;k tkuk ;g çfrokn dju d fy, bfllr fd;k x;k g fd ml fu;e e fufn"V funk] oruof);k dk jkdk tkuk vkj oru l olyh d y?k nMk d ekey e vfèkjkfir fd, tku d fy, çLrkfor nM d fo#) dkj.k crku dk volj fn;k tkuk pkfg,A o 'kCn lnHk e lgh ugh cBr g vkj mudk vFk ;g ugh gk ldrk g fd y?k nM d ekey e u doy fu;e 8 d çkoèkkuk dk cfYd fu;e 7 d çkoèkkuk dk Hkh vulj.k fd;k tkuk pkfg,A fu;ek dh 0;k[;k mud lefpr ifjn'; e dh tkuh gkxh vkj bl çdkj 0;k[;k fd, tku ij o 'kCn ml 0;k[;k dk èkkj.k ugh djx ftl mu ij LFkkfir djuk bfllr fd;k x;k gA fu;e 7 d çkoèkku lfoèkku d vuPNn 311 (2) d çkoèkkuk }kjk vko';d cuk, x, gA tgk rd vU; nMk dk lcèk g ,d ek= vfèkdkj ftl dk ljdkjh lod gdnkj g ;g g fd çLrkfor dkjokb fu;ek d vu#i gkuh pkfg,A fu;e 8 vH;konu nu d i;kIr volj l vfèkd dN Hkh vuè;kr ugh djrk gA vr% ge bl çfrokn dk Lohdkj dju e v{ke gA**`

8. शिव प्रकाश सिंह बनाम महानिदेशक, केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल, (2003) Supp OLR 655, मामले में माननीय उड़ीसा उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि ''लघु

दंड के अधिरोपण के लिए नियमित अनुशासनिक कार्यवाही आवश्यक नहीं है।'' **पूर्णानंद बेउरा बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य, 1976 LAB.I.C. 1047,** मामले में माननीय उड़ीसा उच्च न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने उड़ीसा सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 1962 के अधीन मामले पर विचार करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

*^^bl rF; d ckj e fookn ugh g fd ;kph ij vfèkjkfir nM y?k nM g tlk mMhlk flfoy lok (oxhdj.k] fu;=.k ,o vihy) fu;ekoyh] 1962 d fu;e 13 d vèkhu çkoèkkfur fd;k x;k gA vr%] nM d vfre vkn'kk d igy f}rh; dkj.k crkvk ukfVl nu dk ç'u mnHkr ugh gkrk g tlk iokDr fu;ekoyh d fu;e 16 d vèkhu çkoèkkfur fd;k x;k gA***

9. मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए उक्त मामले तथ्यों पर सुभिन्न किए जाने योग्य हैं। इन मामलों में नियम, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आए, बिहार सेवा संहिता के नियम 97 से भिन्न हैं।

10. मैं पाता हूँ कि **शराफत हुसैन बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, 2003 (3) JCR 102, (Jhr)** मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि चूँकि बिहार सेवा संहिता का सहारा लिए जाने के पहले कर्मचारी को द्वितीय कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था जिसे विभागीय कार्यवाही में दोषी पाया गया था, बिहार सेवा संहिता के नियम 97 के अधीन पारित आदेश संपोषणीय नहीं था।

11. श्री महावीर प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 1988 PLJR 82, मामले में पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने बिहार सेवा संहिता के नियम 97 पर विचार करते हुए बिहार सेवा संहिता के नियम 97 के अधीन पारित आदेश को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया है कि यह कारण बताने का अवसर कि क्यों नियम 97 के खंड (3) और (5) इस मामले पर लागू नहीं किए जाने चाहिए, कर्मचारी को नहीं दिया गया था। **विश्वनाथ मित्रा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 2003 (4) PLJR 71, मामले में न्यायालय ने रिट याचिका इस आधार पर अनुज्ञात किया कि बिहार सेवा संहिता के नियम 97 का सहारा लेने के पहले कर्मचारी को अवसर नहीं दिया गया था।

12. इसी प्रकार से, **रामाश्रय प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 2000 (3) PLJR 41, मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि निलंबन अवधि के लिए वेतन के निर्बंधित भुगतान का कोई आदेश केवल संबंधित कर्मचारी को कारण बताने का अवसर देने के बाद बिहार सेवा संहिता के नियम 97 के अधीन पारित किया जा सकता था।

13. मैं पाता हूँ कि मूल नियमावली का नियम 54 बिहार सेवा संहिता के नियम 97 का समविषयक है। बिहार सेवा संहिता के नियम 97 को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है।

^fu;e 97 (1) ^^tc ljdkjh lod ftl c[kkLr fd;k x;k g] gVk;k x;k g vFkok fuyfcr fd;k x;k g] dk iucgky fd;k tkrk g] iucgkyh dk vkn'k nu oky l{ke çkfèkdkjh dk&

(a) dr0; lmldh vuifLFkfr dh vofèk d fy, ljdkjh lod dk Hkxrku fd, tkus oky oru rFkk HkÙkk d lEcUèk e] rFkk

(b) D;k mDr vofèk dk dÙk0; ij fcrk;h x;h vofèk ekuh tk,xh ;k ugh bld lcèk e fopkj djuk gkxk vkj fofufn"V vkn'k ikfjr djuk gkxkA

(2) tgk mifu;e (1) e mfYyf[kr çkfèkdkjh dk er g fd ljdkjh lod dk i.kr% foeDr dj fn;k x;k g] vFkok fuycu dh fLFkfr e] fd ;g i.kr% vU;k;kfpr Fkk] ljdkjh lod dk ijk oru vkj HkÙkk ft ldk og gdnkj gkxk ;fn ml ;FkkfLFkfr c[kkLr ugh fd;k tkrk] gVk;k ugh tkrk vFkok fuyfcr ugh fd;k tkrk] nuk gkxkA

(3) vU; ekeyk e ljdkjh lod dk ,l oru vkj HkÙkk dk ,lk vuikr fn;k tk,xk tlk ,lk l{ke çkfèkdkjh fofgr dj ldrk gA

ijUr ;g fd [kM (2) vFkok [kM (3) d vèkhu HkÙkk dk Hkxrku vU; leLr 'krk d vè;ekhu gkxk ft ld vèkhu ,lk HkÙkk xkg; gA

(4) [kM (2) d vèkhu vku oky ekey e dr0; l vuifLFkr jgu dh vofèk dk leLr ç;ktu l dr0; ij fcrk;h x;h vofèk d :i e ekuk tk,xkA

(5) [kM (2) d vèkhu vku oky ekey e dr0; l vuifLFkr jgu dh vofèk dr0; ij fcrk;h x;h vofèk d :i e ugh ekuh tk,xh tc rd ,lk l{ke çkfèkdkjh fofufn"Vr% fun'k ugh nrk g fd bl fdlh fofufn"V ç;ktu l ,lk ekuk tk,xk%

ijUr ;g fd ;fn ljdkjh lod ,lk pkgrk g ,lk çkfèkdkjh fun'k n ldrk g fd dr0; l vuifLFkr jgu dh vofèk dk ljdkjh lod dk n; rFkk xkg; fdlh çdkj d vodk'k e lifjofrr dj fn;k tk,xkA**

मूल नियम 54 निम्नलिखित है:

^^(1) tc ljdkjh lod ftl c[kkLr fd;k x;k g] gVk;k x;k g vFkok fuyfcr fd;k x;k g] dk iucgky fd;k tkrk g(iucgkyh dk vkn'k nu oky l{ke çkfèkdkjh&

(a) dr0; l mldh vuifLFkfr dh vofèk d fy, ljdkjh lod dk Hkxrku fd, tku oky oru ,o HkÙkk d lEcUèk e(,o

(b) D;k mDr vofèk dÙk0; ij fcrk;h x;h vofèk ekuh tk,xh ;k ugh d lcèk e fopkj djxk vkj fofufn"V vkn'k ikfjr djxkA

(2) tgk mifu;e (1) e mfYyf[kr çkfèkdkjh dk er g fd ljdkjh lod dk i.kr% foeDr dj fn;k x;k g] vFkok fuycu dh fLFkfr e] fd ;g i.kr% vU;k;kfpr Fkk] ljdkjh lod dk ijk oru vkj HkÙkk ft ldk og gdnkj gkxk ;fn ml ;FkkfLFkfr c[kkLr ugh fd;k tkrk] gVk;k ugh tkrk vFkok fuyfcr ugh fd;k tkrk] nuk gkxkA

(3) vU; ekeyk e ljdkjh lod dk ,l oru vkj HkÙkk dk ,lk vuikr fn;k tk,xk tlk ,lk l{ke çkfèkdkjh fofgr dj%

ijUr ;g fd [kM (2) vFkok [kM (3) d vèkhu HkÙkk dk Hkxrku vU; leLr 'krk d vè;ekhu gkxk ft ld vèkhu ,lk HkÙkk xkg; gA

ijUr ;g Hkh fd ,l oru ,o HkÙkk dk ,lk vuikr fu;e 53 d vèkhu xkg; fuokg HkÙkk rFkk vU; HkÙkk l de ugh gkxkA

(4) [kM (2) d vèkhu vku oky ekey e dr0; l vuifLFkr jgu dh vofèk dk leLr ç;ktu l dr0; ij fcrk;h x;h vofèk d :i e ekuk tk,xkA

(5) [kM (3) d vèkhu vku oky ekey e dr0; l vuifLFkr jgu dh vofèk dr0; ij fcrk;h x;h vofèk d :i e ugh ekuh tk,xh tc rd ,l l{ke çkfèkdkjh fofufn"Vr% fun'k ugh nrk g fd bl fdlh fofufn"V ç;ktu l ,l ekuk tk,xk%

*ijUr ;g fd ;fn ljdkjh lod ,lk pkgrk g ,lk çkfèkdkjh fun'k n ldrk g fd dr0; l vuifLFkr jgu dh vofèk dk ljdkjh lod dk n; rFkk xkg; fdlh çdkj d vodk'k e lifjofrr dj fn;k tk,xkA***

14. एम॰ गोपालकृष्ण नायडू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, AIR 1968 SC 240, मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मूल नियम 54 का परीक्षण करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"(6) ;g lR; g fd ,Q0 vkj0 54 d vèkhu vkn'k bl vFk e ikfj.kkfed vkn'k g fd bl iucgkyh d vkn'k d ckn ikfjr fd;k tk,xkA fdr ;g rF; fd ikfj.kkfed vkn'k bl ç'u dk fofuf'pr ugh djrk g fd D;k ljdkjh lod dk dkj.k crku dk volj fn;k tkuk gkxk ;k ughA ;g Hkh lR; g fd ,l ekey e tgk foHkkxh; tkp d ckn iucgkyh dk vkn'k fn;k tkrk g] ljdkjh lod dk lkekU; r% dkj.k crku dk volj gkxkA ,l ekey e] fu%lng çkfèkdkjh d le{k ljdkjh lod }kjk fn, x, Li"Vhdj.k lfgr li.k vfHky[k gkxk ftl l çkfèkdkjh d le{k ekey d leLr rF; vkj ifjfLFkfr;k gkxh vkj ftl l og er fufer dj ldrk g fd D;k ml i.kr% foeDr fd;k x;k Fkk ;k ugh vkj fuycu d ekey e fd D;k ,lk fuycu i.kr% U;k;kfpr Fkk ;k ughA ,l ekey e] oreku ey fu;e tl fu;e d vèkhu ikfjr vkn'k dk foHkkxh; tkp d ckn ikfjr ikfj.kkfed vkn'k dgk tk ldrk gA fdr ekey d rhu ox g] tl k vuPNn 311 e ijUrd }kjk vfèkdfFkr fd;k x;k g] tgk foHkkxh; tkp ugh dh tk,xh vFkkr (a) tgk 0;fDr dk vkpj.k tk nkfMd vkjki ij mldh nk"kflf) dh vkj y x;k g d vkèkkj ij c[kkLr fd;k tkrk g] gVk;k tkrk g vFkok J.kh e ?kVk;k tkrk g] (b) tgk 0;fDr dk c[kkLr dju d fy, vFkok gVku d fy, vFkok J.kh e ?kVku d fy, l'kDr cuk;k x;k çkfèkdkjh fyf[kr e nt fd, tku oky dkj.kk l lr"V g fd ,lh tkp djuk ;fDr;Dr :i l 0;ogkfjd ugh g vkj (c) tgk jk"Vifr vFkok jkT; iky] ;FkkfLFkfr] lr"V g fd jkT; dh lj{kk d fgr e ,lh tkp djuk lehphu ugh gA pfd ekeyk d bu oxk e tkp ugh gkxh] çkfèkdkjh d le{k ljdkjh lod }kjk fn;k x;k Li"Vhdj.k ugh gkxkA ,l ekeyk e çkfèkdkjh dk ek= mu rF;k ij] tk lcfèkr foHkkx }kjk mld le{k çLrr fd, tk ldr Fk] fopkj djuk gkxk vkj vkn'k ikfjr djuk gkxkA ,l ekey e vkn'k ,di{kh; gkxk D;kfd çkfèkdkjh d le{k fp= dk nljk igy ugh gkxkA ,l ekeyk e vkn'k] ftl ,lk çkfèkdkjh ikfjr djxk] ikfj.kkfed vkn'k ugh gkxk tk ml ekey d foijhr g tgk foHkkxh; tkp dh x;h gA vr%] ey fu;e 54 d vèkhu ikfjr vkn'k lno ikfj.kkfed vkn'k ugh g vkj u gh ,lk vkn'k depkjh d fo#) dh x;h foHkkxh; dk;okgh dh fujrjrk gA

(7) ;g lR; g] tl k Jh lu u bfxr fd;k] fd ,Q0 vkj0 54 vfHk0;Dr 'kCnk e vfèkdfFkr ugh djrk g fd çkfèkdkjh dk vkn'k ikfjr dju d igy

lcfèkr depkjh dk dkj.k crku dk volj nuk gkxkA fQj Hkh] ç'u ;g g fd D;k fu;e foo{kk }kjk çkfèkdkjh ij ,Ik dr0; Mkyrk gA vkn'k fd D;k fn;k x;k ekeyk ey fu;e d [kM (2) vFkok [kM (5) d vèkhu vkrk g] çkfèkdkjh }kjk ekey d leLr rF;k vkj ifjfLFkfr;k ij vkj nk rkfF;d fu"d"kk l mld er fufer dju ij fuHkj djxk(D;k depkjh dk i.krk foeDr fd;k x;k Fkk vkj fuycu d ekey e D;k ;g ijh rjg vU;k;kfpr FkkA bld vfrfjDr] bl fu;e d vèkhu ikfjr vkn'k Li"Vr% ljdkjh lod dk çfrdy :i l çHkkfor djxk ;fn bl [kM 3 vkj 5 d vèkhu ikfjr fd;k x;k gA bl fu;e d vèkhu vufpru] tIk fd ;g rF;k vkj ifjfLFkfr;k ij mudh li.krk e fuHkj djrk g] ,l rF;k vkj ifjfLFkfr;k e igp x, rkfF;d fu"d"k d vkèkkj ij vkn'k ikfjr fd;k tkuk vkj ,l vkn'k dk ljdkjh lod dk dkfjr vkfFkd gkfu e ifj.kr gkuk oLrijd :i l vkj u fd 0;fDrijd :i l vfHkfuèkkfjr djuk gkxkA dk; dh çÑfr U;kf;d :i l Ñ%; dju dk dr0; foof{kr djrh gA ,l ekey e ;fn çLrkfor dkjokb d fo#) dkj.k crku dk volj ugh fn;k tkrk g] tIk LohÑr :i l oreku ekey e ugh fd;k x;k g] vkn'k bl vkèkkj ij voèk d :i e fo[kfMr fd, tku dk nk;h g fd ;g ulfxd U;k; d fl)krk d mYy?ku e gA**

15. मंजूर अहमद मजूमदार बनाम मेघालय राज्य एवं अन्य, (1997)11 SCC 374, में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि आदेश पारित करने के पहले कर्मचारी को अवसर देने के लिए मूल नियम 54 (3) में कोई अभिव्यक्त आवश्यकता नहीं है, ऐसा अवसर देना शक्ति जिसे उक्त प्रावधान द्वारा प्रदत्त किया गया है के प्रयोग में अंतर्निहित है। अतः, दंडादेश की अवधि के निलंबन के संबंध में कर्मचारी को भुगतान योग्य वेतन एवं भत्ता के संबंध में आदेश पारित करने के पहले कर्मचारी को अवसर देना सक्षम प्राधिकारी के लिए आवश्यक था।

16. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से, मैं पाता हूँ कि दिनांक 4.4.2001 का आदेश पारित करने के पहले याची को कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था। यद्यपि याची ने दिनांक 7.3.2001 के आदेश को चुनौती नहीं दिया है जिसके द्वारा उसे सिद्ध अवचार के लिए दंडित किया गया था किंतु, मैं पाता हूँ कि दिनांक 4.4.2001 के आदेश को विधि के अनुरुप पारित किया गया नहीं कहा जा सकता। माननीय सर्वोच्च न्यायालय और हमारे उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि की दृष्टि में यह स्पष्ट है कि दिनांक 4.4.2001 का आदेश विधि की आवश्यकता को परिपूर्ण नहीं करता है और इसलिए, इसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। परिणामस्वरुप, रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और दिनांक 4.4.2001 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। किंतु, प्रत्यर्थीगण को विधि के अनुरुप याची के विरुद्ध अग्रसर होने की छूट होगी यदि वह अभी भी सेवा में है।

17. किंतु व्यय को लेकर आदेश नहीं होगा।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

राज किशोर प्रसाद सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 6612 of 2003. Decided on 15th May, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 311—वसूली–आक्षेपित आदेश द्वारा अनाधिकृत अवकाश अभिनिर्धारित किए गए अवधि से संबंधित वेतन वसूल किए जाने के लिए इप्सित की गयी–उपदान राशि से वसूली करने का निर्देश–विभागीय कार्यवाही में द्वितीय कारण बताओ नोटिस की आवश्यकता आज्ञापक है और यदि जहाँ अनुशासनिक प्राधिकारी अपचारी कर्मचारी को विमुक्त करने वाले जाँच अधिकारी की रिपोर्ट से असहमत है, जाँच अधिकारी से असहमत होने के कारण को उपदर्शित करने की आवश्यकता है–वसूली का दंड अधिरोपित करने वाले आक्षेपित आदेश को संपोषित नहीं किया जा सकता है। (पैराएँ 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Binod Kumar, For the Petitioner; JC to SC-III, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता सुने गए।

2. दिनांक 3.5.1997 के मूल आदेश, परिशिष्ट–16, द्वारा याची पर कतिपय आरोपों के संबंध में आदेश सं॰ 2863 दिनांक 5.8.1995 के तहत आरंभ की गयी विभागीय कार्यवाही के अनुसरण में उसके उपदान से 1,03,159.50/- रुपयों की वसूली का दंड अधिरोपित किया गया है।

3. उक्त आदेश के विरुद्ध दाखिल अपील भी अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् सह–सचिव, वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, झारखंड सरकार, राँची द्वारा दिनांक 19.9.2003 के आदेश के तहत अस्वीकार कर दी गयी है। याची ने वर्तमान रिट याचिका में इन दोनों आदेशों को चुनौती दिया है। उसने उस आक्षेपित आदेश का भी विरोध किया है जिसके द्वारा जनवरी, 1994 से जनवरी 1995 की अवधि के लिए उसका वेतन रोक दिया गया है और प्रश्नगत अवधि को अप्राधिकृत अवकाश अभिनिर्धारित किया गया है। याची के अनुसार, याची ने परिणामस्वरुप संपूर्ण शेष सेवानिवृत्ति पश्चात देयों और उक्त अवधि के लिए वेतन के भुगतान की प्रार्थना की है।

4. याची के अनुसार, वह रेंज अधिकारी, वन रेंज, राँची के पद से दिनांक 31.1.1995 के प्रभाव से सेवानिवृत्त हुआ। किंतु, दिनांक 5.8.1995 के आदेश के तहत उसके विरुद्ध अभिकथित आरोपों के लिए विभागीय कार्यवाही आरंभ की गयी थी कि उसने उच्चतर प्राधिकारियों के आदेश का पालन नहीं किया है और उसने निश्चित अवधि के बाद 31,400/- रुपया जमा नहीं किया है और आगे उसने अपने प्रभार के अधीन गोदाम में रखे गए खाद के संबंध में 1.62 लाख रुपयों की राशि की हानि कारित किया है। यह निवेदन किया गया है कि जाँच की कार्यवाही प्रारंभ करने के बाद जाँच अधिकारी ने जाँच के दौरान प्रस्तुत सामग्रियों पर पूरी चर्चा करने और याची के कारण बताओ के उत्तर तथा प्रेजेन्टिंग अधिकारी के बयान को विचार में लेने के बाद दिनांक 10.10.1996 के परिशिष्ट 18 के तहत उसे समस्त आरोपों से विमुक्त कर दिया। किंतु यह निवेदन किया गया है कि जाँच रिपोर्ट के साथ असहमत होने के कारण दर्शाते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा द्वितीय कारण बताओ नोटिस जारी किए बिना पूर्वोक्त दंड अधिरोपित करते हुए दिनांक 3.5.1997 का दंड का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। यह निवेदन किया गया है कि इस बीच याची दंड के मूल आदेश के विरुद्ध सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 1117 वर्ष 1998 (R) में पटना उच्च न्यायालय के पास आया था। किंतु, याची को अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल करने की स्वतंत्रता के साथ इसे वापस लेने की अनुमति दी गयी थी।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपीलीय प्राधिकारी दिनांक 19.9.2003 के अपीलीय आदेश, परिशिष्ट 20 में प्रतिवाद के उसके आधार पर विचार करने में विफल रहा है और पूर्वोक्त दंड को संपुष्ट किया है। याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि अपीलीय प्राधिकारी ने

इस तथ्य को ध्यान में लिया है कि जाँच अधिकारी ने उसे समस्त आरोपों से विमुक्त कर दिया था, किंतु खाद की क्षति के संबंध में विभाग को ऐसी वित्तीय हानि के लिए उसको जिम्मेदार मानते हुए उसके विरुद्ध अभिनिर्धारण करने के लिए अग्रसर हुए हैं क्योंकि समय के प्रासंगिक बिंदु पर वह गोदाम का प्रभारी था। अपीलीय प्राधिकारी ने महसूस किया है कि याची गोदाम में रखे गए खाद के स्टॉक से संबंधित आरोपों का संतोषजनक उत्तर देने में विफल रहा है और इस प्रकार, राशि जिसे खाद के उक्त स्टॉक के विरुद्ध राज्य के खजाने से खोया पाया गया है, उसके उपदान से वसूल किया जाए। इन परिस्थितियों में, याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह कथन करते हुए आक्षेपित आदेश का विरोध किया है कि यह विधि में और तथ्यों पर दूषित हो गया है।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया है कि याची को अवसर देने के बाद कार्यवाही संचालित की गयी है और अपीलीय प्राधिकारी ने भी उसको निजी सुनवाई की अनुमति दी किंतु याची खादों, जिन्हें याची के प्रभार के अधीन गोदाम में रखा गया था, के विरुद्ध राशि की हानि के लिए संतोषजनक कारण दर्शा नहीं सका था। इस प्रकार, उसके उपदान से उक्त राशि वसूल करने का निर्देश दिया गया था। चूँकि याची जनवरी, 1994 से जनवरी, 1995 तक कर्तव्य से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित बना रहा है, उक्त अवधि को कर्तव्य से अप्राधिकृत अनुपस्थिति के रूप में अभिनिर्धारित किया गया है और याची उक्त अवधि के लिए वेतन का हकदार नहीं होगा। जहाँ तक जुलाई, 1991 से मई, 1992 तक की अवधि के लिए वेतन इप्सित करने के याची के दावा का संबंध है, उनकी ओर से कथन किया गया है कि महँगाई भत्ता में वृद्धि से संबंधित राशि का भुगतान याची को किया गया है। 240 दिनों के अवकाश वेतन की राशि भी वापस ले ली गयी है और राँची ट्रेजरी में जमा की गयी है। आदेश नियमावली के मुताबिक पारित किया गया है और वह मनमानी प्रकृति का नहीं है और, इसलिए, वर्तमान रिट याचिका में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। बिहार पेंशन नियमावली (अब झारखंड द्वारा भी अपनाया गया) के प्रावधानों के अधीन सेवानिवृत्त व्यक्ति के विरुद्ध भी विभागीय कार्यवाही की जा सकती है। अपीलीय प्राधिकारी ने याची के निवेदनों पर भी विचार किया है, किंतु उसका स्पष्टीकरण असंतोषजनक पाया है और इसलिए, मूल आदेश संपुष्ट किया गया है।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है और अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्रियों का परिशीलन किया है। स्वीकृत रूप से, अपने उच्चतर अधिकारियों के आदेशों की अवहेलना करने और कतिपय अवधियों के लिए कर्तव्य से अनुपस्थित रहने, ''निश्चित समय के बाद 31,400/- रुपयों की राशि जमा करने और खाद के लिए 1,03,159.50/- रुपयों की राशि का लेखा–जोखा देने में विफलता के लिए दिनांक 5.8.1995 के कार्यालय आदेश के आधार पर उसकी सेवानिवृत्ति के बाद याची के विरुद्ध अग्रसर हुआ है। किंतु, यह भी विवाद में नहीं है कि वन, संकर्म, नियोजन एवं शोध अंचल, राँची के संरक्षक की श्रेणी के जाँच अधिकारी ने अपनी जाँच रिपोर्ट, रिट याचिका का परिशिष्ट 18, में याची को समस्त आरोपों से विमुक्त कर दिया। तत्पश्चात, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जैसा दिनांक 3.5.1997 के परिशिष्ट–16 में अंतर्विष्ट है, जिसमें पूर्वोक्त दंड अधिरोपित किया गया है। किंतु, यह विवादित नहीं है कि अनुशासनिक प्राधिकारी ने जाँच अधिकारी की रिपोर्ट से असहमत होने के लिए और याची के विरुद्ध प्रस्तावित दंड के लिए कारण देते हुए स्वयं को अपना बचाव करने के लिए उसको सक्षम बनाने के लिए द्वितीय कारण बताओ कभी नहीं जारी किया। विभागीय कार्यवाही में द्वितीय कारण बताओ नोटिस की आवश्यकता आज्ञापक है और यदि जहाँ अनुशासनिक प्राधिकारी अपचारी कर्मचारी को विमुक्त करने वाले जाँच अधिकारी की रिपोर्ट से असहमत है, जाँच अधिकारी से असहमत होने के कारणों को

उपदर्शित किए जाने की आवश्यकता है ताकि अपचारी कर्मचारी के पास प्रस्तावित दंड और ऐसी मत भिन्नता के कारणों के विरुद्ध अपना बचाव करने का अवसर हो। यह अपचारी को अनुशासनिक प्राधिकारी के विचार को जानने के लिए सक्षम बनाता है। वर्तमान मामले में, यह प्रतीत नहीं होता है कि दंड अधिरोपित करने के पहले विभागीय नियमावली के अधीन अनुध्यात विधि की पूर्वोक्त आवश्यकताओं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के प्रावधानों के अधीन आवश्यकताओं और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की व्याख्या का अनुसरण किया गया है। अपीलीय प्राधिकारी ने भी विभागीय कार्यवाही संचालित करने में पूर्वोक्त कमी को विचार में नहीं लिया था और दंड का आदेश संपुष्ट किया है।

8. ऐसी परिस्थितियों में, याची के उपदान से 1,03,159.50/- रुपयों की वसूली का दंड अधिरोपित करने वाले दिनांक 3.5.1997 के आक्षेपित आदेश, परिशिष्ट 16 को विधि में संपोषित नहीं किया जा सकता है और तद्नुसार, इसे अपास्त किया जाता है, किंतु चूँकि याची जनवरी, 1994 से जनवरी, 1995 तक कर्तव्य से अनुपस्थित बना रहा, पूर्वोक्त अवधि को कर्तव्य से अप्राधिकृत अनुपस्थिति के रूप में मानने में प्रत्यर्थीगण के दृष्टिकोण में खोट नहीं पाया जा सकता है। उस कारण कोई पृथक दंड नहीं दिया गया है। ऐसी परिस्थिति में यहाँ उपर उपदर्शित सीमा तक वर्तमान रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

9. स्वीकृत रूप से, याची वर्ष 1995 में सेवानिवृत्त हुआ है, अत: उसकी सेवानिवृत्ति के 18 वर्ष बाद इस चरण पर इतनी लंबी अवधि के बाद याची के विरुद्ध उन्हीं आरोपों के लिए अग्रसर होने के लिए मामले को प्रत्यर्थीगण के पास वापस भेजना निरर्थक होगा। इन परिस्थितियों में, याची इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर 1,03,159.50/- रुपयों की राशि वापस पाने का हकदार होगा।

10. तद्नुसार, यह रिट याचिका पूर्वोक्त तरीके से अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

श्रीमती जुहा बाला देवी एवं अन्य

cuke

बाबूचंद महतो

W.P. (C) No. 5817 of 2012. Decided on 9th April, 2013.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 6, नियम 17 सह-पठित धारा 151—वाद पत्र का संशोधन–आवेदन अस्वीकार–याचीगण-वादीगण वाद के लंबित रहने के दौरान संशोधन के लिए अध्यपेक्षित आवेदन नहीं देने के लिए कोई संतोषजनक औचित्य/कारण दर्शाने की अवस्था में नहीं हैं–अवर न्यायालय ने सही प्रकार से याची का आवेदन, जिसे विलंबित चरण पर दाखिल किया गया था, अस्वीकार कर दिया–रिट याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Ashim Kr. Sahani, For the Petitioners; None, For the Respondent.

आदेश

याचीगण ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान याचिका अभिधान अपील सं॰ 11 वर्ष 2010 में विद्वान प्रधान जिला न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 14.9.2012 के आदेश (परिशिष्ट–5)

जिसके द्वारा याचीगण की ओर से वादपत्र में संशोधन के लिए दिया गया आवेदन अस्वीकार कर दिया गया है को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए समुचित रिट/आदेश जारी करने के लिए प्रार्थना किया है।

2. याचीगण और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता सुने गए। अंतरिम आदेश और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों का परिशीलन किया गया।

3. यह प्रतीत होता है कि अभिधान वाद सं॰ 30 वर्ष 2001 दिनांक 30.10.2010 के निर्णय और आदेश द्वारा विनिश्चित किया गया था। उक्त निर्णय से व्यथित एवं असंतुष्ट होकर याचीगण ने अभिधान अपील सं॰ 11 वर्ष 2010 दाखिल किया और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 सह–पठित धारा 151 के अधीन याची द्वारा उक्त अभिधान वाद में संशोधन इप्सित किया गया था।

4. विद्वान अवर न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों को विस्तारपूर्वक दर्ज किया है और तद्द्वारा यह कारण देते हुए उक्त आवेदन अस्वीकार कर दिया कि इसे विलंबित चरण पर दाखिल किया गया है और यह वाद के संस्थापन के बाद अंतरिम इप्सित करता है जो वाद की प्रकृति एवं चरित्र बदल दे सकता है।

5. यह प्रतीत होता है कि उक्त वाद के लंबित रहने के दौरान याचीगण/वादीगण द्वारा प्रश्नगत संपत्ति खरीदी गयी थी और, इसलिए, वाद के लंबित रहने के दौरान ऐसा संशोधन आवेदन दाखिल करने के लिए वादीगण के पास पर्याप्त अवसर उपलब्ध था। किंतु याचीगण–वादीगण वाद के लंबित रहने के दौरान संशोधन के लिए अध्यपेक्षित आवेदन नहीं दाखिल करने का कोई संतोषजनक औचित्य/कारण दर्शाने की अवस्था में नहीं है। अत: इस संदर्भ में सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VI नियम 17 में अंतर्विष्ट प्रावधान को देखने की आवश्यकता है जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *^^17.* ***vfHkopu dk l'kèku-*** *&U;k;ky; nkuk e l fdlh Hkh i{kdkj dk dk;okfg;k d fdlh Hkh iØe e vuKk n ldxk fd og viu vfHkopuk dk ,l jhfr l vkj ,l fucUèkuk e] tk U;k;lxr gk] ifjofrr dj ;k l'kkfèkr dj vkj lHkh ,l l'kèku fd, tk,x tk i{kdkjk d chp e fooknxLr okLrfod i'uk d voèkkj.k d i;kx d fy, vko';d gkA fdr] tgk okn e l'kèku gr oknh }kjk vkonu nkf[ky fd;k tkrk g] ftle ifroknh mifLFkr ugh gvk gA ;|fi leuk dh rkehyk djk;h x;h Fkh] ,o tgk U;k;ky; dh jk; e vkofnr l'kèku rkfRod g] U;k;ky; l'kèku dh vuefr nu l igy ifroknh dk vkonu dh ukfVl nxk(,o tgk ifroknh dh vuifLFkfr e U;k;ky; dkb l'kèku ,l :i e etj djrk g tk rkfRod :i l mll fHkUu g ftldh ukfVl ifroknh dk nh x;h g] ogk l'kkfèkr okn&i= dh ,d ifr ifroknh dk rkehyk djk;h tk;xhA***

6. उक्त प्रावधान की दृष्टि में यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने सही प्रकार से और समुचित रूप से आदेश पारित किया है और तद्द्वारा वादपत्र में संशोधन के लिए याचीगण का आवेदन, जिसे विलंबित चरण पर दाखिल किया गया था, अस्वीकार कर दिया है और याचीगण–वादीगण द्वारा कोई औचित्य नहीं दिया गया है कि क्यों और किन परिस्थितियों के अधीन प्रश्नगत संशोधन, जो पूरी तरह उनकी जानकारी में था, को वाद के लंबित रहने के दौरान दाखिल नहीं किया जा सका था और, इसलिए, याचीगण द्वारा दाखिल संशोधन याचिका अस्वीकार किए जाने योग्य है।

7. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

ए॰ के॰ अम्बष्ठ उर्फ अनिल किशोर अम्बष्ट उर्फ अनिल किशोर अम्बष्ठ

cuke

झारखंड राज्य, एस॰ पी॰, निगरानी के माध्यम से

Cr. M.P. No. 1555 of 2012. Decided on 22nd April, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420/467/468/471/477/409 एवं 120B—भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 13 (1) (d) एवं 13 (2)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—लोक सेवक द्वारा छल, षडयंत्र एवं कूटरचना–संज्ञान–प्लास्टर ऑफ पेरिस खरीदने में अनियमितता की गयी–प्रतीत होता है कि अभिकथन हैं जिनके आधार पर न्यायालय ने अपराध का संज्ञान लिया है–केवल अन्वेषण में विलंब के आधार पर संपूर्ण कार्यवाही अभिखंडित करना न्याय के हित में सही नहीं होगा–आवेदन खारिज। (पैराएँ 7 से 10)

निर्णयज विधि.–(2009) 3 SCC 355—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Anil Kumar, Abhishek Kumar, For the Petitioner; Mr. Shailesh Kumar Singh, For the Vigilance.

आदेश

याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. दिनांक 8.12.2011 के आदेश, जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 471, 477, 409 एवं 120B के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (2) सह–पठित धारा 13 (i)(d) के अधीन भी दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया है, सहित विशेष केस सं॰ 2 वर्ष 1998 (निगरानी केस सं॰ 3 वर्ष 1998) की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही को इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि याची का विचारण करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं है और कि त्वरित न्याय के अधिकार से वंचित किया गया है क्योंकि घटना वर्ष 1981-82 में घटी बतायी जाती है जबकि प्राथमिकी वर्ष 1998 में दर्ज की गयी थी और आरोप–पत्र केवल दिसंबर, 2011 में दाखिल किया गया था।

3. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार निवेदन करते हैं कि यद्यपि प्राथमिकी में अनेक अभिकथन हैं किंतु उन समस्त अभिकथनों का याची के साथ सरोकार नहीं है। जहाँ तक याची का संबंध है, अभिकथनों में से एक यह है कि याची ने खरीद कमिटी का सदस्य होने के नाते और अन्य सदस्यों ने भी प्लास्टर ऑफ पेरिस की आपूर्ति के लिए उस व्यक्ति को संविदा का पंचाट किया जिसने नोटिस में नियत अंतिम तिथि के बाद अपने निविदा कागजों को दाखिल किया था और कि जब प्लास्टर ऑफ पेरिस की आपूर्ति की गयी थी, इसकी मजबूती वही नहीं पायी गयी थी जैसा इसे एन॰ आई॰ टी॰ (निविदा निमंत्रित करने वाली नोटिस) में विनिर्दिष्ट किया गया था बल्कि यह तुच्छ गुणवत्ता की थी और उसके लिए याची को जिम्मेदार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि याची की भूमिका केवल संविदा अधिनिर्णीत करने के लिए व्यक्ति चुनना था। इस प्रकार, जो याची के विरुद्ध आया है यह है याची और अन्य ने खरीद कमिटि के सदस्य होने के नाते उस व्यक्ति को संविदा अधिनिर्णीत किया जो इसे पाने का हकदार नहीं था। सिवाए इसके याची के विरुद्ध और कुछ नहीं आया है ताकि याची का विचारण किया

जा सके और त्वरित न्याय के अधिकार से वंचित किया गया है और, इसलिए, संज्ञान लेने वाला आदेश **वकील प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य, (2009)3 SCC 355,** मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में अभिखंडित किए जाने योग्य है।

4. इसके विरुद्ध, निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेश कुमार सिंह निवेदन करते हैं कि याची, जो समय के प्रासंगिक बिंदु पर सहायक अभियंता, हाई टेंशन इनसुलेटर फैक्टरी, नामकुम, राँची के रूप में पदस्थापित था, और अन्य ने खरीद कमिटी का सदस्य होने के नाते सामग्रियों की आपूर्ति के लिए संविदा अधिनिर्णीत करने में भ्रष्ट आचरण अपनाया जिसके द्वारा सरकारी खजाने को भारी नुकसान कारित किया गया था।

5. इस संबंध में, उनके द्वारा यह इंगित किया गया था कि बॉल सॉकेट कैप्स और टंग्स क्लेविस कैप्स की आपूर्ति के लिए कुछ निविदाकारों द्वारा न्यूनतम मूल्य उद्धृत किया गया था किंतु इसे 27.25/- रुपया प्रति पीस की दर पर मेसर्स कासफिट मैलीसबल्स और मेसर्स स्टार आयरन वर्क्स को अधिनिर्णीत किया गया था और कि खरीद कमिटि के सदस्य मेसर्स कासफिट मैलीएबल्स के प्रबंधन के साथ निकट रूप से जुड़े थे और तद्द्वारा सरकारी खजाने को भारी नुकसान कारित किया गया था और ऐसी स्थिति में संज्ञान लेने वाले आदेश का अभिखंडन अपेक्षणीय नहीं है यद्यपि मामला वर्ष 1981-82 से संबंधित है।

6. उत्तर में, निवेदन किया गया था कि अभिकथन के संबंध में किए गए निवेदन इस याची से संबंधित नहीं हैं।

7. चाहे जो भी हो, अभिकथन प्रतीत होते हैं जिनके आधार पर न्यायालय ने पूर्वोक्तानुसार संज्ञान लिया है। ऐसी स्थिति में, अन्वेषण में विलंब के आधार पर संपूर्ण कार्यवाही अभिखंडित करना न्याय के हित में सही नहीं होगा।

8. यहाँ मैं इस चरण पर, **वकील प्रसाद सिंह (ऊपर)** के निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने त्वरित न्याय के व्यक्ति के अधिकार से संबंधित यहाँ नीचे उद्धृत अनेक मामलों **मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978)1 SCC 248; हुसैना खातून एवं अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, (1980)1 SCC 81; अब्दुल रहमान अंतुले एवं अन्य बनाम आर॰ एस॰ नायक एवं एक अन्य, (1992)1 SCC 225; ''कॉमन कॉज'' एक रजिस्टर्ड सोसाइटी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1996)4 SCC 33; एक रजिस्टर्ड सोसाइटी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1996)6 SCC 775; राजदेव शर्मा बनाम बिहार राज्य, (1999)7 SCC 604** और **पी॰ रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य, (2002)4 SCC 578** में अधिकथित सिद्धांत को ध्यान में लेकर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

> *^^vr%] ;g lfuf'pr g fd Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 21 d vèkhu leLr nkfMd vfHk;ktuk e Rofjr fopkj.k dk vfèkdkj vU; v lØkE; vfèkdkj gA ;g vfèkdkj u doy U;k;ky; e okLrfod dk;okgh d çfr ç;kT; g cfYd ;g viu foLrkj e ioorh ifyl vUo"k.k dk Hkh lfEefyr djrk gA Rofjr fopkj.k dk vfèkdkj leku :i l leLr nkfMd vfHk;ktuk rd foLrkfjr gkrk g vkj ekeyk d fdlh fo'k"k dkfV rd lhfer ugh gA çR;d ekey e] tgk Rofjr fopkj.k d vfèkdkj dk vfry?ku vfHkdfFkr fd;k x;k g] U;k;ky; dk mDr lxf.kr leLr vku"kfxd ifjfLFkfr;k dk fopkj e yr g, lryudkjh ÑR; dk ikyu djuk gkxk vkj çR;d ekey e fofuf'pr djuk gkxk fd D;k fn, x, ekey e Rofjr fopkj.k d vfèkdkj l ofpr fd;k x;k gA*
>
> *tgk U;k;ky; bl fu"d"k ij vkrk g fd vfHk;Dr d Rofjr fopkj.k d vfèkdkj dk vfry?ku fd;k x;k g] vkjki vFkok nk"kf lf)] ;FkkfLFkfr] vfHk[kfMr*

fd;k tk ldrk g ***tc rd U;k;ky; ;g ugh egl l djrk g fd vijkèk dh çÑfr ,o vU; çklfxd ifjfLFkfr;k dk è;ku e j[ku ij dk;okgh dk vfHk[kMu U;k; d fgrk e ugh gk ldrk gA ,lh fLFkfr e] U;k;ky; dk fopkj.k d lekiu d fy, le; lhek d fu;frdj.k lfgr lefpr vkn'k ikfjr dju dh NV g tlk ;g U;k;kfpr vkj lkE;ki.k le>A*****

9. अपराध की गंभीरता को दृष्टि में रखते हुए कार्यवाही का अभिखंडन न्याय के हित में नहीं होगा।

10. तद्नुसार, यह आवेदन खारिज किया जाता है।

11. इस आदेश से अलग होने के पहले, संप्रेक्षित किया जाता कि चूँकि अन्वेषण के दौरान काफी वक्त पहले ही लगाया जा चुका है, अब यह समुचित और उचित होगा कि समस्त अभियुक्तगण के उपस्थित होने पर शीघ्रातिशीघ्र विचारण आरंभ किया जाए।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o Jh pn'k[kj] U;k;efrx.k

मुकेश पासवान

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 771 of 2012. Decided on 9th May, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 389(1)—दंडादेश का निलंबन–हत्या करने के लिए आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया गया–मृतक की हत्या कारित करने में अपीलार्थी की भूमिका का विवरण दिया गया है–अपीलार्थी फिरौती के लिए अवयस्क बालक का अपहरण और हत्या करने का सामान्य आशय अभियुक्त के साथ शेयर कर रहा था–अपराध की गंभीरता और दंड की मात्रा की दृष्टि में न्यायालय दंडादेश निलंबित करने का इच्छुक नहीं है–प्रार्थना अस्वीकृत। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Tewari, For the Appellant; Mr. Amresh Kumar, For the Respondent.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–यह अपील दिनांक 20 मार्च, 2013 के आदेश के तहत ग्रहण की जाती है। दंडादेश के निलंबन के लिए तर्कों का अधिमूल्यन करने के लिए विचारण न्यायालय से सत्र विचारण सं॰ 349 वर्ष 2005 का अभिलेख और कार्यवाही मंगाया गया है।

2. इस न्यायालय ने सत्र विचारण सं॰ 349 वर्ष 2005 के अभिलेख और कार्यवाही को प्राप्त किया है और हमने इसका परिशीलन किया है।

3. हमने दोनों पक्षों के अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि सिवाए इकबालिया बयान के इस अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध अभिलेख पर साक्ष्य नहीं है।

5. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य को देखते हुए इस अपीलार्थी-अभियुक्त, जो सत्र विचारण सं॰ 349 वर्ष 2005 में मूल अभियुक्त सं॰ 2 है, के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है। चूँकि दांडिक अपील लंबित है, हम अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य का अधिक विश्लेषण नहीं कर रहे हैं किंतु अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्यों को देखते हुए इतना कहना पर्याप्त है कि पीड़ित बालक अर्थात् भवेश कुमार मिश्रा का अपहरण किया गया था। पाँच लाख रुपयों की फिरौती मांगी गयी थी और बाद में उसकी हत्या कर दी गयी थी। अपराध दिनांक 16 सितंबर, 2004 को प्रकट

हुआ था। अन्वेषण पर, आरंभ में, दो अभियुक्तों अर्थात् कमलेश कुमार चौबे उर्फ चिटपुट और गौतम गिरि को गिरफ्तार किया गया था। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य को देखते हुए इन दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया था, किंतु वर्तमान अपीलार्थी जो मुकेश पासवान है के विरुद्ध साक्ष्य था। चूँकि उसका पता नहीं चल पाया था अथवा वह अन्वेषण अधिकारी को उपलब्ध नहीं था, प्रथम आरोप-पत्र में दर्ज किया गया है कि उसे अभी भी गिरफ्तार किया जाना शेष है और दं॰ प्र॰ सं॰ के प्रावधानों को देखते हुए अनुबंधित समय के भीतर कमलेश कुमार चौबे उर्फ चिटपुट और गौतम गिरि के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से आगे यह प्रतीत होता है कि गौतम गिरि किशोर था और किशोर न्याय अधिनियम के अधीन पृथक रूप से उसका विचारण किया गया था जबकि कमलेश कुमार चौबे उर्फ चिटपुट को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 सह-पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए मृतक की हत्या कारित करने के लिए आजीवन कारावास का दंड दिया गया है। यह अपीलार्थी अर्थात् मुकेश पासवान को बाद में गिरफ्तार किया गया था और, इसलिए, उसके विरुद्ध द्वितीय आरोप-पत्र दाखिल किया गया था जो पूरक आरोप-पत्र के रूप में ज्ञात है। अभिलेख पर आगे साक्ष्य को देखते हुए अभियोजन गवाह सं॰ 1 से 14 से यह प्रतीत होता है कि जब मृतक अर्थात् भवेश कुमार मिश्रा ट्यूशन से लौट रहा था, उसका अपहरण किया गया था और अंततः उसकी हत्या कर दी गयी थी। अपराध में फँसाने वाली अनेक वस्तुओं अर्थात् मृतक की साइकिल, मृतक का स्कूल बैग, मृतक का कंप्यूटर बैग, मृतक की अभ्यास पुस्तिका, मृतक के वस्त्र और मृतक की हत्या कारित करने में प्रयुक्त-हथियार भी बरामद किए गए थे। अभियुक्त का इकबालिया बयान भी दर्ज किया गया था। इकबालिया बयान मृत शरीर सहित अनेक बरामदगियों की ओर ले गया था। अभियुक्त अर्थात् गौतम गिरि के घर में मृतक के वस्त्रों को पाया गया था। अन्य सह-अभियुक्त के घर से वस्त्र तथा अन्य वस्तुओं को बरामद किया गया था। सह-अभियुक्त जिसने भी अपना इकबालिया बयान दिया है के घर से हथियार भी पाया गया था। अतः इकबालिया बयान का पठन साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के साथ करना होगा। मृतक की हत्या कारित करने में इस अपीलार्थी अर्थात् मुकेश पासवान की भूमिका का भी विस्तारपूर्वक विवरण दिया गया है। अभिलेख पर मौजूद इन साक्ष्यों की दृष्टि में और अभियुक्त के इकबालिया बयान के कारण स्कूल बैग, साइकिल, स्टेशनरी और मृत शरीर की बरामदगी को देखते हुए और कमलेश कुमार चौबे उर्फ चिटपुट के इसी इकबालिया बयान में इस अपीलार्थी की भूमिका का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त, कमलेश कुमार चौबे उर्फ चिटपुट जो सत्र विचारण सं॰ 349 वर्ष 2005 में मूल अभियुक्त सं॰ 1 है, ने पृथक दांडिक अपील सं॰ 773 वर्ष 2012 दाखिल किया है। इस अपील को ग्रहण किया गया है किंतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन कमलेश कुमार चौबे उर्फ चिटपुट की दंडादेश के निलंबन की प्रार्थना को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 20 फरवरी, 2013 के आदेश के तहत अस्वीकार कर दिया गया है। उक्त आदेश के पैराग्राफ सं॰ 5 और 6 का पठन निम्नलिखित है:-

> *"5. geu jkT; d fo}ku vfèkoDrk dk luk g] ftudh lgk;rk lpd d vfèkoDrk Jh fouhr pnk }kjk dh x;h g] ftUgku tkjnkj fuonu fd;k g fd oreku ekeyk vigj.k vkj gR;k dk ekeyk gA l= fopkj.k e bl vihykFkh tk ey vfHk;Dr l0 1g d fo#) yxk, x, vkjki Hkkjrh; nM lfgrk dh èkkjkvk 364A, 302 vkj 201 lgifBr èkkjk 34 d vèkhu g vkj erd Hko'k dekj feJk tk Ldy tku okyk cPpk g dh gR;k d vijkèk d fy, vihykFkh dk vkthou dkjkokl l nfMr fd;k x;k gA mldk vkjHk e vigj.k fd;k x;k Fkk vkj ckn e mldh gR;k dh x;h FkhA*

*6. jkT; d vfèkoDrk dk luu ij] ftudh lgk;rk lpd d vfèkoDrk }kjk dh x;h g vkj vfHky[k ij ektn lk{; dk n[kr g, bl vihykFkh d fo#) çFke n"V;k ekeyk gA pfd nkfMd vihy yfcr g] ge vfHky[k ij ektn lk{; dk vfèkd fo'y"k.k ugh dj jg g fdr bruk dguk i;kIr g fd vud xokg g ftUgku bl vihykFkh dk vfre ckj erd d lkFk n[kk gA bld vfrfjDr] og v0 lkO 3 gA bld vfrfjDr] v0 lkO 4 vkj v0 lkO 5 }kjk Hkh fn;k x;k lk{; g ftUgku fo}ku fopkj.k U;k;ky; d le{k Li"Vr% dFku fd;k g fd bl vihykFkh d crk, tku ij erd dk er 'kjhj cjken fd;k x;k FkkA blh çdkj l] bl vihykFkh d crk, tku ij erd dh gR;k dju d fy, ç;Dr gfFk;kj Hkh cjken fd;k x;k FkkA vijkèk dju d fy, ç;Dr lkbfdy Hkh blh vihykFkh d crk, tku ij cjken dh x;h Fkh vkj bl vihykFkh d crk, tku ij jDr&jftr oL= Hkh cjken fd, x, FkA vfHk;ktu xokgk tk v0 lkO 1, v0 lkO 2, v0 lkO 3, v0 lkO 4, v0 lkO 5 vkj v0 lkO 9, g] d vfHklk{; dk n[kr g, bl vihykFkh d fo#) çFke n"V;k ekeyk curk gA bu xokgk }kjk fn;k x;k vfHklk{; vU; vfHk;ktu xokgk] tk v0 lkO 7, vUo"k.k vfèkdkjh g] d vfHklk{; l i;kIr lif"V ik jgk gA bu lk{;k dk n[kr g, bl vihykFkh d fo#) çFke n"V;k ekeyk curk g vkj vijkèk dh xHkhjrk] nM dh ek=k vkj rjhdk ftle vihykFkh vijkèk e vrxLr g tlk vfHk;ktu }kjk vfHkdfFkr fd;k x;k g] dk n[kr g, ge l= fopkj.k lO 349 o"k 2005 e vij l= U;k;kèkh'k v,gtkjhckx }kjk mldk vfèkfu.khr nMkn'k dk fuyfcr dju d bPNd ugh gA vr%] nMkn'k d fuycu dh çkFkuk ,rn}kjk vLohdkj dh tkrh gA***

6. भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 सहपठित धारा 34 के अधीन इस अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास का दंड दिया गया है। इस अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 364A सहपठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी आजीवन कारावास का दंड दिया गया है। अभियोजन गवाहों के साक्ष्यों और अभिलेख पर मौजूद अन्य साक्ष्य को देखते हुए यह अपीलार्थी प्रथम दृष्टया फिरौती के लिए अवयस्क का अपहरण करने में सत्र विचारण सं॰ 349 वर्ष 2005 के अभियुक्त सं॰ 1 के साथ सामान्य आशय शेयर कर रहा था और प्रथम दृष्टया मृतक बालक की हत्या कारित करने के लिए सत्र विचारण सं॰ 349 वर्ष 2005 के मूल अभियुक्त सं॰ 1 के साथ सामान्य आशय शेयर कर रहा था।

7. अभिलेख पर मौजूद इन साक्ष्यों, अपराध की गंभीरता, दंड की मात्रा और तरीका जिसमें यह अपीलार्थी अपराध में अंतर्ग्रस्त है, जैसा अभियोजन द्वारा अभिकथित किया गया है, की दृष्टि में हम इस अपीलार्थी अर्थात् मुकेश पासवान को सत्र विचारण सं॰ 349 वर्ष 2005 में अपर सत्र न्यायाधीश V हजारीबाग द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश को निलंबित करने के इच्छुक नहीं है।

8. इस अपीलार्थी के दंडादेश के निलंबन की प्रार्थना में सार नहीं है, अत:, इसे एतद् द्वारा अस्वीकार किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

संजय कुमार रुंगटा उर्फ संजय रुंगटा एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 742 of 2010. Decided on 17th April, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 467, 468, 471, 420, 109 एवं 201—भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 13 (1) (d) एवं 13 (2)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल, कूटरचना एवं षडयंत्र–दुष्प्रेरण–संज्ञान–जब याचीगण ने उन व्यक्तियों जिनके नामों में जमाबंदी सृजित की गयी थी से भूमि खरीदा था और तब अपने नामों को खरीदी गयी भूमि के विरुद्ध अपने नामों को नामांतरित करवाया था, उन्हें न्यास के दांडिक भंग का अपराध करने के लिए सरकारी सेवक को दुष्प्रेरित करता हुआ नहीं कहा जा सकता है–इसी प्रकार से, जब संपत्ति यद्यपि यह उसकी संपत्ति नहीं है का दावा करते हुए व्यक्ति द्वारा दस्तावेज निष्पादित किया जाता है, किंतु जब वह यह दावा नहीं कर रहा है कि उसे किसी अन्य द्वारा प्राधिकृत किया गया है अथवा वह कोई और है, ऐसे दस्तावेज के निष्पादन को झूठा दस्तावेज नहीं कहा जा सकता है–याचीगण को धारा 13 (1) (d) के अधीन अपराध दुष्प्रेरित करता हुआ नहीं कहा जा सकता है–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 14 से 21)

निर्णयज विधि.–(2009) 8 SCC 751—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s. Chittaranjan Sinha, Pandey Neeraj Rai, R.R. Sinha, For the Petitioners; Mr. Nilesh Kumar, For the Vigilance.

आदेश

याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह आवेदन विशेष केस सं॰ 17 वर्ष 2000 में पारित दिनांक 18.11.2009 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467/468/469/471/477A/409/120B/109/423/424/201 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 13 (1) (d) सह-पठित धारा 13(2) के अधीन भी दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया है।

3. तथ्यों जिन्होंने इस आवेदन को उद्भूत किया है ये हैं कि मौजा माहीलाँग, अंचल नामकुम, जिला राँची अवस्थित खाता सं॰ 263 से संबंधित 19.61 एकड़ क्षेत्रफल वाली भूखंड सं॰ 1661 वाला भूमि का टुकड़ा, जिसकी प्रकृति परती पत्थर गैर मजरुआ मालिक के रूप में दर्ज की गयी थी, वर्ष 1959 में बिहार राज्य द्वारा किसी स्व॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म के नाम में बंदोबस्त की गयी थी।

4. पुनः वर्ष 1960-61 में उसी खाता का 4.75 एकड़ क्षेत्रफल माप वाली भूखंड सं॰ 1656 वाला भूमि का टुकड़ा तत्कालीन राजस्व अधिकारी द्वारा उक्त स्व॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म के नाम में बंदोबस्त किया गया था। भूमि की प्रकृति परती कादिम गैरमजरुआ मालिक के रूप में दर्ज की गयी थी जहाँ खतियान में भूस्वामी का नाम परिषद् में भारत संपदा सचिव के रूप में उल्लिखित किया गया था।

5. उक्त सचिन्द्र चंद्र होल्म की मृत्यु के बाद स्व॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म के पुत्र के नाम में वर्षों 1979-80 में उन भूमि को नामांतरित किया गया था जिसने बाद में भूखंड सं॰ 1661 की सात एकड़ मापवाली भूमि को डॉ॰ एस॰ सी॰ बागची को अंतरित कर दिया था जिन्होंने आगे उक्त भूमि को श्रीमती शिव कुमारी गुप्ता एवं अन्य को अंतरित कर दिया था।

6. बाद में दिनांक 10.7.1981 को भूखंड सं॰ 1661 और भूखंड सं॰ 1656 की भूमि के शेष 17.36 एकड़ को स्व॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म के पुत्र द्वारा सुभाषचंद्र शर्मा, सुशील कुमार सेसरिया, श्रीमती

प्रवीन राम सेसरिया और श्रीमती शोभा देवी सेसरिया को बेच दिया गया था जिन्होंने अपने द्वारा खरीदी गयी भूमि पर अपने नामों का नामांतरित करवाया और उनके नामों में जमाबंदी खोली गयी थी। उन्होंने वर्ष 1985 में 4.40 एकड़ भूमि को इन याचीगण में से प्रत्येक को बेच दिया।

7. भूमि खरीदने के बाद, याचीगण ने प्रश्नगत भूमि के विरुद्ध अपने नामों को नामांतरित करवाया और तब अपने नामों में जमाबन्दी सृजित करवाया। किंतु, दिनांक 14.6.1995 को जमाबंदी जिसे याचीगण के नाम में सृजित किया गया था रद्द कर दिया गया था। रद्दकरण के उस आदेश को आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर, राँची के समक्ष चुनौती दी गयी थी जिन्होंने दिनांक 4.1.1999 के आदेश के तहत जमाबंदी रद्द करने वाले आदेश को अपास्त कर दिया था।

8. वह आदेश डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1108 वर्ष 2003 में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन है।

9. इस बीच, राँची निगरानी ने वर्ष 2000 में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467/468/469/471/477A/409/120B/109/423/424/201 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13 (1)(d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन भी राँची निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 30 वर्ष 2000 (विशेष केस सं॰ 17 वर्ष 2000) इस अभिकथन पर दर्ज किया कि दोनों भूखंड अर्थात् भूखंड सं॰ 1661 और 1651 को खतियान में गैर मजरुआ मालिक के रूप में दर्ज किया गया था और परिषद् में भारत संपदा सचिव के रूप में भूस्वामी का नाम दर्ज किया गया था जिसमें से भूखंड सं॰ 1661 की 19.61 एकड़ भूमि वर्ष 1959 में राज्य सरकार की अनुमति से डॉ॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म को व्यवस्थापित की गयी थी किंतु भूखंड सं॰ 1656 की 4.75 एकड़ मापवाली भूमि को राज्य सरकार की अनुमति से उक्त सचिन्द्र चंद्र होल्म को व्यवस्थापित कभी नहीं किया गया था और तद्द्वारा सचिन्द्र चंद्र होल्म को किया गया कोई व्यवस्थापन और जमाबंदी का सृजन बिल्कुल अवैध था और, इसलिए, व्यक्तियों, जिन्होंने उसके नाम में अथवा उसके पुत्र के नाम में अथवा पश्चातवर्ती अंतरितियों के नाम में जमाबंदी सृजित किया, ने न केवल अवैधता किया था बल्कि अपराध भी किया है जैसा प्राथमिकी में अभिकथित किया गया है और साथ ही वे सब व्यक्ति, जिन्होंने राजस्व अधिकारी/कर्मचारी के साथ षडयंत्र कर प्रश्नगत भूमि के विरुद्ध अपने नामों को नामांतरित करवाने के बाद जमाबंदी सृजित करवाया वे भी समान रूप से अभियोजित किए जाने के दायी हैं।

10. आरोप-पत्र दाखिल होने पर याचीगण के विरुद्ध अभिकथित अपराधों का संज्ञान लिया गया है जो चुनौती के अधीन है।

11. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री चित्तरंजन सिन्हा निवेदन करते हैं कि स्वयं अभियोजन का यह मामला है कि सरकार की अनुमति से भूखंडों में से एक के संबंध में भूमि डॉ॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म को बंदोबस्त की गयी थी। किंतु भूखंड सं॰ 1651 की 4.75 एकड़ माप वाली भूमि को सरकार की अनुमति से बंदोबस्त कभी नहीं किया गया बताया जाता है, किंतु तथ्य यह है कि भूमि डॉ॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म को बंदोबस्त की गयी थी और उनकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र ने अपने नाम में भूमि नामांतरित करवाने के बाद अपने नाम में जमाबंदी सृजित करवाया। उसने बाद में भूखंड सं॰ 1661 की 7 एकड़ माप वाली भूमि को डॉ॰ एस॰ सी॰ बागची को अंतरित किया और डॉ॰ एस॰ सी॰ बागची ने चार व्यक्तियों को उक्त भूमि अंतरित किया। जहाँ तक भूखंड सं॰ 1661 और 1656 की 17.36 एकड़ मापवाली शेष भूमि का संबंध है, डॉ॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म के पुत्र ने इसे सुभाष चंद्र शर्मा, सुशील कुमार सेसरिया, श्रीमती प्रवीन राम सेसरिया और श्रीमती शोभा देवी सेसरिया को अंतरित किया जिनसे याचीगण में से प्रत्येक ने 4.4 एकड़ भूमि खरीदा और तब खरीदी गयी उक्त भूमि के विरुद्ध अपने नामों को नामांतरित करवाया और इस स्थिति

के अधीन किस प्रकार याचीगण को कूटरचना अथवा छल का अपराध करता हुआ कहा जा सकता है जब उन्होंने भूमि को उन व्यक्तियों से खरीदा था जिनके नामों में जमाबंदी सृजित की गयी थी और भले ही यह उपधारित किया जाता है कि भूमि को गलत रूप से वर्ष 1960-61 में डॉ॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म के नाम में बंदोबस्त किया गया था, किस प्रकार याचीगण जिन्होंने वर्ष 1985 में भूमि खरीदा था को कूटरचना अथवा छल का अपराध करता हुआ कहा जा सकता है।

12. साथ ही, भारतीय दंड संहिता की धारा 423 अथवा 424 के अधीन अपराध की कारिता का कोई भी अभिकथन नहीं है। पुन: याचीगण को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध करता हुआ नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि याचीगण को दांडिक अवचार का अपराध करने के लिए लोक अधिकारियों को दुष्प्रेरित करता हुआ अभिकथित कभी नहीं किया गया है और इस प्रकार भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (d) के अधीन अपराध कभी नहीं आकृष्ट होता है और तद्द्वारा दिनांक 18.11.2009 का संज्ञान लेने वाला आदेश सहित विशेष केस सं॰ 17 वर्ष 2000 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित किए जाने योग्य है।

13. इसके विरुद्ध, निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री निलेश कुमार निवेदन करते हैं कि दोनों भूखंडों अर्थात् भूखंड सं॰ 1661 और 1656 को राजस्व अभिलेख में गैर मजरुआ मालिक के रूप में दर्ज किया गया था। फिर भी, भूखंडों में से एक अर्थात् भूखंड सं॰ 1656 को सरकार की अनुमति के बिना डॉ॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म को बंदोबस्त किया गया था और तब अधिकारियों द्वारा सचिन्द्र चंद्र होल्म के नाम में जमाबंदी सृजित की गयी थी जो बिल्कुल अवैध था और वह अवैधता स्थायी बन गयी जब डॉ॰ सचिन्द्र चंद्र होल्म के पुत्र के नाम में और तब पश्चातवर्ती अंतरितियों के नाम में जमाबन्दी सृजित की गयी थी और तद्द्वारा समस्त अंतरितियों को सरकारी अधिकारियों के साथ षडयंत्र में कूटरचना एवं छल का अपराध करता हुआ निश्चय ही कहा जा सकता है और कि ये याचीगण, जिन्होंने षडयंत्र के अधीन दांडिक अवचार का कृत्य करने के लिए सरकारी अधिकारी को दुष्प्रेरित किया, समान रूप से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों की कारिता के लिए जिम्मेदार हैं और तद्द्वारा अवर न्यायालय ने सही प्रकार से अभिकथित अपराधों का संज्ञान लिया है।

14. पक्षों के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर उस तरीके को विस्तार में दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है जिसमें संपत्ति को इन याचीगण को अंतरित किया गया था सिवाए इस तथ्य के कि याचीगण अंतरितियों के अनुक्रम में चौथे होंगे जिनके नाम में जमाबंदी सृजित की गयी थी यद्यपि इसे रद्द कर दिया गया था किंतु रद्दकरण के उस आदेश को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपास्त कर दिया गया है। इन परिस्थितियों के अधीन जब याचीगण ने उस व्यक्ति, जिसके नाम में जमाबंदी पहले ही सृजित की गयी थी, से भूमि खरीदा था और अपने नामों को नामांतरित करवाया था और तद्द्वारा किस प्रकार उनको छल का अपराध करता हुआ कहा जा सकता है। इस संबंध में मैं **मोहम्मद इब्राहिम एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, (2009)8 SCC 751** = 2009 (4) JLJR (SC) 75, मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने कूट रचना से संबंधित भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 476 में अंतर्विष्ट प्रावधान और अन्य प्रावधान को ध्यान में लेने के बाद निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:–

> *^^èkkjk vk 467 vkj 471 d vèkhu vijkèk dh ijkHkk0; 'kr dVjpuk gA dVjpuk d fy, ijkHkk0; 'kr >Bk nLrkot (vFkok >Bk byDVkfud vfHky[k vFkok mldk Hkkx) cukuk gA ;g ekeyk fdlh >B byDVkfud vfHky[k l lcfèkr ugh gA vr%] ç'u ;g g fd D;k çFke vfHk;Dr dk vU; vfHk;Drx.k d lkFk njfHklfèk e lifÙk (Hky gh ;g mièkkfjr fd;k tkrk g fd ;g mldh ugh Fkh) dk*

cpu dk rkRi; j[kr g, nk foØ; foy[kk dk jftLVM dju vkj fu"ikfnr dju e >Bk nLrkot cukrk gvk vkj fu"iknu djrk gvk dgk tk ldrk gA**

15. न्यायालय ने आगे संप्रेक्षित किया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 464 का विश्लेषण दर्शाता है कि यह झूठे दस्तावेज को तीन कोटियों में विभक्त करती है जो निम्नलिखित है:–

^^igyh dkfV og g tgk 0;fDr ;g fo'okl dkfjr fd, tku d vk'k; d lkFk fd , lk nLrkot fdlh vU; 0;fDr }kjk vFkok fdlh vU; 0;fDr d çkfèkdkj }kjk ftld }kjk vFkok ftld çkfèkdkj }kjk og tkurk g fd bl cuk;k vFkok fu"ikfnr ugh fd;k x;k Fkk] xj bekunkj :i l vFkok diViod nLrkot curk ;k fu"ikfnr djrk gA

nljh dkfV og g tgk 0;fDr xjbekunkj :i l vFkok diViod fofèki.k çkfèkdkj d fcuk jfdj.k }kjk vFkok vU;Fkk }kjk nLrkot d fdlh rkfRod Hkkx e Lo; }kjk vFkok fdlh vU; 0;fDr }kjk cuk, tku vFkok fu"ikfnr fd, tku d ckn ifjofrr djrk gA

rhljh dkfV og g tgk 0;fDr ;g tkur g, fd , lk 0;fDr (a) food dh vfLFkjrk% (b) u'kk] vFkok (c) ml ij dh x;h çopuk d dkj.k nLrkot dh fo"k;oLr vFkok ifjoru dh çÑfr dk ugh tku ldrk Fkk] xj bekunkj :i l vFkok diViod fdlh 0;fDr dk nLrkot ij gLrk{kj dju] fu"ikfnr dju vFkok ifjofrr dju d fy, etcj djrk gA

l{ki e] 0;fDr dk ^>Bk c;ku* nu okyk dgk tkrk g ;fn (i) mlu dkb vkj gku vFkok fdlh vU; }kjk çkfèkÑr fd, tku dk nkok djr g, nLrkot cuk;k vFkok fu"ikfnr fd;k gk vFkok (ii) mlu nLrkot dk ifjofrr fd;k vFkok bld lkFk NMNkM fd;k gk(vFkok (iii) mlu çopuk djd vFkok 0;fDr tk viuh bfn;k d fu;=.k e ugh g l nLrkot çkIr fd;k gkA

çFke vihykFkh }kjk fu"ikfnr foØ; foy[k Li"Vr% ^^>B c;ku** dh nljh vkj rhljh dkfV e ugh vkr gA vr% ;g n[kk tkuk 'k"k g fd D;k ifjoknh dk nkok fd çFke vfHk;Dr tk fdlh :i e Hkfe l lcfèkr ugh Fkk] }kjk foØ; foy[kk dk fu"iknu ifjoknh dh Hkfe dk dCtk yu d vk'k; d lkFk nLrkotk dh dVjpuk d rY; Fkk (vkj fd vfHk;Drx.k l0 2 l 5u [kjhnnkj] xokg] LØkbc vkj LVki foØrk d :i e mDr foØ; foy[kk d fu"iknu vkj jftLV'ku e çFke vfHk;Dr d lkFk njfHkldfèk fd;k) tk ekey dk igyh dkfV d vèkhu yk,xkA

;g nkok djr g, fd gLrkrfjr lifÙk mldh lifÙk g] foØ; foy[k fu"ikfnr dju oky 0;fDr vkj Lokeh dk çfr#i.k djd vFkok Lokeh dh vkj l foy[k fu"ikfnr dju d fy, Lokeh }kjk çkfèkÑr vFkok l'kDr fd, tku dk >Bk nkok djd foØ; foy[k fu"ikfnr dju oky 0;fDr d chp ey vrj gA tc 0;fDr bld viu gku d :i e of.kr djr g, lifÙk gLrkrfjr djr g, nLrkot fu"ifnr djrk g] nk lHkkouk, gkrh g% igyk fd og lnHkkoi.k :i l fo'okl djrk g fd lifÙk oLrr% mldh gA nljk fd og xjbekunkj :i l vFkok diViod bldk viuk gku dk nkok dj ldrk g ;fi og tkurk g fd ;g mldh lifÙk ugh gA fdr ^^>B nLrkot** dh igyh dkfV d vèkhu vku d fy, ;g i;kIr ugh g fd nLrkot xj bekunkj :i l vFkok diViod fu"ikfnr fd;k x;k gkA vkx vko';drk g fd bl ;g fo'okl dkfjr fd, tku d vk'k; d lkFk cuk;k tkuk pkfg, Fkk fd , lk nLrkot fdlh vU; 0;fDr }kjk vFkok fdlh vU; 0;fDr d çkfèkdkj }kjk ftld }kjk vFkok ftld çkfèkdkj }kjk og tkurk g fd bl cuk;k vFkok fu"ikfnr ugh fd;k x;k Fkk] cuk;k vFkok fu"ikfnr fd;k x;k gA

*tc lifÙk tk mldh ugh g dk nkok djr g, 0;fDr }kjk nLrkot fu"ikfnr fd;k tkrk g] og ;g nkok ugh dj jgk g fd og dkb vkj g vkj u gh og ;g nkok dj jgk g fd ml fdlh vU; }kjk çkfèkÑr fd;k x;k gA vr% lifÙk ftldk og Lokeh ugh g dk gLrkrfjr dju dk rkRi; j[kr g, ,l nLrkot dk fu"iknu >B nLrkot dk fu"iknu ugh g tlk lfgrk dh èkkjk 464 d vèkhu ifjHkkf"kr fd;k x;k gA ;fn tk fu"ikfnr fd;k x;k g] >Bk nLrkot ugh g] dkb dVjpuk ugh gA ;fn dVjpuk ugh g] u rk lfgrk dh èkkjk 467 vFkok u gh èkkjk 471 vkÑ"V gkrh gA***

16. इस प्रकार, यह स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया गया है कि जब संपत्ति, यद्यपि यह उसकी संपत्ति नहीं है, का दावा करते हुए व्यक्ति द्वारा दस्तावेज निष्पादित किया जाता है किंतु जब वह दावा नहीं कर रहा है कि उसे किसी अन्य द्वारा प्राधिकृत किया गया है, ऐसे दस्तावेज का निष्पादन भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 464 के निबंधनानुसार झूठा दस्तावेज नहीं कहा जा सकता है और यदि यह झूठा दस्तावेज नहीं है, तब भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 467 और 468 एवं 471 के अधीन अपराध करने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है।

17. पूर्वोक्त मामलों में अधिकथित निर्णयाधार समान रूप से इस मामले पर लागू होता है क्योंकि अंतरिति, जो संपत्ति के स्वयं का होने का दावा कर रहे हैं, को इन याचीगण को विक्रय विलेख के माध्यम से भूमि अंतरित करके कूटरचना का अपराध करता हुआ कभी नहीं कहा जा सकता है और तद्द्वारा इन याचीगण द्वारा कूटरचना का अपराध करने का प्रश्न कभी नहीं है।

18. मामले में आगे जाते हुए, शायद ही कोई कल्पना कर सकता है कि किस प्रकार भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 423 और 424 के अधीन अपराध बनता है जब प्रतिफल के झूठे विवरण अंतर्विष्ट करने वाले अंतरण विलेख के गैर ईमानदार अथवा कपटपूर्ण निष्पादन का मामला नहीं है और न ही यह संपत्ति को गैरईमानदार अथवा कपटपूर्ण रूप से हटाने अथवा छुपाने का मामला है।

19. इसी प्रकार से, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जब याचीगण ने उन व्यक्तियों, जिनके नामों में जमाबंदी सृजित की गयी थी; से भूमि खरीदा और खरीदी गयी भूमि के विरुद्ध अपने नामों को नामांतरित करवाया, उन्हें न्यास के दांडिक भंग का अपराध करने के लिए सरकारी सेवक को दुष्प्रेरित करता हुआ कभी नहीं कहा जा सकता है। अत: भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन अपराध कभी नहीं आकृष्ट होता है।

20. आगे, इन तथ्यों और परिस्थितियों में, जैसा ऊपर गौर किया गया है, याचीगण को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (d) के अधीन अपराध दुष्प्रेरित करता हुआ नहीं कहा जा सकता है।

21. इन परिस्थितियों के अधीन, जहाँ तक याचीगण का संबंध है, दिनांक 18.11.2009 के संज्ञान लेने वाले आदेश सहित विशेष केस सं॰ 17 वर्ष 2000 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

22. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

नित्यानन्द झा

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड) एवं अन्य

C.W.J.C. No. 2479 of 1995 (R). Decided on 31st January, 2013.

बिहार सार्वजनिक भूमि अधिक्रमण अधिनियम, 1956—धारा 3—अधिक्रमण का हटाया जाना—दो मंजिले घर का भंजन—याची यह दर्शाने में विफल रहा कि प्रश्नगत भूमि याची की निजी भूमि थी जिसके संबंध में सार्वजनिक अधिक्रमण हटाए जाने के लिए कार्यवाही जारी नहीं की जा सकती थी—वर्तमान रिट कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है—रिट याचिका खारिज। (पैराएँ 7 से 12)

अधिवक्तागण.—Mr. A.K. Sahni, For the Petitioner; Mr. J.C. to G.P. III, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची विक्रेता अर्थात् बागल चंद्र आचार्या से दिनांक 25.1.1978 के दो रजिस्टर्ड विक्रय विलेखों के माध्यम से उसके द्वारा खरीदी बतायी गयी गाँव चास के खाता सं॰ 444 के अधीन भूखंड सं॰ 7378 के भाग पर कुल 5 डिसमिल माप वाले भूमि के टुकड़े पर निर्मित अपने दो मंजिले मकान का भंजन करने की प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई से व्यथित है। याची परिशिष्ट-1 के रूप में संलग्न किराया रसीद पर विश्वास करता है और निवेदन करता है कि भूमि उसके पक्ष में नामांतरित की गयी थी। उसने योजना की मंजूरी और अनेक संस्थानों से कर्ज लेने के बाद काफी धन खर्च करने के बाद दो मंजिला मकान निर्मित किया। याची व्यथित है क्योंकि प्रश्नगत भूमि को अर्जित किया गया कभी नहीं बताया गया है जिसके संबंध में अधिक्रमण केस सं॰ 24 (iii) 85-86, 19/85-86, आदि के तहत अंचलाधिकारी, चास द्वारा बिहार सार्वजनिक भूमि अधिक्रमण अधिनियम, 1956 के अधीन कार्यवाही आरंभ की गयी थी।

3. याची बी॰ पी॰ एल॰ ई॰ अधिनियम के अधीन कार्यवाही आरंभ किए जाने के विरुद्ध सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 866 वर्ष 1995 (R) में पटना उच्च न्यायालय के पास गया था जिसके बाद दिनांक 17.7.1989 के निर्णय के तहत प्रत्यर्थीगण को याची को अवसर देने के बाद आरंभिक विवाद्यक के रूप में विवाद्यक विनिश्चित करने का निर्देश दिया गया था। तत्पश्चात, याची के अनुसार, उक्त रिट याचिका में पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में प्रश्नगत भूमि पर उक्त कॉलोनी में निवास कर रहे याची सहित व्यक्तियों के संबंध में निर्माण के भंजन अथवा इसे हटाने के लिए कहते हुए नोटिस जारी किया गया था।

4. यह कथन किया गया है कि याची ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपना कारण बताओ दाखिल किया यद्यपि बी॰ पी॰ एल॰ ई॰ अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के मुताबिक अनुबंधित आज्ञापक समय प्रदान नहीं किया गया था। किंतु, दिनांक 13.7.1994 के आदेश के तहत अभिकथित अधिक्रमण हटाने के लिए अंचलाधिकारी, चास को निर्देश दिया गया था। याची ने मूल आदेश के विरुद्ध उपायुक्त, बोकारो के समक्ष अपील दाखिल किया किंतु अपील जल्दबाजी में खारिज कर दी गयी थी और याची के समस्त प्रतिवादों को अस्वीकार कर दिया गया था यद्यपि याची ने रजिस्टर्ड विक्रय विलेखों, किराया रसीद और नामांतरण आदेश, आदि जैसे दस्तावेजों को दाखिल किया था। अपीलीय आदेश शनिवार को अर्थात् दिनांक 5.8.1995 को पारित किया गया था जो परिशिष्ट 8 है। तत्पश्चात, प्रत्यर्थीगण ने उच्चतर फोरम की अधिकारिता का अवलंब लेने का कोई अवसर उसको दिए बिना घर भंजित करना शुरू किया और इसलिए, वह प्रत्यर्थीगण के मनमाने और अवैध कृत्यों के विरुद्ध इस न्यायालय के पास आया है।

5. किंतु, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि बी॰ पी॰ एल॰ ई॰ अधिनियम, 1956 के अधीन कार्यवाही संक्षिप्त कार्यवाही की प्रकृति की है और चूँकि प्रश्नगत भूमि के ऊपर याची के अधिकार, हित, हक से संबंधित प्रश्न अंतर्ग्रस्त है, उसे अपने दावे के न्यायनिर्णयन के लिए सिविल अधिकारिता वाले सक्षम न्यायालय के पास जाने की अनुमति दी जा सकती है यदि यह विधि में अनुज्ञेय है।

6. प्रत्यर्थी राज्य उपस्थित हुआ है और अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया है। उनका दृष्टिकोण है कि कमोवेश 15 एकड़ से गठित भूखंड सं॰ 7378 की भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के अधीन बिहार सरकार द्वारा जारी दिनांक 29.2.1956 की अधिसूचना सं॰ B/L-1-1591/55-1145 के तहत अर्जित की गयी थी जो पूरक प्रतिशपथ पत्र का परिशिष्ट A है। प्रत्यर्थीगण निवेदन करते हैं कि पहले याची सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 866 वर्ष 1985 (R) में पटना उच्च न्यायालय के पास गया था और उसके पक्ष में स्थगन प्रदान किया गया था। तत्पश्चात, दिनांक 17.7.1989 के निर्णय के तहत याची को प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष कारण बताओ दाखिल करने का निर्देश दिया गया था जिन्हें आरंभिक विवाद्यक के रूप में यह विनिश्चित करने का निर्देश दिया गया था कि क्या प्रश्नगत भूमि अर्जन अधिनियम के निबंधनानुसार सार्वजनिक भूमि थी। तत्पश्चात् याची ने एक वर्ष से अधिक समय तक कोई कदम नहीं उठाया था। तत्पश्चात, प्रत्यर्थीगण ने याची द्वारा मूल प्राधिकारी अर्थात् अंचलाधिकारी, चास के समक्ष बी॰ पी॰ एल॰ ई॰ अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अधीन याची द्वारा उपायुक्त, बोकारो के समक्ष दाखिल अपील में भी प्रस्तुत दस्तावेजों का परीक्षण किया।

7. आगे यह निवेदन किया गया है कि अर्जन के बाद उक्त भूमि लोक प्रयोजन से अर्जित की गयी थी और प्रखंड कार्यालयों एवं अन्य भवनों का निर्माण किया गया था। याची अर्जन के काफी बाद वर्ष 1977-78 में निष्पादित विक्रय विलेख के फलस्वरुप भूमि खरीदता अभिकथित किया गया है और किराया रसीदों का जारी किया जाना भी मामले में प्रासंगिक नहीं होगा जब प्रत्यर्थी राज्य के प्राधिकारियों के कब्जा का निश्चयात्मक प्रमाण दर्शाते हुए भूमि के उक्त भूखंड के ऊपर पहले ही प्रखंड कार्यालयों का निर्माण किया जा चुका है। बोकारो स्टील लिमिटेड जिसका वह कर्मचारी था के कार्यालय से प्रत्यर्थीगण द्वारा प्राप्त किए गए 'नक्शा' की मंजूरी को भी कोई अधिमान नहीं दिया जा सकता है। यह निवेदन किया गया है कि वर्ष 1994 में कार्यवाही आरंभ किए जाने के दस वर्षों बाद कार्यवाही के समापन पर अंचलाधिकारी, चास द्वारा आदेश पारित किए गए थे और याची को पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद भी वह अपने समर्थन में तर्कपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहा। याची जुलाई, 1989 में पारित पटना उच्च न्यायालय के अनेक निर्देशों पर अनेक अवसरों के बावजूद उक्त संपत्ति पर अपना दावा स्थापित करने के लिए किसी तर्कपूर्ण साक्ष्य के आधार पर अपना दावा सिद्ध करने में विफल रहा। दिनांक 29.2.1956 को प्रकाशित अधिसूचना के तहत प्रासंगिक भूखंड के अर्जन के बाद अनेक आवासीय कॉलोनियों, प्रखंड-सह-अंचल कार्यालय, नर्सरी, अस्पताल, गोदाम, आदि को पहले ही निर्मित किया जा चुका है। किंतु याची ने अर्जन के 40 वर्ष बाद शिकायत किया है जिसे अपने पक्ष में कि उक्त संपत्ति उसकी है किसी वैध प्रमाण की अनुपस्थिति में ग्रहण नहीं किया जा सकता है।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और आक्षेपित आदेशों सहित अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्री का परिशीलन किया है। अर्जन की अधिसूचना को परिशिष्ट 7 के रूप में और पूरक प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A के रूप में भी संलग्न किया गया है। यह प्रतीत होता है कि प्रश्नगत भूखंड के संबंध में अधिक्रमण हटाने के लिए अनेक व्यक्तियों के विरुद्ध अधिक्रमण कार्यवाही आरंभ की गयी थी।

9. दिनांक 5.8.1995 के अपीलीय आदेश के परिशीलन से आगे यह प्रतीत होता है कि याची के समस्त प्रतिवादों को विचार में लिया गया था और अपीलीय प्राधिकारी ने इस विवाद्यक पर भी विचार किया था कि क्या प्रश्नगत भूखंड दिनांक 29.2.1956 की अधिसूचना के फलस्वरुप भूमि अर्जन अधिनियम

के प्रावधानों के अधीन अर्जित किया गया था। अपीलीय आदेश में उक्त भूमि की चौहद्दी को भी ध्यान में लिया गया है और तत्पश्चात, याची द्वारा प्रस्तुत समस्त साक्ष्य पर भी निष्कर्ष पर आने के लिए विचार किया गया है। याची यह दर्शाने में विफल रहा है कि प्रश्नगत भूमि याची की निजी भूमि थी जिसके संबंध में लोक अधिक्रमण हटाने के लिए कार्यवाही जारी नहीं की जा सकती थी। किंतु, अपीलीय प्राधिकारी विवेक के समुचित इस्तेमाल के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि भूमि दिनांक 29.2.1956 की अधिसूचना के तहत अर्जन के अनुसरण में कब्जा में ली गयी थी जिस पर अंचल और प्रखंड भवनों का निर्माण भी किया गया था और अपीलार्थी यह सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा था कि यह लोक भूमि नहीं थी।

10. प्रासंगिक अभिलेखों के परिशीलन पर और पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद मैं आक्षेपित आदेशों और प्रत्यर्थीगण की कार्रवाइयों में दुर्बलता नहीं पाता हूँ, क्योंकि याची यह स्थापित करने में विफल रहा है कि उक्त भूमि सार्वजनिक भूमि नहीं है और, इसलिए, वर्तमान रिट कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

11. किंतु, याची अपने दावा के न्यायनिर्णयन के लिए सिविल अधिकारिता वाले सक्षम न्यायालय के पास जाने के लिए स्वतंत्र है।

12. तद्नुसार, वर्तमान रिट याचिका पूर्वोक्त स्वतंत्रता के साथ खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

झारखंड राज्य एवं अन्य

cuke

अकुल चंद्र महतो

W.P. (S) No. 6576 of 2006. Decided on 23th April, 2013.

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 33 (C) (2)—भुगतान नहीं किए गए पिछली मजदूरी का भुगतान–किसी मजदूरी अथवा वेतन के दावा के लिए आई॰ डी॰ अधिनियम की धारा 33 (C) (2) के अधीन श्रम न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेने के पहले समुचित कार्यवाही में तथ्यों के विवादित प्रश्न का विनिश्चयकरण पूर्वशर्त है–वर्तमान मामला उनमें से एक नहीं है जहाँ प्रत्यर्थी-कर्मकार का दावा व्यवस्थापन अथवा तथ्य के प्रश्न से संबंधित श्रम न्यायालय के किसी अधिनिर्णय पर आधारित था जो वर्तमान मामले में गंभीर रूप से विवादग्रस्त है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–रिट याचिका अनुज्ञात। (पैरा 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Ram Prakash Singh, For the Petitioner; Mr. Amit Kumar Verma, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. एम॰ जे॰ केस सं॰ 40 वर्ष 1995 में विद्वान पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 5.7.2005 का आदेश याची झारखंड राज्य की चुनौती के अधीन है जिसके अधीन उनको अगस्त, 1988 से जुलाई, 1995 की अवधि के लिए भुगतान नहीं किए गए पिछली मजदूरी के रूप में और आदेश की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर उस पर ब्याज के रूप में एकमात्र प्रत्यर्थी को 35,000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है जिसमें विफल रहने पर यह भुगतान किए जाने तक 8% वार्षिक दर पर ब्याज प्राप्त करेगा।

3. एकमात्र प्रत्यर्थी ने अगस्त, 1988 से जुलाई, 1995 की अवधि के लिए 500/- रुपया मासिक की दर पर मजदूरी का भुगतान और अतिरिक्त मुआवजा इप्सित करते हुए पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, जमशेदपुर के समक्ष औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33 (C) (2) के अधीन आवेदन दाखिल किया था। कर्मकार के अनुसार, प्रत्यर्थी-याचीगण ने दिनांक 30.1.1983 को कुटिंग डिपो में मुंशी के रूप में काम पर लगाया था और 350/- रुपया मासिक भुगतान किया था जिसे 500/- रुपया तक बढ़ाया गया था। वह दिनांक 30.7.1998 तक सेवा में बना रहा और तत्पश्चात भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन उसके विरुद्ध कमालपुर पुलिस थाना में प्राथमिकी, जी॰ आर॰ सं॰ 516 वर्ष 1988 के तत्सम, दर्ज की गयी थी। उक्त मामले में उसे दोषमुक्त किया गया था और, तत्पश्चात, वह यह दावा करते हुए कि उसे उस अवधि के लिए जिसके लिए उसने वेतन का दावा किया था, निलंबित अथवा सेवा से उन्मोचित नहीं किया गया है, अपने वेतन के लिए डिविजनल वन अधिकारी के पास गया। प्रत्यर्थी सं॰ 3, राज्य ट्रेडिंग डिविजन, अपने डिविजनल वन अधिकारी, डालभूम के माध्यम से नोटिस पर उपस्थित हुआ और स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया कि याची केवल दैनिक मजदूर न कि स्थायी कर्मचारी। उसे उस अवधि जिसके लिए उसने काम किया है के लिए देयों का भुगतान किया गया था और उसे जुलाई, 1988 के बाद, जब सरकारी धन का गबन करने के लिए उसके विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी थी, काम पर कभी नहीं लगाया गया था।

4. विद्वान श्रम न्यायालय ने वर्तमान आवेदक-प्रत्यर्थी की ओर से दाखिल साक्ष्य पर विचार किया है और संप्रेक्षित किया है कि आवेदक की नियुक्ति को चुनौती कभी नहीं दी गयी थी और कर्मकार द्वारा विश्वास किए गए दस्तावेज पर चर्चा की जरूरत नहीं है। किंतु, अगस्त, 1988 से जुलाई, 1995 की अवधि के लिए मजदूरी का दावा करने के लिए कर्तव्य का निर्वहन करते रहने के संबंध में कर्मकार द्वारा साक्ष्य नहीं दिया गया है। अत: विवाद्यक, आवेदक-कर्मकार के दावा के अनुसार, तथ्यों का विवादित प्रश्न था और पक्षों के बीच किसी समझौते अथवा अभिलेख पर लाए गए किसी अविवादित दस्तावेज पर आधारित नहीं था। तब भी, विद्वान श्रम न्यायालय अगस्त, 1988 से जुलाई, 1995 की अवधि के लिए कर्मकार को मजदूरी अधिनिर्णीत करने के लिए अग्रसर हुआ है और 500/- रुपया मासिक की दर पर राशि पर ब्याज के साथ कुल 35000/- रुपया अधिनिर्णीत किया है। इसने अभिनिर्धारित किया है कि पूर्व अवधि के लिए दावा समय वर्जित है किंतु औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33 (C) (2) के अधीन कार्यवाही की प्रकृति को ध्यान में लेने में विफल रहा है। किसी मजदूरी अथवा वेतन के दावा के लिए आई॰ डी॰ अधिनियम की धारा 33 (C) (2) के अधीन श्रम न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेने के पहले समुचित कार्यवाही में तथ्यों के विवादित प्रश्न का विनिश्चयकरण पूर्व शर्त है। अत:, वर्तमान मामला उनमें से नहीं है जहाँ प्रत्यर्थी-कर्मकार का दावा समझौते पर अथवा तथ्य के प्रश्न से संबंधित विद्वान श्रम के किसी अधिनिर्णय पर आधारित था जो वर्तमान मामले में गंभीर रूप से विवादग्रस्त है। मामले के उस दृष्टिकोण में, दिनांक 5.7.2005 का आक्षेपित आदेश विधि की और तथ्यों की भी गंभीर गलती से पीड़ित है और इसे अपास्त करने की आवश्यकता है। तद्नुसार, दिनांक 5.7.2007 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है और रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ ilkn] U;k;efr

चन्दन कुमार सिंह उर्फ चन्दन कुमार एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 322 of 2013. Decided on 23rd April, 2013.

विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908–धाराएँ 4/5–दंड प्रक्रिया संहिता, 1973–धारा 482—विस्फोटक पदार्थों का रखा जाना–संज्ञान–याचीगण की दुकान से अमोनियम नाइट्रेट का अभिग्रहण–अमोनियम नाइट्रेट नियमावली की अनुपस्थिति में अमोनियम नाइट्रेट रखने के कारण अमोनियम नाइट्रेट को एक विस्फोटक पदार्थ नहीं माना जा सकता–आक्षेपित आदेश, जिसके अधीन विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 4/5 सह-पठित भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120-B के अधीन संज्ञान लिया गया है, निरस्त–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 9 एवं 10)

निर्णयज विधि.–Cr. M.P. No. 1133 of 2012—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Kumar, For the Petitioners; Mrs. Nikki Sinha, For the State.

आदेश

याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. दिनांक 28.5.2012 के आदेश समेत पाकुड़ (T) पी॰ एस॰ केस संख्या 216 वर्ष 2011 (जी॰ आर॰ संख्या 567 वर्ष 2011) की समूची दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए यह आवेदन दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन, तत्कालीन मुख्य न्यायिक दांडाधिकारी, पाकुड़ ने विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 4/5 के अधीन दण्डनीय अपराध का संज्ञान लिया।

3. पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत निवेदनों को निर्दिष्ट करने के पहले, अभियोजन का मामला उल्लिखित किये जाने की आवश्यकता है।

4. अभियोजन का मामला यह है कि जब इन दोनों याचीगण तथा किसी राज कुमार मिश्रा की साझेदारी में चलायी जा रही एक दुकान में तलाशी ली गई थी, दुकान में अमोनियम नाइट्रेट की 600 थैलियाँ रखी हुई पाई गई थीं, और, अतएव, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 4/5 के अधीन एक मामला दर्ज किया गया था।

5. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार निवेदन करते हैं कि प्राथमिकी में लगाये गए समूचे अभिकथनों को सत्य स्वीकार करने पर भी विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धाराएँ 4 एवं 5 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है, इस कारण कि अमोनियम नाइट्रेट कभी भी एक विस्फोटक पदार्थ नहीं है, जो 21 जुलाई, 2011 को ''भारत के राजपत्र'' असाधारण भाग-III में प्रकाशित अधिसूचना से प्रकट होगा, जिसमें यह अधिसूचित किया गया है कि उक्त अधिनियम के अर्थ के भीतर रासायनिक सूत्र NH_4NO_3 वाले अमोनियम नाइट्रेट एवं भार के हिसाब से अमोनियम नाइट्रेट के 45% से अधिक का कोई यौगिक एक विस्फोटक माना जाएगा, परन्तु इससे संलग्न टिप्पणी साथ ही कथित करती है कि विस्फोटक नियमावली, 2008 के अधीन विस्फोटकों के तौर पर वर्गीकृत सामग्रियों या मिश्रणों को छोड़कर इस अधिसूचना के प्रारम्भिक भाग में यथा निर्दिष्ट अमोनियम नाइट्रेट या उसके किसी यौगिक पर विस्फोटक नियमावली, 2008 लागू नहीं होगी तथा विस्फोटक अधिनियम, 1884 की धाराएँ 5 एवं 7 के अधीन अमोनियम नाइट्रेट या उसके यौगिक का विनियमन करने के लिए पृथक नियम विरचित किए जाएँगे।

6. बाद में, पेट्रोलियम विस्फोटक मंत्रालय एवं सुरक्षा संगठन द्वारा 4 अगस्त, 2011 को एक स्पष्टीकरण निर्गत किया गया था, जो निम्नवत पठित है :–

*^^;g Li"VhÑr fd;k tkrk g fd bl vfèklpuk d ekè;e l vekfu;e ukbVV dk foLQkVd vfèkfu;e] 1884 d vFk d Hkhrj ,d foLQkVd ?kkf"kr fd;k x;k gA vfèklpuk dh fu;ekoyh d QVukV d vulkj] fu;ek dk ,d iFkd leg Hkh fojfpr fd;k tkuk gA vekfu;e ukbVV d fy, fu;ekoyh ,o fofu;ek dk iFkd leg Hkh fojfpr dju dk dk; ixfr e gA vekfu;e ukbVV fu;ekoyh d vfre :i l vfèklfpr fd; tkus rd] vekfu;e ukbVV foLQkVd fu;ekoyh] 2008 dh mDr fu;ekoyh d ikoèkkuk dk vkdf"kr dju ugh tk jgk gA***

vekfu;e ukbVV d fofuek.k] lEifjoru] (Steve dosing) ,o Fky e j[ku] vk;kr] fu;kr] ifjogu] foØ; ,o bLreky d fy, j[ku l lEcfUèkr fu;ekoyh ik:i vekfu;e ukbVV fu;ekoyh dh vfèklpukvk ,o turk l l>kok@vH;kifUk;k dk ikIr dju rFkk Hkkjr ljdkj d jkti= e vekfu;e ukbVV fu;ekoyh d vfre :i l idkf'kr gk tku d mijkUr gh iHkkoh gkxhA

7. इस प्रकार, उक्त अधिसूचना तथा स्पष्टीकरण को निर्दिष्ट करके, यह निवेदन किया गया था कि अमोनियम नाइट्रेट रखने के कारण विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धाराओं 3 एवं 4 के अधीन किसी का अभियोजन नहीं किया जा सकता है।

8. पूर्वोक्त प्रतिपादना **''प्रवेश कुमार उर्फ प्रवेश कुमार लखमनी बनाम झारखंड राज्य'' (दां॰वि॰या॰ सं॰ 1133 वर्ष 2012** एवं अन्य सम्बद्ध मामलों) के एक मामले में इस न्यायालय द्वारा पहले ही अधिकथित की जा चुकी है।

9. समय प्रदान किये जाने के बावजूद कोई शपथ-पत्र दाखिल नहीं किया गया था। ऐसी परिस्थिति में, राजपत्र अधिसूचना तथा बाद में निर्गत स्पष्टीकरण के संदर्भ में प्रस्तुत निवेदनों को स्वीकार किया जाना होगा कि अमोनियम नाइट्रेट नियमावली के न होने के कारण अमोनियम नाइट्रेट को एक विस्फोटक पदार्थ नहीं माना जा सकता और, तद्द्वारा, दिनांक 28.5.2012 का आक्षेपित आदेश, जिसके अधीन विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के धाराओं 4/5 सह-पठित भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120-B के अधीन संज्ञान लिया गया है, एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

10. परिणामतः, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

सोहराब अंसारी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 457 of 2011. Decided on 2nd May, 2013.

संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949—धाराएँ 27 एवं 32—पट्टा का रद्दकरण—प्रश्नगत भूमि सरकार द्वारा निजी पक्षों को वर्ष 1984 में दी गयी थी और वर्ष 1996 में पहली बार आपत्ति की गयी थी—परती भूमि और रिक्त धृति के बंदोबस्ती के विरुद्ध उपायुक्त के समक्ष आपत्ति धारा 32 के मुताबिक केवल एक वर्ष की अवधि के अंतर्गत की जा सकती थी जबकि अभ्यापति 11 वर्ष बीतने के बाद उठाई गयी थी और वह भी प्रश्नगत पट्टा को अभिलेख पर लेने के लिए केवल आदेश के विरुद्ध और पट्टा को चुनौती नहीं दी गयी है—

एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश मान्य ठहराया गया–अपील खारिज।
(पैराएँ 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Kailash Prasad Deo, For the Petitioner; M/s V. Shivnath, Arvind Chaudhary, Niraj Kishore, Vikash Kishore Prasad, Vineet Prakash, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याचीगण डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6529 वर्ष 2003 में पारित दिनांक 23 फरवरी, 2011 के आदेश के तहत अपनी रिट याचिका की खारिजी के विरुद्ध व्यथित हैं।

3. संक्षेप में तथ्यों को देना समुचित होगा। प्रत्यर्थीगण पट्टा धारण कर रहे हैं जिसे वर्ष 1984 में जारी किया गया अभिकथित किया गया है किंतु स्वीकृत रूप से उन पट्टों की प्रतियों को संबंधित प्राधिकारी के पास भेजा नहीं गया था जैसा संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 की धारा 27 के अधीन आवश्यक था और प्रधान की मृत्यु के बाद उसकी बहु जो प्रधान का पद धारण कर रही थी ने पट्टा की प्रति सब-डिविजनल अधिकारी को भेजा जिन्होंने दिनांक 4.11.1995 के अपने ऑर्डरशीट में इस तथ्य को ध्यान में लिया है। याचीगण दिनांक 4.11.1995 के आदेश के विरुद्ध व्यथित होकर पुनरीक्षण विविध अपील सं॰ 98/95-96 दाखिल करके उपायुक्त, देवघर के न्यायालय में गए। उपायुक्त ने दिनांक 21.12.1996 के आदेश के तहत अभिनिर्धारित किया कि 11 वर्षों बाद संबंधित प्राधिकारी को पट्टा की प्रति भेजा जाना न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है और, इसलिए, उन पट्टों को मान्यता नहीं दी जा सकती थी। उपायुक्त ने गाँव के रैयतों का दृष्टिकोण भी ध्यान में लिया जो चाहते थे कि भूमि को गाँव के लोगों के उपयोग के प्रयोजन से रखा जा सकता है। चाहे जो भी हो, वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 27 के अननुपालन के कारण और संबंधित प्राधिकारी को पट्टा की प्रति भेजने में विलंब के कारण भी उपायुक्त ने दिनांक 21.12.1996 के आदेश के तहत दिनांक 4.11.1995 का आदेश अपास्त कर दिया।

4. उपायुक्त के दिनांक 21.12.1996 के उक्त आदेश से व्यथित होकर आयुक्त, संथाल परगना डिविजन, दुमका के समक्ष प्रत्यर्थीगण द्वारा अपील दाखिल की गयी थी। संबंधित आयुक्त ने दिनांक 9.8.2003 के आदेश के तहत यह संप्रेक्षित करने के बाद कि गाँव में पर्याप्त गोचर भूमि उपलब्ध है और कि संबंधित प्राधिकारी को समय पर पट्टा भेजना समुचित होता और यद्यपि इसे नहीं भेजा गया है, उस आधार पर पट्टा अपास्त नहीं किया जा सकता है। याचीगण ने आयुक्त के दिनांक 9.8.2003 के आदेश से व्यथित होकर इस रिट याचिका को दाखिल किया जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 23.2.2011 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया है। अत: यह एल॰ पी॰ ए॰ दाखिल किया गया है।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री कैलाश प्रसाद देव ने जोरदार निवेदन किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश बिल्कुल गलत आधारों पर अग्रसर हुए। याचीगण ने प्रश्नगत भूमि के स्वामित्व का दावा कभी नहीं किया था और शायद उस तथ्य ने विद्वान एकल न्यायाधीश को प्रभावित किया, अत: विद्वान एकल न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया कि याचीगण प्रश्नगत भूमि के स्वामी नहीं हैं। यह निवेदन किया गया है कि गाँव की भूमि पर, किसी अधिकार का दावा करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि किसी को संपत्ति के स्वामित्व अथवा भूमि पर काबिज होने के अनन्य अधिकार का दावा करना चाहिए। यह निवेदन भी किया गया है कि तब विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह संप्रेक्षित करके गंभीर गलती की कि पट्टा वर्ष 1984 में दिया गया था जबकि आपत्ति वर्ष 1996 में की गयी थी। रिट न्यायालय के समक्ष रिट याचीगण का

प्रतिवाद यह था कि पट्टा वर्ष 1984 में जारी नहीं किया गया था बल्कि इसे वर्ष 1996 में सृजित किया गया था और भेजा गया था, अत: अभिकथित पट्टा अस्तित्व में कभी नहीं था। तब विद्वान एकल न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया कि याचीगण यह इंगित करने में अक्षम हैं कि किस प्रकार संथाल परगना अभिधृति अधिनियम की धारा 28 प्रयोज्य है जबकि यह स्वीकृत तथ्य है कि भूमि परती भूमि थी जिसके लिए प्रत्यर्थीगण को पट्टा दिया गया था।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि प्रश्नगत भूमि गाँव के उपयोग वाली भूमि है और इस मामले में वस्तुत: वर्ष 1984 में कोई पट्टा जारी नहीं किया गया था और मृतक प्रधान की बहु जो वर्ष 1996 में प्रधान थी के पास 11 वर्षों के विलंब के बाद संबंधित प्राधिकारी को पत्र अथवा पट्टा की प्रति भेजने का प्राधिकार नहीं था। यह निवेदन किया गया है कि पट्टा की प्रतियों की चार प्रतियाँ तैयार की जाएँगी और एक प्रति संबंधित रैयत को दी जाएगी, एक प्रति उपायुक्त को दी जाएगी, एक प्रति भूस्वामी को दी जाएगी और चौथी प्रति गाँव के मुखिया द्वारा अपने पास रखी जाएगी। इस मामले में, पट्टा की प्रतियों को नहीं भेजा गया था, अत:, पट्टा जारी करने की संपूर्ण प्रक्रिया दूषित हो गयी। यह निवेदन किया गया है कि पट्टा प्रदान करने के लिए सम्यक सावधानी नहीं बरती गयी थी, यदि पट्टा प्रदान किया गया था, धारा 28 का अनुसरण किया जाना चाहिए था जो परती भूमि अथवा रिक्त धृतियों का बंदोबस्त करने में अनुसरण किए जाने वाले सिद्धांतों को प्रावधानित करती है। आगे यह निवेदन किया गया है कि 1949 के अधिनियम की धारा 29 का उल्लंघन भी किया गया था जो प्रावधानित करती है कि उपायुक्त की लिखित में पूर्व मंजूरी के बिना प्रधान अथवा गाँव का मुखिया किसी परती भूमि अथवा रिक्त धृति का बंदोबस्त नहीं करेगा।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि धारा 29 के अधीन मंजूरी प्राप्त नहीं की गयी थी और, इसलिए, भूमि बंदोबस्त नहीं की जा सकती थी।

8. प्रत्यर्थीगण–आर्वंटितियों के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पट्टा जारी होने के 11 वर्षों बाद इन आपत्तिकर्त्ताओं द्वारा इन समस्त अभिवचनों को किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि 1949 अधिनियम की धारा 27 के अधीन संबंधित प्राधिकारी को पट्टा की प्रति भेजना आज्ञापक शर्त नहीं है और उसका उल्लंघन पट्टा को अवैध अथवा गैर कानूनी इस कारण से नहीं बनाएगा क्योंकि धारा 27 के अननुपालन का परिणाम प्रावधानित नहीं किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि जहाँ तक धारा 28 के अधीन याचीगण की पात्रता अथवा उपायुक्त की मंजूरी प्राप्त नहीं किए जाने का संबंध है, इन विवाद्यकों को पहली बार याचीगण द्वारा एल॰ पी॰ ए॰ अधिकारिता में इस न्यायालय के समक्ष तर्क के क्रम में उठाया गया है और वह भी दिनांक 4.11.1995 के आदेश की तिथि से 17 वर्षों से अधिक के विलंब के बाद जो एकमात्र आदेश था जो समस्त प्राधिकारियों के समक्ष चुनौती के अधीन था और वर्ष 1984 के पट्टा को चुनौती कभी नहीं दिया गया था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि वे कई दशकों से प्रश्नगत भूमि का आनन्द ले रहे हैं, अत: ऐसे विलंबित चरण पर याचीगण द्वारा की गयी आपत्ति ग्रहण नहीं की जा सकती है।

9. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया। यहाँ यह उल्लेखनीय होगा कि याचीगण ने दिनांक 4.11.1995 के आदेश को चुनौती देना चुना जिसके द्वारा उपायुक्त ने वर्ष 1984 का पट्टा अभिलेख पर लिया और कोई प्रभावकारी आदेश पारित नहीं किया है। वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 27 से स्पष्ट है कि उपायुक्त पट्टा जारी किए जाने के बाद इसको अनुमोदित करने वाला प्राधिकारी नहीं हैं और केवल वह प्राधिकारी है जिसको पट्टा भेजा जाता है जो अपने अभिलेख पर पट्टा रखेगा।

10. चाहे जो भी हो, आदेश की ऐसी प्रकृति के बावजूद कि उपायुक्त ने केवल ग्राम प्रधान द्वारा भेजे गए पट्टा को अभिलेख पर लिया, फिर भी अपीलीय न्यायालय अर्थात् उपायुक्त के न्यायालय द्वारा अपील ग्रहण की गयी थी। उपायुक्त के न्यायालय के समक्ष उठाया गया एकमात्र बिंदु यह था कि 11 वर्षों के विलंब के बाद पट्टा उपायुक्त को भेजा गया था। न तो उपायुक्त ने और न ही आयुक्त ने संप्रेक्षित किया कि वर्ष 1984 में कोई पट्टा जारी नहीं किया गया था और उन्होंने केवल एक विवाद्यक विनिश्चित किया कि क्या प्रश्नगत भूमि गोचर प्रयोजन से रखी जाए और केवल इस तथ्य को ध्यान में लेने के बाद विवाद्यक विनिश्चित किया कि 11 वर्षों के विलंब के बाद पट्टा उपायुक्त को भेजा गया था। उपायुक्त के मत में 11 वर्षों बाद पट्टा भेजे जाने का परिणाम पट्टा के गैर रजिस्ट्रेशन में होगा जबकि आयुक्त ने गोचर भूमि की अनुपलब्धता के बारे में आपत्तिकर्ताओं के प्रतिवाद पर विचार करने के बाद पाया कि पहले से ही पर्याप्त गोचर भूमि उपलब्ध है। उपायुक्त ने आपत्तिकर्ताओं के प्रतिवाद कि वे स्वयं के लिए भूमि इप्सित नहीं कर रहे हैं बल्कि वे गाँव वालों के लाभ के लिए भूमि इप्सित कर रहे हैं, से प्रभावित होकर पट्टा की वास्तविकता के संबंध में कोई जाँच किए बिना, क्योंकि आपत्तिकर्ताओं ने उस विवाद्यक को नहीं उठाया था, केवल इस आधार पर विवाद्यक विनिश्चित किया कि पट्टा 11 वर्षों के विलंब के बाद भेजा गया था। वर्ष 1984 के अभिकथित आवंटन के लिए जिसके लिए वर्ष 1995 में उपायुक्त को पट्टा भेजा गया था, हमारा सुविचारित मत है कि इस विलंबित चरण पर हम तथ्यों के विवाद्यक को उठाने की अनुमति नहीं दे सकते हैं जिसे याचीगण/अपीलार्थी पहली बार एल॰ पी॰ ए॰ अधिकारिता में तर्क में उठाना चाहते हैं कि पट्टा जारी किए जाने के पहले 1949 के अधिनियम की धारा 29 के अधीन पूर्व मंजूरी प्राप्त नहीं की गयी थी अथवा याचीगण पात्र व्यक्ति नहीं हैं। जहाँ तक उक्त निर्दिष्ट आक्षेपित आदेश में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए संप्रेक्षणों का संबंध हैं, यह तथ्य है कि याचीगण संपत्ति के स्वामी नहीं हैं और न ही वे संपत्ति का दावा कर रहे हैं और आदेश में इस तथ्य को दर्ज करने की निंदा नहीं की जा सकती है। प्रश्नगत भूमि जिसके लिए वर्ष 1984 में पट्टा जारी किया गया था, और किसी भी प्राधिकारी का निष्कर्ष नहीं है कि वर्ष 1984 में ऐसा कोई पट्टा जारी नहीं किया गया था, तब विद्वान एकल न्यायाधीश यह संप्रेक्षित करने में सही थे कि प्रश्नगत भूमि सरकार द्वारा वर्ष 1984 में निजी पक्षों को दी गयी थी और यह भी तथ्य है कि पहली बार वर्ष 1996 में आपत्ति की गयी थी। इस मोड़ पर हम यहाँ संप्रेक्षित कर सकते हैं कि अपीलीय प्राधिकारीगण यह ध्यान में नहीं ले पाए कि याचीगण ने वर्ष 1984 के पट्टा को चुनौती नहीं दिया था और उन्होंने केवल दिनांक 4.11.1995 के आदेश को चुनौती दिया है जिसके द्वारा पट्टा अभिलेख पर लिया गया था। वह ऑर्डरशीट किसी कारण से जैसे इसे वर्ष 1984 में जारी नहीं किया गया था अथवा किसी अन्य कारण से वर्ष 1984 के पट्टा को चुनौती दिए बिना कोई वाद हेतुक नहीं दिया है। आगे यह गौर करना समुचित होगा कि परती भूमि तथा रिक्त धृति की बंदोबस्ती के विरुद्ध उपायुक्त के समक्ष आपत्ति केवल 1949 के अधिनियम की धारा 32 के मुताबिक एक वर्ष के भीतर की जा सकती थी जबकि इस मामले में आपत्ति 11 वर्षों बाद की गयी है और वह भी प्रश्नगत पट्टा को अभिलेख पर लेने के आदेश के बाद और पट्टा को चुनौती नहीं दी गयी है।

11. उक्त कारणों की दृष्टि में, हमारा सुविचारित मत है कि एल॰ पी॰ ए॰ अधिकारिता में हस्तक्षेप का मामला नहीं बनता है और हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं पाते हैं। एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

पवन कुमार धूत

cuke

केंद्रीय जाँच ब्यूरो

W.P. (Cr.) No. 92 of 2013. Decided on 1st May, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 73 (1) एवं 160—गिरफ्तारी वारन्ट–विधि का शासन बनाए रखने के लिए और समाज में सामंजस्य बनाए रखने के लिए एक ओर व्यक्ति के अधिकार, स्वतंत्रता और विशेषाधिकार तथा दूसरी ओर राज्य के बीच संतुलन स्थापित करना न्यायालय का कर्तव्य है–यह अभियोजन का मामला कभी नहीं है कि याची भागा हुआ दोषसिद्ध है अथवा उद्घोषित अपराधी है और न ही यह मामला है कि याची अपनी गिरफ्तारी से बच रहा है–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैराएँ 13, 16 एवं 17)

निर्णयज विधि.–(2012) 9 SCC 791; (2004) 5 SCC 729; AIR 1997 SC 2494—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Indrajeet Sinha, K. Sarkhel, For the Petitioner; Md. Mokhtar Khan, For the CBI.

आदेश

यह आवेदन आर॰ सी॰ 2 (एस॰) वर्ष 2012–ए॰ एच॰ डी॰–आर॰ में विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, राँची द्वारा पारित दिनांक 15.4.2013 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची के विरुद्ध गैर जमानती वारन्ट जारी किए जाने का आदेश दिया गया है।

2. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि जब राज्य सभा के लिए 2012 के चुनाव की प्रक्रिया में दाँव–पेंच के लिए कुछ व्यक्तियों को स्वयं को खरीद–फरोख्त में लिप्त करता पाया गया था, प्राथमिकी दर्ज की गयी थी किंतु याची को अभियुक्त कभी नहीं बनाया गया था। अन्वेषण के क्रम में, जब कभी सी॰ बी॰ आई॰ ने याची को परिप्रश्न के लिए बुलाया, वह सी॰ बी॰ आई॰ के समक्ष उपस्थित हुआ था। हाल में, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 160 के अधीन नोटिस जारी किया गया था, जिसके द्वारा याची को उसके परिप्रश्न के प्रयोजन से दिनांक 4.4.2013 को अन्वेषण अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाया गया था। उस आदेश को इस न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू॰ पी॰ (दां॰) सं॰ 81 वर्ष 2013 में यह अभिवचन करते हुए चुनौती दी गयी थी कि एक ओर याची को अभियुक्त के रूप में लिया जा रहा है और दूसरी ओर, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 160 के अधीन नोटिस जारी की जा रही है जो **''राज्य, पुलिस इंस्पेक्टर के प्रतिनिधित्व में एवं अन्य बनाम एन॰ एम॰ टी॰ जाँय इमैकुलेट, (2004)5 SCC 729,** में अधिकथित विधि के विरुद्ध है।

3. वह मामला दिनांक 12.4.2013 को सुना गया था जिस तिथि पर सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से बयान दिया गया था कि याची को अभियुक्त के रूप में माना नहीं जा रहा है। उस बयान को दृष्टि में रखते हुए, वह आवेदन निपटाया गया था। बाद में, सी॰ बी॰ आई॰ ने संबंधित न्यायालय के समक्ष उसमें यह कथन करते हुए तलब दाखिल किया कि अपराध में याची की अंतर्ग्रस्तता दर्शाते हुए कतिपय सामग्रियाँ उसके विरुद्ध संग्रहित की गयी है और इसलिए गिरफ्तारी वारंट जारी करने के लिए प्रार्थना की गयी थी। उस पर, न्यायालय ने यह दर्ज करने के बाद कि याची के विरुद्ध अभियुक्त के रूप में पर्याप्त सामग्री संग्रहित की गयी है, गैर जमानती गिरफ्तारी वारंट जारी करने का दिनांक 15.4.2013 का आदेश पारित किया। उस आदेश को चुनौती दी गयी है क्योंकि यह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 73 में अंतर्विष्ट प्रावधानों के अनुरुप कभी प्रतीत नहीं होता है।

4. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि यदि सी॰ बी॰ आई॰ याची से परिप्रश्न करना चाहती है, वह अपना बयान देने के लिए सी॰ बी॰ आई॰ के समक्ष उपस्थित होने के लिए तैयार है बशर्ते कि उसे गिरफ्तार नहीं किया जाए।

5. इस पर, सी॰ बी॰ आई॰ के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री खान निवेदन करते हैं कि इसपर कोई विवाद नहीं है कि सी॰ बी॰ आई॰ के पास कोई गिरफ्तारी वारंट के बिना संज्ञेय अपराध के मामले में अभियुक्त को गिरफ्तार करने की शक्ति है। इसी समय पर यदि अभियुक्त गैर-जमानती अपराध में गिरफ्तारी से बचता है, सी॰ बी॰ आई॰ अभियुक्त के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी करवा सकती है और चूँकि याची दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 160 के अधीन जारी नोटिस के अनुसरण में उपस्थित नहीं हुआ था, सी॰ बी॰ आई॰ के पास गिरफ्तारी वारंट जारी करवाने के लिए न्यायालय के पास जाने के अलावा विकल्प नहीं था और इसलिए आदेश, जिसके अधीन गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया है, को अभिखंडित करने की आवश्यकता कभी नहीं है।

6. इसी समय पर, याची की ओर से किए गए निवेदन कि याची अपने परिप्रश्न के लिए सी॰ बी॰ आई॰ के समक्ष उपस्थित होने के लिए तैयार है, के उत्तर में यह निवेदन किया गया था कि सी॰ बी॰ आई॰ अधिकारी जो न्यायालय में उपस्थित हैं से अनुदेश लेने के बाद याची परिप्रश्न के प्रयोजन से सी॰ बी॰ आई॰ के समक्ष दिनांक 6 मई, 2013 को उपस्थित होगा, उसे गिरफ्तार नहीं किया जाएगा।

7. पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों के संदर्भ में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 के प्रावधान आकृष्ट होते हैं जिनका पठन निम्नलिखित है:-

*"73. **okj.V fdlh Hkh 0;fDr dk fufn"V gk ldx-**&(1) e[; U;kf;d eftLVV ;k iFke ox eftLVV fdlh fudy Hkkx fl) nk"k] mn?kkf"kr vijkèkh ;k fdlh ,l 0;fDr dh tk fdlh vtekurh; vijkèk d fy, vfHk;Dr g vkj fxj¶rkjh l cp jgk g] fxj¶rkjh dju d fy, okj.V viuh LFkkuh; vfèkdkfjrk d vUnj d fdlh Hkh 0;fDr dk fufn"V dj ldrk gA*

(2) ,lk 0;fDr okj.V dh ikfIr dk fyf[kr :i e vfHkLohdkj djxk vkj ;fn og 0;fDr] ftldh fxj¶rkjh d fy, okj.V tkjh fd;k x;k g] mld Hkkjlèku d vèkhu fdlh Hkfe ;k vU; lifUk e g ;k io'k djrk g rk og ml okj.V dk fu"iknu djxkA

(3) tc og 0;fDr] ftld fo:) ,lk okj.V tkjh fd;k x;k g] fxj¶rkj dj fy;k tkrk g] rc og okj.V lfgr fudVre ifyl vfèkdkjh d goky dj fn;k tk,xk] tk ;fn èkkjk 71 d vèkhu ifrHkfr ugh yh xb g rk] ml ml ekey e vfèkdkfjrk j[ku oky eftLVV d le{k fHktok,xkA

8. धारा के कोरे परिशीलन से, यह स्पष्ट है कि यह व्यक्ति के तीन वर्गों अर्थात् (i) भाग निकले दोषसिद्ध (ii) उद्घोषित अपराधी और (iii) व्यक्ति जो गैर जमानती अपराध में अभियुक्त है और गिरफ्तारी से बच रहा है की गिरफ्तारी के लिए वारन्ट जारी करने की शक्ति दंडाधिकारी पर प्रदत्त करती है।

9. राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से बनाम दाऊद इब्राहिम कशकर, 1997 (2) East Cr. C. 124 (SC) : AIR 1997 SC 2494 के मामले में माननीय न्यायाधीशों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 के अधीन प्रतिष्ठापित पूर्वोक्त प्रावधान और विधि आयोग की अपनी 41वीं रिपोर्ट में अनुशंसा को विचार में लेते हुए उक्त निर्णय के पैरा 20 में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:-

^^fd èkkjk 73 okjUV tkjh dju dh nMkfèkdkjh dk 'kfDr çnku djrh g vkj fd vUo"k.k d nkjku Hkh bldk ç;kx ml }kjk fd;k tk ldrk g dk lfgrk dh èkkjk 155 d ilx e cgrj rjhd l le>k tk ldrk gA tlk igy xkj fd;k

*x;k g] bl èkkjk d vèkhu ifyl vfèkdkjh nMkfèkdkjh d vkn'k l xj lK; ekey e vUo"k.k dj ldrk g vkj vUo"k.k d lcèk e mUgh 'kfDr;k dk ç;kx dj ldrk g ftldk ç;kx og lK; ekey e dj ldrk g] flok; bld fd og okjUV d fcuk fxj¶rkjh ugh dj ldrk gA ;fn nMkfèkdkjh d vkn'k l ifyl xj&lK; vkj xj tekurh vijkèk e vUo"k.k 'k: djrh g (Hkkjrh; nM lfgrk dh èkkjk 466 vFkok 467 (Hkkx&1) dh rjg vkj ;fn vUo"k.k d nkjku vUo"k.k vfèkdkjh vijkèk d vfHk;Dr 0;fDr dk fxj¶rkjh dju dk vk'k; j[krk g] mls nMkfèkdkjh l fxj¶rkjh okjUV bfllr vkj çkIr djuk gkxkA ;fn vfHk;Dr fxj¶rkjh l cprk g] vUo"k.k vfèkdkjh d ikl èkkjk 73 d vèkhu vkj rRi'pkr viuh 'kfDr lfuf'pr dju d fy, ,dek= cpk jkLrk ddh dh mn?kk"k.kk djuk gA ,lh fLFkfr e nMkfèkdkjh oèk :i l èkkjk 73 d vèkhu viuh 'kfDr dk ç;kx dj ldrk g D;kfd fxj¶rkj fd, tku okyk 0;fDr ^^xj&tekurh vijkèk dk vfHk;Dr g vkj fxj¶rkjh l cp jgk gA***

10. परिणामस्वरुप, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संहिता की धारा 73 सामान्य उपयोजन है और कि अन्वेषण के क्रम में न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ, व्यक्ति जो गैर-जमानती अपराध का अभियुक्त है और गिरफ्तारी से बच रहा है को गिरफ्तार करने के लिए उसके अधीन शक्ति के प्रयोग में वारंट जारी कर सकता है।

11. ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए यह भी संप्रेक्षित किया गया था कि केवल अभियोजन/पुलिस अन्वेषण की सहायता और मदद करने के लिए गिरफ्तारी वारन्ट जारी नहीं किया जा सकता है।

12. इस प्रकार, प्रश्न जिस पर विचार किया जाना है यह है कि क्या याचीगण के विरुद्ध गिरफ्तारी वारन्ट जारी किया जाना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 (1) के प्रावधान के अनुकूल है?

13. विधान मंडल की ओर से इस प्रभाव का विधान बनाने का प्रयोजन प्रतीत होता है कि विधि का शासन बनाए रखने के लिए और समाज में सामंजस्य बनाए रखने के लिए एक ओर व्यक्ति के अधिकार, स्वतंत्रता और विशेषाधिकार तथा दूसरी ओर राज्य के बीच संतुलन बनाना न्यायालय के लिए आवश्यक है।

14. इस संदर्भ में, मैं **रघुवंश दीवानचंद भासिन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य, (2012)9 SCC 791,** मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ, जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

*10. ^^bl ij 'kk;n gh tkj nu dh vko';drk g fd pfd xj tekurh okjV dk fu"iknu çR;{kr% 0;fDr dh Lor=rk dk de djuk vrxLr djrk g] fxj¶rkjh okjV ;=or tkjh ugh fd;k tk ldrk g cfYd doy lrf"V nt dju d ckn fd;k tk ldrk g fd ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k e ;g vko';d gA xj tekurh okjV tkjh djr g, U;k;ky;k dk vfèkd lrd vkj lkoèkku gkuk gkxk vU;Fkk nk"ki.k fujkèk Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 21 e ifjdfYir loèkkfud vkKk l budkj dju d rY; gkxkA blh le; ij] bl l budkj ugh fd;k tk ldrk g fd 0;fDr d dY;k.k dk lekt d dY;k.k d le{k >duk gkxkA vr% fofèk dk 'kklu cuk, j[ku d fy, vkj lekt e lketL; cuk, j[ku d fy, U;k;ky;k dk ,d vkj 0;fDr d vfèkdkjk] Lor=rkvk vkj fo'k"kkfèkdkjk vkj nljh vkj jkT; d chp lryu cukuk vko';d gA oLrr%] ;g tfVy dk; gA tlk dkjnktk] U;k;efr dgr g ^^,d vkj lkekftd vko';drk g fd vijkèk dk neu fd;k tk,xkA nljh vkj lkekftd vko';drk g fd fofèk dk in d nHk }kjk mYyf?kr ugh fd;k tk,xkA fdlh Hkh fodYi e [krjk gA***

11. pkg tk Hkh gk] U;k;ky; ftUg ;g fofuf'pr dju d fy, Lofood g fd D;k ,d vkj fofèk çoru dh vko';drk vkj nljh vkj fofèk çoru dju okyh ,tfl;k d euekuiu l ukxfjdk d lj{k.k d chp lryu LFkkfir dju d fy, vfHk;Dr dh mifLFkfr tekurh vFkok xj&tekurh okjV l lqjf{kr dh tk ldrh gA ekey dh luokb dh frfFk ij U;k;ky; e mifLFkr gku e mldh foQyrk ij vfHk;Dr d fo#) lefpr okjV tkjh dju dh 'kfDr vkj vfèkdkfjrk U;k;ky; d ikl g] bl fookfnr ugh fd;k tk ldrk gA fQj Hkh vU; ckrk d lkFk&lkFk vrxLr vijkèk dh çÑfr vkj xHkhjrk] vfHk;Dr d foxr vkpj.k] mldh vk; vkj mld Qjkj gku dh lHkkouk dk è;ku e j[kr g, U;k;kfpr :i l vkj u fd euekuiu :i l ,lh 'kfDr dk ç;kx djuk gkxkA**

15. इस मामले के तथ्यों पर आते हुए यह प्रतीत होता है कि जब याची को दिनांक 4.4.2013 को अन्वेषण अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के लिए याची को बुलाते हुए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 160 के अधीन नोटिस जारी की गयी थी, याची ने उस नोटिस का जवाब दिया जिसके द्वारा अन्वेषण अधिकारी को सूचित किया गया था कि कुछ कारणों से याची के लिए दिनांक 4.4.2013 को उपस्थित होना संभव नहीं होगा। किंतु, उस नोटिस को इस न्यायालय के समक्ष यह अभिवचन करते हुए चुनौती दी गयी थी कि याची को अभियुक्त के रूप में माना जा रहा है और फिर भी दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 160 के अधीन नोटिस जारी की गयी है। किंतु, सुनवाई की तिथि पर सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से कथन किया गया था कि उस तिथि पर जब नोटिस जारी की गयी थी, याची अभियुक्त नहीं था। इसी समय पर, चूँकि नोटिस के बल का अवसान पहले ही हो चुका था, न्यायालय के समक्ष कथन किया गया था कि वाद हेतुक जीवित नहीं रहता है।

16. सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से किए गए निवेदनों को दृष्टि में रखते हुए उस आवेदन को निपटाया गया था। किंतु यह बिल्कुल विचित्र है कि केवल दो दिन बाद न्यायालय के समक्ष उसमें यह कथन करते हुए तलब दाखिल किया गया था कि उसकी सह-अपराधिता दर्शाते हुए याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री संग्रहित की गयी है। इस पर, दिनांक 15.4.2013 के अपने आदेश के तहत नोटिस जारी किए जाने का आदेश दिया गया था जो दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 73 में अंतर्विष्ट प्रावधानों के अनुरुप कभी नहीं प्रतीत होता है क्योंकि यह अभियोजन का मामला कभी नहीं है कि याची भागा हुआ दोषसिद्ध है अथवा उद्घोषित अपराधी है और न ही मामला यह है कि याची अपनी गिरफ्तारी से बच रहा है बल्कि सी॰ बी॰ आई॰ का मामला यह है कि याची अन्वेषण से बच रहा है किंतु वह भी सही नहीं प्रतीत होता है क्योंकि जब कभी सी॰ बी॰ आई॰ ने याची को बुलाया, उसने प्रत्युत्तर दिया जिस तथ्य को प्रतिशपथ पत्र में स्वीकार किया गया है। ऐसी स्थिति में, याची को अन्वेषण से बचता हुआ नहीं कहा जा सकता है।

17. इन परिस्थितियों के अधीन, आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। किंतु, पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों को दृष्टि में रखते हुए याची को दिनांक 6 मई, 2013 को प्रात: 10.30 बजे से 12 बजे के बीच अन्वेषण अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है ताकि सी॰ बी॰ आई॰ उससे पूछताछ कर सके। तत्पश्चात्, याची दिनांक 8 मई, 2013 को अथवा इसके पहले अपना पारपत्र संबंधित न्यायालय के समक्ष जमा करेगा ताकि वह देश नहीं छोड़ सके। दिनांक 8 मई, 2013 तक याची को गिरफ्तार नहीं किया जाएगा।

18. यह कहना अनावश्यक है कि सी॰ बी॰ आई॰ को विधि के अनुरुप ऐसे किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की प्रत्येक शक्ति है जो अभियुक्त है।

19. इस प्रकार, यह आवेदन निपटाया जाता है।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o Jh pn'k[kj] U;k;efrx.k

नारायण सिंह एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 160 of 2013. Decided on 1st May, 2013.

सत्र विचारण सं० 72 वर्ष 2008 में श्री शतीष चन्द्र सिंह, प्रधान सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 29.1.2013 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–सामान्य आशय–आजीवन कारावास–समस्त तात्विक गवाह संबंधित गवाह हैं–चिकित्सीय साक्ष्य चक्षुदर्शी साक्ष्य द्वारा संपुष्ट नहीं किया गया–अभियोजन गवाहों द्वारा एक बिल्कुल भिन्न मामला प्रक्षेपित किया गया है–ऐसी स्थिति में, चिकित्सीय साक्ष्य महत्व उपधारित करता है और इसे चक्षुदर्शी विवरण के मुकाबले प्राथमिकता दी जाएगी क्योंकि यह अभियोजन विवरण की सत्यता को निश्चयात्मक रूप से विकसित करने का प्रभाव रखते हुए मामले की जड़ तक जाता है–ऐसा विरोधाभास अभियोजन मामले को पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर देगा–कोई भी गवाह चश्मदीद गवाह नहीं है–उनके साक्ष्य भी तात्विक पहलूओं पर एक-दूसरे का विरोध कर रहे हैं–दोषसिद्धि और दंडादेश संपोषित नहीं किया जा सकता है–अपीलार्थीगण दोषमुक्त किए गए। (पैराएँ 18, 24, 33 एवं 34)

निर्णयज विधि.–(1975) 4 SCC 497; (1994) Supp (2) SCC 289; (1987) 1 SCC 679; (2006) 11 SCC 239; (1950) SCR 821; (2009) 11 SCC 334; (2008) 16 SCC 99; (2003) 12 SCC 606; (2004) 8 SCC 660—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Gaurav, For the Appellants; Mr. T.N. Verma, For the State.

श्री चंद्रशेखर, न्यायमूर्ति.–अभियुक्त अपीलार्थीगण ने सत्र विचारण सं० 72 वर्ष 2008 में प्रमुख सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 29.1.2013 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को चुनौती देते हुए इस दांडिक अपील को दाखिल किया है जिसके द्वारा अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और दोनों को मृतक अर्थात् सुरेन्द्र सिंह की हत्या करने के लिए आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 1.2.2008 को सायं लगभग 7.30 बजे जब सूचक और उसका भाई अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ खाना खा रहा था, किसी ने बाहर से सुरेन्द्र सिंह को बुलाया जिस पर सुरेन्द्र सिंह घर के बाहर गया और तुरन्त बाद सूचक ने बरामदा में गोली चलने का आवाज सुना। सूचक और परिवार के अन्य सदस्य घर के बाहर आए और सुरेन्द्र सिंह को घायल दशा में पाया। उसकी बाँह और पेट के दायीं ओर खून बहती उपहतियाँ थीं और उसने अपने भाई को प्रकट किया कि नारायण सिंह ने उसे गोविन्द सिंह तथा कृष्णा सिंह के भूमि विवाद में सुलह करने के लिए बुलाया था और जब उसने सुलह करने से इनकार कर दिया, उपेन्द्र सिंह ने पिस्तौल से उस पर गोली चलायी। आगे यह कथन किया गया है कि घायल को रात में अस्पताल नहीं ले जाया जा सका था क्योंकि सवारी उपलब्ध नहीं थी। अगले दिन सुबह घायल को कोलबीरा अस्पताल ले जाया गया था जहाँ उसने

उपहतियों के कारण दम तोड़ दिया। यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण अर्थात् उपेन्द्र सिंह, रनदौर सिंह उर्फ अनिल सिंह और नारायण सिंह ने सुरेन्द्र सिंह की हत्या की। सूचक अर्थात् बुधवा सिंह का बयान कोलबीरा पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी द्वारा प्रातः लगभग 9.50 बजे अस्पताल में दर्ज किया गया था और सूचक के फर्दबयान के आधार पर नारायण सिंह, रंदौर सिंह उर्फ अनिल सिंह और उपेन्द्र सिंह के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दिनांक 2.2.2008 का कोलबीरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 6/2008 दर्ज किया गया था।

3. अन्वेषण की समाप्ति पर नारायण सिंह और रनदौर सिंह उर्फ अनिल सिंह के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। दिनांक 15.9.2008 को अपीलार्थीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप विरचित किया गया था। अपीलार्थीगण ने दोषी नहीं होने का अभिवचन किया और विचारण किए जाने का दावा किया।

4. विचारण के दौरान अभियोजन द्वारा अपने मामले के समर्थन में नौ गवाहों का परीक्षण किया गया था। अभियोजन ने प्रदर्श 1/1 के रूप में मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट पर शंभु बरायक का हस्ताक्षर, प्रदर्श 2 के रूप में शव परीक्षण रिपोर्ट, प्रदर्श 2/1 के रूप में शव परीक्षण रिपोर्ट पर डॉक्टर का हस्ताक्षर, प्रदर्श 3 के रूप में फर्दबयान पर बुधवा सिंह का हस्ताक्षर, प्रदर्श 4 के रूप में फर्दबयान, प्रदर्श 5 के रूप में फर्दबयान पर पृष्ठांकन, प्रदर्श 6 के रूप में औपचारिक प्राथमिकी और प्रदर्श 7 के रूप में मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट की कार्बन कॉपी को सिद्ध और चिन्हित करवाया। बचाव पक्ष ने किसी गवाह का परीक्षण नहीं किया है।

5. अभियोजन ने निरंजन सिंह और शंभु बरायक का क्रमशः अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 2 के रूप में परीक्षण किया है। वे मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट के गवाह हैं। अ॰ सा॰ 3 डॉ॰ क्राइस्ट आनन्द साक्जा डॉक्टर हैं जिन्होंने सुरेन्द्र सिंह के मृत शरीर का शव परीक्षण किया है। उन्होंने कथन किया कि दिनांक 2.2.2008 को उन्हें सदर अस्पताल में पदस्थापित किया गया था और मृत शरीर के परीक्षण पर उन्होंने निम्नलिखित उपहतियाँ पायी थी:–

(i) cká ijh{k.k%&

a. feM ykbu e vfcfydl d mij 5" dh vkj nk, Hkkx ij ik'o e 2" dh 1" x 1/2" vkdkj dh rt dVh migfr mifLFkr gA t[e dh xgjkb ,cMkfeuy dfoVh rd gA

b. D;fcVy ik'ku d mij nk, ckg e rt dVh migfrA vkdkj 1" x 1/2" ekl i'kh rd xgjkA

c. nk, ,fidkfM;y d Åij nk, ckg e rt migfrA vkdkj 1/2" x 1/2" ekl i'kh rd xgjkA

(ii) vkrfjd ijh{k.k%&

a ,cMkfeuy dfoVh jDr l Hkjh gb gA iV d vn#uh nhokj ij mifLFkr rt dVh migfrA vkdkj 2" x 1/2"

b. rt dVh migfr mifLFkrA iV dk Hkhrjh HkkxA vkdkj 1/2" x 1/2"

c. ,cMkfeuy oky dk vkeUVe vkj ifjVkfu;e yky jx dkA

d. leLr migfr;k 'koio çÑfr dh gA

(iii) ç;Dr gfFk;kj% rt ,o ycl dkVu okyh oLrA

(iv) eR; l le;% 24 ?kVk d Hkh rjA

(v) eR; dk dkj.k % iokfYyf[kr migfr;k }kjk dkfjr gejt vk?kkr d dkj.kA

6. डॉक्टर ने पाया कि सुरेन्द्र सिंह के मृत शरीर पर उपहतियाँ शवपूर्व प्रकृति की थी। प्रति परीक्षण में उन्होंने कथन किया है कि अपराध में प्रयुक्त हथियार की लंबाई 12" थी और उपहति सं॰ 2 और 3 पृथक वार के कारण उसी हथियार द्वारा संभव है। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि उपहतियों का ऐसा प्रकार एकल वार द्वारा संभव नहीं है।

7. सूचक बुधवा सिंह का परीक्षण अ॰ सा॰ 4 के रूप में किया गया है और उसने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है। उसने दोहराया है कि घटना दिनांक 1.2.2008 को सायं लगभग 7 बजे हुई। वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भोजन के लिए तैयार था, जब उसने ''खटाक्'' की आवाज सुनी जिस पर वह कमरे के बाहर आया और उसने अपने भाई को आग्नेयास्त्र द्वारा घायल बरामदा पर पड़ा पाया। जब उसने अपने भाई से घटना के बारे में पूछा, उसके भाई ने उसे सूचित किया कि नारायण सिंह और अनिल सिंह ने उसे बाहर बुलाया था। सूचक ने आगे कथन किया है कि उसने अपने भाई सुरेन्द्र सिंह के बाँह पर और पेट में आग्नेयास्त्र की उपहति देखा। उसने नारायण सिंह और अनिल सिंह को पहचानने का दावा किया और न्यायालय में अभियुक्तगण को पहचाना। उसने अपीलार्थीगण अर्थात् नारायण सिंह और रनदौर सिंह उर्फ अनिल सिंह के साथ किसी विवाद से इनकार किया है किंतु उसने कथन किया है कि उसका कृष्णा सिंह के साथ कुछ विवाद था जिसे उसने माननीय सर्वोच्च न्यायालय में जीता था। प्रति परीक्षण में उसने कथन किया है कि घायल होने के बाद भी उसका भाई बोलने में सक्षम था और इस प्रकार उसने उन दोनों व्यक्तियों का नाम बताया था जिन्होंने उसे बाहर बुलाया था। उसने सुझावों से इनकार किया है कि मृतक ने उसको नारायण सिंह और रनदौर सिंह उर्फ अनिल सिंह का नाम प्रकट नहीं किया था।

8. अ॰ सा॰ 5 सूचक की पत्नी है। उसने भी यह कथन करते हुए अभियोजन मामले का समर्थन किया है कि घटना होने के दिन वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ भोजन के लिए तैयार थी जब किसी ने उसके ''देवर'' सुरेन्द्र सिंह को बाहर बुलाया। तुरन्त बाद सुरेन्द्र सिंह घर के बाहर गया, उसने गोली चलने की आवाज सुनी और सुरेन्द्र सिंह ने हल्ला किया। जब वे घर से बाहर आए। उन्होंने किसी को वहाँ नहीं पाया था। उसने कथन किया है सुरेन्द्र सिंह ने उससे कहा कि नारायण सिंह और रनदौर सिंह उर्फ अनिल सिंह ने उसे घर से बाहर आने के लिए कहा था और ज्योंही वह बाहर आया, उस पर गोली दागी गयी थी और वे भाग गए। प्रति परीक्षण में उसने कथन किया है कि उसने पुलिस के समक्ष दोनों अभियुक्तों को नामित किया है।

9. सूचक की पुत्री अर्थात् सुलोचनी देवी का परीक्षण अ॰ सा॰ 6 के रूप में किया गया है। उसने भी दावा किया है कि वह उस समय घर में उपस्थित थी जब सायं लगभग 7.30 बजे घटना हुई थी। उसने कथन किया है कि जब अभियुक्तगण ने उसके चाचा सुरेन्द्र सिंह को घर से बाहर आने के लिए पुकारा और उसका चाचा बाहर गया, उसने गोली चलने की आवाज सुनी। जब वे बाहर आए, उसने अपने चाचा को घायल दशा में पड़ा पाया। उसने आगे कथन किया है कि उसके चाचा ने उसे बताया कि नारायण सिंह और अनिल सिंह ने उस पर गोली चलायी और भाग गए। उसने यह कथन भी किया है कि पेट के दाएँ भाग पर एक आग्नेयास्त्र से हुई उपहति थी। उसने भी इस सुझाव से इनकार किया है कि उसके चाचा ने अनिल सिंह और नारायण सिंह का नाम उसको प्रकट नहीं किया था और अपने माता-पिता के कहने पर उसने दोनों अभियुक्तों को नामित किया है।

10. अभियोजन ने मृतक की पत्नी अर्थात् देवंती देवी का अ॰ सा॰ 7 के रूप में परीक्षण किया है। उसने कथन किया है कि घटना सायं लगभग 7.30 बजे हुई थी। वह अपने पति के साथ भोजन करने के बाद सो रही थी जब किसी ने उसको बाहर से उसे बुलाया। जब उसका पति बाहर गया, वह भी उसके पीछे गयी। अचानक किसी ने उसके पति पर गोली चलायी। हमलावर नारायण सिंह और अनिल सिंह थे जिनको उसने न्यायालय में पहचाना है। उसने दावा किया कि घटना भूमि विवाद के कारण हुई। उसने यह दावा भी किया है कि उसके पति ने उसे बताया कि नारायण सिंह और अनिल सिंह ने उस पर गोली दागी थी। प्रति परीक्षण के दौरान उसने स्वीकार किया है कि बाहर अंधेरा था किन्तु उसके पति के हाथ में एक टॉर्च थी। उसने कहा है कि नारायण सिंह ने गोली चलायी थी, जिसे उसने पहचाना है। उसने प्रति परीक्षण में यह भी स्वीकार किया है कि पहले भी अखिलेश्वर सिंह द्वारा उसके पति की हत्या का प्रयास किया गया था और वह उक्त मामले की गवाह थी। किंतु उसने स्पष्ट किया है कि घटना होने के समय पर अखिलेश्वर सिंह जेल में था। उसने अभियुक्त और मृतक के बीच किसी भूमि विवाद के बारे में किसी जानकारी से इनकार किया है।

11. अभियोजन ने मृतक की भाभी आशा देवी का अ॰ सा॰ 9 के रूप में परीक्षण किया है। उसने कथन किया था कि वह उस दिन जब घटना हुई थी अपने घर में खाना बना रही थी। उसने कथन किया था कि अनिल सिंह और नारायण सिंह ने सुरेन्द्र सिंह को घर के बाहर बुलाया और उससे कहा कि वे टी॰ वी॰ देखना चाहते थे। जब सुरेन्द्र सिंह ने उनसे कहा कि टी॰ वी॰ खराब था, दोनों ने उसकी हत्या कर दी और भाग गए। उसने यह दावा भी किया है कि सुरेन्द्र सिंह ने उसे सूचित किया कि अनिल सिंह, नारायण सिंह और उपेन्द्र सिंह द्वारा उसकी हत्या की गयी थी। अपने प्रतिपरीक्षण में, उसने कथन किया है कि रसोई में उसकी जेठानी देवंती देवी अ॰ सा॰ 7 और उसकी भतीजी सुनीता उसके साथ थी। उसने आगे स्वीकार किया है कि वह चश्मदीद गवाह नहीं है और वह घटना के पाँच मिनट बाद घर के बाहर आयी और जब वह घर से बाहर आयी, उसकी जेठानी देवंती देवी और उसकी भतीजी सुनीता भी उसके साथ थी। उसने यह भी स्वीकार किया है कि अनिल सिंह और नारायण सिंह के साथ पूर्व दुश्मनी नहीं थी।

12. अन्वेषण अधिकारी ने अ॰ सा॰ 8 के रूप में स्वयं का परीक्षण किया है। उसने कथन किया है कि घटना के बारे में सूचना प्राप्त करने पर उसने स्टेशन डायरी में सनहा प्रविष्टि सं॰ 101 किया और एस॰ आई॰ सुदर्शन पासवान को सत्यापन करने का निर्देश दिया। उसने मृतक सुरेन्द्र सिंह का मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार किया और सूचक का पुनर्बयान और अन्य गवाहों का बयान दर्ज किया और घटनास्थल का निरीक्षण किया। उसने प्रति परीक्षण में स्वीकार किया कि उसने किसी हथियार अथवा मृतक के वस्त्र को जब्त नहीं किया था और उसने सुझावों से इनकार किया कि उसने गलत रूप से अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया है।

13. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य के अधिमूल्यन पर निष्कर्षों को दर्ज किया कि अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपना मामला सिद्ध करने में सफल हुआ और इसलिए उन्होंने दोनों अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उनको आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया।

14. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों का परीक्षण किया गया।

15. यह दांडिक अपील दिनांक 1.4.2013 के आदेश द्वारा ग्रहण की गयी थी और प्रधान सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा के न्यायालय से सत्र विचारण सं॰ 72 वर्ष 2008 के अभिलेख और कार्यवाही को मंगाया गया था जिसे इस न्यायालय द्वारा प्राप्त किया गया है। मामला दिनांक 22.4.2013 को सुनवाई के लिए रखा गया था। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की दृष्टि में, जिसका परिशीलन हमारे द्वारा और पक्षों के लिए उपस्थित अधिवक्ता द्वारा किया गया है, पक्षों की सहमति से इस दांडिक अपील को आज सुना जा रहा है।

16. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने स्वयं को पूरी तरह अपनिदेशित किया है और समुचित रूप से अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का अधिमूल्यन करने में विफल रहा है। चिकित्सीय साक्ष्य और चक्षुदर्शी साक्ष्य के बीच महत्वपूर्ण विरोधाभास है और वह स्वयं याचीगण को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोप से दोषमुक्त करने के लिए पर्याप्त है। अभियोजन गवाहों के साक्ष्य में मुख्य विरोधाभास हैं और वे विश्वसनीय गवाह नहीं हैं। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है और समस्त तात्विक गवाह संबंधित गवाह हैं और इस प्रकार अत्यन्त हितबद्ध गवाह हैं और इसलिए, वे विश्वसनीय गवाह नहीं हैं। इन आधारों पर उन्होंने निवेदन किया है कि सत्र विचारण सं॰ 72 वर्ष 2008 में विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा दर्ज दिनांक 29.1.2013 का दोष सिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त किए जाने का दायी है।

17. इसके विरुद्ध, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने निवेदन किया है कि ऐसे मामलों में जहाँ चिकित्सीय साक्ष्य चक्षुदर्शी साक्ष्य द्वारा संपुष्ट नहीं किया गया है, न्यायालय को चक्षुदर्शी साक्ष्य को प्राथमिकता देना होगा। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि मात्र इसलिए कि गवाह संबंधित गवाह हैं, उनके साक्ष्य को त्यक्त नहीं किया जा सकता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने समुचित रूप से अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का अधिमूल्यन किया है और चुनौती के अधीन निर्णय किसी दुर्बलता से पीड़ित नहीं है।

18. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवाद कि समस्त तात्विक गवाह संबंधित गवाह हैं और इस प्रकार अत्यन्त हितबद्ध गवाह हैं और इसलिए उनके साक्ष्य को त्यक्त करना ही होगा, पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में यह सुनिश्चित किया गया है कि ऐसी परिस्थितियों में गवाहों के साक्ष्य का संवीक्षण सम्यक सावधानी और सतर्कता के साथ करना होगा और मात्र इसलिए कि वे संबंधित गवाह हैं, उनका साक्ष्य त्यक्त नहीं किया जा सकता है।

19. **''रामानंद यादव बनाम प्रभुनाथ झा एवं अन्य, (2003)12 SCC 606,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:–

> *"15. ....fdr blh le; ij ;fn lcfèk;k vFkok fgrc) xokgk dk ijh{k.k fd;k tkrk g] xgurj loh{k.k d lkFk lk{; dk fo'y"k.k djuk vkj rc fu"d"k ij vkuk U;k;ky; dk drO; g fd D;k ble lR; g vFkok ;g vfHkfuèkkfjr dju dk dkj.k g fd lk{; iokxgxLr gA tc dHkh vfHkopu fd;k tkrk g fd xokg i{kikrh g vFkok mldh vfHk;Dr d çfr dkb n'euh g] bldh uho Mkyuh gh gkxh--------**"*

20. पुनः, **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम मस्त राम, (2004)8 SCC 660,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:–

> *^^-------bl fcn ij fofèk lfuf'pr g fd lcfèkr xokgk d ifjlk{; ij lcèk d vkèkkj ij vfo'okl ugh fd;k tk ldrk gA ,dek= vko';drk lrdrk d lkFk mud ifjlk{; dk ijh{k.k djuk gA------cj vkj lcèk d vkèkkj ij*

*ngyh t ij mud ifjlk{; dk vLohdkj fd;k x;k gA ;g fofèk dh vko';drk ugh g-------***

21. मामले के तथ्यों पर आते हुए, हम पाते हैं कि यद्यपि सूचक बुधवा सिंह (अ॰ सा॰ 4) सूचक की पत्नी अर्थात् झरियो देवी (अ॰ सा॰ 5) और सूचक की पुत्री सुलोचनी देवी (अ॰ सा॰ 6) ने कथन किया है कि घटना होने के समय पर वे भोजन करने के लिए तैयार थी, मृतक की पत्नी अर्थात् देवंती देवी (अ॰ सा॰ 7) ने न्यायालय में अभिसाक्ष्य दिया है कि वह अपने पति के साथ भोजन करने के बाद सो रही थी जब किसी ने बाहर से उसके पति को बुलाया और जब उसका पति बाहर गया, वह भी उसके पीछे गयी। एक अन्य गवाह अर्थात् आशा देवी (अ॰ सा॰ 9) जो मृतक की भाभी है ने न्यायालय में कथन किया है कि जब घटना हुई, वह घर में खाना बना रही थी और उसकी जेठानी देवंती देवी (अ॰ सा॰ 7) और उसकी भतीजी सुनीता उसके साथ रसोई में थी। इस प्रकार, अभियोजन गवाहों का साक्ष्य अभियोजन मामले से भिन्न है। गवाहों ने एक दूसरे का खंडन किया है। अ॰ सा॰ 9 का साक्ष्य उपदर्शित करता है कि अ॰ सा॰ 7 अपने पति के साथ नहीं थी और मृतक की पत्नी अ॰ सा॰ 7 जिसने अभिसाक्ष्य दिया कि वह अपने पति के साथ सो रही थी जब किसी ने बाहर से उसके पति को बुलाया, का साक्ष्य अभियोजन मामले की जड़ पर चोट करता है क्योंकि सूचक ने कथन किया है कि वह अपने भाई सुरेन्द्र सिंह (मृतक) और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भोजन करने के लिए तैयार था जब किसी ने बाहर से सुरेन्द्र सिंह को बुलाया और तत्पश्चात सुरेन्द्र सिंह बाहर गया और घटना हुई।

22. अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य में यह भी आ रहा है कि उसके भाई सुरेन्द्र सिंह ने उससे कहा है कि नारायण सिंह और अनिल सिंह ने उसको बाहर बुलाया था। सूचक यह दावा नहीं करता है कि उसके भाई ने उसे हमलावरों का नाम बताया था। जबकि अ॰ सा॰ 5 और अ॰ सा॰ 6 ने दावा किया है कि मृतक सुरेन्द्र सिंह ने उनको बताया था कि नारायण सिंह और अनिल सिंह ने उस पर गोली चलायी थी और भाग गए थे। मृतक की पत्नी अर्थात् देवंती देवी (अ॰ सा॰ 7) ने स्वयं का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है और न्यायालय में कथन किया है कि नारायण सिंह ने गोली चलायी थी। अ॰ सा॰ 9 ने बिल्कुल भिन्न कहानी सुनायी है। उसने न्यायालय में कथन किया है कि अनिल सिंह और नारायण सिंह उनके घर आए और सुरेन्द्र सिंह को घर के बाहर बुलाया और उससे कहा कि वे टी॰ वी॰ देखना चाहते थे। जब सुरेन्द्र सिंह ने उनसे कहा कि टी॰ वी॰ खराब है, उन्होंने उसकी हत्या कर दी और भाग गए। उसने यह दावा भी किया है कि सुरेन्द्र सिंह ने उसे सूचित किया कि अनिल सिंह, नारायण सिंह और उपेन्द्र सिंह द्वारा उसकी हत्या की गयी थी। इस प्रकार, हम पाते हैं कि अभियोजन गवाहों के साक्ष्य मुख्य विरोधाभासों, अलंकरणों, और सुधारों से पीड़ित है। दोषसिद्धि का आदेश दर्ज करने के लिए इन गवाहों के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता है विशेषत: जब अभियुक्तगण हत्या के लिए विचारण का सामना कर रहे हैं। अभियोजन गवाह विश्वसनीय गवाह नहीं हैं और उनके साक्ष्य को त्यक्त करना ही होगा।

23. शव परीक्षण रिपोर्ट और अ॰ सा॰ 3 जिन्होंने मृतक सुरेन्द्र सिंह के मृत शरीर का शव परीक्षण किया के साक्ष्य के परिशीलन पर हम पाते हैं कि डॉक्टर ने स्पष्टत: कथन किया है कि मृतक के मृत शरीर पर उपहति तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी जो लगभग 12" लंबी थी। डॉक्टर ने मृतक के शरीर पर कोई आग्नेयास्त्र उपहति नहीं पायी है। अभियोजन का विनिर्दिष्ट मामला यह है कि मृतक दो गोलियों की उपहतियों से पीड़ित हुआ; एक बाँह पर और दूसरा पेट के दाएँ भाग पर। सूचक और अ॰ सा॰ 5, अ॰ सा॰ 6, अ॰ सा॰ 7 और अ॰ सा॰ 9 सबों ने स्पष्टत: कथन किया है कि उन्होंने गोली

चलने की आवाज सुनी जिस पर वे घर के बाहर आए और स्वयं मृतक ने उनको सूचित किया कि अभियुक्तगण ने उस पर गोली चलायी है।

24. इस प्रकार, साक्ष्य को देखते ही प्रकट है कि चक्षुदर्शी साक्ष्य द्वारा चिकित्सीय साक्ष्य को संपुष्ट नहीं किया गया है। अभियोजन गवाहों द्वारा एक बिल्कुल भिन्न मामला प्रक्षेपित किया गया है। गोली लगने से हुई उपहतियों द्वारा सुरेन्द्र सिंह को कारित मृत्यु का अभियोजन विवरण चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा समर्थित बिल्कुल नहीं किया गया है जिसमें डॉक्टर ने स्पष्टत: कथन किया है कि मृतक के मृत शरीर पर उपहतियाँ तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी। अभियोजन गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य के बीच पूरी असंगति है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसी स्थिति में, चिकित्सीय साक्ष्य महत्व उपधारित करता है और इसे चक्षुदर्शी विवरण के मुकाबले प्राथमिकता दी जाएगी क्योंकि यह अभियोजन विवरण की सत्यता को निश्चयात्मक रूप से विकर्षित करने का प्रभाव रखते हुए मामले की जड़ तक जाता है। ऐसी स्थिति में, न्यायालय इस तथ्य के प्रति विपरीत निष्कर्ष निकाल सकता है कि न्यायालय के समक्ष रखा गया अभियोजन विवरण विश्वसनीय नहीं है।

25. इस चरण पर, विधि को ध्यान में लेना लाभदायी होगा जैसा इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित किया गया है। **मोहिन्दर सिंह बनाम राज्य, (1950) SCR 821,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

> *"10. ....., l ekey e tgk eR; ?kkrd gfFk;kj }kjk dkfjr migfr;k vFkok t[ek d dkj.k g] ;g lno fo'k"kK lk{; }kjk fl) djuk vfHk;ktu dk dr0; ekuk x;k g fd gfFk;kj ftll vkj rjhdk ftle bUg dkfjr fd;k tkuk vfHkdfFkr fd;k x;k g] migfr;k d dkfjr fd, tku dh lHkkouk Fkh vFkok de l de , lk lHko FkkA ;g ey g fd tgk vfHk;ktu d ikl fuf'pr vFkok ldkjkRed ekeyk g] bl ml ekey dk ijh rjg fl) djuk gkxkA oreku ekey e] ;g lngi.k g fd D;k migfr;k] ftl vihykFkh }kjk fd;k x;k ekuk tk ldrk g] cnd }kjk vFkok jkbQy }kjk dkfjr dh x;h FkhA oLrr% ;g vfèkd lHko çrhr gkrk g fd o cnd dh ryuk e jkbQy }kjk dkfjr dh x;h Fkh vkj fQj Hkh vfHk;ktu dk ekeyk g fd vihykFkh cnd l yl Fkk vkj viu ijh{k.k e] ml le{k fuf'pr :i l j[kk x;k Fkk fd og cnd l yl FkkA doy lE;d :i l vfgr fo'k"kK d lk{; }kjk ;g vfHkfuf'pr fd;k tk ldrk Fkk fd D;k vihykFkh }kjk dh x;h ekuh x;h migfr;k cnd }kjk vFkok jkbQy }kjk dkfjr dh x;h Fkh vkj doy , lk lk{; fookn ly>k;k tk ldrk Fkk fd D;k mUg bru fudV l mi;kx fd, x, vkXu;kL= }kjk dkfjr djuk lHko Fkk t lk lk{; e l>k;k x;k gA***

26. कपिलदेव मंडल एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, (2008)16 SCC 99, में जब यह पाया गया था कि यद्यपि चश्मदीद गवाहों ने स्पष्टत: कथन किया कि आग्नेयास्त्र के उपयोग द्वारा मृतक को घायल किया गया था, चिकित्सीय साक्ष्य मृतक के शरीर पर किसी आग्नेयास्त्र उपहति को उपदर्शित नहीं करता था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सम्प्रेक्षित किया:–

> *"23. bl U;k;ky; d fu.k;k dh J[kyk }kjk vc ;g lfuf'pr g fd fpfdRlh; lk{; vkj p{kn'kh lk{; d chp vrj dk vfèkeY;u djr g, p'enhn xokgk d ekf[kd lk{; dk çkFkfedrk nuh gkxh D;kfd fpfdRlh; lk{; eyr% erkRed@l)kfrd gA [n[k % ekx cuke gfj;k.kk jkT; (nk"kflf) ,dek= p'enhn xokg d ifjlk{; ij vkèkkfjr)(mÙkj çn'k jkT; cuke Ñ".kk xkiky (SCC d ijk 24 e) vkj jkekun ;kno cuke çHkukFk >k (SCC d ijk 17 e) fdr tc U;k;ky; p'enhn xokgk }kjk fn, x, lk{; e vlxfr ikrk g tk fpfdRlh;*

fo'k"kKk }kjk fn, x, lk{; l fcYdy vlxr g] rc U;k;ky; }kjk lk{; dk vfèkeY;u fcYdy fHkUu ifjç{; e fd;k tkrk gA

*27. oreku ekey e] fpfdRlh; lk{; bl çHkko dk g fd erd d 'kjhj ij dkb vkXu;kL= migfr ugh Fkh tcfd p'enhn xokgk dk fooj.k g fd vihykFkh&vfHk;Drx.k vkXu;kL= fy, g, Fk vkj migfr;k vkXu;kL= }kjk dkfjr dh x;h FkhA , lh fLFkfr vkj ifjfLFkfr e] fpfdRlh; lk{; egRo mièkkfjr djxk tc U;k;ky; }kjk vfHk;ktu }kjk fn, x, lk{; dk vfèkeY;u fd;k tk jgk g vkj bl p{kn'kh lk{; d mij çkFkfedrk nh tk,xh vkj p'enhn xokgk d ifjlk{; dk fodf"kr dju d fy, bldk mi;kx fd;k tk ldrk g D;kfd ;g vfHk;ktu fooj.k dh lR;rk dk fu'p;kRed :i l fodf"kr dju dk çHkko j[kr g, ekey dh tM rd tkrk gA tc fpfdRlh; lk{; fofufn"Vr% ml migfr l budkj djrk g ftl p'enhn xokgk d fooj.k d erkfcd dkfjr fd, tku dk nkok fd;k x;k g] rc U;k;ky; bl çHkko dk foijhr fu"d"k fudky ldrk g fd vfHk;ktu fooj.k] tl k U;k;ky; d le{k j[kk x;k g] fo'oluh; ugh gA oreku ekey e] fpfdRlh; lk{; vkXu;kL= }kjk dkfjr dh x;h migfr;k d vfHk;ktu fooj.k dk bl rF; d lkFk fd ?kVuk LFky l vFkok 'ko ijh{k.k e erd d 'kjhj l cjken fd, x, fdlh iyV vFkok cyV dk vfHk;ktu }kjk lk{; ugh fn;k x;k g] ijh rjg udkjrk gA bl rF; d vkykd e fd i{kk d chp io n'euh Fkh vkj ijh{k.k fd, x, p'enhn xokg erd l lcfèkr g vkj fgrc) xokg g vkj fd ykyVu vFkok Vkp ftud çdk'k e ?kVuk n[kh x;h crk;h tkrh g dh vuifLFkfr e vfHk;ktu ekeyk tl k U;k;ky; d le{k j[kk x;k g] lngk l Hkjk g vkj bl çdkj vihykFkh&vfHk;Drx.k lng d ykHk d gdnkj gA***

27. राम नारायण सिंह बनाम पंजाब राज्य (1975)4 SCC 497, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि:–

*^^tgk vfHk;ktu d xokgk dk lk{; fpfdRlh; lk{; vFkok cfyfLVd fo'k"kK d lk{; d lkFk i.kr% vlxr g] ;g vfHk;ktu ekey dh lokfèkd ey =fV g vkj tc rd bl ;fDr;Dr :i l Li"V ugh fd;k tkrk g] ;g li.k ekey dk vfo'oluh; cuku d fy, i;kIr gA***

28. मनिराम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1994) Supp (2) SCC 289, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधि की अवस्था को पुनः इन शब्दों में दोहराया है:–

*9."..... bl U;k;ky; d fu.k;k dh ych J[kyk }kjk ;g lfuf'pr g fd tgk çR;{k lk{; fo'k"kK d lk{; }kjk lefFkr ugh g] rc vfHk;ktu ekey d lokfèkd rkfRod Hkkx e lk{; dh deh g vkj blfy, , l lk{; d vkèkkj ij vfHk;Dr dk nk"kfl) djuk ef'dy gkxkA ;fn vfHk;ktu xokgk dk lk{; fpfdRlh; lk{; d lkFk ijh rjg vlxr g] ;g vfHk;ktu ekey e lokfèkd ey =fV g vkj tc rd bl vlxfr dk ;fDr;Dr :i l Li"V ugh fd;k tkrk g] rc rd ;g u doy lk{; dk cfYd li.k ekey dk vfo'oluh; cuku d fy, i;kIr g ----------***

29. अमर सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, (1987)1 SCC 679, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन दोषसिद्धि के आदेश और दंडादेश को अपास्त कर दिया जब यह पाया गया था कि:–

*"10. .....v0 lkO 2 }kjk nkf[ky fpfdRlk fjikV n'kkrk g fd doy dkV; tu] [kjkp vkj ÝDpj Fk fdr erd d ck, ?kVu ij dVu dk t[e ugh Fkk tlk v0 lkO 5 }kjk vfHkdfFkr fd;k x;k gA ;fn mldk lk{; fd leLr vfHk;Drx.k u viu&viu gfFk;kjk l erd ij migfr;k dk dkfjr fd;k Lohdkj fd;k tkuk g] rc erd d ij 'kjhj ij dVg, t[e gkx fdr fpfdRlh; fjikV n'kkrk g fd erd d 'kjhj ij ,d Hkh dVk gvk t[e ugh ik;k x;k FkkA bl çdkj] v0 lkO 5dk lk{; fpfdRlh; lk{; d lkFk ijh rjg vlxr gA bl U;k;ky; u jke ukjk;.k flg cuke itkc jkT; e vfèkdfFkr fd;k g fd ;fn vfHk;ktu xokgk d lk{; fpfdRlh; lk{; d lkFk ijh rjg vlxr g] rc ;g vfHk;ktu ekey e lokfèkd ey =fV g vkj tc rd bl ;fDr;Dr :i l Li"V ugh fd;k tkrk g] ;g li.k ekey dk vfo'oluh; cuku d fy, i;kIr gA v0 lkO 5d lk{; vkj fpfdRlh; lk{; d chp çdVi.k vlxfr d fy, Li"Vhdj.k ugh gA***

30. खंबम राजा रेड्डी एवं एक अन्य बनाम लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, (2006)11 SCC 239, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

*19. ^^oreku ekeyk p{kn'kh lk{; vkj fpfdRlh; lk{; d chp fojkèkkHkkl dk mnkgj.k g] tgk fpfdRlh; lk{; p{kn'kh lk{; }kjk fl) ugh fd;k x;k gA ,lh fLFkfr e] eè; çn'k jkT; cuke èkkjdky e bl U;k;ky; d fu.k; d çkfèkdkj ij vihykFkhx.k dh vkj l l>k;k x;k Fkk fd tgk fpfdRlh; lk{; p{kn'kh lk{; l fHkUu g] p'enhn xokg d ifjlk{; dk Lor= :i l fofuf'pr fd;k tkuk pkfg, vkj ;fn bl fo'oluh; ik;k tkrk g] bl ek= blfy, R;Dr ugh fd;k tk ldrk Fkk D;kfd ;g fpfdRlh; er l fHkUu gA ;|fi iokDr fu.k; e Li"V fd, x, fl)kr ij erHkn ugh g] bldh ç;kT;rk bl ckr ij fuHkj djxh fd D;k vfHk;ktu }kjk cuk;k x;k ekeyk fo'oluh; g vkj bl ml rjhd] ftl ç{kfir fd;k tkuk bfIlr fd;k x;k g] l ihfMr }kjk çkIr migfr;k d lkFk lcfèkr fd;k tk ldrk gA ;fn p{kn'kh ifjlk{; ,lk g fd migfr;k dk mu ifjfLFkfr;k ftue bUg dkfjr fd;k x;k crk;k tkrk g d lkFk lcfèkr djuk lHko ugh g] U;k;ky; d ikl p{kn'kh lk{; dk Lohdkj ugh dju dk Lofood gA èkkjdky ekey e çfrikfnr fl)kr lefpr ekey e ykx fd;k tk ldrk g fdr çR;d ekey dk bld rF;k d Lo; viu lox dk è;ku e j[kr g, fofuf'pr djuk gkxkA***

31. महेन्द्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009)11 SCC 334, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

*"62. ?kk;y xokgk lfgr p'enhn xokgk d lk{; dh mDr ppk l mudk lk{; fo'okl fcYdy mRiUu ugh djrk g vkj mudk lk{; tk ifyl Fkkuk e egjcn gfFk;kj l fHkUu g] d lcèk e fpfdRlh; lk{; vkj cfyfLVd fo'k"kK d fjikV d lkFk l?k"kjr g vkj fojkèkkHkkl gA gekj er e mPp U;k;ky; u nk"kefDr d vkn'k dk nk"kflf) e lifjofrr dju e U;kf;d food'kh yrk d fu;e dh mi{kk dh gA***

32. वर्तमान मामले में, विद्वान विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष दर्ज किया है:–

^^vr e] eu MkDVj d lk{; dk loh{k.k fd;k ftUgkus erd d 'kjhj ij dy feykdj rhu rt dVh migfr;k dk ik;k gA e vkx ikrk g fd MkDVj u nk, ckg ij vkj iV d Hkhrjh nhokj ij rt dVh migfr ik;k g vkj mDr rF; v0 lk0 4 }kjk viu lk{; e Hkh li"V fd;k x;k g fdr bue fHkUurk g D;kfd MkDVj u rt dVh migfr ik;k g fdr lpd u erd dh ckg vkj iV ij vkXu;kL= migfr n[kk Fkk vkj bl rF; dk vU; xokgk d lk{;k }kjk Hkh li"V fd;k x;k gA bl lcèk e] 2003 (4) JLJR SC Page 173 e mDr fufn"V m) j.k ftle ekuuh; lokPp U;k;ky; u vfHkfuèkkfjr fd;k g fd nkfMd fopkj.k e fpfdRlh; er vkj ekf[kd lk{; vFkkr p{kn'kh lk{; d chp vrj gku ij p{kn'kh lk{; dk çkFkfedrk nuh gkxh vkj fpfdRlh; lk{; eyr% erkRed@l)kfrd gA vkx vfHkfuèkkfjr fd;k x;k g fd MkDVj lkekU; r% mu migfr;k dk dkfjr fd, tku dh fofHkUu lHkkoukvk vFkok vfèklHkk0; rkvk vFkok 'ko ijh{k.k y{k.kk] ftl mlu efMdy fjikV e è;ku e fy;k] d lcèk e ,l ç'uk d lkFk lkeuk djk, tku ij viuk nf"Vdk.k ,d ;k nlj rjhd l vfHk0;Dr dj ldrk g tk ç'u iN tku d rjhd ij fuHkj djxkA fdr xokgk }kjk fn, x, ,l ç'uk d mÙkj ,lh lHkkoukvk ij vfre 'kCn vko';dr% ugh gkxA vkf[kjdkj og doy ,l ç'uk d lcèk e viuk er nrk gA fdr doy fpfdRlh; xokg }kjk vfHk0;Dr ,l ç'u d cr ij p'enhn xokg dk ifjlk{; R;Dr djuk nkfMd U;k; d ç'kklu d fy, lgk;d ugh gA e vkx ikrk g fd leLr xokgk u lxr :i l U;k;ky; d le{k dFku fd;k fd erd u viuh ckg vkj iV ij cyV migfr;k ik;h Fkh vkj ekey d bl nf"Vdk.k e iokfYyf[kr m) j.k oreku ekey ij ijh rjg ç;kT; gA ekf[kd lk{; vkj mDr fufn"V m) j.k d lex loh{k.k ij ejk Li"V er g fd vfHk;ktu vfHk;Drx.k d fo#) Hkkjrh; nM lfgrk dh èkkjk 302/34 d vèkhu viuk ekeyk fl) dju e lQy gvk gA rnulkj] e mu nkuk dk Hkkjrh; nM lfgrk dh èkkjk 302/34 d vèkhu vijkèk d fy, nk"kh ikrk g vkj vfHkfuèkkfjr djrk g vkj mudk mud vèkhu nk"kfl) djrk gA mudk tekur cèk jí fd;k tkrk g vkj mUg vfHkj{kk e fy;k tkrk gA**

33. हम पाते हैं कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध स्पष्ट चिकित्सीय साक्ष्य जो अभियोजन मामले के मुकाबले बिल्कुल भिन्न है की उपेक्षा करने में गंभीर गलती की। यह अभियोजन का विनिर्दिष्ट मामला है कि मृतक आग्नेयास्त्र उपहतियों से पीड़ित हुआ था जबकि डॉक्टर ने स्पष्टत: कथन किया है कि मृतक के शरीर पर पायी गयी उपहतियाँ तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी। ऐसा विरोधाभास अभियोजन मामले को पूरी तरह अस्त व्यस्त कर देगा। गवाहों में से कोई भी चश्मदीद गवाह नहीं है। उनके साक्ष्य भी तात्विक पहलूओं पर एक-दूसरे का खंडन कर रहे हैं। दिनांक 29.1.2013 का दोषसिद्धि और दंडादेश का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश विधि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

34. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों की दृष्टि में, अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे इन अपीलार्थीगण द्वारा किया बताया गया मृतक की हत्या का अपराध सिद्ध करने में विफल रहा है। अत: हम सत्र विचारण सं॰ 72 वर्ष 2008 में प्रधान सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 29 जनवरी, 2013 का दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश का आदेश अपास्त करते हैं। दोनों अपीलार्थीगण को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोप से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को न्यायिक अभिरक्षा से तुरन्त निर्मुक्त किया जाएगा यदि किसी अन्य अपराध में उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं है। यह दांडिक अपील अनुज्ञात की जाती है।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

अर्जुन रॉय उर्फ अर्जुन राम

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 8 of 2013. Decided on 10th May, 2013.

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 13 (1) (d) एवं 13 (2)—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 466, 467, 469, 471, 120B, 201, 423, 424 एवं 277—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—लोक सेवक द्वारा छल, कूटरचना एवं षडयंत्र–दस्तावेजों का मिथ्याकरण–संज्ञान–जब परिस्थितियों का परिवर्तित संवर्ग है, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन द्वितीय आवेदन पोषणीय होगा–व्यक्ति जो अभियोजन के अनुसार अधिकारपूर्ण स्वामी नहीं था के नाम को नामांतरित करते हुए याची द्वारा आदेश पारित किया गया था, यह भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 467, 468, 471 के अधीन कोई अपराध गठित नहीं करता है–भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 420, 423 एवं 424 के अधीन भी अपराध नहीं बनता है–याची को गलत आदेश पारित करता हुआ अभिकथित किया गया है जिसे पारित नहीं किया जाना चाहिए था–किसी को पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 13 (1) (d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन अभियोजित नहीं किया जा सकता है यदि उसने अपने में निहित शक्ति के प्रयोग में गलत आदेश पारित किया है–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 9, 13 से 17)

निर्णयज विधि.–(1975) 3 SCC 706; 2007(2) Supreme 459—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. P.P.N. Roy, For the Petitioner; Mr. Shailesh, For the Vigilance.

आदेश

याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता और निगरानी के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह आवेदन निगरानी केस सं॰ 51 वर्ष 2002 (विशेष केस सं॰ 59 वर्ष 2002) में पारित दिनांक 15.2.2010 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 469, 471, 120B, 201, 423, 424, 477 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन भी दंडनीय अपराधों का संज्ञान याची के विरुद्ध लिया गया है।

3. अभियोजन का मामला यह है कि जब यह पता चला था कि सरकारी भूमि को अंतरित किया जा रहा है और निजी व्यक्ति के नाम में नामांतरित किया जा रहा है, मामला दर्ज किया गया था जिसमें अभिकथित किया गया था कि किसी जगरनाथ सिंह ने 21.50 एकड़ माप वाली भूमि खरीदा था। उस भूमि को खरीदने पर उसने अपने नाम में जमाबंदी खोलने के लिए तत्कालीन अंचलाधिकारी, काँके अर्जुन रॉय उर्फ अर्जुन राम के समक्ष आवेदन दाखिल किया। इस पर, अंचलाधिकारी और उप-कलक्टर भूमि सुधार, राँची दोनों ने जमाबंदी खोलने का अनुशंसा किया और ऐसी अनुशंसा पर तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ ने अपना अनुमोदन दिया और तद्द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि याची ने डी॰ सी॰ एल॰ आर॰ और एस॰ डी॰ ओ॰ सहित अन्य अभियुक्तगण के साथ दुरभिसंधि में कूटरचना एवं छल का अपराध किया।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री रॉय निवेदन करते हैं कि 23.50 एकड़ माप वाली भूखंड सं॰ 3399 वाली भूमि अंतिम अधिकार अभिलेख पुनरीक्षण सर्वे में जरियागढ़ एस्टेट के भूतपूर्व जमींदार ठाकुर महेन्द्र नाथ सहदेव की गैर मजरुआ मालिक भूमि के रूप में दर्ज की गयी थी। भूतपूर्व जमींदार ने दिनांक 20.2.1944 को सादा हुकुमनामा द्वारा किसी शंकर महतो उर्फ शिव शंकर महतो को संपूर्ण भूमि बंदोबस्त किया था और बंदोबस्तदार को भूमि का खास कब्जा दिया गया था और उसके पक्ष में किराया रसीद भी जारी की गयी थी। बंदोबस्तदार शंकर महतो उर्फ शिवशंकर महतो गाँव का बंदोबस्त किया गया रैयत था और इसलिए बंदोबस्ती के फलस्वरुप उसने उक्त भूखंड पर अधिभोग अधिकार अर्जित किया। भूतपूर्व जमींदार ने भूमि का रिटर्न भी दाखिल किया था जिसमें बंदोबस्तदार शंकर महतो को रैयत के रूप में दर्शाया गया था।

5. आगे यह निवेदन किया गया था कि बंदोबस्तदार शंकर महतो को बिहार राज्य द्वारा रैयत के रूप में मान्यता दी गयी थी और इसलिए, उसके नाम में जमाबंदी खोली गयी थी। उक्त बंदोबस्तदार शंकर महतो वर्ष 1962 तक किसी मध्यक्षेप के बिना भूमि पर काबिज बना रहा। दिनांक 7.11.1962 को मूल बंदोबस्तदार ने 23.50 एकड़ में से 21.50 एकड़ भूमि को रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के माध्यम से विभिन्न व्यक्तियों को अंतरित किया। बाद में, उन खरीददारों ने दिनांक 18.2.1964 को चार विक्रय विलेख के माध्यम से किसी जगरनाथ सिंह को बेचा। जगरनाथ सिंह ने भूमि खरीदने पर भूमि जिसे उसने खरीदा था के विरुद्ध अपना नाम नामांतरित करवाने के लिए अंचलाधिकारी, काँके के समक्ष आवेदन दाखिल किया। उस समय पर याची अंचलाधिकारी हुआ करता था। इस पर नामांतरण केस सं॰ 38 (1)/R/27/ 1983-84 दर्ज किया गया था। सम्यक जाँच के बाद अंचलाधिकारी ने जगरनाथ सिंह का नाम नामांतरित करने के लिए भूमि सुधार उपकलक्टर, राँची को अनुशंसा किया जिन्होंने भी अनुशंसा किया और उस पर, तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ ने ऐसी अनुशंसा पर जगरनाथ सिंह के नाम में भूमि नामांतरित करने का आदेश पारित किया और इसलिए, दुर्विनियोग, कूटरचना का अपराध अथवा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (d) के अधीन भी अपराध करने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है, फिर भी न्यायालय ने पूर्वोक्तानुसार अपराध का संज्ञान लिया जो बिल्कुल अवैध है।

6. निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेश निवेदन करते हैं कि यह सत्य है कि भूमि जिसे गैर मजरुआ मालिक भूमि के रूप में दर्ज किया गया था भूतपूर्व जमींदार की थी जिसने भूमि को चार भिन्न खरीददारों को अंतरित किया था किंतु उनके बीच शंकर महतो कभी नहीं था, फिर भी शंकर महतो को बिहार राज्य द्वारा रैयत के रूप में मान्यता दी गयी थी और उसके नाम में जमाबंदी खोली गयी थी और इसलिए पश्चातवर्ती अंतरिती के नाम में शंकर महतो द्वारा किया गया कोई अंतरण अवैध था और, तद्द्वारा, इस याची ने प्रश्नगत भूमि के विरुद्ध जगरनाथ सिंह का नाम नामांतरित करने के लिए अनुशंसा करके अवैधता किया। आगे यह निवेदन किया गया था कि याची पहले संज्ञान लेने वाले आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के पास आया था, किंतु इस न्यायालय ने दिनांक 20 जुलाई, 2011 के अपने आदेश के तहत याची को विचारण के दौरान इन अभिवचनों को करने का निर्देश देते हुए उस रिट आवेदन को निपटाया था और, इसलिए, उसी आधार पर यह आवेदन पोषित नहीं किया जा सकता है क्योंकि पहले पारित आदेश के विपरीत कोई आदेश अपने पहले के आदेश के पुनर्विलोकन के तुल्य होगा।

7. इस प्रकार, पहला प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या यह आवेदन पोषणीय है?

8. याची के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री रॉय निवेदन करते हैं कि यह सत्य है कि पहले याची इस न्यायालय के पास आया था जब संज्ञान लेने वाले आदेश को चुनौती दी गयी थी और विचारण के दौरान उन समस्त बिंदुओं को उठाने की स्वतंत्रता याची को देते हुए उस आवेदन को निपटाया

गया था। किंतु, यह आवेदन परिवर्तित स्थिति में इस न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया है क्योंकि मामले के निपटान के बाद इस न्यायालय द्वारा अन्य सह-अभियुक्त का मामला यह अभिनिर्धारित करने के बाद अभिखंडित कर दिया गया था कि प्राथमिकी में किए गए अभिकथन कोई अपराध कभी नहीं गठित करते हैं जिसके अधीन संज्ञान लिया गया है और वह आदेश **बिंदेश्वरी प्रसाद झा बनाम झारखंड राज्य, निगरानी के माध्यम से एवं अन्य, (डब्ल्यू॰ पी॰ (दां॰) सं॰ 260 वर्ष 2010)** मामले में पारित किया गया था और, इसलिए, यह **एस॰ एम॰ एस॰ फार्मास्यूटिकल लि॰ बनाम नीता भल्ला एवं एक अन्य, 2007 (2) Supreme 459,** में दिए गए निर्णय की दृष्टि में बिल्कुल पोषणीय है।

9. लगभग समरुप स्थिति उक्त निर्दिष्ट मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष थी जिसके द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **विधि परामर्शी एवं अधीक्षक पश्चिम बंगाल बनाम मोहन सिंह एवं अन्य, (1975)3 SCC 706,** मामले में दिए गए निर्णय को ध्यान में लेकर अभिनिर्धारित किया था कि जब परिस्थितियों का परिवर्तित संवर्ग है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन द्वितीय आवेदन पोषणीय होगा। ऐसी स्थिति में, यह आवेदन बिल्कुल पोषणीय है क्योंकि यह प्रतीत होता है कि वर्तमान आवेदन परिवर्तित स्थिति में दाखिल किया गया है।

10. आगे प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या प्राथमिकी में याची के विरुद्ध इस सीमा तक किया गया अभिकथन कि इस याची ने व्यक्ति के नाम में नामांतरण के लिए गलत रूप से अनुशंसा किया, छल अथवा दुर्विनियोग का अपराध गठित करता है?

11. धाराओं 467, 468, 471 और 472 के अधीन अपराध गठित करने के लिए पुरोभाव्य शर्त कूटरचना है जो तब आकृष्ट होती है जब कोई भारतीय दंड संहिता की धारा 464 के निबंधनानुसार झूठा दस्तावेज (अथवा झूठा इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख अथवा उसका भाग) बनाता है।

12. भारतीय दंड संहिता की धारा 464 का विश्लेषण दर्शाता है कि यह झूठे दस्तावेजों को तीन कोटियों में विभक्त करता है:-

> *^^1. igyh dkfV og g tgk 0;fDr ;g fo'okl dkfjr fd, tku d vk'k; d lkFk fd ,lk nLrkot fdlh vU; 0;fDr }kjk vFkok fdlh vU; 0;fDr d çkfèkdkj }kjk ft ld }kjk vFkok ft ld çkfèkdkj }kjk og tkurk g fd bl cuk;k vFkok fu"ikfnr ugh fd;k x;k Fkk] xj bekunkj :i l vFkok diViod nLrkot cukrk ;k fu"ikfnr djrk gA*
>
> *2. nljh dkfV og g tgk 0;fDr xjbekunkj :i l vFkok diViod fofèki.k çkfèkdkj d fcuk jídj.k }kjk vFkok vU;Fkk }kjk nLrkot d fdlh rkfRod Hkkx e Lo; }kjk vFkok fdlh vU; 0;fDr }kjk cuk, tku vFkok fu"ikfnr fd, tku d ckn ifjofrr djrk gA*
>
> *3. rhljh dkfV og g tgk 0;fDr ;g tkur g, fd ,lk 0;fDr (a) food dh vfLFkjrk] (b) u'kk] vFkok (c) ml ij dh x;h çopuk d dkj.k nLrkot dh fo"k;oLr vFkok ifjoru dh çÑfr dk ugh tku ldrk Fkk] xj bekunkj :i l vFkok diViod fdlh 0;fDr dk nLrkot ij gLrk{kj dju] fu"ikfnr dju vFkok ifjofrr dju d fy, etcj djrk gA*
>
> *l{ki e] 0;fDr dk ^>Bk c;ku* nrk gvk dgk tkrk g ;fn (i) mlu dkb vkj gku vFkok fdlh vU; }kjk çkfèkÑr fd, tku dk nkok djr g, nLrkot cuk;k vFkok fu"ikfnr fd;k gk vFkok (ii) mlu nLrkot dk ifjofrr fd;k vFkok bld lkFk NMNkM fd;k gk(vFkok (iii) mlu çopuk djd vFkok 0;fDr tk viuh bfn;k d fu;=.k e ugh g l nLrkot çkIr fd;kA*

13. अत:, भले ही याची द्वारा व्यक्ति, जो अभियोजन के अनुसार अधिकारपूर्ण स्वामी नहीं था, के नाम को नामांतरित करता हुआ आदेश पारित किया गया था, यह भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467, 468, 469, 471 के अधीन कोई भी अपराध गठित नहीं करता है क्योंकि ऐसे किसी आदेश का, अवैध आदेश का भी, पारित किया जाना झूठा दस्तावेज बनाने के किसी लक्षण को कभी नहीं उपधारित करता है। जहाँ तक छल के अपराध का संबंध है, मैं यह समझने में विफल हूँ कि किस प्रकार अभिकथित कृत्य भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध गठित करता है क्योंकि याची को झूठा अथवा भ्रामक चित्रण करके अथवा किसी अन्य कार्रवाई या लोप द्वारा किसी को प्रवंचित करता हुआ अभिकथित नहीं किया गया है और न ही यह मामला है कि याची ने किसी संपत्ति को देने के लिए अथवा किसी व्यक्ति द्वारा उसे रखे जाने की सहमति देने के लिए कोई कपटपूर्ण अथवा गैरईमानदार उत्प्रेरण किया था अथवा उसे किसी चीज को करने अथवा नहीं करने के लिए जो वह करता अथवा नहीं करता यदि उसे इस प्रकार प्रवंचित नहीं किया गया होता, उसको आशयपूर्वक उत्प्रेरित किया था। अत: भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन छल का अपराध नहीं बनता है।

14. इसी समय पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 424 के अधीन अपराध नहीं बनता है क्योंकि याची को कपटपूर्वक संपत्ति हटाता अथवा छुपाता हुआ अभिकथित कभी नहीं किया गया है और न ही यह भारतीय दंड संहिता की धारा 423 के अधीन मामला हो सकता है जो प्रतिफल का झूठा बयान अंतर्विष्ट करने वाले अंतरण विलेख के गैरईमानदार अथवार कपटपूर्ण निष्पादन पर विचार करती है।

15. जहाँ तक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन अपराध का संबंध है, याची को गलत आदेश, पारित करता अभिकथित किया गया है जिसे उसे इसे दृष्टि में रखते हुए पारित नहीं करना चाहिए था कि पूर्व अंतरिति द्वारा भूमि शंकर महतो को कभी अंतरित नहीं की गयी थी किंतु उसे भ्रष्ट आचरण अपनाकर अथवा स्वयं के लिए धनीय लाभ/बहुमूल्य चीज पाने के लिए अवैध साधन अपनाकर आदेश पारित करता हुआ अभिकथित कभी नहीं किया गया है। धारा 13 (1) (d) के अधीन अपराध गठित करने के लिए पूर्वोक्त आवश्यक अवयवों की पूरी कमी है क्योंकि धनीय लाभ प्राप्त करता हुआ दर्शाने के लिए रत्ती भर साक्ष्य/सामग्री प्रस्तुत नहीं किया जा सका था और इस प्रकार, किसी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन अभियोजित नहीं किया जा सकता है यदि कोई अपने में निहित शक्ति के प्रयोग में गलत आदेश पारित करता है।

16. जहाँ तक इस याची का संबंध है, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 469, 471, 120B, 201, 423, 424, 477 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन भी दर्ज अपराध का संज्ञान लेते हुए दिनांक 15.2.2010 के आदेश सहित निगरानी केस सं॰ 51 वर्ष 2002 (विशेष केस सं॰ 59 वर्ष 2002) की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

17. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

राजकुमार एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 47 of 2013. Decided on 18th June 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A, 323, 379 एवं 34 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3 एवं 4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 177 एवं 178—भारत का संविधान—अनुच्छेद 226—छल, क्रूरता एवं उपहति—न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता—वाद हेतुक तथ्यों का गुच्छा है जिसे याची को अपने पक्ष में निर्णय के लिए उसको हकदार बनाने के लिए सिद्ध करना होगा—भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 (2) के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का पता लगाने के प्रयोजन से प्रत्यर्थी का ठहरना और निवास स्थान प्रासंगिक नहीं है किंतु उच्च न्यायालय की अधिकारिता वाद हेतुक, पूर्णतः अथवा अंशतः, के प्रोद्भवन के फलस्वरुप है—प्रत्यर्थी दांडिक मामले का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित कर रहा है कि पक्षों के बीच सुलह केवल झारखंड राज्य में हुए और दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए वाद हेतुक गठित करते हैं—वाद हेतुक झारखंड राज्य में उद्भूत हुआ और अभिखंडन दोनों पक्षों के हित में है—बिहार राज्य में दर्ज प्राथमिकी अभिखंडित किए जाने की दायी है।

(पैराएँ 11, 14, 15, 16, 19, 20 एवं 21)

निर्णयज विधि.—(2000) 7 SCC 640; (2013) 4 SCC 58; (2003) 4 SCC 675; AIR 1953 SC 210; AIR 1953 SC 210—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. Sumeet Gododia, For the Petitioners; M/s Ram Nivas Roy, S.P. Roy, K.K. Singh, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका यह प्रार्थना करते हुए दाखिल की गयी है कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A, 323, 379, 34 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराएँ 3 और 4 के अधीन दंडनीय अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 2.7.2007 की हथौरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 27/2007, जो अब जिला समस्तीपुर (बिहार) में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसरा के न्यायालय में लंबित है, की प्राथमिकी अभिखंडित की जाय।

3. कार्यालय ने इस न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में इस कारण से आपत्ति किया है कि प्राथमिकी बिहार राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता में अर्थात पटना उच्च न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत दर्ज की गयी थी और प्राथमिकी के अनुसरण में दांडिक मामला पी॰ एस॰ केस सं॰ 27/2007 भी बिहार राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले जिला समस्तीपुर (बिहार) में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा के न्यायालय में लंबित है।

4. क्षेत्रीय अधिकारिता का विवाद्यक विनिश्चित करने के लिए अग्रसर होने के पहले इस रिट याचिका को दाखिल किए जाने और इस न्यायालय की खंडपीठ तक आने की ओर ले जाने वाले मामले के तथ्यों की पृष्ठभूमि का वर्णन करना समुचित होगा।

5. याची सं॰ 1 और प्रत्यर्थी सं॰ 3 पति और पत्नी हैं। उनका विवाह जिला दरभंगा (बिहार), पी॰ एस॰ बिरोल, ग्राम अर्गा में दिनांक 29.6.2001 को संपन्न हुआ था। उक्त विवाह अंततः दुखी विवाह बन गया और, इसलिए, याची सं॰ 1 ने प्रमुख न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची के न्यायालय में वैवाहिक वाद सं॰ 99 वर्ष 2007 इस अभिकथन के साथ दाखिल किया कि विवाहोपरांत प्रत्यर्थी-पत्नी याची सं॰ 1 के साथ समस्तीपुर में उसके गाँव आयी और वहाँ एक सप्ताह रही। उक्त वैवाहिक संबंध से मार्च, 2002 में उनकी पुत्री का जन्म हुआ था। प्रत्यर्थी को दिसंबर, 2002 में, राँची में याचीगण के माता-पिता के

घर लाया गया था जहाँ वह दिनांक 18.12.2002 से दिनांक 17.1.2003 तक रही। तत्पश्चात, दुर्व्यवहार एवं क्रूरता का अभिकथन प्रत्यर्थी पत्नी के विरुद्ध किया गया था और आगे अभिकथन किया गया था कि वह विवाह के पहले सिजोफ्रेनिया से पीड़ित थी। उक्त तलाक याचिका में प्रत्यर्थी पत्नी उपस्थित हुई और लिखित कथन दाखिल किया और अंततः विचारण के बाद विचारण न्यायालय ने दिनांक 14 सितंबर, 2009 को तलाक वाद डिक्री किया। तलाक डिक्री क्रूरता के आधार पर प्रदान किया गया था और मानसिक असंतुलन का अभिकथन विचारण न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। विचारण न्यायालय ने तलाक डिक्री प्रदान करते हुए हिन्दु विवाह अधिनियम, 1956 की धारा 25 के अधीन प्रत्यर्थी पत्नी को तीन लाख रुपयों का स्थायी निर्वाह भत्ता अधिनिर्णीत किया। डिक्री के भाग अर्थात् आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री में प्रत्यर्थी को तीन लाख रुपयों के स्थायी निर्वाह भत्ता के प्रदान के विरुद्ध व्यथित होकर याची सं॰ 1 ने प्रथम अपील सं॰ 199 वर्ष 2009 दाखिल किया। प्रत्यर्थी पत्नी ने भी तलाक डिक्री को चुनौती देने के लिए एक अन्य प्रथम अपील सं॰ 183 वर्ष 2010 दाखिल किया। दोनों अपीलों को पहले ही ग्रहण किया जा चुका है। जब मामला विचार किए जाने के लिए इस न्यायालय के समक्ष आया, इस न्यायालय ने पक्षों को झारखंड राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, राँची (झालसा) के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया और पक्षों के बीच समझौता पर आने के लिए सुलहकर्ता द्वारा मामला विचारार्थ लिया गया था। सुलहकर्ता के समक्ष दोनों पक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए और दिनांक 16.7.2012 को पृथक लिखित समझौता आवेदन दाखिल किया और सुलहकर्ता 'झालसा' ने उक्त प्रथम अपील सं॰ 199 वर्ष 2009 और 183 वर्ष 2010 में दिनांक 17.7.2012 को इस न्यायालय में याची सं॰ 1 और प्रत्यर्थी पत्नी के बीच सुलह का परिणाम दाखिल किया। सुलहकर्ता की रिपोर्ट से प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच मामला सुलझा लिया गया है और दोनों पक्ष सहमत हुए थे कि याची सं॰ 1 प्रत्यर्थी पत्नी को स्थायी निर्वाह भत्ता के विरुद्ध पाँच लाख रुपयों का भुगतान करेगा और उस राशि की पहली किश्त एक लाख रुपयों का भुगतान बैंक ड्राफ्ट के रूप में इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 20.7.2012 को याची द्वारा किया जाएगा। यह सहमति भी हुई थी कि चार लाख रुपयों की दूसरी किश्त का भुगतान दो माह के भीतर अथवा उस तिथि पर जिसे उच्च न्यायालय द्वारा नियत किया जा सकता है, याची सं॰ 1 द्वारा प्रत्यर्थी पत्नी को किया जाएगा। आगे, दोनों पक्ष सहमत हुए थे कि वे अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा, समस्तीपुर (बिहार) के न्यायालय में लंबित दांडिक कार्यवाही में संयुक्त सुलह याचिका दाखिल करेंगे। दोनों पक्ष सहमत हुए कि याची सं॰ 1 द्वारा प्रत्यर्थी पत्नी को पाँच लाख रुपयों की सहमत राशि के पूर्ण और अंतिम भुगतान के बाद दांडिक मामला निपटा दिया जाएगा। आगे सहमति हुई थी कि पक्षों के बीच कोई अन्य विवाद, यदि हो, भी सुलह के आधार पर निपटा दिया जाएगा। यह रिपोर्ट दिनांक 24 जुलाई, 2012 को इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया और उस दिन अपीलार्थी पति के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी पत्नी के विद्वान अधिवक्ता को एक लाख रुपयों का डिमांड ड्राफ्ट सौंपा। जहाँ तक चार लाख रुपयों की शेष राशि का संबंध है, उस प्रयोजन से अपीलार्थी पति को दो माह का समय प्रदान किया गया था और इसलिए मामला स्थगित कर दिया गया था। दिनांक 8 अक्टूबर, 2012 को मामला पुनः इस न्यायालय के समक्ष आया और उस दिन यह इंगित किया गया था कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A सह-पठित धाराएँ 323 और 379/34 के अधीन दाखिल दांडिक मामला, जो बिहार राज्य में लंबित है, अभी भी वापस नहीं लिया गया है। अतः प्रत्यर्थी पत्नी को दांडिक मामला वापस लेने के लिए आगे समय प्रदान किया गया था और यह आदेश दिया गया था कि डिमांड ड्राफ्ट, जो प्रत्यर्थी के लिए तैयार था, प्रत्यर्थी के हित की सुरक्षा के प्रयोजन से अपीलार्थी पति के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने पास रखा जाएगा। तब दिनांक 27 नवंबर, 2012 को

अतिरिक्त समय प्रदान किया गया था ताकि प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा दांडिक मामला वापस लिया जा सके। दिनांक 5 फरवरी, 2013 को पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह सूचित किया गया था कि यद्यपि बिहार राज्य में संबंधित न्यायालय के समक्ष दांडिक मामला वापस लेने के लिए प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा आवेदन दाखिल किया गया है किंतु विचारण न्यायालय द्वारा आदेश पारित नहीं किया गया है।

6. यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने कोई आदेश पारित नहीं किया था क्योंकि विचारण न्यायालय के पास दांडिक कार्यवाही शमनित करने अथवा अभिखंडित करने की अधिकारिता नहीं है क्योंकि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 320 के अधीन अपराध शमनीय नहीं है। इस स्थिति को पाते हुए याची पति ने याची सं॰ 2 से 4 तक के साथ भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A, 323, 379, 34 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराएँ 3 और 4 के अधीन दंडनीय अभिकथित अपराधों के लिए दिनांक 2.7.2007 की हथौरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 27/2007, जो अब अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा, जिला समस्तीपुर (बिहार) के न्यायालय में लंबित है, के अभिखंडन के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस दांडिक रिट याचिका को दाखिल किया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने वैवाहिक मामलों अर्थात् प्रथम अपील सं॰ 199 वर्ष 2009 और 183 वर्ष 2010 के लंबित रहने की दृष्टि में इस दांडिक रिट याचिका को खंडपीठ के समक्ष रखने का आदेश दिया है। अत: यह दांडिक रिट याचिका हमारे समक्ष है।

7. मामले के तथ्यों से यह भी प्रतीत होता है कि अब तक विचारण न्यायालय, जिसने वैवाहिक केस सं॰ 99 वर्ष 2007 में स्थायी निर्वाह भत्ता के साथ तलाक डिक्री पारित किया, की क्षेत्रीय अधिकारिता को प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा चुनौती नहीं दी गयी है और तलाक डिक्री झारखंड राज्य में विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान की गयी थी। निर्विवादत:, प्राथमिकी बिहार राज्य में हथौरी पुलिस थाना में दर्ज की गयी थी और इस पर हथौरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 27/2007 के रूप में दांडिक मामला दर्ज किया गया था। उक्त प्राथमिकी दाखिल करने के लिए और दांडिक मामले के विचारण के लिए वाद हेतुक उक्त पुलिस थाना के क्षेत्रीय अधिकारिता में और परिणामस्वरुप पटना उच्च न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा, जिला समस्तीपुर (बिहार) की क्षेत्रीय अधिकारिता के अधीन प्रोद्भूत हो सकता था और हमारे समक्ष विचारार्थ प्रश्न यह है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में क्या झारखंड उच्च न्यायालय के पास बिहार राज्य में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा, जिला समस्तीपुर के न्यायालय में लंबित दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने की अधिकारिता है।

8. अपीलार्थी पति के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुमित गडोडिया के अनुसार, इस न्यायालय के पास याचिका ग्रहण करने की अधिकारिता है। विद्वान अधिवक्ता श्री सुमित गड़ोडिया ने निवेदन किया कि तथ्यों का गुच्छा वाद हेतुक गठित करता है जिन्हें पक्ष द्वारा अनुतोष पाने के लिए न्यायालय के समक्ष आवश्यकत: प्रस्तुत करना है और पक्षों के बीच समझौता में समाप्त होने वाली घटनाएँ झारखंड राज्य में हुई थी। तर्क के लाभ के लिए, भले ही दांडिक मामला दर्ज करने के लिए कुल वाद हेतुक बिहार राज्य में उद्भूत हुआ किंतु प्राथमिकी और दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए वाद हेतुक निश्चय ही झारखंड राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत उद्भूत हुआ जहाँ तलाक के पहले पक्षगण साथ-साथ रह रहे थे और तत्पश्चात झारखंड राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत याची सं॰ 1 द्वारा तलाक याचिका दाखिल की गयी थी और तत्पश्चात याची सं॰ 1 ने इस न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील दाखिल किया जिसे ग्रहण किया गया है। प्रथम अपील में, इस न्यायालय ने पक्षों के बीच समझौते की संभावना खोजने के लिए मामला 'झालसा' के सचिव को निर्दिष्ट किया और वहाँ दोनों पक्ष मामला

सुलझाने के लिए सहमत हुए और वे झारखंड राज्य, विशेषत: स्वयं राँची शहर में क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत समझौते पर आए। झारखंड राज्य के अंतर्गत दोनों पक्षों ने इस समझौते पर कृत्य किया था जिसे इस न्यायालय द्वारा प्रथम अपील में सम्यक रूप से दर्ज किया गया है और याची सं॰ 1 ने प्रत्यर्थी पत्नी को झारखंड राज्य में एक लाख रुपयों का ड्राफ्ट सौंपा जिसे प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा भुनाया गया है। मामला सुलझाने के इच्छुक प्रत्यर्थी पत्नी ने आगे समझौते पर कार्रवाई किया और झारखंड राज्य में राँची में हुए समझौते का लाभ लेने के लिए जिला समस्तीपुर (बिहार) में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा के समक्ष आवेदन दाखिल किया। उक्त न्यायालय अर्थात् अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा के विरुद्ध विधिक वर्जना के कारण उक्त न्यायालय प्राथमिकी अभिखंडित करने अथवा दांडिक कार्यवाही छोड़ने की अवस्था में नहीं था और, इसलिए, न्यायालय के समक्ष आवेदन को किसी आदेश के बिना लंबित रखे रहा। अत: दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए वाद हेतुक झारखंड राज्य, विशेषत: स्वयं राँची शहर, में प्रोदभूत हुआ।

9. याची सं॰ 1 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 जैसा यह था और अनुच्छेद 226 के अधीन खंड (1-A) के अंत: स्थापन के बाद जिसे बाद में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 (2) के रूप में संख्यांकित किया गया था, के प्रति निर्देश में वाद हेतुक के विवाद्यक पर **नवीन चंद्रा एन॰ मजीथिया बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2000)7 SCC 640,** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक निर्णयों पर विचार करने के बाद नवीनचंद्र मजीथिया मामले में अभिनिर्धारित किया कि यह सुनिश्चित है कि ''वाद हेतुक'' का अर्थ है तथ्यों का गुच्छा जिसे, यदि इसका खंडन किया जाता है, अपने पक्ष में निर्णय का उसको हकदार बनाने के लिए याची को सिद्ध करना होगा। अत:, रिट याची को दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन का अनुतोष पाने के लिए पक्षों के बीच समझौता और कि वे घटनाएँ केवल इस न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता में हुई को सिद्ध करना होगा। **नवीन चंद्र एन॰ मजीथिया मामले (ऊपर)** में भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्राथमिकी राज्य विशेष में दर्ज की गयी थी, यह विनिश्चित करने का एकमात्र मापदंड नहीं है कि एक अन्य राज्य की अधिकारिता के क्षेत्रीय सीमाओं के अंतर्गत वाद हेतुक अंशत: भी उद्भूत नहीं हुआ है। न ही यह कहा जा सकता है कि कोई व्यक्ति केवल एक अन्य राज्य की क्षेत्रीय सीमाओं में घुसकर अथवा वहाँ कुछ समय रूक कर अथवा उसमें स्थायी निवास बनाकर भी नकली वाद हेतुक सृजित कर सकता है अथवा इसे गढ़ सकता है। उच्च न्यायालय के पास जाने वाले व्यक्ति का निवास स्थान उस विशेष रिट याचिका में वाद हेतुक के रूपरेखा को विनिश्चित करने का मापदंड नहीं है। अत: तथ्यों के गुच्छा से वाद हेतुक का पता लगाने की आवश्यकता है और तथ्यों के गुच्छा से अनुतोष पाने के लिए इसे आवश्यकत: सिद्ध करने की आवश्यकता है।

10. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि **जितेन्द्र रघुवंशी एवं अन्य बनाम बबिता रघुवंशी एवं एक अन्य, (2013)4 SCC 58,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के बिल्कुल हाल के निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वैवाहिक विवादों में अभिनिर्धारित किया कि वैवाहिक विवादों का वास्तविक समाधान प्रोत्साहित करना न्यायालयों का कर्तव्य है विशेषत: जब इनमें काफी वृद्धि हो रही है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि न्याय का उद्देश्य सुरक्षित करने के प्रयोजन से दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 320 प्राथमिकी, परिवाद अथवा पश्चातवर्ती दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने की शक्ति के प्रयोग के प्रति वर्जना नहीं होगी।

11. भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 (2) प्रावधानित करता है कि उच्च न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के बाहर स्थित प्राधिकार भी किंतु वाद हेतुक अथवा वाद हेतुक का भाग उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत प्रोद्भूत हुआ, तब ऐसा उच्च न्यायालय उस न्यायालय या कोई अन्य राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के बाहर स्थित प्राधिकार के उपर अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है। **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य, (2003)4 SCC 675,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय न्याय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए समुचित मामलों में दांडिक कार्यवाही अथवा प्राथमिकी अथवा परिवाद अभिखंडित करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है और संहिता की धारा 320 संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्तियों को सीमित अथवा प्रभावित नहीं करती है।

12. प्रत्यर्थी पत्नी के विद्वान अधिवक्ता ने याची के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवादों का समर्थन किया और निवेदन किया कि पक्षों के बीच विवाद सुलझा लिया गया है और वह भी काफी पहले दिनांक 16.7.2012 को और दोनों पक्षों ने मामला सुलझाने के लिए सुलहकर्ता, 'झालसा', राँची के समक्ष लिखित आवेदन दिया और वे दिनांक 17.7.2012 के अपने मिनट्स/रिपोर्ट में सुलहकर्ता द्वारा दर्ज निबंधनों और शर्तों से सहमत हुए हैं। प्रत्यर्थी पत्नी ने पहले ही एक लाख रुपयों का भुगतान प्राप्त कर लिया है और दांडिक मामला के लंबित रहने के कारण वह चार लाख रुपयों की शेष स्थायी निर्वाह भत्ता नहीं पा रही है यद्यपि प्रत्यर्थी पत्नी को भुगतान के लिए याची सं॰ 1 के विद्वान अधिवक्ता के पास भुगतान तैयार हैं।

13. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन पर विचार किया है और याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए उन सुविचारित निर्णयों के तथ्यों का परिशीलन किया है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 (2) निम्नलिखित है:–

> *"226 (2) fdlh ljdkj] ikfèkdkjh ;k 0;fDr dk fun'k] vkn'k ;k fjV fudkyu dh [kM (1) }kjk inÙk 'kfDr dk i;kx mu jkT;{k=k d lcèk e] ftud Hkhrj ,lh 'kfDr d i;kx d fy, okn grd i.kr% ;k Hkkxr% mRiUu gkrk g] vfèkdkfjrk dk i;kx dju oky fdlh mPp U;k;ky; }kjk Hkh] bl ckr d gkr g, Hkh fd;k tk ldxk fd ,lh ljdkj ;k ikfèkdkjh dk LFkku ;k ,l 0;fDr dk fuokl&LFkku mu jkT;{k=k d Hkhrj ugh gA***

14. नवीनचंद्र एन॰ मजीथिया (उपर) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 पर विचार किया गया है जैसा यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 (2) के अंत: स्थापन के पहले और अनुच्छेद 226 के अधीन खंड (2) के अंत:स्थापन के बाद था। उक्त निर्णय से प्रतीत होता है कि **चुनाव आयोग बनाम साका वेंकटा सुब्बा राव, AIR 1953 SC 210,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के संवैधानिक पीठ के निर्णय के कारण संविधान में पंद्रहवाँ संशोधन करना आवश्यक बन गया। जिसके द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 में खंड (1A) जोड़ा गया था और बाद में इसके बयालिसवें संशोधन द्वारा भारत के संविधान के उपखंड (2) के रूप में संख्यांकित किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 226 में खंड 2 अंत: स्थापित करने का उद्देश्य **चुनाव आयोग बनाम साकू वेंकटा सुब्बा राव, AIR 1953 SC 210,** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को अधिक्रांत करना था। **नवीनचंद्र एन॰ मजीथिया** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 226 के खंड (2) की दृष्टि में क्षेत्रों जिनके अंतर्गत ''वाद हेतुक, पूर्णत: अथवा अंशत: उद्भूत होता है'' के संबंध में उच्च न्यायालयों को शक्ति प्रदत्त की गयी थी और कोई फर्क नहीं पड़ता है कि संबंधित प्राधिकारी का पीठ उस उच्च न्यायालय की अधिकारिता की क्षेत्रीय सीमाओं के बाहर है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि इस प्रकार संशोधन विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा जारी रिट के क्षेत्र के विस्तार को विस्तारित करने के लिए लक्ष्यित है।

15. यह सुनिश्चित विधि है कि वाद हेतुक तथ्यों का गुच्छा है जिसे, यदि इसका खंडन किया जाता है, अपने पक्ष में निर्णय का उसको हकदार बनाने के लिए याची को सिद्ध करना होगा। इस मोड़ पर यहाँ यह उल्लेख करना समुचित होगा कि ऐसे मामले में जहाँ किसी सरकार अथवा प्राधिकारी अथवा किसी पक्ष के विरुद्ध अनुतोष इप्सित किया जाता है जिसका सीट उच्च न्यायालय के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं है अथवा व्यक्ति उच्च न्यायालय के क्षेत्र के अंतर्गत निवास नहीं कर रहा है, तब उस स्थिति में यदि वाद हेतुक, पूर्णत: अथवा अंशत: उच्च न्यायालय की अधिकारिता में प्रोद्भूत हुआ, उक्त उच्च न्यायालय इस तथ्य की ऐसे सरकार अथवा प्राधिकारी अथवा ऐसे व्यक्ति का निवास स्थान उच्च न्यायालय के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं है, को ध्यान में लिए बिना अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है। निवास स्थान को ध्यान में लिए बिना न्यायालय की अधिकारिता जिसकी अधिकारिता में वाद हेतुक अथवा वाद हेतुक का भाग प्रोद्भूत हुआ को मान्यता देने के लिए अधिकारिता का व्यापक प्रदत्त करण है। अत:, अगर उच्च न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के बाहर अपना सीट रखनेवाले किसी सरकार अथवा प्राधिकारी के विरुद्ध कोई व्यक्ति उपचार इप्सित कर रहा है, किंतु वाद हेतुक उस शहर में उद्भूत हुआ जिसके उपर उच्च न्यायालय की अधिकारिता है, तब उस स्थिति में, उच्च न्यायालय में रिट पोषित किया जा सकता है जहाँ ऐसे सरकार अथवा प्राधिकारी का सीट नहीं है। तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 (2) के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का पता लगाने के प्रयोजन से प्रत्यर्थी का रुकना और निवास प्रासंगिक नहीं है बल्कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता वाद हेतुक के पूर्णत: अथवा अंशत: प्रोद्भवन के फलस्वरुप है।

16. इस मामले में, याची अनुतोष इप्सित कर रहा है, वस्तुत: पुलिस थाना अथवा बिहार राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत अवस्थित न्यायालय के विरुद्ध नहीं यद्यपि रिट अधिकारिता में दांडिक कार्यवाही का अभिखंडन इप्सित किया गया है जिसे उक्त पुलिस थाना में आरंभ किया गया है और जो बिहार राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत जिला समस्तीपुर (बिहार) में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा के न्यायालय में लंबित है और यदि कार्यवाही अभिखंडित की जाएगी, वह प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा आरंभ की गयी कार्यवाही होगी केवल जो संबंधित पक्ष है और उस अभिखंडन के विरुद्ध व्यथित हो सकती है। वर्तमान मामले में, वाद हेतुक तथ्यों का गुच्छा है और जो दोनों पक्षों के बीच है और न कि पुलिस थाना अथवा न्यायालय से संबंधित अथवा सरोकार रखता तथ्य। अत:, याची इस मामले में यह स्थापित करना इप्सित कर रहा है कि वैवाहिक विवाद में पक्षों के बीच सुलह हो गया है और उस सुलह के कारण प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल दांडिक मामला अभिखंडित कर दिया जाए। प्रत्यर्थी पत्नी न केवल इस न्यायालय की अधिकारिता को चुनौती नहीं दे रही है बल्कि उसने इस न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत सुलह कार्यवाही में भाग भी लिया था और वस्तुत: लाभार्थी है यदि दांडिक कार्यवाही जिसे उसने आरंभ किया और वह वापस नहीं ले सकती है अभिखंडित की जाती है। तब उस स्थिति में सुलह की ओर ले जाने वाले तथ्य और पक्षों के बीच सुलह का तथ्य केवल झारखंड राज्य में हुआ और दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए वाद हेतुक गठित किया है। यदि हम दांडिक मामला अभिखंडित करने के लिए कठोर टेक्निकल दृष्टिकोण अपनाते है, सुलह की ओर ले जाने वाली कोई घटना अथवा तथ्य बिहार राज्य में अथवा क्षेत्र जहाँ दांडिक मामला लंबित है के अंतर्गत उद्भूत नहीं हुआ, तब उस स्थिति में भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 (2) इस न्यायालय को समुचित आदेश पारित करने के लिए सशक्त बनाता है जिसका प्रभाव बिहार राज्य के क्षेत्र में हो सकता है क्योंकि प्रश्नगत न्यायालय बिहार राज्य में स्थित है। **बी० एस० जोशी एवं अन्य (उपर)** के मामले में पैरा 14 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्टत: निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

*"14. ble dkbZ lng ugha gS fd Hkkjrh; nM lafgrk eas èkkjk 498A varfoZ"V djus okyk vè;k; XX-A dh ij¶LFkkiuk dk mís'; mlds ifr vFkok mlds ifr ds lacaèk;ks }kjk L=h dh ;kruk dk jksduk FkkA èkkjk 498A ifr vkSj mlds lacaèk;ksa] tks ngst dh voSèk ekax dk lr"V djus ds fy, mls vFkok mlds lacaèk;ks dks çrkfMr djus ds fy, iRuh dks ijs'kku djrs gSa vFkok ;kruk nsrs gSa] dks nafMr djus dh nf"V ls tksM+h x;h FkhA gkbij VsDudy nf"Vdks.k vuRikind gksxk vkSj L=h ds fgr ds fo#) vkSj ml mís'; ftlds fy, çkoèkku tksM+k x;k gS ds fo#) ÑR; djxkA çR;sd lHkkouk gS fd U;k; ds mís'; dks ijk djus ds fy, dk;okgh vfHk[kafMr djus dh vrfufgr 'kfDr dk vç;ksx L=h dks igys lgs djus ls jksdxkA ;g Hkkjrh; nM lafgrk ds vè;k; XXA dk mís'; ugha gA**

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में यह स्पष्ट है कि हाइपरटेक्निकल दृष्टिकोण ग्रहण नहीं किया जा सकता है जो अनुत्पादक होगा और स्त्री के हित के विरुद्ध और उस उद्देश्य जिसके लिए धारा 498A का प्रावधान भारतीय दंड संहिता में जोड़ा गया है के विरुद्ध कृत्य करेगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जितेन्द्र रघुवंशी एवं अन्य (उपर)** के मामले में हाल के निर्णय में अनेक पूर्व निर्णयों पर विचार किया है और पैराओं 15 और 16 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"15. gekjs nf"Vdks.k es] oookfgd fooknks dks okLrfod lekèkku dk çkRlkfgr djuk U;k;ky;k dk drO; gS fo'ks"kr% tc buesa dkQh of) gbZ gSA Hkys gh vijkèk xEHkhj 'keuh; g] ;fn oookfgd fookn ls lacaèkr gS vkSj U;k;ky; lr"V gS fd i{kks us blsa fe=rkiod vkSj fdlh ncko ds fcuk lqy>k fy;k gS] ge vfHkfuèkkfjr djrs gS fd U;k; dks mís'; lqjf{kr djus ds ç;kstu ls lafgrk dh èkkjk 320 çkFkfedh] ifjokn vFkok i'pkrorh nkfMd dk;okgh vfHk[kafMr djus dh 'kfDr ds ç;ksx ij otuk ugha gksxhA

*16. gky ds le; esa oookfgd fooknksa esa crgk'kk of) gbZ gSA fookg dk lLFkku egRoi.kZ LFkku j[krk gS vkSj blds lekt esa egRoi.kZ Hkfedk gSA vr%] thou esa fLFkj gksu vkSj 'kkfriod jgus ds fy, mudks l{ke cukus ds fy, O;fDr;ks ds fgr esa çR;sd ç;kl fd;k tkuk pkfg,A ;fn i{kx.k fofèk ds U;k;ky; esa bls yMus ds ctk, viu O;fDrØek ij fopkj djrs gS vkSj vkilh lgefr }kjk viu fooknks dks fe=rkiod lekIr djrs g] rc oookfgd ekeyks esa i.kZ U;k; djus ds fy, U;k;ky;k dks viuh vlkèkkj.k vfèkdkfjrk dks ç;ksx djus esa de lsdkp djuk pkfg,A ;g dFku djuk ijkuh ckr gS fd èkkjk 482 ds vèkhu 'kfDr dk ç;ksx ;nk&dnk vkSj lrdrk ls fd;k tkuk pkfg, vkSj doy rc tc U;k;ky; vfHkys[k ij miyCèk lkefx;ks ds vkèkkj ij lr"V gS fd dk;okgh dks tkjh j[kus dh vuefr nuk U;k;ky; dh çfØ;k dk n#i;ksx gksxk vFkok fd U;k; dk mís'; vko';d cukrk gS fd dk;okgh vfHk[kafMr dj nh tkuh pkfg,A ge ;g Hkh Li"V djrs gS fd ,slh 'kfDr dk ç;ksx çR;sd ekey ds rF;ks vkSj ifjfLFkfr;ks ij fuHkj djxk vkSj okLrfod rFkk lkjoku U;k; djus ds fy, doy ftlds ç'kklu ds fy, U;k;ky;k dk vfLrRo gS] lefpr ekeyks esa blds ç;ksx djuk gksxkA oookfgd fooknks ds okLrfod lekèkku dks çkRlkfgr djuk U;k;ky;k dk drO; gS vkSj lafgrk dh èkkjk 482 mPp U;k;ky; dks vkSj lfoèkku dk vuPNsn 142 bl U;k;ky; dks ,sls vkn'kZ ikfjr djus ds fy, l{ke cukrk gSA**

18. जितेन्द्र रघुवंशी एवं अन्य (उपर) के मामले के निर्णय के पैरा 16 की दृष्टि में दांडिक मामले के अभिखंडन के मामले में अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए न्यायालयों का

कर्तव्य यह है कि ऐसा आदेश पारित करने के पहले न्यायालय को संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर मौजूद सामग्री से संतुष्ट होना चाहिए कि कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा अथवा न्याय का उद्देश्य आवश्यक बनाता है कि कार्यवाही अभिखंडित कर दी जाए।

19. अत:, उक्त चर्चा की दृष्टि में, हमारा सुविचारित मत है कि इस मामले में दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए वाद हेतुक अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका दाखिल करने के लिए याची को वाद हेतुक उद्‌भूत करते हुए झारखंड राज्य में उद्‌भूत हुआ और उक्त अभिखंडन दोनों पक्षों के हित में है और निश्चय ही यह न्याय के हित में है कि दांडिक मामले के अभिखंडन सहित विवाद का समापन प्रत्यथी पत्नी और याची को पक्षों द्वारा सहमत निर्वाह भत्ता प्राप्त करने सहित समझौते का लाभ लेने के लिए हकदार बनाएगा।

20. इस मोड़ पर हम आगे उल्लेख कर सकते हैं कि पक्षों ने दिनांक 16.7.2012 को विवाद सुलझा लिया और समझौते पर कृत्य किया गया था और प्रत्यर्थी पत्नी ने स्थायी निर्वाह भत्ता बकाया के विरुद्ध एक लाख रुपया पाकर समझौते का लाभ लिया। तब, प्रत्यर्थी पत्नी ने दिनांक 27.11.2012 को जिला समस्तीपुर (बिहार) में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा के न्यायालय में आवेदन दिया। आज भी प्रत्यर्थी पत्नी मामले को पूरी तरह सुलझाने की इच्छुक है और, इसलिए, यह न्यायालय संतुष्ट है कि यह पक्षों के बीच सद्‌भावपूर्ण समझौता है और प्रत्यर्थी पत्नी के पास अपना विचार बदलने के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध था यदि मामले को नहीं सुलझाने की इच्छा थी। अत:, उस स्थिति में, हमारा सुविचारित मत है कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A, 323, 379, 34 सहपठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3 और 4 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दिनांक 2.7.2007 के हथौरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 27/2007 से संबंधित प्राथमिकी दर्ज करने के बाद आरंभ की गयी कार्यवाही, जो अब जिला समस्तीपुर (बिहार) में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय में लंबित है, अभिखंडित किए जाने की दायी है। अत: क्षेत्रीय अधिकारिता की आपत्ति को उलटते हुए यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A, 323, 379, 34 सह पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराएँ 3 एवं 4 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दिनांक 2.7.2007 के हथौरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 27/2007 से संबंधित प्राथमिकी दर्ज करने के बाद आरंभ की गयी कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

21. इस आदेश की प्रति दोनों पक्षों द्वारा पृथक रूप से जिला समस्तीपुर (बिहार) में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रोसड़ा के न्यायालय में प्रस्तुत की जाएगी ताकि उस कार्यवाही में पारिणामिक आदेश पारित किया जा सके।

---

ekuuh; ç'kkUr dekj] U;k;efr

अवनी कांत शर्मा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 43 of 2003. Decided on 10th May, 2013.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

भारतीय वन अधिनियम, 1927—धारा 52—वन अपराध–वाहन का अधिहरण–अधिहरण कार्यवाही न्यायिक कल्प कार्यवाही है–इस निष्कर्ष पर आने के लिए कि प्रश्नगत वाहन का उपयोग किसी वन अपराध की कारिता में किया गया है, साक्ष्य पर आधारित तर्कपूर्ण कारण देना अभिग्रहण प्राधिकारी के लिए अनिवार्य है–अपने अभिकथन के समर्थन में वन रेंज अधिकारी द्वारा कोई साक्ष्य नहीं दिया गया कि याची ने कोई अपराध किया है अथवा वन अपराध में उसके वाहन का उपयोग किया गया है–आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 11)

अधिवक्तागण.–Sri A.K. Chaturvedi, For the Petitioner; Sri R. Mukhopadhyay, For the Respondents.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति.–यह आवेदन अभिग्रहण केस सं॰ 3 वर्ष 1997 में प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा पारित दिनांक 31.7.2001 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने याची के रजिस्ट्रेशन सं॰ BEN 9307 और BEN 9308 वाले ट्रैक्टर और ट्रेलर को अधिहृत कर लिया। याची ने आगे अधिहरण अपील सं॰ 5R/15/2001-2002 में प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 4.7.2002 के आदेश और पुनरीक्षण सं॰ (C)/25/2002 में प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित दिनांक 23.12.2002 के आदेश के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलीय प्राधिकारी (प्रत्यर्थी सं॰ 3) और पुनरीक्षण प्राधिकारी (प्रत्यर्थी सं॰ 2) ने अधिहरण प्राधिकारी प्रत्यर्थी सं॰ 4 के आदेश को संपुष्ट किया।

2. दिनांक 10.6.1997 को वन रेंज अधिकारी, गुमला द्वारा किए गए लिखित परिवाद पर भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 414/353/201 के अधीन और भारतीय वन अधिनियम की धाराओं 33/41/42 के अधीन भी गुमला पी॰ एस॰ केस सं॰ 127/97 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। यह अभिकथित किया गया था कि दिनांक 9.6.1997 को रात्रि लगभग 1 बजे रजिस्ट्रेशन सं॰ BPN 9307 वाला ट्रैक्टर अपने ट्रेलर के साथ सरकारी डिपो के निकट गम्हार लकड़ी से लदा हुआ अंतर्रुद्ध किया गया था। किंतु ट्रैक्टर का चालक भाग गया किंतु बाद में अवनी कांत शर्मा (उक्त ट्रैक्टर का स्वामी) घटना स्थल पर आया और लकड़ी के लट्ठों सहित ट्रैक्टर ले गया। यह प्रतीत होता है कि तीन दिनों बाद दिनांक 13.6.1997 को पुलिस अधिकारियों तथा वन अधिकारियों ने याची के घर पर छापा मारा और याची के आंगन से रजिस्ट्रेशन सं॰ BEN 9307 वाला ट्रैक्टर रजिस्ट्रेशन सं॰ BEN 9308 वाले ट्रेलर के साथ जब्त किया गया था। आगे यह प्रतीत होता है कि दांडिक मामले के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने अधिहरण कार्यवाही अर्थात् अधिहरण केस सं॰ 3 वर्ष 1997 आरंभ किया। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि डिविजनल वन अधिकारी, गुमला ने दिनांक 3.7.2001 के अपने आदेश (परिशिष्ट–2) के तहत रजिस्ट्रेशन सं॰ BEN 9307 वाले ट्रैक्टर को इसके ट्रेलर के साथ अधिहृत किया। उक्त आदेश के विरुद्ध याची ने वन अधिहरण अपील सं॰ 5R/15/2001-2002 के तहत उपायुक्त, गुमला के समक्ष अपील दाखिल किया जिसे दिनांक 4.7.2002 के आदेश (परिशिष्ट–3) द्वारा खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात, याची ने पुनरीक्षण केस सं॰ (C) 25/2002 के तहत सचिव, वन विभाग के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया और इसे भी दिनांक 23.12.2002 के आदेश (परिशिष्ट–4) द्वारा खारिज कर दिया गया था।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ चतुर्वेदी निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने आदेश, जैसा परिशिष्ट–2 में अंतर्विष्ट है, पारित करते हुए कोई कारण नहीं दिया है कि वह किस प्रकार इस निष्कर्ष पर आए कि याची वन अपराध में अंतर्ग्रस्त था और/अथवा रजिस्ट्रेशन सं॰ BEN 9307 वाले ट्रैक्टर का अपने ट्रेलर के साथ अपराध की कारिता में उपयोग किया गया था। अधिहरण केस सं॰ 3/97 के संपूर्ण ऑर्डरशीट के परिशीलन से, जिसे पूरक प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न किया गया है, यह स्पष्ट है कि यह दर्शाने के लिए वन विभाग की ओर से कोई साक्ष्य नहीं दिया गया था कि याची किसी

वन अपराध में अंतर्ग्रस्त है और/अथवा उस प्रयोजन से प्रश्नगत ट्रैक्टर का उपयोग किया गया था। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा पारित आदेश मनमाना है। वह आगे निवेदन करते हैं कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा भी पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार नहीं किया गया है। तद्नुसार, पूर्वोक्त आक्षेपित आदेशों को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

4. विद्वान स्थायी अधिवक्ता सं॰–II ने अधिहरण केस सं॰ 3/97 के ऑर्डरशीट का परिशीलन करने के बाद विवाद नहीं किया है कि वन विभाग ने पूर्वोक्त अधिहरण कार्यवाही में कोई साक्ष्य नहीं दिया है।

5. निवेदनों को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है।

6. प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा पारित दिनांक 31.7.2001 के आदेश (परिशिष्ट–2) के परिशीलन से मैं पाता हूँ कि उन्होंने निष्कर्षित किया है कि याची अवनी कांत शर्मा, ट्रैक्टर स्वामी, स्वयं संपूर्ण घटना में अंतर्ग्रस्त था। इस प्रकार, उसके विरुद्ध वन अपराध स्पष्टत: सिद्ध हुआ। वह आगे इस निष्कर्ष पर आए कि रजिस्ट्रेशन सं॰ BEN 9307 वाले ट्रैक्टर का इसके ट्रेलर के साथ अपराध की कारिता में उपयोग किया गया था। किंतु संपूर्ण आदेश के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने किसी साक्ष्य पर चर्चा नहीं किया है कि किस प्रकार वह पूर्वोक्त निष्कर्ष पर आए। अधिहरण केस सं॰ 3/97 का संपूर्ण ऑर्डरशीट दिनांक 1.5.2013 को दाखिल पूरक प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न किया गया है। पूर्वोक्त ऑर्डरशीट के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि दिनांक 17.7.1997 से दिनांक 16.7.2001 तक साक्ष्य देने के लिए वन रेंज अधिकारी को अनेक अवसर दिए गए थे किंतु क्षेत्रीय वन अधिकारी द्वारा कोई गवाह पेश नहीं किया गया था और अचानक दिनांक 31.7.2007 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

7. उक्त परिस्थितियों के अधीन मैं पाता हूँ कि इस निष्कर्ष पर आने के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 4 के समक्ष कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गयी थी कि याची ने कोई वन अपराध किया था और रजिस्ट्रेशन सं॰ BEN 9307 वाले उसके ट्रैक्टर का उपयोग इसके ट्रेलर के साथ ऐसा अपराध करने के लिए किया गया था।

8. यह सुनिश्चित है कि अधिहरण कार्यवाही न्यायिक कल्प कार्यवाही है, अत: इस निष्कर्ष पर आने के लिए कि प्रश्नगत वाहन का उपयोग किसी वन अपराध की कारिता में किया गया है, साक्ष्य पर आधारित तर्कपूर्ण कारण देना अधिहरण प्राधिकारी के लिए अनिवार्य है।

9. जैसा उपर गौर किया गया है, वर्तमान मामले में वन रेंज अधिकारी, गुमला द्वारा प्राथमिकी में किए गए अपने अभिकथन के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि याची ने कोई वन अपराध किया है और/अथवा उस प्रयोजन से वाहन का उपयोग किया गया है। उक्त परिस्थिति के अधीन, यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष अनुमान और अटकल पर आधारित है, अत:, यह मनमाना है। तद्नुसार, इस न्यायालय द्वारा इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है।

10. परिशिष्टों 3 और 4 के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि याची ने विनिर्दिष्टत: आधार लिया है कि डिविजनल वन अधिकारी के समक्ष कोई प्रमाण नहीं है कि याची द्वारा कोई वन अपराध किया गया है अथवा उसने ऐसा अपराध करने के लिए प्रश्नगत ट्रैक्टर का उपयोग किया। अपीलीय न्यायालय के आदेश से आगे प्रतीत होता है कि इस संप्रेक्षण कि याची पूरी घटना में अंतर्ग्रस्त है के समर्थन में कोई अन्वेषण नहीं किया गया है अथवा साक्ष्य नहीं दिया गया है। किंतु इसके बावजूद अपीलीय न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय ने डिविजनल वन अधिकारी (प्रत्यर्थी सं॰ 4) के आदेश को संपोषित किया। उक्त परिस्थिति के अधीन पूर्वोक्त दोनों आदेश अर्थात् परिशिष्ट–3 और 4 भी अपास्त किए जाने के दायी हैं।

11. उपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं आक्षेपित आदेशों को गंभीर अवैधता और अनियमितता से पीड़ित पाता हूँ। तद्नुसार, मैं इस आवेदन को अनुज्ञात करता हूँ और दिनांक 31.7.2001, 4.7.2002 और 23.12.2002 के आदेशों को अभिखंडित करता हूँ।

---

ekuuh; vkjï vkjï çlkn] U;k;efr

आर॰ दत्ता उर्फ रंजीत कुमार दत्ता एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 588 of 2008. Decided on 13th June, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406, 417, 418, 420 एवं 426—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—न्यास का दांडिक भंग, छल एवं रिष्टि–संज्ञान–यह परिवादी का सरल मामला है कि परिवादी ने लिखित तथा मौखिक रूप से काम दिए जाने पर काम को पूरा किया किंतु भुगतान नहीं किया गया था–ऐसा कुछ भी अभिकथित नहीं किया गया है कि काम दिए जाने के समय पर अभियुक्त द्वारा प्रवंचना किया गया था–छल का अपराध गठित करने के लिए आवश्यक अवयव की कमी है–इसी प्रकार से यह न्यास के दांडिक भंग का मामला नहीं है बल्कि शुद्धतः करार के भंग का मामला है जिसे सिविल अधिकारिता के सक्षम न्यायालय में प्रवर्तित किया जा सकता था–यदि याचीगण ने अपने दावा के मुताबिक काम करके कुछ अर्जित किया जिसका भुगतान नहीं किया गया था, इसे गैरईमानदार रूप से दुर्विनियोजित किया गया नहीं कहा जा सकता है–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 12, 13, 14, 16, 17, 19 से 23)

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioners; A.P.P., For the State; M/s Pandey Neeraj Rai, S.K. Lall, Rohit Ranjan Sinha, For the O.P. No. 2.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों को सुना गया।

2. यह आवेदन परिवाद केस सी॰/1 केस सं॰ 1532 वर्ष 2006 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 8.6.2007 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406, 417, 418, 420 और 426 के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया है।

3. पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों पर विचार करने के पहले परिवादी के मामले को ध्यान में लेने की आवश्यकता है।

4. परिवादी का मामला यह है कि कोलकाता स्थित कंपनी स्टीवर्ड्स एन्ड लायड्य ऑफ इंडिया लिमिटेड टाटा स्टील के साथ रजिस्टर्ड कंपनी है। कंपनी संरचना और भवन को खड़ा करने, गढ़ने और ढाहने सहित अनेक यांत्रिक एवं सिविल काम के निष्पादन का काम किया करती थी जैसी आवश्यकता स्टील कंपनी की होती थी। इस प्रकार का काम पाने पर कंपनी ने परिवादी को संरचनाओं और भवनों को तोड़ने, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भंडार सामग्रियों के परिवहन, मलबा के परिवहन, एक स्थान

से दूसरे स्थान पर सामग्री ले जाने का काम दिया। जब परिवादी को दिया गया काम किया जा रहा था, याची सं॰ 2 और 3 ने कंपनी के प्राधिकारी की हैसियत में लिखित आदेश में दिए गए काम से भिन्न काम को करने के लिए मौखिक रूप से परिवादी को कहा। परिवादी ने वैसा किया और काम पूरा हो जाने पर परिवादी ने 22 लाख रुपयों का बिल प्रस्तुत किया जिसका भुगतान कानूनी नोटिस दिए जाने के बावजूद नहीं किया गया था। ऐसी स्थिति में परिवादी के पास परिवाद दाखिल करने के अलावा विकल्प नहीं था जिसे दर्ज किया गया था और सी॰/1 केस सं॰ 1532 वर्ष 2006 के रूप में रजिस्टर्ड किया गया था जिसमें याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406, 417, 418, 420 और 426 के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया था।

5. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्रजीत सिन्हा निवेदन करते हैं कि समस्त अभिकथन को सत्य मानने पर भी याचीगण को अपराध करता हुआ नहीं कहा जा सकता है जिसके अधीन अपराधों का संज्ञान लिया गया है क्योंकि याचीगण को कपटपूर्वक और गैरईमानदार रूप से परिवादी को प्रवंचित करता हुआ अभिकथित कभी नहीं किया गया है बल्कि यह परिवादी द्वारा दावा किए गए बकाया के गैर भुगतान का मामला है जो सिविल प्रकृति का विवाद है और इस प्रकार बकाया का गैर भुगतान करार का भंग कहा जा सकता है और इस स्थिति के अधीन संज्ञान लेने वाला आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

6. इसके विरुद्ध, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पांडे नीरज राय निवेदन करते हैं कि परिवादी का मामला यह है कि परिवादी ने याची सं॰ 2 और 3 के कहने पर काम पूरा किया जो लिखित आदेश के अधीन दिए गए काम के अतिरिक्त अभियुक्त सं॰ 2 द्वारा परिवादी को मौखिक रूप से दिया गया काम था और केवल तत्पश्चात धन की मांग की गयी थी जिसे परिवादी ने काम करके अर्जित किया था किंतु इसका भुगतान कभी नहीं किया गया था और इसलिए, यह राशि के दुर्विनियोग के तुल्य होगा जिसे अर्जित करने का दावा परिवादी करता है।

7. आगे निवेदन यह है कि याचीगण इस अभिवचन के साथ आगे आए हैं कि उन्होंने परिवादी से कोई काम कभी नहीं लिया था और इस प्रकार याचीगण का आचरण यह दर्शाता है कि याचीगण का आशय परिवादी के साथ छल करना था। विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **हृदय रंजन प्रसाद वर्मा एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, (2000)4 SCC 168,** मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 15 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षण को निर्दिष्ट किया है।

8. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि अधमतम मामले में यदि न्यायालय पाता है कि छल और न्यास के दांडिक भंग का मामला नहीं बनता है, भारतीय दंड संहिता की धारा 403 में अंतर्विष्ट प्रावधान के निबंधनानुसार गैरईमानदार दुर्विनियोग का मामला निश्चय ही बनता है।

9. पक्षों की ओर से किए गए निवेदन के संदर्भ में यह विचार किया जाना है कि क्या परिवाद में किया गया अभिकथन छल अथवा न्यास के दांडिक भंग का और गैर ईमानदार दुर्विनियोग का अपराध गठित करता है या नहीं?

10. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन छल का अपराध परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> ***^^Ny-****&tk dkb fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ft l bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diVid ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkb lifÙk fdlh 0;fDr*

dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og , lk dkb dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml gj çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkk0; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA**

11. इसके पठन से यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयवों को आवश्यकत: होना चाहिए:–

(1) ifjoknh dk çofpr dju oky vfHkdfFkr 0;fDr }kjk diVi.k vFkok xjbekunkj mRçj.k gkuk pkfg,A

(2) (a) bl çdkj çofpr 0;fDr dk fdlh 0;fDr dk dkb lifÙk nu dk mRçj.k gkuk pkfg, vFkok lgefr gkuh pkfg, fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk viu ikl j[kxk ;k

(b) bl çdkj çofpr 0;fDr dk fdlh pht dk dju vFkok ugh dju d fy,] tk og djrk vFkok ugh djrk ;fn ml bl çdkj çofpr ugh fd;k x;k gkrk] vk'k;iod mRçfjr fd;k tkuk pkfg,A

(3) 2 (b) }kjk vkPNkfnr ekeyk e ÑR; vFkok yki , lk gkuk pkfg, tk mRçfjr fd, x, 0;fDr dk 'kkjhfjd :i l vFkok mldh çfr"Bk ;k lifÙk dk udlku vFkok gkfu dkfjr djrk g vFkok dkfjr fd, tku dh lHkkouk gA

12. अत:, छल का अपराध गठित करने के लिए प्रथम आवश्यक तत्व अभियुक्त द्वारा परिवादी की प्रवंचना है। जब तक प्रवंचना नहीं है, छल का अपराध कभी आकृष्ट नहीं होता है। प्रवंचित किए जाने के बाद प्रवंचित व्यक्ति को कुछ करने अथवा नहीं करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए।

13. यहाँ वर्तमान मामले में, परिवादी का मामला केवल यह है कि परिवादी ने लिखित रूप से और मौखिक रूप से भी काम दिए जाने पर काम पूरा किया किंतु भुगतान नहीं किया गया था। ऐसा कुछ भी अभिकथित नहीं किया गया है कि काम दिए जाने के समय पर अभियुक्त द्वारा प्रवंचना किया गया था। इस प्रकार, मैं छल का अपराध गठित करने के लिए आवश्यक अवयव की कमी पाता हूँ। अत: यह दर्ज किया जाए कि छल का अपराध नहीं बनता है भले ही परिवाद में किए गए संपूर्ण अभिकथन को सत्य माना जाता है।

14. जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अपराध का संबंध है, वह भी याचीगण के विरुद्ध बनता प्रतीत नहीं होता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन न्यास के दांडिक भंग को परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

"405. **vkijkfèkd U;kl Hkax-**& tk dkb lEifÙk ;k lEifÙk ij dkb Hkh v[kR;kj fdlh idkj viu dk U;Lr fd, tku ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viu mi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl idkj , lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] mldk fofgr dju okyh fofèk d fdlh fun'k dk] ;k , l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xb fdlh vfHk0;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k 0;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; 0;fDr dk , lk djuk lgu djrk g] og ^^vkijkfèkd U;kl Hkax** djrk gA**

15. उक्त प्रावधान के पठन पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव होने चाहिए:–

"(a) fdlh 0;fDr dk lifÙk U;Lr vFkok lifÙk d mij v[r;kj U;Lr fd;k tkuk pkfg, FkkA

(b) ml 0;fDr dk ml lifÙk dk Lo; viu mi;kx d fy, xjbekunkj :i l nfofu;kftr vFkok lifjofrr djuk pkfg,] vFkok ml lifÙk dk xjbekunkj :i l mi;kx dju vFkok fBdku yxku d fy, vFkok ,lk dju d fy, fdlh vU; 0;fDr dk tkuc>dj ihfMr djuk pkfg,(

(c) fd ,l nfofu;kx] lifjoru] mi;kx vFkok fuiVku dk ml <x] ftle ,l U;kl dk mUekfpr fd;k tkuk g] vFkok fdlh fofèkd lfonk] ftl ,l U;kl d mUekpu dk Nr g, 0;fDr }kjk fd;k x;k g] dk fofgr dju oky fofèk;k d fdlh fun'k d mYy?ku e gkuk pkfg,A**

16. परिवाद में किए गए अभिकथन की पृष्ठभूमि में, मैं इसे न्यास के दांडिक भंग का मामला नहीं पाता हूँ बल्कि यह करार के भंग का शुद्ध मामला है जिसे सिविल अधिकारिता के सक्षम न्यायालय में प्रवर्तित किया जा सकता था।

17. मामले में आगे जाते हुए, मैं भारतीय दंड संहिता की धारा 403 के अधीन बनता कोई मामला नहीं पाता हूँ। भारतीय दंड संहिता की धारा 403 संपत्ति के गैर ईमानदार दुर्विनियोग के बारे में कहती है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

"403. **lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx-**&tk dkb cbekuh l fdlh txe lEifÙk dk nfofu;kx djxk ;k mldk viu mi;kx d fy, lifjofrr dj yxk] og nkuk e l fdlh Hkkfr d dkjkokl l ftldh vofèk nk o"k rd dh gk ldxh] ;k teku l] ;k nkuk l nf.Mr fd;k tk;xkA

Li"Vhdj.k 1.–doy dN le; d fy, cbekuh l nfofu;kx djuk bl èkkjk d vFk d vUrxr nfofu;kx gA

Li"Vhdj.k 2.–ftl 0;fDr dk ,l lEifÙk iMh fey tkrh g] tk vU; 0;fDr d dCt e ugh g vkj og mld Lokeh d fy, mldk ljf{kr j[ku ;k mld Lokeh dk ml iR;kofrr dju d i;ktu l ,l lEifÙk dk yrk g] og u rk cbekuh l ml yrk g vkj u cbekuh l mldk nfofu;kx djrk g] vkj fdlh vijkèk dk nk"kh ugh g] fdUr og Åij ifjHkkf"kr vijkèk dk nk"kh g] ;fn og mld Lokeh dk tkur g, ;k [kkt fudkyu d lkèku j[kr g, vFkok mld Lokeh dk [kkt fudkyu vkj lpuk nu d ;fDr;Dr lkèku mi;kx e yku vkj mld Lokeh dk mldh ekx dju e leFk dju d fy, ml lEifÙk dk ;fDr;Dr le; rd j[k j[ku d io mldk viu fy, fofu;kftr dj yrk gA

,l n'kk e ;fDr;Dr lkèku D;k g] ;k ;fDr;Dr le; D;k g] ;g rF; dk i'u gA

;g vko';d ugh g fd iku okyk ;g tkurk gk fd lEifÙk dk Lokeh dku g ;k ;g fd dkb fof'k"V 0;fDr mldk Lokeh gA ;g i;kIr g fd mldk fofu;kftr djr le; ml ;g fo'okl ugh g fd og mldh viuh lEifÙk g] ;k lnHkkoiod ;g fo'okl g fd mldk vlyh Lokeh ugh fey ldrkA**

18. भारतीय दंड संहिता की धारा 403 के अधीन अपराध स्थापित करने के लिए अभियोजन को सिद्ध करना होगा कि:–

(a) lifÙk ifjoknh dh lifÙk Fkh]

(b) vfHk;Dr u ml lifÙk dk nfofu;kx fd;k vFkok viu mi;kx d fy, lifjofrr fd;k(vkj

(c) mlu ,lk xjbekunkj :i l fd;kA

19. यहाँ वर्तमान मामले में, यदि याचीगण ने अपने दावा के मुताबिक काम करके कुछ अर्जित किया जिसके अर्जन का भुगतान नहीं किया गया था, इसे गैरईमानदार रूप से दुर्विनियोजित किया गया नहीं कहा जा सकता है क्योंकि निजी संपत्ति लेने की स्थिति में जिसके साथ किसी को विशेषत: वैश्वासिक हैसियत में न्यस्त किया गया है, किसी को संपत्ति का दुर्विनियोग अथवा गबन करने वाला कहा जा सकता है। किंतु, याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के अनुसार पक्षों के आचरण से भी प्रवंचना एकत्रित की जा सकती है और आचरण से यदि यह प्रतीत होगा कि याचीगण का छल का अथवा संपत्ति के गैरईमानदार दुर्विनियोग का अपराध करने का आशय था, उसे दोषी अभिनिर्धारित किया जा सकता है। अपने निवेदन के समर्थन में, **हृदय रंजन प्रसाद वर्मा (उपर)** के पैराग्राफ 15 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षण को निर्दिष्ट किया गया था जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"15. ç'u dk fofuf'pr dju e ;g è;ku e j[kuk gkxk fd lfonk d Hkx ek= vkj Ny d vijkèk d chp lfHkUurk l{e gA ;g mRçj.k d le; ij vfHk;Dr d vk'k; d mij fuHkj djrk g ftl mld i'pkrorh vkpj.k }kjk tkpk tk ldrk g fdr i'pkrorh vkpj.k ,dek= ijh{kk ugh gA lfonk Hkx ek= Ny d fy, nkfMd vfHk;ktu mnHkr ugh dj ldrk g tc rd l0;ogkj d vkjHk e vFkkr ml le; ij tc vijkèk fd;k x;k crk;k x;k g] diVi.k vFkok xjbekunkj vk'k; ugh n'kk;k tkrk gA vr% vk'k; vijkèk dk dn gA 0;fDr dk Ny dju dk nk"kh vfHkfuèkkfjr dju d fy, ;g n'kkuk vko';d g fd oknk dju d le; ij mldk diVi.k vFkok xjbekunkj vk'k; FkkA ckn e oknk ijk dju e mldh foQyrk ek= l] vkjHk l ,lk vkijkfèkd vk'k; vFkkr tc mlu oknk fd;k Fkk] mièkkfjr ugh fd;k tk ldrk gA**"*

20. उक्त संप्रेक्षण के परिशीलन पर यह कहा जाए कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि संविदा का भंगमात्र छल के लिए दांडिक अभियोजन उद्‌भूत नहीं कर सकता है जब तक संव्यवहार के आरंभ से ही अर्थात् उस समय जब अपराध किया गया बताया गया है, कपटपूर्ण अथवा गैरईमानदार आशय दर्शाया नहीं जाता है।

21. यह दोहराया जा सकता है कि संपूर्ण परिवाद में यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि कोई संपत्ति, जिसे याचीगण को न्यस्त किया गया था, दुर्विनियोगित की गयी है अथवा काम देने के लिए और भुगतान नहीं करने के लिए याचीगण की ओर से आरंभ से ही प्रवंचना का कोई कृत्य प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में, मामला केवल करार के भंग मात्र का मामला प्रतीत होता है।

22. तद्नुसार, सी०/1 केस सं० 1532 वर्ष 2006 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित याचीगण के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं 406, 417, 418, 420 और 426 के अधीन संज्ञान लेने वाले दिनांक 8.6.2007 के आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

23. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; Jh pn'k[kj] U;k;efr

विजय कुमार

cuke

बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य

W.P. (S) No. 5445 of 2001. Decided on 14th June, 2013.

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 11—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—पूर्व न्याय–प्रयोज्यता–पूर्व न्याय का नियम लोक नीति पर आधारित है–पूर्व न्याय, सांविधिक अथवा आन्वयिक, आकृष्ट करने के लिए न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय होना ही होगा–यदि कुछ भी विनिश्चित नहीं किया गया है और यदि न्यायालय के समक्ष विवाद्यक सुना नहीं गया था और अंतिम रूप से विनिश्चित नहीं किया गया था, यह द्वितीय वाद/याचिका के संस्थापन को वर्जित नहीं करेगा–व्यतिक्रम में रिट याचिका की खारिजी मामले के गुणागुण पर निर्णय नहीं कहा जा सकता है और यह पूर्व न्याय गठित नहीं करेगा। (पैरा 8)

(ख) सेवा विधि–नियुक्ति–मेधा सूची में याची का नाम प्रत्यर्थी के उपर था–याची की उम्मीदवारी के साथ प्रत्यर्थी द्वारा कोई दोष नहीं पाया गया है–याची को पद पर नियुक्ति से इनकार नहीं किया जा सकता था जिसके लिए उसने पूर्ण चयन प्रक्रिया पूरा किया है। (पैरा 16)

निर्णयज विधि.–AIR 1966 SC 1332; AIR 1967 SC 591; AIR 1978 SC 1283; AIR 1971 SC 664; AIR 1981 SC 960—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s. Sumantra Singh, Shresth Gautam, For the Petitioner; M/s. Rajesh Kumar, Amit Kumar, Manindra Kr. Singh, For the Respondent Nos. 1 & 2 (Bank of India); Mrs. Indrani Sen Choudhary, For the Respondent No.3.

आदेश

याची अधीनस्थ स्टाफ सदस्यों की सामान्य रिक्ति के विरुद्ध प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति का आदेश अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी किया जाना इप्सित करते हुए और याची की नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देष दिए जाने के लिए इस न्यायालय के पास आया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि अगस्त, 1993 में किसी समय बैंक ऑफ इंडिया बोकारो स्टील सिटी में अधीनस्थ स्टाफ सदस्यों (चपरासी) की नियुक्ति के लिए नियोजनालय द्वारा अनेक नामों को अग्रसारित किया गया था। लिखित परीक्षा संचालित की गयी थी और तत्पश्चात दिनांक 6.8.1994 के पत्र द्वारा याची को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। रिट याचिका में कथन किया गया है कि 7 रिक्तियाँ थी। याची को मेधा सूची में क्रमांक 4 पर रखा गया था किंतु उसे नियुक्ति का प्रस्ताव नहीं दिया गया था। बाद में याची को पता चला कि उक्त मेधा सूची से प्रत्यर्थी सं॰ 3 को नियुक्ति दी गयी थी यद्यपि उसका नाम मेधा सूची में याची के नाम के नीचे था। याची ने प्राधिकारियों के समक्ष अभ्यावेदन दिया किंतु, उसकी शिकायत को दूर नहीं किया गया था और इसलिए, वह वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया है।

3. प्रत्यर्थी सं॰ 1 और 2 की ओर से प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 अर्थात् श्री भूपेन्द्र लाल दास रमन ने भी लिखित परीक्षा और साक्षात्कार में भाग लिया था जिसे अधीनस्थ स्टाफ (चपरासी) के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र उम्मीदवारों का चयन करने के लिए संचालित किया गया था और वह मेधा सूची में याची के नीचे था। प्रतिशपथ पत्र में यह भी स्वीकार किया गया है कि यद्यपि प्रत्यर्थी सं॰ 3 को बैंक की सेवा में आमेलित नहीं किया गया था किंतु चूँकि सहायक श्रम आयुक्त ने उसका आमेलन सुझाया था, बैंक ने सहायक श्रम आयुक्त की अनुशंसा स्वीकार करने का निर्णय लिया और प्रत्यर्थी सं॰ 3 को नियुक्ति दी गयी थी। यह विवादित किया गया है कि याची का

नाम मेधा सूची में क्रमांक 4 पर था बल्कि उसका नाम उक्त मेधा सूची में क्रमांक 6 पर था। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि वर्तमान रिट याचिका आन्वयिक पूर्व न्याय द्वारा वर्जित है। रिट याचिका की खारिजी के बाद रिट याचिका का पुनर्स्थापन इप्सित करते हुए आवेदन दाखिल नहीं किया गया था और इसलिए, समरुप अनुतोष इप्सित करने वाली द्वितीय रिट याचिका याची द्वारा पोषित नहीं की जा सकती है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

5. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याची का नाम मेधा सूची में प्रत्यर्थी सं॰ 3 के उपर था और प्रत्यर्थीगण द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 को उस पद पर नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था जिसके लिए मेधा सूची तैयार की गयी थी और केवल सहायक श्रम आयुक्त द्वारा दिए गए सुझाव की दृष्टि में प्रत्यर्थी सं॰ 3 को उस पद पर नियुक्त किया गया था जिस पर याची को नियुक्त किया जाना चाहिए था। याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि इस मामले में पुनर्स्थापन याचिका इस कारण से दाखिल नहीं की जा सकी थी क्योंकि अधिवक्ता के लिपिक ने काम छोड़ दिया था और उसने अधिवक्ता अथवा याची को सूचित नहीं किया था। उन्होंने यह निवेदन भी किया है कि पूर्व रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2758 वर्ष 1999 (R) की खारिजी अनुतोष, जिसकी प्रार्थना वर्तमान रिट याचिका में की गयी है, इप्सित करने के लिए याची के रास्ते में नहीं आएगी क्योंकि पूर्व खारिजी वर्तमान रिट याचिका के प्रस्तुतीकरण को वर्जित नहीं करेगा। याची के दावा को गुणागुण पर विनिश्चित नहीं किया गया था और चूँकि न्यायालय द्वारा इसका न्याय निर्णयन नहीं किया गया है, वर्तमान रिट याचिका पोषणीय है।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं॰ 1 और 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 को दी गयी नियुक्ति को पूर्व रिट याचिका की खारिजी की दृष्टि में याची द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है।

7. प्रत्यर्थी सं॰ 3 भी उपस्थित हुआ है और निवेदन किया है कि दिनांक 3.4.1997 को प्रत्यर्थी सं॰ 3 को नियुक्त किया गया है और वह तब से सेवा में बना हुआ है और उसके नियुक्ति पत्र को याची द्वारा विनिर्दिष्टत: चुनौती नहीं दी गयी है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। प्रत्यर्थी सं॰ 3 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है यदि याची के पक्ष में सकारात्मक आदेश पारित किया जाता है।

8. प्रत्यर्थी सं॰ 1 और 2 के अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रतिवादों पर आते हुए कि वर्तमान रिट याचिका आन्वयिक पूर्व न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है, मेरा मत है कि इस मामले के तथ्यों में ऐसा अभिवचन मान्य नहीं है। पूर्व न्याय का नियम लोक नीति पर आधारित है। पूर्व न्याय, सांविधिक अथवा आन्वयिक, आकृष्ट करने के लिए न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय होना ही चाहिए। यदि कुछ भी विनिश्चित नहीं किया गया है और यदि न्यायालय के समक्ष विवाद्यक सुना नहीं गया था और अंतिम रूप से विनिश्चित नहीं किया गया था, यह द्वितीय वादी याचिका के संस्थापन को वर्जित नहीं करेगा। व्यतिक्रम में रिट याचिका की खारिजी मामले के गुणागुण पर निर्णय नहीं कहा जा सकता है, अत: यह न्यायनिर्णीत गठित नहीं करेगा।

9. शिवदन सिंह बनाम दरियाओ कुँवर, AIR 1966 SC 1332, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया–

"13. Re (iv) : ;g ge e[; fcn ij ykrk g ftUg bu vihyk e vkxg fd;k x;k g vFkkr fd mPp U;k;ky; u okn l0 77 vkj 91 l mnHkr gku oky vihyk

dk ugh luk Fkk vkj vfre :i l fofuf'pr ugh fd;k FkkA vihyk e l ,d bl vkèkkj ij [kkfjt dj fn;k x;k Fkk fd bl ifjlhek dh vofèk d ij nkf[ky fd;k x;k Fkk tcfd nljh vihy bl vkèkkj ij [kkfjt dj nh x;h Fkh fd mle d vihykFkh u vfHky[k efnr djoku d fy, dne ugh mBk;k FkkA vr% ;g vkxg fd;k x;k g fd okn l0 77 vkj 91 l mnHkr gku oky nkuk vihyk dk luk ugh x;k Fkk vkj mPp U;k;ky; }kjk vfre :i l fofuf'pr ugh fd;k x;k Fkk vkj blfy, ;g 'kr fd io okn luk x;k gkxk vkj vfre :i l fofuf'pr fd;k x;k gkxk] oreku ekey e ijk ugh fd;k x;k FkkA bl lcèk e lfuf'pr fl)kr ij fo'okl fd;k x;k g fd ekey dk luk x;k vkj vfre :i l fofuf'pr fd;k x;k dg tku d fy, io okn e fu.k; dk x.kkx.k ij gkuk gh pkfg, FkkA mnkgj.kLo#i] tgk io okn fopkj.k U;k;ky; }kjk vfèkdkfjrk dh deh d dkj.k vFkok oknh dh mifLFkfr d 0;frØe d dkj.k] vFkok i{kk d v l;ktu d vkèkkj ij] vFkok i{kk d dl;ktu vFkok fofoèkrk d vkèkkj ij] vFkok bl vkèkkj ij fd okn nk"ki.k :i l fojfpr fd;k x;k Fkk] vFkok oknh dh vkj l çkcV vFkok ç'kklu i= vFkok mÙkjkfèkdkj çek.k i= tc oknh dk fMØh d fy, gdnkj cuku d fy, fofèk }kjk bldh vko';drk g] çLrr dju dh foQyrk d fy, vFkok 0;; d fy, çfrHkfr çLrr dju e foQyrk d fy,] vFkok vufpr eY;kdu d vkèkkj ij] vFkok okn i=] ftl de vkdk x;k Fkk] ij vfrfjDr U;k;ky; 'kYd dk Hkxrku dju e foQyrk d fy,] vFkok okn grd dh deh d fy,] vFkok bl vkèkkj ij fd ;g le;io g] [kkfjt dj fn;k x;k Fkk vkj [kkfjth vihy (;fn gk) e li"V dh tkrh g] fu.k; x.kkx.k ij ugh gku d ukr i'pkrorh okn e U;k;fu.khr ugh gkxkA**

10. पुलावर्थी वेंकटा, सुब्बा राव बनाम वल्लू डी जगन्नाधा राव, AIR 1967 SC 591, में जहाँ न्यायनिर्णीत का सिद्धांत का अवलंब लिया जाना पूर्व निर्णय जो सुलह निर्णय और डिक्री था के आधार पर इप्सित किया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

"10. vihykFkh x.k rc U;k;fu.khr d fl)kr dk voyc ydj mlh ifj.kke ij vkuk bfllr djr gA ;g çfrokn fd;k x;k g fd io fu.k; U;k;fu.khr d rY; g vkj çR;Fkh x.k mlh fook|d dk mBku d gdnkj ugh Fk ftl foo{kk }kjk lyg fu.k; vkj fMØh }kjk mud fo#) fofuf'pr fd, tku d fy, vfHkfuèkkfjr djuk gh gkxkA fodYi e] ;g çfrokn fd;k x;k Fkk fd io lyg fMØh çR;Fkh x.k d fo#) fooèk lftr djrh g D;kfd vihykFkh x.k uml le; ij jkf'k ftld k onkok dj jg Fk e dN fj;k;r n'kk;k Fkk vkj derj jkf'k d fy, fMØh ikfjr dh x;h FkhA ;g fooèk fu.k; }kjk fooèk dgk x;k FkkA gekj er e] bu çfroknk dk Lohdkj ugh fd;k tk ldrk gA vfèkfu;e] tlk l'kkfèkr fd;k x;k g] C;kt d Åph nj ij fy, x, dt d çHkko l mudk cpku d fy, NkV Ñ"kdk ij bl vfèkdkj dk çnUk djrk gA fu%lng] çFke volj ij nkok dh jkf'k ?kVku d fy, nkok dju dk yki dju e çR;Fkh x.k dk vkpj.k egRoi.k g fdr ;g U;k;fu.khr] pkg lkfofèkd gk ;k vkUof;d] xfBr ugh djrk FkkA lyg fMØh U;k;ky; dk fu.k; ugh FkkA ;g U;k;ky; }kjk fdlh pht dk Lohdj.k Fkk ftld fy, i{kk.k lger g, FkA ;g dgk x;k g fd lyg fMØh ek= i{kk d djkj ij U;k;ky; dk egj yxkrh gA U;k;ky; u dN Hkh fofuf'pr ugh fd;k FkkA u gh ;g dgk tk ldrk g fd U;k;ky; dk fu.k; ble vrfufgr FkkA doy U;k;ky; dk fu.k; gh U;k;fu.khr gk ldrk g] pkg ;g flfoy çfØ;k lfgrk dh èkkjk 11 d vèkhu lkfofèkd gk vFkok ykd uhfr d ekey d :i e vkUof;d ftl ij li.k fl)kr

*vkèkkfjr gA çR;Fkhx.k l'kkèkudkjh vfèkfu;e }kjk çnÙk u, vfèkdkjk d dkj.k iu% fook|d mBku dk nkok djr g tk vfèkdkj] mud vulkj] leLr fMfØ;k dk fQj l [kkyk tkuk lfEefyr djrk g tk vfre ugh cu x, Fk vFkok ftUg i.kr% fu"ikfnr ugh fd;k x;k FkkA çR;Fkhx.k fofèk d l'kkèku dk ykHk yu d gdnkj g tcrd Lo; fofèk u mudk oftr ugh fd;k g vFkok io fu.k; mud jkLr e ugh vk;kA io fu.k; d ekey ij ftl ^^lukx;k Fkk vkj vfre :i l fofuf'pr fd;k x;k Fkk** dBkjrkiod ugh ekuk tk ldrk gA**"*

11. कोचीन पोर्ट ट्रस्ट के कर्मकार बनाम कोचीन पोर्ट ट्रस्ट के न्यासियों का बोर्ड एवं एक अन्य, AIR 1978 SC 1283, में न्यायालय के समक्ष विवाद्यक यह था कि क्या विशेष अनुमति याचिका की आरंभ में ही खारिजी रिट याचिका के संस्थापन को वर्जित करेगी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

"9. fu%lng] oreku ekey e vfèkdj.k d vfèkfu.k; dk yxHkx leLr vkèkkjk ij bl U;k;ky; e nkf[ky fo'k"k vuefr ;kfpdk e pukrh nh x;h Fkh ftUg i'pkrorh fjV dk;okgh e mPp U;k;ky; e mBk;k x;k FkkA vr%] bl ekey e vkUof;d U;k;fu.khr d fl)kr dk ykxw dju dk ç'u ugh gA fdr tk n[kk tkuk g] og ;g g fd D;k vkjHk e gh fo'k"k vuefr ;kfpdk dk [kkfjt dju oky vkn'k l ;g fu"df"kr fd;k tk ldrk g fd mDr ;kfpdk e mBk, x, leLr ekeyk dk çR;Fkh d fo#) Li"Vr% vFkok vrfufgr :i l fofuf'pr fd;k x;k FkkA fufooknr% vfHkO;Dr :i l dN Hkh fofuf'pr ugh fd;k x;k FkkA bldh [kkfjth d vkèkkjk vFkok dkj.kk dk minf'kr dju okyh fdlh vkj pht d fcuk [kkfjth d dkj.kjfgr vkn'k d çHkko dk ;g fofuf'pr djr g, yuk gkxk fd ;g l;kX; ekeyk ugh Fkk tgk fo'k"k vuefr çnku dh tkuh pkfg, FkhA ;g vud dkj.kk d dkj.k gk ldrk gA ; dkj.k ,d vFkok vfèkd gk ldr gA ;g Hkh gk ldrk g fd vfèkfu.k; d x.kkx.k dk fopkj e fy;k x;k Fkk vkj bl U;k;ky; u egl l fd;k fd ble gLr{ki dh vko';drk ugh FkhA fdr pfd vkn'k ldkj.k vkn'k ugh Fkk] vihykFkhx.k dh vkj l fn, x, rd dk Lohdkj djuk ge ef'dy ikr g fd bl vfèkfu.k; d x.kkx.k d lcèk e leLr ç'uk dk vrfufgr :i l vko';dr% fofuf'pr fd;k x;k le>uk ugh gkxkA fjV dk;okgh fHkUu dk;okgh gA fo'k"k vuefr ;kfpdk dk [kkfjt djr g, tk dN Hkh vfHkO;Dr :i l] vrfufgr :i l vFkok vkUof;d :i l Hkh fofuf'pr fd;k x;k vfHkfuèkkfjr fd;k tk ldrk g] nkckjk ugh [kkyk tk ldrk gA fdr U;k;fu.khr dk VfDudy fu;e] ;|fi ;g ykdukfr ij vkèkkfjr lex fu;e g] dk iFkd dk;okgh e ln'k fook|dk d fopkj.k dk oftr dju d fy, bl mièkkj.kk ek= ij vfèkd nj rd ugh [khpk tk ldrk g fd fook|dk dk fofuf'pr fd;k gh x;k gkxkA bl lhek rd U;k;fu.khr d fl)kr dk foLrkfjr djuk ljf{kr ugh g rkfd bl vueku ek= ij vkèkkfjr fd;k tk ldA gekj nf"Vdk.k dk fp=.k dju d fy, ,d mnkgj.k fy;k tk ldrk gA eku yhft, fd fdlh vkn'k vFkok fu.k; dk vud vkèkkjk ij pukrh nu d fy, mRç"k.k fjV çnku dju d fy, mPp U;k;ky; e fjV ;kfpdk nkf[ky dh tkrh gA ;fn çfrokn d ckn ldkj.k vkn'k }kjk fjV ;kfpdk [kkfjt dh tkrh g] Li"Vr% ;g fdlh vU; dk;okgh tl mlh vkn'k vFkok fu.k; l funf'kr vuPNn 32 vFkok vuPNn 136 d okn e U;k;fu.khr d :i e çofrr gkxhA ;fn fjV ;kfpdk ngyht ij vFkok çfrokn d ckn] ;k dg f<ykb vFkok odfYid mipkj dh miyCèkrk d vkèkkj ij] ldkj.k vkn'k }kjk [kkfjt dj nh tkrh g] rc okn vFkok fdlh vU; dk;okgh d :i e fofèk e miyCèk ,d vU; mipkj U;k;fu.khr d fl)kr ij oftr ugh gkxkA fu'p; gh] mlh mPp

U;k;ky; e vFkok fdlh vU; U;k;ky; e nkf[ky mlh okn grd ij f}rh; fjV ;kfpdk ik"k.kh; ugh gkxh D;kfd ,d fjV ;kfpdk dh [kkfjth nljh fjV ;kfpdk d xg.k e otuk d :i e çofrr gkxhA blh çdkj l] Hky gh ,d fjV ;kfpdk ,d 'kCnh; dkj.kjfgr vkn'k ^[kkfjt* }kjk vkjHk e gh [kkfjt dj nh tkrh g] nljh fjV ;kfpdk ik"k.kh; ugh gkxh D;kfd ,d 'kCn d vkn'k dk Hkh] tlk geu mij minf'kr fd;k g] vko';dr% foof{kr :i l fofuf'pr dj fn, x, d :i e yuk gkxk fd ekeyk mPp U;k;ky; dh fjV vfèkdkfjrk dk ç;kx dju d fy, l;kX; ugh gA mlh vkn'k vFkok fu.k; l nljh fjV ;kfpdk ugh gkxhA fdr voLFkk lkjoku :i l fHkUu gkrh g tc ekey d x.kkx.k ij dkb er vfHk0;Dr fd, fcuk ngyht ij vFkok çfrokn d ckn fjV ;kfpdk [kkfjt dj nh tkrh g] rc fdlh x.kkx.k dk vko';dr% vkj vrfufgr :i l fofuf'pr dj fn;k x;k ugh le>k tk ldrk g vkj okn dk dkb vU; mipkj vFkok vU; dk;okgh U;k; fu.khr d fl)kr ij oftr ugh fd;k tk,xkA**

12. राम गोविन्द डाव एवं अन्य बनाम श्रीमती एच॰ भक्त बाला दस्सी आदि, AIR 1971 SC 664 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

"23. fdlh io fu.k; dk U;k; fu.khr d :i e çofrr gku d fy, bl U;k;ky; }kjk iykoFkh odV lCck jko cuke oYyjh txUukèkk jko] (1964)2 SCR 310 = AIR 1967 SC 591, e vfHkfuèkkfjr fd;k x;k g fd bl ml ekey ij gh gkuk gkxk ftl luk x;k Fkk vkj vfre :i l fofuf'pr fd;k x;k FkkA**

24. f'konu flg cuke Jherh nfj;kvk doj] (1966)3 SCR 300 = AIR 1966 SC 1332, e bl ç'u ij bl U;k;ky; }kjk fopkj fd;k x;k Fkk fd D;k ifjlhek d vkèkkj ij vFkok bl vkèkkj ij fd i{k u vihy vxlj dju d fy, dne ugh mBk;k Fkk] dfri; vihy dk [kkfjt djr g, mPp U;k;ky; }kjk fn;k x;k fu.k; U;k; fu.khr d :i e çofrr gkrk gA

---

bl U;k;ky; u ,l mnkgj.kk dk fufn"V fd;k tgk io okn vfèkdkfjrk dh deh d dkj.k vFkok oknh dh mifLFkfr d 0;frØe d dkj.k fopkj.k U;k;ky; }kjk [kkfjt fd;k x;k Fkk vkj bfxr fd;k fd ekeyk d ,l ox d lcèk e fu.k; x.kkx.k ij ugh gku d ukr i'pkrorh okn e U;k;fu.khr ugh gkxkA vkx ;g bfxr fd;k x;k Fkk fd bu fopkjk e l dkb Hkh ml ekey ij ykx ugh gkxk tgk fopkj.k U;k;ky; }kjk x.kkx.k ij fu.k; fn;k x;k g vkj ekey dk vihy e y tk;k x;k g vkj vihy ifjlhek vFkok en.k e 0;frØe tl dN vkjfHkd vkèkkj ij [kkfjt dj nh x;h gA ;g vfHkfuèkkfjr fd;k x;k Fkk fd vihyh; U;k;ky; }kjk ,lh [kkfjth dk x.kkx.k ij fopkj.k U;k;ky; d fu.k; dk li"V dju dk çHkko g vkj fd ;g vihy lu tku vkj x.kkx.k ij vfre :i l fofuf'pr fd, tku d rY; g pkg vihy dh [kkfjth dk dkb Hkh vèkkj gkA**

25. mDr rd l ;g n[kk tk,xk fd U;k; fu.khr d :i e çofrr gku d fy, io fu.k; ekey dk lu tku vkj x.kkx.k ij vfre :i l fofuf'pr fd, tku d ckn fn;k tkuk gkxkA**

13. अहमदाबाद मैन्यूफैक्चरिंग एंड केलिको प्रिंटिंग कं॰ लि॰ बनाम कर्मकार एवं एक अन्य, AIR 1981 SC 960, ऐसा मामला जिसमें विशेष अनुमति याचिका वापस ले ली गयी थी और तत्पश्चात् उच्च न्यायालय में रिट याचिका दाखिल किया गया था जिसे 'आरंभ में ही' खारिज कर दिया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

*"20. m) r fd, x, vud ekeyk d fo'y"k.k d ckn gekjk nf"Vdk.k g fd vuefr ;kfpdk okil yu dh vuefr dk [kkfjth d vkn'k d lerY; ugh cuk;k tk ldrk gA ge bl fu"d"k ij Hkh vkr g fd ekey dh ifjfLFkfr;k e mPp U;k;ky; u ,dek= vkèkkj ij fd mUgh rF;k vkj vkèkkjk ij fo'k"k vuefr d fy, vkonu fcuk 'kr okil y fy;k x;k Fkk] vkjHk e gh fjV ;kfpdk [kkfjt dju e lefpr vkj rdi.k Lofood dk ç;kx ugh fd;k gA***

14. सुनिश्चित विधि की दृष्टि में जैसा उपर गौर किया गया है और यह तथ्य कि अधिवक्ता के लिपिक जिसने पहले ही काम छोड़ दिया था, के दोष के कारण याची को पीड़ित नहीं किया जा सकता है, मैं गुणागुण पर मामले को निपटाने का इच्छुक हूँ।

15. अब मामले के तथ्यों पर आते हुए, अभिलेख पर दस्तावेजों का परिशीलन प्रकट करेगा कि प्रत्यर्थीगण ने स्वीकार किया है कि याची का नाम मेधा सूची में प्रत्यर्थी सं॰ 3 के उपर आया था। प्रत्यर्थी सं॰ 1 और 2 की ओर से दाखिल प्रति शपथ पत्र का पैराग्राफ 8 निम्नलिखित है:–

"8. fd fjV vkonu d ijkvk 5 l 7 rd e fn, x, c;kuk d lcèk e ;g dFku vkj fuonu fd;k x;k g fd bu ijkvk e fn, x, c;ku v'krh lgh gA ;kph u i.k rF;k dk çLrr ugh fd;k gA oreku ekey e vrxLr li.k rF; ; g fd ijh{kk vkj lk{kkRdkj d ckn rhu lnL;k l xfBr p;u dfefV u çR;d mEehnokj dk vd vkofVr fd;kA mUgku rRdkyhu {k=h; çcèkd dk egjcn fyQkQ e ifj.kke çLrr fd;kA mEehnokjk dk p;u ijh{kk e mud }kjk çkIr fd, x, vdk d erkfcd eèkk lph e LFkku fn;k x;k FkkA ;kph dk uke Øekd 6 ij vkrk g tlk mld }kjk dFku fd;k x;k g vkj u fd lkekU; mEehnokjk dh lph d Øekd 4 ijA mDr iuy l o"k 1997 rd dkb fu;fDr ugh dh x;h FkhA bl chp] çR;Fkh l0 3 Jh HkiUn yky nkl jeu u lgk;d Je vk;Dr èkuckn d le{k ;g nkok djr g, vk|kfxd fookn mBk;k fd mlu cd d Qljk ckt kj vkj tjhMhg ckt kj 'kk[kk e 240 fnuk l vfèkd rd (dy 484 fnu) dke fd;k g vkj blfy, prFk ox d in ij cd dh lok e fu;ferhdj.k dk gdnkj gA mDr p;u çfØ;k e Jh HkiUn yky nkl u Hkh Hkkx fy;k FkkA fdr] og mDr eèkk lph e uhp FkkA mlu fnukd 28.7.1995 dk lgk;d Je vk;Dr dk viuh ;kfpdk çLrr fd;k FkkA çR;Fkh x.k u lc) 'kk[kk vk l lpuk exok;k FkkA rc ;g irk pyk fd og fnukd 3.10.1989 l fnukd fnukd 26.6.1990 d nkjku 200 fnuk d fy, Qljk ckt kj 'kk[kk e dke fd;k Fkk vkj fnukd 14.9.1990 l fnukd 31.7.1991 d nkjku 284 fnuk d fy, tjhMhg ckt kj 'kk[kk e fu;fer vèkhuLFk LVkQ (pijkl h) dh vuifLFkfr e dke fd;k FkkA Qljk ckt kj 'kk[kk e ml vkdfLed etnj dh etnjh dk Hkxrku fd;k x;k Fkk fdr tjhMhg ckt kj 'kk[kk e ml vèkhuLFk LVkQ ij ç;kT; orueku dh vkuikfrd etnjh dk Hkxrku fd;k x;k FkkA çR;Fkh x.k u lgk;d Je vk;Dr dk viuk mÙkj çLrr fd;k ft le mUgku Li"V fd;k fd ml cd e vkefyr ugh fd;k tk ldrk gA fdr] lgk;d Je vk;Dr u mEehnokj d fy, U;k; d fgr e mldk vkefyr dju dk l>ko fn;kA ekey dh lex ifjfLFkfr;k ij fopkj djr g, cd u lgk;d Je vk;Dr dh vu'kIk dk Lohdkj dju dk fu.k; fy;k vkj bl çdkj cd u fiNyh etnjh d ykHk d fcuk cd d ?kkjFkck 'kk[kk e vèkhuLFk in ij Jh HkiUn yky nkl jeu dk vkefyr

*fd;kA mld lkFk iuy l Ng vU; mEehnokjk dk Ng 'kk[kkvk e fu;Dr fd;k x;k Fkk ftue l rhu lekU; dkfV l Fk vkj rhu vkjf{kr dkfV l FkA***

16. सिवाए इसके कि सहायक श्रम आयुक्त के सुझाव पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 को नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था, याची के दावा को अनदेखा करने के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई भी कारण नहीं दिया गया है। याची की उम्मीदवारी में प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई दोष नहीं पाया गया है और इसलिए, मेरे दृष्टिकोण में याची को उस पद पर, जिसके लिए उसने संपूर्ण चयन प्रक्रिया को पूरा किया था, नियुक्ति से इनकार नहीं किया जा सकता था।

17. पूर्वोक्त की दृष्टि में, मेरा दृष्टिकोण है कि याची उस पद पर, जिसके लिए उसका चयन किया गया था और उसका नाम मेधा सूची में प्रत्यर्थी सं॰ 3 के उपर रखा गया था, नियुक्ति का आदेश पाने का हकदार है। किंतु, मामले के विचित्र तथ्यों की दृष्टि में और इस तथ्य की दृष्टि में कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 को दिनांक 3.4.1997 को नियुक्त किया गया था, प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति में हस्तक्षेप करते हुए किसी आदेश को पारित करना समुचित नहीं होगा।

18. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, प्रत्यर्थी सं॰ 1 और 2 को याची को दिनांक 3.4.1997 के प्रभाव से अर्थात् अधीनस्थ स्टाफ (चपरासी) के पद पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति की तिथि से तुरन्त नियुक्त करने के निर्देश के साथ यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। पूर्वोक्त निबंधनों में रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

कयामुद्दीन खान

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Writ Petition (Cr.) No. 55 of 2004. Decided on 21st June, 2013.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदन के मामले में।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 420—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 192 (1) एवं 482—छल–संज्ञान–जमीन की खरीद-बिक्री–किसी अन्य सक्षम न्यायालय को जाँच अथवा विचारण के लिए मामला सौंपने के पहले संज्ञान लेना मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी पर बाध्यकारी है–दंडाधिकारी को परिवाद प्राप्त करने के बाद धारा 200 और संहिता के अध्याय XV में उत्तरवर्ती धाराओं के अधीन कार्यवाही के प्रयोजन से अपने विवेक का इस्तेमाल करना है–पुलिस द्वारा आरोप-पत्र की दाखिली और न्यायालय में परिवाद की प्राप्ति संज्ञान लेने के लिए पर्याप्त है–किंतु एक ही अपराध के लिए द्वितीय परिवाद अनुज्ञेय नहीं है और संविधान के अनुच्छेद 20(2) द्वारा वर्जित है–इसके अतिरिक्त, धारा 420 के अधीन अपराध चालू रहने वाला अपराध नहीं है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–रिट आवेदन अनुज्ञात।

(पैराएँ 9, 11, 12, 13, 18, 20, 21 एवं 22)

निर्णयज विधि.–(1984) 4 SCC 222; AIR 1976 SC 1672; (1991) 4 SCC 109—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s V.P. Singh, Ashok Kumar, For the Petitioner; M/s R.P. Singh, Dr. H. Waris, For the Respondents.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति.—यह आवेदन दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 32 वर्ष 2003 में सत्र न्यायाधीश, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 20.1.2004 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने उक्त दांडिक पुनरीक्षण खारिज कर दिया और परिवाद मामला सं॰ 492/2002 में विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 21.4.2003 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन उन्होंने संज्ञान लिया था, को मान्य ठहराया।

2. यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 (परिवादी) ने दिनांक 10.9.2002 को मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा के न्यायालय में उसमें यह अभिकथन करते हुए परिवाद मामला दाखिल किया है कि उसने उचारी पी॰ एस॰ और जिला गढ़वा के भूखंड सं॰ 598 खाता सं॰ 23 से संबंधित 14.11 डिसमिल भूमि (उस पर खड़े भवन के साथ) दो विक्रय विलेखों द्वारा खरीदा। आगे यह अभिकथित किया गया है कि याची द्वारा भी उसी भूमि को खरीदा गया था। तत्पश्चात्, विवाद सुलझाने के लिए पंचायती की गयी थी और उक्त पंचायती के दौरान यह फैसला किया गया था कि याची प्रश्नगत भूमि पर घर खड़ा कर पाएगा और उसके बदले परिवादी को 1,15,000/- रुपयों का भुगतान करेगा। यह फैसला भी किया गया था कि परिवादी/प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा रिक्त भूमि अपने पास रखी जाएगी। यह कथन किया गया है कि पंचायत के पूर्वोक्त फैसला की दृष्टि में याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 2 को 1,15,000/- रुपयों का चेक दिया। तत्पश्चात्, उसको घर का कब्जा दिया गया था। आगे यह अभिकथित किया गया है कि दिनांक 11.2.2002 को उक्त चेक नगदीकरण के लिए केनरा बैंक, नानदेड़ (महाराष्ट्र) में जमा किया गया। किंतु इसका अनादर किया गया है और इसे प्रत्यर्थी सं॰ 2 को वापस लौटा दिया गया है। तत्पश्चात, दिनांक 3.9.2002 को प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने याची को कानूनी नोटिस दिया। तत्पश्चात, वर्तमान परिवाद मामला दाखिल किया गया।

3. यह प्रतीत होता है कि विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा ने उक्त परिवाद मामला दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 192 (1) के अधीन विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा के न्यायालय को अंतरित कर दिया। तब यह प्रतीत होता है कि विद्वान सब डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 202 के अधीन परिकल्पित जाँच किया और तब दिनांक 21.4.2003 के आदेश द्वारा याची के विरुद्ध समन जारी किया।

4. पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध, सत्र न्यायाधीश, गढ़वा के न्यायालय में दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 32 वर्ष 2003 दाखिल किया गया। यह प्रतीत होता है कि सत्र न्यायाधीश, गढ़वा ने दिनांक 20.1.2004 के अपने आदेश द्वारा दांडिक पुनरीक्षण खारिज कर दिया और सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 21.4.2003 के आदेश को मान्य ठहराया। पूर्वोक्त दो आदेशों को इस आवेदन में चुनौती दी गयी है।

5. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री वी॰ पी॰ सिंह ने निवेदन किया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दांडिक पुनरीक्षण खारिज करते हुए घोर अवैधता किया है। यह निवेदन किया गया है कि वर्तमान परिवाद याचिका दाखिल करने के पहले प्रत्यर्थी सं॰ 2 के मुख्तारनामा धारक अर्थात् मजीद अहमद सिद्दीकी ने समरुप अभिकथन पर याची के विरुद्ध परिवाद केस सं॰ 387/2002 दाखिल किया था। वह आगे निवेदन करते हैं कि विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा ने उक्त परिवाद पर संज्ञान लेने के बाद दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 192 (1) के अधीन जाँच एवं निपटान के लिए अभिलेख को न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा के न्यायालय में अंतरित कर दिया। तब वह निवेदन करते हैं कि विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा ने जाँच करने के बाद यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अभियुक्त (याची) के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है, दिनांक 14.8.2002 के अपने आदेश द्वारा परिवाद मामला खारिज कर दिया। यह निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त तथ्य को दबाकर प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा वर्तमान परिवाद मामला दाखिल

किया गया है। वह आगे निवेदन करते हैं कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 (2) के मुताबिक किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार अभियोजित और दंडित नहीं किया जा सकता है। वह निवेदन करते हैं कि याची को पहले उसी अपराध के लिए अभियोजित किया गया है, अत:, द्वितीय परिवाद याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 का उल्लंघन करती है श्री सिंह निवेदन करते हैं कि विद्वान सत्र न्यायाधीश, गढ़वा ने यह कहते हुए कि आपवादिक परिस्थिति में द्वितीय परिवाद याचिका पोषणीय है, यदि अपराध चालू रहने वाला अपराध है, परिवाद याचिका खारिज कर दिया। वह निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले में याची को कोई आपवादिक परिस्थिति उपलब्ध नहीं है। वह तब निवेदन करते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध चालू रहने वाला अपराध नहीं है। इस प्रकार, विद्वान सत्र न्यायाधीश, गढ़वा का निष्कर्ष बिल्कुल गलत और अवैध है, अत: इसे इस रिट याचिका में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं॰ 2 के लिए उपस्थित जी॰ पी॰ II के जे॰ सी॰ श्री आर॰ पी॰ सिंह और विद्वान अधिवक्ता श्री एच॰ वारिस निवेदन करते हैं कि चूँकि पहले दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 203 के अधीन परिवाद याचिका खारिज कर दी गयी थी, यह तर्क नहीं किया जा सकता है कि याची को उसी अभिकथन पर अभियोजित किया गया है। वे आगे निवेदन करते हैं कि वस्तुत: पूर्व के परिवाद मामले में न्यायालय ने अपराध का संज्ञान नहीं लिया है, क्योंकि इसे दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 203 के अधीन खारिज कर दिया गया था। तद्नुसार, वे निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले में भारत के संविधान का अनुच्छेद 20 (2) प्रयोज्य नहीं है। वे आगे निवेदन करते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध चालू रहने वाला अपराध है, अत: पश्चातवर्ती परिवाद पोषणीय है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि इस मामले में गुणागुण नहीं है।

7. निवेदनों को सुनने पर मैंने मामले के अभिलेख और श्री बी॰ पी॰ सिंह द्वारा प्रस्तुत याचिका सं॰ 387 वर्ष 2002 के परिवाद के ऑर्डरशीट की प्रमाणित प्रति का परिशीलन किया है।

8. परिवाद केस सं॰ 387 वर्ष 2002 के ऑर्डर शीट के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि इसे किसी मजीद अहमद सिद्दीकी द्वारा दाखिल किया गया है जो स्वयं को प्रत्यर्थी सं॰ 2 के मुख्तारनामा का धारक होने का दावा करता है। पूर्वोक्त परिवाद मामले में, वर्तमान मामले के समान अभिकथन याची के विरुद्ध किया गया है। वर्तमान मामले की परिवाद याचिका (परिशिष्ट 1) के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने इस तथ्य को दबाया है कि उसके मुख्तारनामा धारक ने उन्हीं तथ्यों पर याची के विरुद्ध परिवाद मामला दाखिल किया है जिसे पहले खारिज कर दिया गया था। परिवाद केस सं॰ 387 वर्ष 2002 के ऑर्डरशीट का कोरा परिशीलन दर्शाता है कि दिनांक 22.7.2002 को विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा ने परिवादी के अधिवक्ता को सुनने और परिवाद मामला का परिशीलन करने के बाद इसे दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 192 (1) के अधीन जाँच और निपटान के लिए न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा के न्यायालय को अंतरित कर दिया। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 192 (1) का पठन निम्नलिखित है:–

> ***^^nMkfèkdkfj;k dk ekeyk dk Hkktk tkuk-****&(1) dkb e[; U;kf;d nMkfèkdkjh vijkèk dk lKku yu d ckn viu vèkhuLFk fdlh l{ke nMkfèkdkjh dk tkp vFkok fopkj.k d fy, ekeyk Hkt ldrk gA***

9. पूर्वोक्त प्रावधान के सादे पठन से यह स्पष्ट है कि मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी अपराध का संज्ञान लेने के बाद अपने अधीनस्थ किसी सक्षम न्यायालय को जाँच अथवा विचारण के लिए मामला भेज सकता है। इस प्रकार, पूर्वोक्त प्रावधान के मुताबिक, किसी अन्य सक्षम न्यायालय को जाँच अथवा विचारण के लिए मामला भेजने के पहले संज्ञान लेना मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी पर बाध्यकारी है। अब, प्रश्न उद्भूत

हुआ कि क्या मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने परिवाद मामला सं॰ 387 वर्ष 2002 में दिनांक 22.7.2002 का आदेश पारित करते हुए मामले में संज्ञान लिया था या नहीं। जैसा उपर गौर किया गया है, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा ने न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा के फाइल में मामला भेजने के पहले परिवादी को सुना था और परिवाद याचिका का परिशीलन किया था।

10. डी॰ लक्ष्मी नारायण रेड्डी एवं अन्य बनाम वी॰ नारायण रेड्डी, AIR 1976 SC 1672 के पैरा 14 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है:–

*^^;g vku"kfxd ç'u mBkrk gS èkkjk 190 d vuè;ku d vrxr nMkfèkdkjh }kjk ^^vijkèk dk lKku yuk** dk vFk D;k g\ bl vfHk0;fDr dk lfgrk e ifjHkkf"kr ugh fd;k x;k gA fdr lfgrk dh ;ktuk] èkkjk 190 d fo"k;oLr vkj ekftuy 'kh"kd rFkk vè;k; XIVftld vèkhu èkkjk, 190 l 199 rd vkrh g d dl'ku l ;g Li"V g fd ekey dk fdlh U;k;ky; e lLFkkfir fd;k x;k doy rc dgk tk ldrk g tc U;k;ky; mle vfHkdfFkr vijkèk dk lKku yrk gA mu rjhdk ftue , lk lKku fy;k tk ldrk g dk èkkjk 190 (1) d [kMk (a), (b) vkj (c) e of.kr fd;k x;k gA D;k nMkfèkdkjh u vijkèk dk lKku fy;k g vFkok ugh fy;k g ml <x ftle ekey dk lLFkkfir fd;k tkuk bfllr fd;k x;k g] vkj nMkfèkdkjh }kjk dh x;h vkjfHkd dkjokb] ;fn gk] dh çÑfr lfgr ekeyk fo'k"k d ifjfLFkfr;k ij fuHkj djxkA* ***ekV rkj ij dgr g,] tc ifjokn çkIr dju ij nMkfèkdkjh èkkjk 200 vkj 1973 dh lfgrk d vè;k; XV e mÙkjorh èkkjkvk d vèkhu dk;okgh d ç;ktu l viu food dk bLreky djrk g] ml èkkjk 190 (1) (a) d vFk d vrxr vijkèk dk lKku yu okyk dgk tk ldrk gA*** *;fn vè;k; XV d vèkhu dk;okgh d ctk, mlu viu Lofood d U;kf;d ç;kx e fdlh vU; çdkj] tl vUo"k.k d ç;ktu l lp okjV tkjh djuk vFkok èkkjk 156 (3) d vèkhu ifyl }kjk vUo"k.k dk vkn'k nuk] dh dkjokb fd;k g] ml fdlh vijkèk dk lKku yu okyk ugh dgk tk ldrk gA (tkj fn;k x;k)*

11. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित पूर्वोक्त विधि के मुताबिक यदि दंडाधिकारी परिवाद प्राप्त करने के बाद धारा 200 और संहिता के अध्याय XV में उत्तरवर्ती धाराओं के अधीन कार्यवाही के प्रयोजन से अपने विवेक का इस्तेमाल करता है, उसे संहिता की धारा 190(1) (a) के अर्थ के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने वाला कहा गया है।

12. वर्तमान मामले में, जैसा उपर गौर किया गया है, परिवाद का परिशीलन करने और परिवादी के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 192 (1) के अधीन जाँच के लिए न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा के फाइल में मामले को भेजा। इस प्रकार, मेरे दृष्टिकोण में उन्होंने मामले का संज्ञान लेने के बाद उक्त मामले को भेजा। पूर्वोक्त पैराग्राफ में, माननीय न्यायाधीशों ने आगे अभिनिर्धारित किया कि संहिता की योजना से यह स्पष्ट है कि मामले को न्यायालय में संस्थापित किया गया केवल तब कहा जा सकता है जब न्यायालय ने उसमें अभिकथित अपराध का संज्ञान लिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त संप्रेक्षण की दृष्टि में, चूँकि विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गढ़वा ने परिवाद मामला सं॰ 387 वर्ष 2002 में अपने विवेक का इस्तेमाल करने के बाद दिनांक 22.7.2002 का आदेश पारित किया, मेरे दृष्टिकोण में, उन्होंने मामले का संज्ञान लिया है और इस प्रकार मामला पहले ही याची के विरुद्ध संस्थापित किया जा चुका है।

13. भारत संघ एवं अन्य बनाम के॰ वी॰ जानकी रमन एवं अन्य, (1991)4 SCC 109, में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दांडिक कार्यवाही आरंभ की गयी कही जा सकती है जब दांडिक अभियोजन में आरोप-पत्र दाखिल किया जाता है। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 190 प्रावधानित करती है कि मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी:–

(a) rF;k tk ,lk vijkèk xfBr djr g] dk ifjokn çkIr dju ij(

(b) ,l rF;k d ifyl fjikV ij(

(v) ifyl vfèkdkjh l fHkUu fdlh 0;fDr l lpuk çkIr dju ij] vFkok Lo; viuh tkudkjh ij fd ,lk vijkèk fd;k x;k g] lKku y ldrk gA

इस प्रकार, पुलिस द्वारा आरोप-पत्र दाखिल किया जाना और न्यायालय में परिवाद प्राप्त किया जाना संज्ञान लेने के लिए पर्याप्त है। उक्त परिस्थिति के अधीन, यदि न्यायालय में परिवाद याचिका दाखिल की गयी है, तब भी यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही आरंभ की गयी है।

14. जैसी चर्चा ऊपर की गयी है, परिवाद केस सं॰ 387/2002 में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी गढ़वा ने अपराध का संज्ञान लिया। इस प्रकार, याची के विरुद्ध संस्थापित दांडिक मामला, **के॰ वी॰ जानकी रमन मामले (ऊपर)** में अधिकथित विधि की दृष्टि में उसे अभियोजित किया गया है।

15. भारत के संविधान के अनुच्छेद, 20 (2) का पठन निम्नलिखित है:–

"20. ***vijkèkk d nk"kflf) d lcèk e lj{k.k-&***

(1)....................

(2) fdlh 0;fDr dk ,d gh vijkèk d fy, ,d l vfèkd ckj vfHk;kftr vkj nfMr ugh fd;k tk,xkA

(3) ....

16. पूर्वोक्त प्रावधान के अनुसार, यह स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति एक ही अपराध के लिए दो बार तंग नहीं किया जा सकता है।

17. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी सं॰ 2 के मुख्तारनामा धारक ने समरुप अभिकथन पर याची के विरुद्ध परिवाद दाखिल किया था जिसे सक्षम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज किया गया था कि उसके विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन मामला नहीं बनता है। वह आदेश अंतिम बन गया है क्योंकि इसके विरुद्ध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन पुनरीक्षण और अथवा आवेदन दाखिल नहीं किया गया है। इस प्रकार, मेरे दृष्टिकोण में, एक ही अपराध के लिए द्वितीय परिवाद अनुज्ञेय नहीं है जब तक **प्रमथ नाथ तालुकदार बनाम सरोज रंजन सरकार, AIR 1962 SC 876,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित विधि के मुताबिक कुछ आपवादिक परिस्थिति नहीं है। उक्त आपवादिक परिस्थितियाँ निम्नलिखित है:–

(i) tc [kkfjth dk io vkn'k vi.k vfHky[k ij ikfjr fd;k x;k Fkk(vFkok

(ii) ifjokn dh çÑfr d xyr le> d dkj.k ifjokn [kkfjt fd;k x;k Fkk(vFkok

(iii) io dk vkn'k Li"V :i l crdk vFkok vU;k;kfpr Fkk(vFkok

(iv) ckn e dN u, rF; çdk'k e vk, g ftUg lE;d rRijrk ij igy tkuk ugh tk ldk FkkA

18. वर्तमान मामले के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि पूर्वोक्त आपवादिक परिस्थितियों में से कोई भी उपलब्ध नहीं है। प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने कथन नहीं किया है कि वह द्वितीय परिवाद क्यों दाखिल कर रहा है। बल्कि जैसा ऊपर गौर किया गया है, उसने इस तथ्य को दबाया कि उसके मुख्तारनामा धारक ने उसी अभिकथन पर परिवाद दाखिल किया था जिसे खारिज कर दिया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, द्वितीय परिवाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 (2) के प्रावधान द्वारा वर्जित है।

19. विद्वान अवर न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया है कि द्वितीय परिवाद पोषणीय है, भले ही यह आपवादिक परिस्थिति के अधीन नहीं आता है, यदि यह चालू रहने वाला अपराध है। वर्तमान मामले में, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन संज्ञान लिया गया है। मेरे दृष्टिकोण में, धारा 420 के अधीन अपराध चालू रहने वाला अपराध नहीं है। **भगीरथ कनोरिया एवं अन्य बनाम एम॰ पी॰ राज्य, (1984)4 SC 222,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि चालू रहने वाला अपराध वह है जो चालू रहता है और चालू नहीं रहने वाला अपराध वह है जिसे एक बार किया जाता है।

20. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा अभिकथित किया गया है कि याची ने वर्ष 2001 में उसके साथ छल किया। यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि याची बार-बार उसके साथ छल करता रहा। इस प्रकार, मेरे दृष्टिकोण में, छल का अपराध वर्ष 2001 में पूरा हुआ। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि विद्वान सत्र न्यायाधीश, गढ़वा ने यह अभिनिर्धारित करके कि धारा 420 के अधीन अपराध चालू रहने वाला अपराध है, अतः द्वितीय परिवाद दाखिल किया जा सकता है, घोर अवैधता किया है।

21. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा दाखिल द्वितीय परिवाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 (2) का उल्लंघन करती है और इसलिए यह पोषणीय नहीं है।

22. उक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं निष्कर्षित करता हूँ कि दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 32 वर्ष 2003 में सत्र न्यायाधीश, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 20.1.2004 का आक्षेपित आदेश और परिवाद केस सं॰ 492 वर्ष 2003 में विद्वान सब डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 21.4.2003 का आदेश घोर अवैधता और अनियमितता से पीड़ित है, अतः, मैं एतद् द्वारा उनको अभिखंडित करता हूँ। तद्नुसार, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

कृष्ण कुमार अग्रवाल

cuke

श्रीमती द्रौपदी देवी मोदी

W.P. (C) No. 778 of 2013. Decided on 30th April, 2013.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 47—बेदखली डिक्री के निष्पादन पर आपत्ति—अस्वीकरण—धारा 47 के अधीन ऐसा कोई आज्ञापक प्रावधान नहीं है कि सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को विविध मामले के रूप में दर्ज करने की आवश्यकता है और केवल तत्पश्चात इसे निपटाया जा सकता है—न्यायालय पर डाली गयी एकमात्र आवश्यकता/बाध्यता विवाद को न्यायिक तरीके से विनिश्चित करना है और वर्तमान मामले में वैसा किया गया है—रिट याचिका खारिज की गयी। (पैराएँ 5 से 7)

निर्णयज विधि.–AIR 1990 P & H 92—Distinguished; AIR 1951 Patna 372; (1970)1 SCC 670; 1998 (1) PLJR 341—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s V. Shivnath, A Aditya, S. Shekhar, For the Petitioner; M/s Amar Kumar Sinha, K.K. Ambastha, Sandeep Verma, Md. Abdul Wahab, For the Respondent.

आदेश

याची ने वर्तमान याचिका के रूप में भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन दिनांक 16 जनवरी, 2013 के आदेश (परिशिष्ट 6) को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए समुचित रिट/आदेश/निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल निर्णीत ऋणी की दिनांक 11.6.2012 की याचिका (परिशिष्ट 4) ग्रहण के समय पर अस्वीकार कर दी गयी है।

2. याची और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

3. आक्षेपित आदेश और अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य सामग्रियों का परिशीलन किया गया।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि निष्पादन न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन पोषणीय था क्योंकि डिक्री पारित करने के लिए अंतर्निहित अधिकारिता को याची द्वारा चुनौती दी गयी थी। याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, बिहार मकान (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की धारा 11 (1) (e) के अधीन वाद दाखिल किया गया था और फिक्सचर, फिटिंग और फर्नीचर की वसूली के लिए बिहार मकान (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की धारा 14 के अधीन कोई प्रावधान प्रावधानित नहीं किया गया है और इसलिए, बिहार मकान (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की धारा 14 के अधीन विहित विशेष प्रक्रिया अनुतोष जिसे वाद में इप्सित किया गया है पर प्रयोज्य नहीं है। याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अवर न्यायालय मामले के इस पहलू का अधिमूल्यन करने में विफल रहा और तद्द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया। याची के विद्वान अधिवक्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 को निर्दिष्ट करते हुए आगे निवेदन किया कि वाद जिसमें डिक्री पारित किया गया है में पक्षों अथवा उनके प्रतिनिधियों के बीच डिक्री के निष्पादन, उन्मोचन अथवा संतुष्टि से संबंधित उद्भूत होने वाले समस्त प्रश्नों को डिक्री निष्पादित करने वाले न्यायालय द्वारा और न कि पृथक वाद द्वारा विनिश्चित किया जाएगा और इसलिए, उक्त आवेदन ग्रहण करना और विधि के अनुरुप इसे विनिश्चित करना निष्पादन न्यायालय का कर्तव्य था। आगे यह निवेदन किया गया है कि उक्त आवेदन विविध मामला के रूप में दर्ज नहीं किया गया था। और उक्त आवेदन को विविध मामला के रूप में दर्ज किए बिना अवर न्यायालय ने इसे खारिज कर दिया और इसलिए, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन अवर न्यायालय को ऐसे हेतु की छूट नहीं है। आगे यह निवेदन किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को इसे विविध मामला के रूप में दर्ज किए बिना आरंभ में ही अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

याची के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रतिवादों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयज विधियों को निर्दिष्ट किया है और इन पर विश्वास किया है:–

(i) AIR 1951 Patna 372;

(ii) (1973)2 SCC 474;

(iii) AIR 1990 Punjab & Haryana 92

याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को संक्षिप्त रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है। न्यायालय जिसको यह याचिका प्रस्तुत की जाती है को प्रस्तुतीकरण के समय पर स्वयं इसके अपने गुणागुण पर इस पर विचार करने की छूट है। इस संदर्भ में, याची के विद्वान अधिवक्ता ने पटना उच्च न्यायालय द्वारा जारी एक परिपत्र पर भी विश्वास किया है जिसे प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भी निर्दिष्ट किया गया है।

5. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया और निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने सही प्रकार से और समुचित रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को अस्वीकार कर दिया। आगे यह निवेदन किया गया है कि अनुसूची 'A' और 'B' में वर्णित वाद परिसर से प्रतिवादी की बेदखली की डिक्री के लिए वादी द्वारा वाद दाखिल किया गया था। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने बेदखली (हक) वाद सं० 10 वर्ष 2006 में किए गए प्रकथनों को निर्दिष्ट करके निवेदन किया कि पैराग्राफ 2 में उस प्रभाव के विनिर्दिष्ट प्रकथन किए गए थे। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री (प्रतिशपथ पत्र का परिशिष्ट A) को भी निर्दिष्ट किया और उक्त निर्णय के पैराग्राफ 8 को निर्दिष्ट करके यह निवेदन किया है कि अनुसूची 'A' और 'B' में वर्णित वाद परिसर के संबंध में वादी के पक्ष में वाद डिक्री किया गया था। आगे यह निवेदन किया गया है कि फर्नीचर, फिक्सचर और फिटिंग भवन के भाग हैं और भवन से बेदखली फर्नीचर, फिक्सचर और फिटिंग को सम्मिलित करना पूर्व उपधारित करती है। आगे यह निवेदन किया गया है कि याची ने उक्त निर्णय के विरुद्ध पुनरीक्षण दाखिल नहीं किया है और अब निष्पादन न्यायालय के समक्ष अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को विधिकता और वैधता को चुनौती दे रहा है जो अनुज्ञेय नहीं है क्योंकि अवर न्यायालय द्वारा कोई अधिकारिता संबंधी गलती नहीं की गयी थी। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयज विधियों पर विश्वास किया है:

(i) 1998 (1) PLJR 341;

(ii) AIR 2001 SC 1387;

(iii) AIR 1970 SC 1475;

(iv) 2009 (1) CCC 50 (SC);

(v) (2013)SCCR 178.

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने भी पटना उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार द्वारा जारी मार्गदर्शक सिद्धांतों को यह दर्शाने के लिए निर्दिष्ट किया है और इन पर विश्वास किया है कि पटना उच्च न्यायालय द्वारा मार्गदर्शक सिद्धांत जारी किए गए थे कि किस प्रकार सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन पर विचार करने की आवश्यकता है। याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन ऐसा कोई आज्ञापक प्रावधान नहीं है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को विविध मामला के रूप में दर्ज करने की आवश्यकता है। यदि ऐसे आवेदन में सार नहीं है, ऐसे आवेदन को विविध मामला के रूप में दर्ज किए बिना आरंभिक चरण पर निपटाया जा सकता है।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि समय के किसी बिंदु पर अवर न्यायालय के समक्ष याची द्वारा अधिकारिता के संबंध में बिंदु कभी नहीं उठाया गया था और अब निर्णय एवं डिक्री

पारित किए जाने के बाद याची को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आवेदन दाखिल करके निष्पादन न्यायालय के समक्ष ऐसा विवाद्यक उठाने की छूट नहीं है, जब अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को पुनरीक्षण दाखिल करके चुनौती नहीं दी गयी थी। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया था और उक्त आदेश से व्यथित होकर याची डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6778 वर्ष 2007 के साथ डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6785 वर्ष 2007 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया है और मामले को नए सिरे से सुने जाने के लिए मामला अवर न्यायालय के पास वापस भेजा गया था और तत्पश्चात, अवर न्यायालय ने विधि के अनुरुप आदेश पारित किया और तद्द्वारा याची को प्रतिवाद करने की अनुमति प्रदान करने से इनकार किया और उक्त आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर याची ने डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3394 वर्ष 2010 दाखिल किया और दिनांक 30 नवंबर, 2010 के आदेश द्वारा उक्त याचिका खारिज कर दी गयी थी। आगे निवेदन किया गया है कि उक्त आदेश के विरुद्ध याची द्वारा आज की तिथि तक अपील दाखिल नहीं की गयी है।

6. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के परिशीलन पर यह प्रतीत होता है कि याची सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन की खारिजी/अस्वीकरण से व्यथित है। यहाँ उपर निर्दिष्ट याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को इस सरल कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि धारा 47 के अधीन ऐसा कोई आज्ञापक प्रावधान नहीं है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को विविध मामला के रूप में दर्ज करने की आवश्यकता है और केवल तत्पश्चात इसे निपटाया जा सकता है। **AIR 1951 Patna 372** में प्रकाशित खंडपीठ निर्णय के आधार पर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन पटना उच्च न्यायालय द्वारा जारी मार्गदर्शक सिद्धांत भी उस प्रभाव का उपदर्शन नहीं देते हैं। बेदखली (हक) वाद सं॰ 10 वर्ष 2006 में पारित निर्णय और डिक्री को याची द्वारा पुनरीक्षण दाखिल करके चुनौती कभी नहीं दी गयी थी। यह भी प्रतीत होता है कि अधिकारिता के संबंध में प्रश्न याची द्वारा वाद के लंबित रहने के दौरान कभी नहीं उठाया गया था और इसलिए, अवर न्यायालय ने अपने समक्ष प्रस्तुत समस्त प्रासंगिक सामग्रियों को विचार में लेने के बाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दाखिल आवेदन को अस्वीकार कर दिया क्योंकि उक्त आवेदन में गुणागुण नहीं था। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया प्रतिवाद कि अवर न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन इसमें निहित शक्तियों पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि अवर न्यायालय ने मामले में अंतर्ग्रस्त समस्त प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद और विधि की प्रतिपादना, जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 147 के अधीन प्रावधानित किया गया है, सहित साक्ष्यों का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के बाद उक्त आवेदन पर विचार किया है और इसे विनिश्चित किया है।

मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट और विश्वास किए गए **दशरथी राय चौधरी बनाम कालीचरण घोष, AIR 1951 Patna 372,** में प्रकाशित निर्णय का परिशीलन किया है जिसका पैरा 18 निम्नलिखित है:–

> *"18. .... bl çfriknuk dks fy, dkbZ ikekf.kd fu.kZ; ugha gS fd èkkjk 47 d vèkhu vkonu dk lf{klr :i ls [kkfjt ugha fd;k tkuk pkfg,A U;k;ky;] ftl ;kfpdk çLrqr dh tkrh g] dk çLrqrhdj.k d le; ij blds x.kkx.k ij bl ij fopkj dju dh NwV lnSo gA ;fn ;g Li"V g fd ;kfpdk e fd, x, çfroknk e x.kkx.k ugha g] ;g lgh ugha g fd turk d le; vkj èku dk 0;Fk fd;k tk,*

vkj fojkèkh i{kdkj dk ij'kku fd;k tk, vkj nkuk i{kk dk foLrkjiod lu tku rd vkn'k ikfjr djuk LFkfxr djd vfrfjDr èku 0;; fd;k tk,A fdr ;g vko';d g fd vkonu nkf[ky dju oky i{k dk mBk, x, fcnvk ij ijh rjg lu tkuk pkfg, vkj tgk vko';d gk] mUg budk LFkkfir dju dk volj fn;k tkuk pkfg,A tgk rd vkifÙk fofèk d 'k) ekey dk lEcUèk g] ;g lHko g fd ekeyk bruk Li"V gk fd U;k;ky; dk rjUr fcn ij fu.k; ij vku e dkb ef'dy ugh gkxh--------"

उक्त निर्दिष्ट निर्णयज विधि स्पष्टत: प्रावधानित करती है कि इस प्रतिपादना के लिए कोई प्राधिकार नहीं है कि धारा 47 के अधीन आवेदन संक्षिप्त रूप से खारिज नहीं किया जाना चाहिए। अत: यह निर्णय याची की मदद नहीं करता है।

याची के विद्वान अधिवक्ता ने **मेसर्स वुलवेज, शॉप-कम-ऑफिस, चंडीगढ़ एवं अन्य बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, चंडीगढ़ एवं अन्य, AIR 1990 पंजाब एवं हरियाणा 92,** मामले में दिए गए निर्णय को उद्धृत किया है और उक्त निर्णय के पैरा 4 पर विश्वास किया है जो निम्नलिखित है:–

"4. ....flfoy çfØ;k lfgrk dh èkkjk 47 d vèkhu fMØh d fu"iknu] lekèkku vkj mUekpu lcfèkr leLr vkifÙk;k dk fMØh fu"ikfnr dju oky U;k;ky; }kjk vkj u fd iFkd okn }kjk fofuf'pr djuk gkxkA flfoy çfØ;k lfgrk dh èkkjk 47 d vèkhu vkifÙk;k dk lf{klr :i l fuiVk;k ugh tkuk pkfg,A fu"iknu U;k;ky; dk mlh rjhd l tlk okn e fd;k tkrk g fook|d fojfpr dju vkj bldk fuiVku dk drO; lfofèk }kjk ugh fn;k x;k g] fQj Hkh fu"iknu U;k;ky; U;kf;d rjhd l fookn fofuf'pr dju dh ckè;rk d vèkhu gA ;fn i{k lk{; nuk pkgr g] mUg ,lk dju dh vuefr nh tkuh pkfg, Fkh--------"

उक्त निर्दिष्ट निर्णयज विधि भी याची के मामले की मदद नहीं करती है क्योंकि पूर्वोक्त निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है कि निष्पादन न्यायालय को उसी तरीके से जैसा वाद में किया जाता है विवाद्यक विरचित करने और इसको निपटाने की आज्ञा संविधि द्वारा नहीं दी गयी है। न्यायालय पर डाली गयी एकमात्र आवश्यकता/बाध्यता न्यायिक तरीके से विवाद विनिश्चित करना है और वर्तमान मामले में वैसा किया गया है। किंतु यहाँ उपर चर्चा किए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, उक्त निर्णयों का वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई भी प्रभाव और प्रयोज्यता नहीं है और वे याची की मदद नहीं करते हैं।

मैंने प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट और विश्वास किए गए निर्णयों का भी परिशीलन किया है और उक्त निर्णयों में अधिकथित निर्णयाधार मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रति प्रासंगिक और प्रयोज्य हैं।

वासुदेव धनीभाई मोदी बनाम राजा भाई अब्दुल रहमान, (1970)1 SCC 670, के निर्णय का पैरा 7 निम्नलिखित है:–

"7. ....iu% tc ,d ,l U;k;ky; }kjk fMØh ikfjr dh tkrh g ftld ikl bldh oèkrk dk ydj vkifÙk dju dh vrfufgr vfèkdkfjrk ugh g] bldh oèkrk d çfr vkifÙk fu"iknu dk;okgh e mBk;h tk ldrh g ;fn vfHky[k dk n[kr gh vkifÙk çrhr gkrh g% tgk fMØh ikfjr dju d fy, U;k;ky; dh vfèkdkfjrk d çfr vkifÙk vfHky[k dk n[kr gh çrhr ugh gkrh g vkj fopkj.k e mBk, vkj fofuf'pr fd, x, ç'uk dk ijh{k.k dju dh vko';drk g ftUg mBk;k tk ldrk Fkk fdr mBk;k ugh x;k g] fu"iknu U;k;ky; dk vfèkdkfjrk dh vuifLFkfr d vkèkkj ij Hkh fMØh dh oèkrk d çfr vkifÙk xg.k dju dh vfèkdkfjrk ugh gkxh----------"

मैंने **श्री विश्वनाथ शर्मा बनाम शिव प्रसाद शाह एवं अन्य,** 1998 (1) PLJR 341, मामले में निर्णय का भी परिशीलन किया है जिसे प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट और विश्वास किया गया है और उक्त निर्णय में अधिकथित निर्णयाधार मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रति प्रासंगिक और प्रयोज्य है।

निर्णय के पैराओं 7 और 8 के प्रासंगिक अंश, जो वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक हैं, निम्नलिखित है:–

^^7 ..... fookn d lekèkku d fy, vfèkfu;e d vèkhu çklfxd çkoèkkuk dk ijh{k.k djuk vko';d gA fcgkj fu;=.k vfèkfu;e dh èkkjk 2(b) Hkou dh ifjHkk"kk ij fopkj djrh g ftldk iBu fuEufyf[kr g%

2(b) ^Hkou l vfHkçr g dkb Hkou] vFkok >kiMh vFkok Hkou vFkok >kiMh dk Hkkx] vkoklh; vFkok xj vkoklh; ç;ktuk l iVVk ij fn;k x;k vFkok iFkd :i l fn;k tku okyk vkj ;g lfEefyr djrk g&*

(i) cxhpk] tehu] vkj vkmVgkml] ;fn gk] , l Hkou vFkok >kiMh vFkok , l Hkou vFkok >kiMh l lc) ljpuk

(ii) , l Hkou vFkok >kiMh vFkok Hkou vFkok >kiMh d Hkkx e mi;kx d fy, edku ekfyd }kjk vkir Quhpj(

*8. fcgkj fu;=.k vfèkfu;e dk u doy Hkouk dk fdjk;k fu;f=r dju d fy, cfYd mll fdjk;nkj dh v;fDr;Dr cn[kyh dk jkdu d fy, Hkh vfèkfu;fer fd;k x;k gA fcgkj fu;=.k vfèkfu;e u doy vkoklh; Hkouk ij cfYd xj vkoklh; Hkouk ij Hkh fopkj djrk g vkj ;g cxhpk] tehu vkj vkmVgkml] ;fn gk vkj , l Hkou vFkok >kiMh vFkok , l Hkou vFkok >kiMh d Hkkx l lc) ljpuk dk lfEefyr djrk gA ;g , l Hkou vFkok >kiMh vFkok , l Hkou vFkok >kiMh d Hkkx e mi;kx d fy, edkuekfyd }kjk vkir fdlh Quhpj dk Hkh lfEefyr djrk gA vr% ;g fu"df"kr djuk ;fDr;Dr g fd vfèkfu;e dk vk'k; 'kCn Hkou ij 0;kid foLrkj çnUk djuk gkxkA***

7. मामले के पूर्वोल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में और उपर चर्चा किए गए विधि की अवस्था की दृष्टि में भी यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने प्रासंगिक तथ्यों और विधि के प्रावधानों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन याची द्वारा दाखिल आवेदन को विनिश्चित किया। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधि के अनुरुप है और इसलिए अनुच्छेद 227 के अधीन इस न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। तद्नुसार, इस रिट याचिका को खारिज किए जाने का आदेश दिया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o Jh pn'k[kj] U;k;efrx.k

श्रवण महतो

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Criminal Appeal (DB) No. 214 of 1991 (R). Decided on 12th March, 2013.

चैनपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 96 वर्ष 1989 से उद्भूत होने वाले सत्र विचारण सं॰ 88 वर्ष 1990 में श्री देवनारायण बराय, विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, पलामू द्वारा पारित दिनांक 6 सितंबर, 1991 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–सूचक ने मृतका की हत्या कारित करने के लिए अपीलार्थी अभियुक्त के हाथ में किसी हथियार के बारे में अधिकथित नहीं किया है और न ही उसने अपीलार्थी अभियुक्त द्वारा प्रहार के तरीके के बारे में फर्दबयान में कोई अभिकथन किया है–मृतका के शरीर पर पायी गयी उपहतियों को अभियोजन द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया–अभियोजन द्वारा किसी चश्मदीद गवाह का परीक्षण नहीं किया गया–अभियोजन अपीलार्थी द्वारा हत्या का अपराध सिद्ध करने में विफल रहा–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Praveen Shankar Dayal, For the Appellant; Mr. Krishna Shankar, For the State.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–वर्तमान अपील सत्र विचारण सं॰ 88 वर्ष 1990 में विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, पलामू, द्वारा पारित दिनांक 6 सितंबर, 1991 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थी अर्थात् श्रवण महतो को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 15.11.1989 को प्रातः लगभग 8 बजे सूचक सनीचर महतो (अ॰ सा॰ 3) धान के फसल की कटाई के लिए अपने खेत में गया था और उसकी पुत्री, यद्यपि वह विवाहित थी किंतु अपने पिता के घर में रह रही थी, सामान्य रूप से उक्त खेत से घास काटने के लिए राहर के खेत में गयी थी। उस दिन पर सूचक (अ॰ सा॰ 3) अपने खेत से लौटा और उसे अपनी छोटी पुत्री अर्थात् देवंती कुमारी से पता चला कि उसकी बड़ी पुत्री हेमंती देवी (मृतका) देर से खाना खाने घर आयी थी और, इसलिए, सूचक अपने पुत्र संतोष प्रसाद उर्फ संतोष महतो (अ॰ सा॰ 2) के साथ खाना खाने के लिए उसके देर से आने के कारण को अभिनिश्चित करने के लिए सरपुरवा बघौटा बधार गया। जब वे बघौता बधार में खेत से सौ गज की दूरी थे, उन्होंने हेमंती की चीख सुनी और आशंकित हुए कि वह बड़े खतरे में है और, इसलिए, खेत की ओर भागे और अभियुक्तगण श्रवण महतो और उसके पुत्र भदोइया महतो को उसे छुपाने के लिए हेमंती को घसीटते देखा। सूचक द्वारा हल्ला करने पर उसका भाई बेचन महतो (अ॰ सा॰ 1) भी वहाँ पहुँचा और उन सबों ने अभियुक्तगण श्रवण महतो और उसके पुत्र को भागते देखा। हेमंती जीवन के लिए संघर्ष कर रही थी किंतु वह कुछ बोल नहीं सकी थी और तुरन्त उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात, सूचक ने चौकीदार और मृतका के ससुराल वालों को सूचित किया जो घटनास्थल पर आए और तत्पश्चात सूचक (अ॰ सा॰ 3) उनको घटनास्थल पर छोड़ कर प्राथमिकी दर्ज करने के लिए घटना स्थल पर गया और तत्पश्चात वर्तमान प्राथमिकी चैनपुर पुलिस थाना केस सं॰ 96 वर्ष 1989 दिनांक 16.11.1989 संस्थापित की गयी थी।

3. प्राथमिकी संस्थापित करने के बाद, पुलिस ने अन्वेषण किया और आरोप-पत्र दाखिल किया। मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था जहाँ मामला को सत्र विचारण सं॰ 88 वर्ष 1990 के रूप में संख्यांकित किया गया था और अभियोजन गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 1 से अ॰ सा॰ 8 तक द्वारा दिए गए साक्ष्य और अभिसाक्ष्य के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने हेमंती देवी की हत्या कारित करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उसको दोषसिद्ध करते हुए अपीलार्थी अर्थात् श्रवण महतो के विरुद्ध दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश पारित किया और आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया।

4. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है जिन्होंने मुख्यत: निवेदन किया है कि प्राथमिकी अ॰ सा॰ 3 सनीचर महतो द्वारा दर्ज की गयी थी जो मृतका हेमंती देवी का पिता है। अभियोजन मामले के मुताबिक और अ॰ सा॰ 5 जो डॉ॰ सीताराम चौधरी है, द्वारा दिए गए चिकित्सीय साक्ष्य के मुताबिक मृतका द्वारा अनेक उपहतियों को प्राप्त किया गया था, किंतु, प्राथमिकी में मृतका के पिता ने न तो अपीलार्थी अभियुक्त के हाथ में किसी हथियार के बारे में कोई उल्लेख किया है और न ही मृतका लड़की की हत्या करने के लिए प्रहार के तरीके अथवा हेतु के बारे में विवरण दिया है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि सूचक द्वारा मामले के ऐसे महत्वपूर्ण पहलू को भुलाया नहीं जा सकता है जब वह प्राथमिकी दर्ज कर रहा था।

द्वितीयत:, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि अपराध दिन के दौरान किया गया प्रतीत होता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि अभियोजन गवाहों का साक्ष्य है कि खुले खेत में जहाँ अपराध किया गया था और निकट के खेत में अनेक व्यक्ति कार्यरत थे किंतु किसी भी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण अभियोजन द्वारा नहीं किया गया है।

तृतीयत:, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि चिकित्सीय साक्ष्य और चक्षुदर्शी साक्ष्य के बीच तीखा विरोधाभास है और अंत में यह निवेदन किया गया है कि अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्यों में अतिशयोक्ति है और इस प्रकार सच को झूठ से अलग करना मुश्किल है और, इसलिए, तथाकथित चश्मदीद गवाह विश्वसनीय नहीं है क्योंकि उन्होंने घटना को बिल्कुल नहीं देखा है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इन पहलूओं का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है और इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि अ॰ सा॰ 1, 2 और 3 जिन्हें चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित किया गया है, वस्तुत: चश्मदीद गवाह नहीं है, विशेषत: उनके प्रति परीक्षणों को देखते हुए। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का भी समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है और इसलिए भी विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

6. हमने राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को भी सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि घटना के तीन चश्मदीद गवाह हैं जो अ॰ सा॰ 1, 2 और 3 हैं। इन चश्मदीद गवाहों के अभिसाक्ष्यों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि उन्होंने मृतका की हत्या कारित करने में इस अपीलार्थी अभियुक्त द्वारा निभायी गयी भूमि का स्पष्ट विवरण दिया है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि इस अपीलार्थी ने मृतका पर पत्थर मार कर प्रहार किया था जिसका परिणाम उसकी मृत्यु में हुआ और मामले का यह पहलू अ॰ सा॰ 5, जो डॉ॰ सीताराम चौधरी है जिन्होंने मृतका हेमंती देवी का शव परीक्षण किया है, के चिकित्सीय साक्ष्य से आगे संपुष्टि पा रहा है और इस प्रकार विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य का समुचित रूप से अधिमूल्यन किया गया है और अभियोजन ने युक्तियुक्त संदेह के परे अपीलार्थी द्वारा किए गए मृतका की हत्या के अपराध को सिद्ध किया है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों का अधिमूल्यन करने में कोई गलती नहीं की गयी है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा यह अपील ग्रहण नहीं की जा सकती है।

7. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि घटना दिनांक 15 नवंबर, 1989 को सायं लगभग 4 बजे हुई थी। प्राथमिकी पलामू जिला के अंतर्गत चैनपुर पुलिस थाना में दिनांक 16 नवंबर, 1989 को प्रातः लगभग 4.45 बजे दर्ज की गयी थी। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 3 सूचक है जो मृतका का पिता है। इस अ॰ सा॰ 3 सनीचर महतो द्वारा दिए गए फर्दबयान को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि उसने विस्तारपूर्वक घटना का विवरण दिया है किंतु उसने मृतका की हत्या कारित करने के लिए अपीलार्थी अभियुक्त के हाथ में किसी हथियार के बारे में अभिकथित नहीं किया है और न ही अपीलार्थी अभियुक्त द्वारा प्रहार के तरीके के बारे में फर्दबयान में कोई अभिकथन नहीं किया है और न ही मृतका के पिता इस सूचक ने ऐसा अपराध करने के लिए किसी हेतु का विवरण दिया है। यह प्राथमिकी की प्रकृति है। इसके अतिरिक्त, यह कथन किया गया है कि यह सूचक आरंभ में प्राथमिकी दर्ज करने के पहले संबंधित गाँव के चौकीदार के पास गया था और चौकीदार के समक्ष प्रत्येक पृथ्य का विवरण दिया गया था। उक्त चौकीदार का अभियोजन गवाह के रूप में परीक्षण नहीं किया गया है।

8. पैराग्राफ सं॰ 26 में, जो अ॰ सा॰ 1 का प्रति परीक्षण है, अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य से आगे प्रतीत होता है कि उसने तेज धार वाले औजार से उपहति कारित करते किसी अभियुक्त को नहीं देखा है और न ही अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य में तेजधार वाले औजार के उपयोग के बारे में उसके द्वारा देखा गया कथन है। इस प्रकार, इस अपीलार्थी ने मृतका के शरीर पर उपहतियाँ कारित करने में तेज धार वाले औजार का उपयोग नहीं किया है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का अधिमूल्यन नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, पैराग्राफ 7 पर अ॰ सा॰ के अभिसाक्ष्य को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि उसने कथन किया है कि उसने पूरी घटना को लगभग 700 गज = 2100 फीट की दूरी से देखा है। इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि इस गवाह ने युक्तियुक्त दूरी से कुछ भी नहीं देखा है। इसके अतिरिक्त, इस चश्मदीद गवाह के अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ सं॰ 2 को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 1 को अ॰ सा॰ 2 द्वारा हल्ला किए जाने पर घटना का पता चला कि अ॰ सा॰ 2 के बहन की हत्या कर दी गयी है और, तत्पश्चात, यह अ॰ सा॰ 1 घटनास्थल पर गया और लगभग 2100 फीट की दूरी से घटना को देखा है। इस चश्मदीद गवाह के अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ सं॰ 2 सह-पठित पैराग्राफ सं॰ 4 सह-पठित पैराग्राफ सं॰ 7 सह-पठित पैराग्राफ सं॰ 25 को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि वह विश्वास योग्य गवाह नहीं है और चश्मदीद गवाह तो बिल्कुल नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया है।

9. इसी प्रकार से, अ॰ सा॰ 2 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि वह मृतका का भाई और सूचक का पुत्र है। उसके अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ सं॰ 2 को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि यह गवाह (अ॰ सा॰ 2) हल्ला सुनकर घटनास्थल पर गया है और, इसलिए, अ॰ सा॰ 2 चश्मदीद गवाह बिल्कुल नहीं है। इस गवाह ने अपने अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ सं॰ 2 में कथन किया है कि मृतका की हत्या कारित करने में पत्थर का उपयोग हुआ है किंतु, इस गवाह ने भी न्यायालय के समक्ष कथन नहीं किया है कि इस अपीलार्थी द्वारा मृतका की हत्या कारित करने में किसी तेज धार वाले औजार का उपयोग किया गया था। इस प्रकार, यह अ॰ सा॰ 2 भी इस तथ्य का चश्मदीद गवाह नहीं है कि इस अपीलार्थी ने तेज धार वाले औजार द्वारा मृतका के शरीर पर उपहतियाँ कारित किया है। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 2 भी उसके अभिसाक्ष्य के मुताबिक चश्मदीद गवाह नहीं है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का अधिमूल्यन नहीं किया गया है।

10. इसी प्रकार से, अ॰ सा॰ 3 (सूचक) के साक्ष्य को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि इस गवाह ने भी इस अपीलार्थी द्वारा तेज धार वाले औजार के उपयोग के बारे में अपने अभिसाक्ष्य में कथन नहीं किया है जबकि अ॰ सा॰ 5 डॉ॰ सीताराम चौधरी के साक्ष्य को देखते हुए निम्नलिखित उपहतियों, जिन्हें शव परीक्षण रिपोर्ट में ध्यान में लिया गया था जब इस गवाह ने मृतका के शरीर का शव परीक्षण किया था, को पाया गया था:–

(1) dV g, t[e%&

(a) e[k d nk; Hkkx] nk; çh&vkfjdyj {k= vkj nk; ikLV vkfjdyj {k= ij [ku d èkCcs d lkFk 3/4" x 1/3" x ekl i'kh xgjk l 1½" x ½" x ekl i'kh xgjk vud vkdkj vkj xgjkb oky uk t[eA

(b) vxeLrd] e[k d cs; fgLl ij 3/4" x 1/3" x ekl i'kh rd xgjk l 2" x ½" x ekl i'kh rd xgjk vud vkdkj vkj xgjkb oky vkB t[eA

(c) nk; ckg d vkVjk&yVjy igy ij ½" x 1/4" x ekl i'kh rd xgjk l 1¼" x 3/4" x ekl i'kh dh xgjkb rd d vud vkdkj d rhu t[eA

(2) gkFk d cs; fgLl ij cs; ijkbVy d vMj ykbx ÝDpj d lkFk 2½" x 1/2" x dfoVh rd xgj vkdkj dk fonh.k t[e

(3) jkbV vij nk bulkbtj nkr xk;c gku d lkFk eg d nkuk gkBk dk l tuA

11. इस प्रकार, चिकित्सीय साक्ष्य के मुताबिक उपहतियाँ, जिन्हें 1 (a), (b) और (c) में निर्दिष्ट किया गया है, तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी और शायद हँसिया से की गयी थी और अभियोजन द्वारा इन उपहतियों को बिल्कुल स्पष्ट नहीं किया गया है और न ही चश्मदीद गवाहों में से किसी ने इन उपहतियों के बारे में कथन किया है। 1 (a), (b) और (c) में निर्दिष्ट उपहतियों की संख्या बीस है। इतनी सारी उपहतियां तथाकथित चश्मदीद गवाहों के ध्यान से बाहर नहीं जा सकती है। अभियोजन को इन उपहतियों को स्पष्ट करना ही होगा जो हँसिए द्वारा कारित किए जाने योग्य हैं और इसलिए भी यह प्रतीत होता है कि तथाकथित चश्मदीद गवाहों ने घटना को बिल्कुल नहीं देखा है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सीय साक्ष्य और चक्षुदर्शी साक्ष्य को देखते हुए इन दोनों के बीच तीखा विरोधाभास है। जब घटना हुई, निकट के खेतों में अनेक व्यक्ति कार्यरत थे जैसा अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ सं॰ 25 में आया है। एक भी गवाह जो निकट के खेत में कार्यरत था का परीक्षण अभियोजन द्वारा नहीं किया गया है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का भी समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया है।

12. अत:, हम चैनपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 96 वर्ष 1989 से उद्भूत होने वाले सत्र विचारण सं॰ 88 वर्ष 1990 में विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, पलामू द्वारा पारित दिनांक 6 सितंबर, 1991 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश दोनों को अभिखंडित और अपास्त करते हैं क्योंकि अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे इस अपीलार्थी द्वारा किए गए मृतका की हत्या के अपराध को सिद्ध करने में विफल रहा है। विचारण न्यायालय द्वारा इस अपीलार्थी को अधिनिर्णीत दंडादेश जमानत बंधकों और प्रतिभूतियों के निष्पादन पर दिनांक 25.9.1991 के आदेश के तहत इस न्यायालय द्वारा पहले ही निर्लंबित किया गया है। अपीलार्थी का जमानत बंध उन्मोचित किया जाता है और उसकी प्रतिभूतियों को भी उनके दायित्व से उन्मोचित किया जाता है। अपीलार्थी दोषमुक्त किया जाता है। तद्नुसार, यह दांडिक अपील अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

अमित कुमार शाह एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 543 of 2012. Decided on 19th June, 2013.

खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954—धाराएँ 2 (ix) एवं (k), 13 (2) एवं 16 (1) (a) (i) सह-पठित नियमावली, 1955 का नियम 32 (e) तथा (f)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—मिस ब्रैंडेड ड्राईड स्किम्ड मिल्क पाउडर का विक्रय–संज्ञान–धारा 13 (2) मिस ब्रैंडिंग के मामले में संबंधित व्यक्ति को संसूचित की जा रही लोक विश्लेषक के रिपोर्ट के बारे में नहीं कहती है–याची सं॰ 1 को विक्रेता के रूप में वर्णित किया गया था और उसने उत्पाद की जब्ती पर रसीद प्रदान किया था–इसके बावजूद उसके विरुद्ध किसी सामग्री के बिना याची सं॰ 2 के विरुद्ध मंजूरी प्राधिकारी द्वारा अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान की गयी है–याची सं॰ 2 के विरुद्ध मंजूरी प्रदान करने वाला आदेश विवेक के गैर-इस्तेमाल से पीड़ित है–संज्ञान लेने वाले आदेश को अंशतः अभिखंडित। (पैराएँ 8 से 11)

निर्णयज विधि.–2007(1) JCR 191 (Jhr)—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. V. Shivnath, For the Petitioner; Mr. A.P.P., For the State.

आदेश

किसी कृष्ण प्रसाद सिंह, खाद्य निरीक्षक, राँची ने दिनांक 25.4.2008 को मेसर्स शाह ट्रेडर्स, अपर बाजार, राँची के दुकान से कृष्णा स्प्रेड्रायड स्किम्ड मिल्क पाउडर और कृष्णा मार्का घी के नमूनों को लिया और इसके विश्लेषण के लिए इसे लोक विश्लेषक के पास भेजा। इसके विश्लेषण पर इस प्रभाव की रिपोर्ट दी गयी थी कि कृष्णा स्प्रेड्रायड स्किम्ड मिल्क पाउडर का नमूना खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 2(ix) (j) और (k) में अंतर्विष्ट प्रावधान के निबंधनानुसार मिसब्रैंडेड है क्योंकि मिल्क पाउडर के पैकेट के उपर बैच नंबर, लॉट नंबर और निर्माण तिथि नहीं है। यह रिपोर्ट किया गया था कि यह खाद्य अपमिश्रण निवारण नियमावली के नियम 32 (e) और (f) के उल्लंघन में है। इस पर, जब सक्षम प्राधिकारी द्वारा अभियोजन के लिए मंजूरी दी गयी थी, दिनांक 25.7.2008 को मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के समक्ष उसमें यह अभिकथन करते हुए रिपोर्ट दाखिल की गयी थी कि खाद्य अपमिश्रण निवारण नियमावली के नियम 32 (e) और (f) के उल्लंघन के कारण याचीगण ने अपराध किया है जो खाद्य अपमिश्रण अधिनियम, 1954 की धारा 16 (1) (a) (i) (ii) के अधीन दंडनीय है जिस पर दिनांक 25.7.2008 के आदेश के तहत संज्ञान लिया गया था और चुनौती के अधीन है।

2. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री वी॰ शिवनाथ ने निवेदन किया कि विश्लेषण रिपोर्ट की प्राप्ति पर जब अभियोजन आरंभ किया गया था, लोक विश्लेषक की रिपोर्ट याचीगण को कभी नहीं दी गयी थी यद्यपि इसे खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (2) में अंतर्विष्ट प्रावधान के निबंधनानुसार याचीगण पर तामील किया जाना चाहिए था। चूँकि रिपोर्ट तामील नहीं किया गया है, वर्तमान अभियोजन अधिनियम के सांविधिक प्रावधान के अननुपालन के कारण दोषपूर्ण बन जाता है और इस कारण संपूर्ण अभियोजन दूषित हो जाता है। आगे यह निवेदन किया गया था कि

याची सं॰ 1 अमित कुमार शाह ने दुग्ध उत्पादों को खुदरा विक्रय के लिए उत्पाद के निर्माता मेसर्स भोला बाबा मिल्क फूड इंडस्ट्रीज लिमिटेड से खरीदा था और इस प्रकार वह उत्पाद के पैकेटों के ऊपर लॉट नंबर, बैच नंबर और निर्माण तिथि डालने का जिम्मेदार नहीं था और, इसलिए, उसके विरुद्ध कोई अभियोजन बिल्कुल दोषपूर्ण है।

आगे यह निवेदन किया गया था कि जहाँ तक याची सं॰ 2 सुभाष चंद्र शाह का संबंध है, वह याची सं॰ 1 का पिता हुआ करता है और उसका उक्त उत्पादों के व्यवसाय के साथ कुछ लेना-देना नहीं है, फिर भी अधिनियम अथवा नियमावली के प्रावधान का उल्लंघन करने के किसी अभियोग के बिना उसे अभियोजित किया जा रहा है और इसके अतिरिक्त, उसके अभियोजन के लिए याची सं॰ 2 को कोई कारण बताओ नहीं दिया गया है और इसलिए ऐसे किसी कारण बताओ की अनुपस्थिति में ऐसा कोई अभियोजन दोषपूर्ण है और अभिखंडित किए जाने का दायी है।

3. वि॰ प॰ सं॰ 2 पर नोटिस तामील किए जाने के बावजूद, उसने इस मामले में उपस्थित नहीं होना चुना है।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह प्रतीत होता है कि जब मेसर्स शाह ट्रेडर्स, अपर बाजार, राँची के नाम और शैली में चलाए जा रहे दुकान से कृष्णा स्प्रे ड्रायड स्किम्ड मिल्क पाउडर और कृष्णा मार्का घी के नमूनों को संग्रहित किया गया था, इसे लोक विश्लेषक के पास भेजा गया था। विश्लेषण पर, यह पाया गया था कि उत्पाद के पैकेटों के उपर बैच नंबर, लॉट नंबर और निर्माण तिथि नहीं दी गयी है जो नियमावली के नियम 32 (e) और (f) के उल्लंघन में है। यह कथन किया जाए कि नियम 32 के उपनियम (e) और (f) के उल्लंघन में है। यह कथन किया जाए कि नियम 32 के उपनियम (e) के मुताबिक पैकेटों के ऊपर अंकों अथवा शब्दों में सुभिन्न बैच नंबर अथवा लॉट नंबर अथवा कोड नंबर डालने की आवश्यकता है। इसी प्रकार, नियम 32 के उपनियम (f) के निबंधनानुसार, माह और वर्ष, जिसमें वस्तु को निर्मित अथवा प्रीपैक किया गया था, को देने की आवश्यकता है। चूँकि इसे पैकेटों के उपर कभी नहीं पाया गया था, यह उक्त नियमावली के नियम 32 (e) और (f) के उल्लंघन में है जो धारा 16 (1) (a) (i) (ii) के अधीन दंडनीय है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*"16. **'kfDr;k-**&(1) mièkkjk (1A) d micèkk d vèkhu jgr g, ;g g fd ;fn dkb 0;fDr&*

(a) pkg Lo; ;k viu fufeÙk fdlh vU; 0;fDr d }kjk fdlh ,l [kk| inkFk dk Hkkjr e vk;kr djrk g] ;k foØ; gr fofuek.k foØ; ;k forj.k djrk g&

(i) tk èkkjk 2 d [kM (ia) d mi[kM (m) d vFk e vifefJr g ;k mI èkkjk d [kM (ix) d vFk e feF;k Nki okyk g vFkok ftldk foØ; bl vfèkfu;e d ;k bld vèkhu cuk, x, fdlh fu;e d micèkk d vèkhu vFkok [kk| (LokLF;) ikfèkdkjh d vkn'k l ifrf"k) g(

*(ii) tk mi[kM (i) e fufn"V [kk| inkFk l fHkUu g] bl vfèkfu;e d ;k bld vèkhu cuk, x, fdlh d micèkk e l fdlh dk mYy[k djr g,A**"*

5. उक्त उल्लंघन के कारण खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 16 (1) (a) (i) (ii) के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है।

6. संज्ञान लेने वाला आदेश का विरोध करते हुए निवेदन किया गया था कि लोक विश्लेषक की रिपोर्ट दाखिल किए जाने पर इसे खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 13 (2) में

अंतर्विष्ट प्रावधान के निबंधनानुसार याचीगण को दिए जाने की आवश्यकता थी। याचीगण के लिए उपस्थित अधिवक्ता के अनुसार, चूँकि सांविधिक प्रावधान का अनुपालन नहीं किया गया है, संपूर्ण अभियोजन दूषित हो जाता है।

7. उक्त निवेदन के संदर्भ में, धारा 13 (1) (2) में अंतर्विष्ट प्रावधान को ध्यान में लेने की आवश्यकता है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*^^13. **ykd fo'y"kd dh fjiksV-**&(1) ykd fo'y"kd fo'y"k.k d fy, mlls Hkst x, fdlh [kk| inkFk d fo'y"k.k d ifj.kke dh fjiksV] ,sls ik:i e] tks fofgr fd;k tk,] LFkkuh; ¼LoksLF;½ ikfèkdkjh dks nxkA*

*(2) mièkkjk (1) d vèkhu fo'y"k.k d ifj.kke dh bl vk'k; dh fjiksV feyu ij fd [kk| inkFk vifefJr g] LFkkuh; ¼LoksLF;½ ikfèkdkjh mls 0;fDr d ftlls [kk| inkFk d ueu fy, x, Fk rFkk mls 0;fDr d] ;fn dksb gks] ftldk uke] irk vkj vU; fof'kf"V;k èkkjk 14A d vèkhu idV dh xbZ gks] fo:) vfHk;ktu pykus d i'pkr] ;FkkfLFkfr] ,sls 0;fDr dks ;k 0;fDr;ks dks fo'y"k.k d ifj.kke dh fjiksV dh ,d ifr ,slh jhfr ls] tks fofgr dh tk,] ,sls 0;fDr ;k 0;fDr;ks dks ;g lfpr djr g, Hkstxk fd o nkuk ;k mue ls dksb ;fn pkg rks fjiksV dh ifr feyu dh rkjh[k ls nl fnu dh vofèk d vnj U;k;ky; dks ;g vkonu dj ldr g fd LFkkuh; ¼LoksLF;½ ikfèkdkjh }kjk j[k x, [kk| inkFk d ueu dks dsUnh; [kk| i;kx'kkyk ls fo'y"k.k djk;k tk,A**

8. धारा 13 की उपधारा (2) के परिशीलन पर यह प्रतीत होता है कि केवल 'अपमिश्रण' के संबंध में लोक विश्लेषक द्वारा रिपोर्ट दाखिल किए जाने की स्थिति में लोक विश्लेषक की उक्त रिपोर्ट को उस व्यक्ति को देने की आवश्यकता है जिससे वस्तु/उत्पाद को जब्त किया गया था। उक्त प्रावधान 'मिस ब्रैंडिंग' के मामले में संबंधित व्यक्ति को रिपोर्ट संसूचित किए जाने के बारे में कभी नहीं कहता है और मिसब्रैंडिंग से संबंधित मामले को सम्मिलित नहीं किए जाने का कारण बिल्कुल स्पष्ट है क्योंकि नंगी आँखों से कोई पता कर सकता है कि क्या नियम 32 के उपनियम (e) और (f) का अनुपालन किया गया है या नहीं? चूँकि यह मिस ब्रैंडिंग का मामला है, याचीगण की ओर से किया गया निवेदन कि लोक विश्लेषक की रिपोर्ट की गैर संसूचना के कारण संपूर्ण अभियोजन दूषित हो जाता है, बिल्कुल अमान्य प्रतीत होता है।

9. इस चरण पर, मैं **श्रीमती संतोष रंजन बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य, 2007 (1) JCR 191 (Jhr)** मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिस पर याचीगण की ओर से विश्वास किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मिस ब्रैंडिंग अधिनियम की धारा 16 (1) (a) (i) की रिष्टि के अंतर्गत नहीं आता है। उक्त निर्णय का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि बेसन का नमूना उस कैंटीन, जहाँ इसे खुले बाजार में इसके विक्रय के लिए कभी नहीं भंडारित किया गया था, से संग्रहित किया गया प्रतीत होता है। इस तथ्य के कारण, यह अभिनिर्धारित किया गया प्रतीत होता है कि मिस ब्रैंडिंग अधिनियम की धारा 16 की रिष्टि के अंतर्गत नहीं आता है।

10. मामले के अन्य पहलू पर आते हुए, दस्तावेजों में से एक, जो याची सं॰ 1 की अमित कुमार शाह की उपस्थिति में दुकान से नमूना के संग्रहण पर याची सं॰ 1 अमित कुमार शाह द्वारा दिया गया रसीद प्रतीत होता है, से यह प्रतीत होता है कि याची सं॰ 1 को विक्रेता के रूप में दर्शाया गया है। जबकि याची सं॰ 2 सुभाष चंद्र शाह को अपने पुत्र अमित कुमार शाह के साथ अपराधकर्ता के रूप में अभियोजन रिपोर्ट

में दर्शाया गया है यद्यपि अभियोजन के दस्तावेजों में से किसी के ऊपर कुछ भी प्रतीत नहीं होता है कि किस तरीके से उसने अधिनियम अथवा नियमावली के प्रावधान का उल्लंघन किया है। यह कथन किया जाए कि याची सं॰ 2 को दस्तावेजों में से एक के उपर प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता दर्शाया गया है जो मेसर्स भोला बाबा मिल्क फूड इंडस्ट्रीज, जहाँ से प्रश्नगत उत्पाद खरीदा गया था, की ओर से दिया गया कर बीजक प्रतीत होता है किंतु वह दस्तावेज कभी नहीं उपदर्शित करता है कि याची सं॰ 2 की प्रेरणा पर याची सं॰ 1 प्रश्नगत उत्पाद बेच रहा था। इसके अतिरिक्त, अभियोजन का मामला यह कभी नहीं है कि याची सं॰ 2 की प्रेरणा पर याची सं॰ 1 प्रश्नगत उत्पाद बेच रहा था। यह दोहराया जाए, जैसा ऊपर उल्लिखित किया गया है, कि दस्तावेजों में से एक में यह प्रतीत होता है कि याची सं॰ 1 को विक्रेता के रूप में वर्णित किया गया है और उसने उत्पाद की जब्ती पर रसीद प्रदान किया था। उसके बावजूद, मंजूरी प्राधिकारी द्वारा याची सं॰ 2 के विरुद्ध अभियोजन के लिए मंजूरी दी गयी है यद्यपि अभियोजन के दस्तावेजों में से कोई भी याची सं॰ 2 द्वारा अधिनियम अथवा नियमावली के किसी प्रावधान के उल्लंघन के बारे में उपदर्शित नहीं करता है और तद्द्वारा मंजूरी प्राधिकारी को विवेक का इस्तेमाल किए बिना याची सं॰ 2 के विरुद्ध मंजूरी प्रदान करता हुआ आसानी से कहा जा सकता है। इस प्रकार, याची सं॰ 2 सुभाष चंद्र शाह के विरुद्ध अभियोजन बिल्कुल दोषपूर्ण प्रतीत होता है और इसलिए जहाँ तक याची सं॰ 2 का संबंध है, संज्ञान लेने वाले आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

11. जहाँ तक याची सं॰ 1 अमित कुमार शाह का संबंध है, उसके विरुद्ध संज्ञान लेने वाला आदेश दोषपूर्ण कभी नहीं प्रतीत होता है। इस प्रकार, यह आवेदन केवल आंशिक रूप से अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

न्यायालय स्वयं अपने प्रस्ताव पर

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 171 of 2012 with I.A. Nos. 2482 & 2345 of 2013. Decided on 8th May, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—पी॰ आई॰ एल॰–खाद्य सुरक्षा–राज्य को खाद्य अपमिश्रण और मिस ब्रैंडेड वस्तुओं, आदि के विक्रय की समस्याओं को रोकने के लिए अनेक कदम उठाने होंगे–अपमिश्रित खाद्य वस्तुओं को नियंत्रित करने के प्रयासों को संतुष्टि के निकट पहुँचता हुआ नहीं कहा जा सकता है–न्यायालय खाद्य अपमिश्रण के निवारण के मामले में सरकार के समुचित क्रियाकलाप के प्रति चिंतित है–निर्देशों के साथ याचिका निपटायी गयी। (पैराएँ 13, 14, 17 से 20)

अधिवक्तागण.–Mr. Piyush Poddar *(Amicus Curiae),* For the Appellant/Petitioner M/s. M.S. Anwar, S. Verma, For the Respondents; M/s R. Raj, D. K. Roy, For the Intervenors.

आदेश

इस न्यायालय के दिनांक 22 अप्रिल, 2013 के आदेश के अनुसरण में झारखंड सरकार के प्रमुख स्वास्थ्य सचिव और मुख्य निदेशक (खाद्य) महाधिवक्ता के साथ उपस्थित हैं।

2. हमने दिनांक 6 मई, 2013 को प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल पूरक प्रतिशपथ पत्र का परिशीलन किया। इस शपथ पत्र से और पहले दाखिल किए गए शपथपत्रों से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा पर इस मामले का संज्ञान लिए जाने के बाद राज्य मशीनरी अब दर्शा रही है कि उन्होंने विषय पर काम करना शुरू कर दिया है। दिनांक 6 मई, 2013 के शपथ पत्र में यह निवेदन किया गया है कि खाद्य सुरक्षा आयुक्त के कार्यालय में 279 पदों के सृजन के लिए प्रस्ताव और 40 वाहनों की खरीद की मंजूरी राज्य के राज्यपाल के सलाहकार द्वारा अनुमोदित की गयी है और वित्त विभाग को भेजी गयी है और वित्त विभाग की सहमति के बाद मामला सलाहकार परिषद् के समक्ष अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किया जाएगा।

3. अब खाद्य सुरक्षा एवं मानक कैडर की नियुक्ति, प्रोन्नति और अन्य सेवा शर्तों के लिए ड्राफ्ट सेवा नियमावली विभाग द्वारा विरचित की जा चुकी है और उनके अनुमोदन के लिए राज्यपाल के सलाहकार के पास इसे भेजा जा चुका है और अनुमोदन के बाद इसे विधि, कार्मिक एवं वित्त विभाग के समक्ष उनकी सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाएगा और तत्पश्चात सलाहकार परिषद् के अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किया जाएगा। इस प्रक्रिया में तीन माह का समय लगने की संभावना है।

4. दिनांक 22.4.2013 के संकल्प सं॰ 24 (16) के तहत राज्य खाद्य परीक्षा प्रयोगशाला, नामकुम के लिए पाँच अतिरिक्त पदों को मंजूर किया गया है। यह कथन किया गया है कि पूर्वोक्त पदों को जल्द ही भरा जाएगा।

5. यह निवेदन भी किया गया है कि संथाल परगना क्षेत्र की आवश्यकता पूरी करने के लिए दुमका के लिए एक और खाद्य परीक्षण प्रयोगशाला मंजूर की गयी है और इस वित्तीय वर्ष में बजटीय प्रावधान बनाए गए हैं।

6. दिनांक 4.5.2013 के पत्र सं॰ 14 (F) के तहत समस्त पी॰ एच॰ सी॰ के नवनियुक्त खाद्य सुरक्षा अधिकारी–सह–प्रभारी चिकित्सा अधिकारी के लिए प्रशिक्षण समय तालिका को अंतिम रूप दिया गया है। दिनांक 17.4.2013 के आदेश सं॰ 76 के तहत एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ के खाद्य सुरक्षा अधिकारियों को प्रबंध निदेशक, एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ द्वारा भारोन्मुक्त किया गया है।

7. यह निवेदन किया गया है कि खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम/नियमावली के प्रावधानों के प्रचार के लिए आई॰ ई॰ सी॰ गतिविधियाँ की जा रही हैं।

8. आगे यह निवेदन किया गया है कि दिनांक 25.3.2013 की अधिसूचना सं॰ 46 (5) के तहत 12 लाख रुपयों से कम के वार्षिक टर्न ओवर रखने वाले खाद्य व्यवसाय ऑपरेटरों के रजिस्ट्रेशन के लिए पंचायती राज संस्थानों को शक्ति प्रत्यायोजित की गयी है।

9. जहाँ तक खाद्य वस्तुओं के नमूनों के संग्रहण का संबंध है, यह कथन किया गया है कि खाद्य उत्पादों के 112 नमूनों को संग्रहित किया गया है जिनमें से 98 नमूनों की परीक्षा की गयी है और केवल 22 नमूनों को निम्नस्तर, मिस ब्रैंडेड अथवा असुरक्षित पाया गया है। चौदह नमूनों के परीक्षण की प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है।

10. यह निवेदन किया गया है कि राज्य खाद्य प्रयोगशाला और प्रवर्तन एजेंसियों के क्रियाकलाप के लिए वर्ष 2012-13 में एन॰ आर॰ एच॰ एम॰ के अधीन 11,07,000/- रुपयों और वर्ष 2013-14 के लिए 63 लाख रुपयों का प्रस्ताव दिया गया है।

11. उक्त के अतिरिक्त, दिनांक 1.12.2012 के पत्र सं॰ 40 (F) के तहत बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) के लिए प्रयोगशाला और प्रवर्तन एजेंसियों के निर्विघ्न क्रियाकलाप के लिए भारत सरकार को 1,33,17,75,220/- रुपयों की मंजूरी के लिए प्रस्ताव भेजा गया है।

12. शपथ पत्र के पैरा 17 में कतिपय कार्रवाईयाँ प्रस्तावित की गयी हैं।

13. चूँकि इस न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा पर विवाद्यक का संज्ञान लिए जाने और इस जनहित याचिका के रजिस्ट्रेशन के बाद अब राज्य विवाद्यक पर विचार करने लगा, राज्य को कुछ समय देने की आवश्यकता

है। किंतु, प्रगति को मॉनिटर करना आवश्यक है क्योंकि राज्य ने खाद्य अपमिश्रण और मिसब्रैंडेड वस्तुओं, आदि के विक्रय की समस्याओं को नियंत्रित करने के लिए अनेक कदम उठाया है।

14. अत:, हमरा सुविचारित मत है कि इस जनहित याचिका के रजिस्ट्रेशन के बावजूद अपमिश्रित खाद्य वस्तुओं को नियंत्रित करने के प्रयासों को संतुष्टि के निकट पहुँचता हुआ इस कारण से नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इस न्यायालय का मत है कि संग्रहित नमूनों के विवरणों द्वारा और प्राप्त किए गए परीक्षा परिणामों द्वारा समस्याओं को पूरी तरह प्रतितोषित नहीं किया गया है किंतु समस्याएँ कुछ ज्यादा गंभीर हैं। हम उम्मीद करते हैं कि संबंधित व्यक्ति, विशेषत: उच्चतर अधिकारीगण जनता के साथ न्याय करने के लिए जिम्मेदारी लेंगे और खाद्य अपमिश्रण और मिस ब्रैंडेड वस्तुओं को नियंत्रित करने के लिए गंभीर प्रयास करेंगे।

15. प्रस्तावित कदमों की प्रगति के संबंध में रिपोर्ट राज्य द्वारा दाखिल की जाए।

16. आई॰ ए॰ सं॰ 2482 और 2345 वर्ष 2013 पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए। आई॰ ए॰ सं॰ 2482/2013 का आवेदक सैनिटरी इंस्पेक्टर है जबकि आई॰ ए॰ सं॰ 2345/2013 का आवेदक प्रयोगशाला टेक्नीशियन है। दोनों व्यक्तियों ने निवेदन किया कि खाद्य निरीक्षक के कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए उन्हें प्रशिक्षण दिया गया है और उन्होंने पहले ही खाद्य निरीक्षक के कर्तव्यों का निर्वहन किया है।

17. जहाँ तक पदधारण करने का संबंध है, खाद्य निरीक्षक का पद धारण करने के लिए प्रशिक्षण दिया गया है। यह निवेदन किया गया है कि झारखंड राज्य में खाद्य निरीक्षक के कुल 37 पद है और 37 पदों के विरुद्ध चार खाद्य निरीक्षक कार्यरत है और आवेदकों की सेवा का उपयोग विभाग द्वारा नहीं किया जा रहा है। यह निवेदन किया गया है कि उक्त स्थिति की दृष्टि में यह परिणामहीन है क्योंकि विभाग ने अनेक पदों अर्थात् 279 पदों के सृजन के लिए कदम उठाया है।

18. इस जनहित याचिका में विवाद्यक की अपनी सीमा है और हमारा सरोकार खाद्य अपमिश्रण निवारण के मामले में सरकार के समुचित क्रियाकलाप के साथ है। चूँकि अब सरकार द्वारा कदम उठाया जा रहा है और मध्यक्षेपी अवधि के लिए कदम उठाए गए हैं जिसके लिए अन्य अधिकारियों को कतिपय शक्तियाँ समनुदेशित की गयी है। हमारा सुविचारित मत है कि आई॰ ए॰ सं॰ 2482/2013 और 2345/2013 के आवेदकों के बारे में प्रशासन को निर्णय लेना है। चाहे जो भी हो, उक्त कारणों की दृष्टि में, उक्त संप्रेक्षण के साथ आई॰ ए॰ सं॰ 2483 और 2345 वर्ष 2013 निपटाया जाता है।

19. स्वास्थ्य विभाग के प्रमुख सचिव ने आश्वासन दिया है कि वे विशेष ख्याल करेंगे और देखेंगे कि समय पर और यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र ओर अनुसूचित समय के पहले ही समस्त कदम उठाए जायें और वह यह भी देखेंगे कि न केवल पदों को सृजित किया जाये बल्कि समय पर उन्हें भरा भी जाये।

20. इस संबंध में लिए गए कदमों को स्टेटस रिपोर्ट में दर्शाया जाए और मामला दिनांक 2 जुलाई, 2013 को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाए। झारखंड सरकार के प्रमुख स्वास्थ्य सचिव तथा मुख्य निदेशक (खाद्य) को उस दिन पर उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है।

इस आदेश की प्रतियों को राज्य के अधिवक्ता और न्याय मित्र को दिया जाए।

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

भारत संघ एवं एक अन्य

cuke

एकता टेलीकम्युनिकेशन सिस्टम एवं अन्य

W.P. (C) No. 6876 of 2012. Decided on 29th April, 2013.

माइक्रो, लघु एवं मध्यम इंटरप्राइजेज विकास अधिनियम, 2006—धारा 16—माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996—धारा 34—भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अधिसूचित बैंक दर के तीन गुना पर विलंबित भुगतान पर चक्रवृद्धि ब्याज के साथ बकाया मूल राशि का भुगतान करने का निर्देश—याचीगण के पास आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधानों के अधीन अपील का वैकल्पिक उपचार था—किंतु, 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन ऐसा आवेदन दाखिल करने की समय सीमा के अवसान के बाद रिट याचिका दाखिल की गयी थी—याचीगण संकर्म आदेश के मुताबिक बकाया का भुगतान करने के दायी थे—पक्षों के बीच सहमत तिथि से अथवा जहाँ उस निमित्त करार नहीं है, नियत तिथि के पहले भुगतान करने का दायित्व खरीददार पर है—नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं हुआ है—रिट याचिका खारिज की गयी। (पैराएँ 3, 8 से 11)

अधिवक्तागण.—Mr. Jalisur Rahman, For the Petitioners; Mr. Abhay Kumar Mishra, For the Respondent.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. उद्योग निदेशक-सह-अध्यक्ष, एच॰ एम॰ एस॰ ई॰ एफ॰ सी॰ (झारखंड माइक्रो एन्ड स्मॉल इंटरप्राइजेज फेलिसिटेशन) द्वारा पारित दिनांक 19 जून, 2012 का आदेश चुनौती के अधीन है जिसके अधीन याचीगण को दिनांक 18 मई, 2012 के अधिनियम में अंतर्विष्ट निर्णय संसूचित किया गया है जिसके मुताबिक प्रथम पक्ष अर्थात् वर्तमान एकमात्र प्रत्यर्थी सं॰ 8,83,861/- रुपयों की बकाया मूल राशि और ब्याज विपक्षी पक्षकार को आपूर्ति किए गए सामग्रियों के भुगतान में विलंब के लिए पाने का हकदार है याचीगण को भुगतान करने के समय तक माइक्रो, लघु एवं मध्यम इंटरप्राइजेज विकास अधिनियम, 2006 (इसके बाद अधिनियम, 2006 के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 16 के निबंधनानुसार भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अधिसूचित बैंक दर के तिगुने दर पर विलंबित भुगतान पर चक्रवृद्धि ब्याज के साथ बकाया मूल राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

3. याचीगण के पास आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधानों के अधीन अपील का वैकल्पिक उपचार था। किंतु 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन ऐसा आवेदन दाखिल करने के लिए समय सीमा के अवसान के बाद रिट याचिका दाखिल की गयी थी। रिट याचीगण ने अभिवचन किया है कि इसे सुनवाई का समुचित अवसर दिए बिना परिषद् का आदेश पारित किया गया है क्योंकि उक्त कार्यवाही में समुचित तरीके से स्वयं का बचाव करने के लिए इसको सक्षम बनाने हेतु इस पर आवेदन की प्रति तामील नहीं की गयी थी।

4. किंतु दिनांक 19 जून, 2012 के आक्षेपित आदेश का परिशीलन उपदर्शित करता है कि इसे दिनांक 24 मार्च, 2012 को रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा आवेदन की प्रति भेजी गयी थी। परिषद् ने दिनांक 24 फरवरी, 2012,

दिनांक 27 अप्रिल 2012 और दिनांक 18 मई, 2012 को अपनी बैठक की थी किंतु याचीगण अनुपस्थित बने रहे थे। याचीगण ने यह मामला बनाने का प्रयास किया है कि नोटिस आवेदन की प्रति के बिना तामील की गयी थी जिसके संबंध में दिनांक 29 फरवरी, 2012 का परिशिष्ट 8 निर्दिष्ट किया जा रहा है। किंतु, स्वयं आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि दिनांक 29 फरवरी, 2012 के बाद मामला दिनांक 27 अप्रिल, 2012 और दिनांक 18 मई, 2012 को स्थगित कर दिया गया था किंतु याचीगण शायद यह अभिवचन करते रहे कि आवेदन की प्रति इस पर तामील नहीं की गयी थी यद्यपि इसे दिनांक 24 मार्च, 2012 को रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेजा गया था। अत: नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन का आधार बनाया गया प्रतीत नहीं होता है। याचीगण के पास स्वयं का बचाव करने का पर्याप्त अवसर था और इसको भेजी गयी नोटिस भी आवेदन की प्रति अंतर्विष्ट करता था। दिनांक 29 फरवरी, 2012 के परिशिष्ट 8 का परिशीलन भी उपदर्शित करता है कि उक्त पत्र में याचीगण ने अभिवचन किया था कि पक्षगण पैरा 2900 के मुताबिक संविदा की शर्तों द्वारा बाध्य थे जिसके अधीन पक्षों के बीच उद्‌भूत होने वाले किसी विवाद पर माध्यस्थम किया जाना है।

5. गुणागुण पर, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 1 दिनांक 28 मार्च, 2009 के परिशिष्ट-2 पर अंतर्विष्ट संकर्म आदेश के निबंधनों के मुताबिक आपूर्ति किए गए यू॰ पी॰ एस॰ का रख-रखाव करने में विफल रहा है। इन आपत्तियों को दिनांक 5 अक्टूबर, 2010 के परिशिष्ट 4 और तत्पश्चात जारी पश्चातवर्ती पत्राचार के तहत आपूर्तिकर्ता प्रत्यर्थी सं॰ 1 को संसूचित किया गया था। अत:, आपूर्ति के लिए भुगतान का दावा मान्य नहीं है।

6. किंतु, प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने निवेदन किया है कि यह लघु उद्योग होने के नाते माइक्रो, लघु एवं मध्यम इंटरप्राइजेज विकास अधिनियम, 2006 के अधिनियम के अध्याय V के अधीन दायित्व नियत किया गया है। यदि नियत तिथि के पहले भुगतान नहीं किया जाता है, तत्पश्चात यह 2006 के अधिनियम की धारा 16 के निबंधनानुसार बकाया राशि के उपर ब्याज का भुगतान करने का दायी होगा। तद्‌नुसार, याचीगण ने की गयी ऐसी आपूर्ति के विरुद्ध बकाया के गैर भुगतान से व्यथित होकर अधिनियम 2005 के प्रासंगिक प्रावधानों के अधीन फैसिलिटेशन परिषद् के फोरम का अवलंब लिया गया है जिसके अधीन आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

7. निजी प्रत्यर्थीगण के अनुसार, प्रत्यर्थीगण खरीद आदेश जारी किए जाने की तिथि से 30 दिनों की अवधि के भीतर विनिर्दिष्ट वर्णन के 304 यू॰ पी॰ एस॰ की आपूर्ति के लिए संकर्म आदेश (परिशिष्ट 2) के अधीन थे। संकर्म आदेश के निबंधनानुसार स्थल पर सामग्री के सफल आपूर्ति, संस्थापन, परीक्षण और आरंभ के बाद 100% भुगतान किया जाना है। आगे, रख-रखाव के लिए 36 माह की वारन्टी थी और प्रत्यर्थी पाँच वर्षों की अवधि के लिए वार्षिक रख-रखाव करने के लिए संकर्म आदेश की बाध्यता के अधीन भी था। किंतु उसके अनुसार, आपूर्ति दिनांक 2 अप्रिल, 2009 से शुरू की गयी थी। आर॰ आई॰ टी॰ ई॰ एस॰ द्वारा दिनांक 24 दिसंबर, 2009 और इसके आगे विभिन्न तिथियों पर निरीक्षण भी किए गए थे जिसके संबंध में रिपोर्ट परिशिष्ट D श्रृंखला के रूप में प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न है। वस्तुत:, याचीगण रेलवे ने याचीगण के पक्ष में भी संस्थापन और चालू किए जाने का प्रमाणपत्र जारी किया जिसकी प्रतियों को प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न किया गया है और तत्पश्चात याचीगण 2006 के अधिनियम के मुताबिक अनुबंधित समय के भीतर भुगतान करने में विफल रहे और आपूर्ति के 45 दिनों की अवधि के भीतर उनकी ओर से किसी आपत्ति के बिना निजी प्रत्यर्थी ने 2006 के अधिनियम की धारा 16 के

निबंधनानुसार आर॰ बी॰ आई॰ द्वारा अधिसूचित ब्याज के साथ बकाया मूल राशि के अधिनिर्णय के लिए परिषद् के फोरम का अवलंब लिया है।

8. मैंने गुणागुण पर भी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है। अधिनियम, 2006 के अध्याय V के अधीन पक्षों के बीच सहमत तिथि से अथवा यदि जहाँ उस निमित्त करार नहीं है, नियत तिथि के पहले भुगतान करने का दायित्व खरीददार पर है। माइक्रो, लघु एवं मध्यम इंटरप्राइजेज विकास अधिनियम, 2006 की धारा 2(b) का पठन निम्नलिखित है:–

> *^^èkkjk 2 (b): ^^fu;r frfFk** l vfHkçr g Lohdj.k d fnu l ing fnuk dh vofèk d volku d rjUr ckn oky fnu vFkok vkifrdrk l [kjhnnkj }kjk fdlh eky vFkok fdlh lok d le> x, Lohdj.k dk fnuA**

9. वर्तमान मामले में, जैसा तथ्य प्रकट करते हैं, दिनांक 2 अप्रिल, 2009 के प्रभाव से समयावधि पर आपूर्ति की गयी थी। आर॰ आई॰ टी॰ ई॰ एस॰ द्वारा उनका निरीक्षण किया गया था और उन्हें याचीगण के परिसर के स्थलों पर चालू किया गया था। स्वीकृत रूप से याचीगण के मामले के मुताबिक दिनांक 5 अक्टूबर, 2010 के पहले ऐसी आपूर्ति के प्रति आपत्ति नहीं की गयी थी। अत: अधिनियम 2006 के प्रावधानों की दृष्टि में याचीगण सामग्री आदि की आपूर्ति, संस्थापन, परीक्षण और चालू किए जाने के बाद संकर्म आदेश के मुताबिक बकाया का भुगतान करने के दायी थे। जब इन तथ्यों को फसिलिटेशन परिषद् के ध्यान में लाया गया था, याचीगण को नोटिस और पर्याप्त अवसर देने के बाद और तथ्य पर अथवा विधि में प्रथम पक्ष/प्रत्यर्थी सं॰ 1 के मामले का खंडन करने में उनकी विफलता पर परिषद् ने 2006 अधिनियम की धारा 16 के निबंधनानुसार बैंक दर के तिगुने दर पर जैसा आर॰ बी॰ आई॰ द्वारा अधिसूचित किया गया है ब्याज और 8,83,861/- रुपयों की बकाया मूल राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया है। अत: आक्षेपित आदेश गुणागुण पर भी पीड़ित प्रतीत नहीं होता है और याचीगण की ओर से आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं बनाया गया है। यद्यपि याचीगण के पास अपील का वैकल्पिक उपचार था और उस आधार पर निजी प्रत्यर्थी द्वारा आर्रंभिक आपत्ति की गयी थी किंतु इस न्यायालय ने रिट याचिका ग्रहण करना समुचित समझा क्योंकि याचीगण ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन और फैसिलिटेशन परिषद् द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया में समुचित नोटिस की कमी का मामला बनाने का प्रयास किया था। किंतु तथ्यों पर वे यह स्थापित करने में विफल रहे हैं कि नोटिस अथवा उनको सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिए बिना आदेश पारित किया गया है।

10. अत:, परिस्थितियों की संपूर्णता में, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप के लिए याचीगण की ओर से कोई आधार नहीं बनाया गया है। याचीगण ने इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 1 मार्च, 2013 के आदेश के मुताबिक पुरोभाव्य शर्त के रूप में मूल राशि के 50% अर्थात् 4,41,931/- रुपयों का बैंक ड्राफ्ट जमा किया है। इस तथ्य की दृष्टि में कि रिट याचीगण रिट याचिका में हस्तक्षेप का मामला बनाने में विफल रहे हैं, इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के नाम में पहले जमा किया गया पूर्वोक्त डिमांड ड्राफ्ट याचीगण को लौटा दिया जाएगा। याचीगण विधि के अनुरुप फैसिलिटेशन परिषद् के आदेश के मुताबिक अधिनिर्णीत राशि का भुगतान सुनिश्चित करेंगे।

11. तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

जीबन कृष्ण दास

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 1188 of 2012. Decided on 10th June, 2013.

बिहार राज्य राष्ट्रीयकृत प्राथमिक शिक्षक नियुक्ति एवं अनुशासनिक कार्यवाही नियमावली, 1994—नियम 8—सेवा समाप्ति–सेवा इस आधार पर समाप्त की गयी कि यद्यपि याची अन्य पिछड़ा वर्ग (ओ॰ बी॰ सी॰) कोटि से आता है, उसने अनुसूचित जाति कोटि के अधीन नियुक्ति पाया था–विभागीय कार्यवाही आरंभ किए बिना सेवा से सेवा समाप्ति का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है–कारण बताओ नोटिस जारी किया जाना मात्र नियम 8 की आवश्यकता को संतुष्ट नहीं करता है–याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी थी–चूँकि उक्त सेवा समाप्ति का आदेश कतिपय अभिकथन पर आधारित है, यह याची को पर्याप्त अवसर दिए बिना सेवा से बर्खास्तगी के तुल्य है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–याची को समस्त पारिणामिक लाभ के साथ सेवा में पुनर्बहाल किया गया। (पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Tandon, For the Petitioner; Mr. J.C. to A.A.G., For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में, याची ने जिला शिक्षा अधीक्षक, पाकुड़ (प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा जारी दिनांक 10.12.2011 के मेमो सं॰ 3108 के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा याची की सेवा इस आधार पर समाप्त कर दी गयी है कि यद्यपि वह अन्य पिछड़ी जाति (ओ॰ बी॰ सी॰) कोटि से आता है, उसने अनुसूचित जाति कोटि के अधीन नियुक्ति पाया था। याची ने समस्त पारिणामिक लाभों के साथ सेवा में अपनी पुनर्बहाली के लिए भी प्रार्थना किया है।

2. याची के अनुसार, उसे काफी पहले दिनांक 1.1.1988 को विधिक प्रक्रियाओं का अनुसरण करने के बाद जिला साहिबगंज (अब पाकुड़) में सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया था। किंतु, चयन के बाद तैयार किए गए पैनल में याची का नाम ''हरिजन पुरुष'' कोटि में दर्शाया गया था। याची ने उक्त टंकण गलती को इंगित करते हुए तुरन्त अभ्यावेदन दाखिल किया था। तत्पश्चात, प्रत्यर्थीगण ने अभिलेख को सही किया और सेवा पुस्तक सहित सेवा अभिलेखों में से किसी में याची को ''हरिजन'' के रूप में कभी नहीं उल्लिखित किया था। तद्नुसार, याची को किसी शिकायत के बिना अपने पद पर सेवा देने की अनुमति दी गयी थी, दिनांक 2.7.2005 को अध्यापकों की वरीयता सूची तैयार और प्रकाशित की गयी थी जिसमें याची का नाम उसको विनिर्दिष्टत: ओ॰ बी॰ सी॰ कोटि से आता हुआ क्रमांक 270 पर दिखाया गया था। आश्चर्यजनक रूप से दो दशकों से अधिक के बाद याची को यह अभिकथन करते हुए दिनांक 3.12.2011 का कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था कि उसकी नियुक्ति ''हरिजन'' कोटि के अधीन की गयी थी यद्यपि वह ओ॰ बी॰ सी॰ कोटि से आता है और उससे पूछा गया था कि उसकी सेवा क्यों नहीं समाप्त कर दी जाए। याची ने अन्य बातों के साथ यह कथन करते हुए दिनांक 8.12.2011 का अपना उत्तर दाखिल किया कि उसने कभी भी ''हरिजन'' के रूप में अपना दुर्व्यपदेशन नहीं किया है। इसके विपरीत, उसने ''हरिजन'' कोटि के अधीन उसको दर्शाने वाले पैनल की गलती को इंगित किया था। उसके अभ्यावेदन पर अभिलेख सुधारा गया था। तत्पश्चात्, उसे सेवा अभिलेखों में से किसी में

''हरिजन'' के रूप में दर्शाया नहीं गया था। प्रत्यर्थीगण ने भी याची के विरुद्ध ऐसे किसी आरोप को तामील नहीं किया था और अचानक दिनांक 10.12.2011 का आक्षेपित आदेश पारित किया जिसके द्वारा याची की सेवा समाप्त कर दी गयी है।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज टंडन ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश पूर्णत: मनमाना, अवैध और असंपोषणीय है। याची के विरुद्ध अभिकथन बिल्कुल निराधार हैं। उसने नियोजन पाने के लिए स्वयं को 'हरिजन'' के रूप में दुर्व्यपदेशित कभी नहीं किया है। ''हरिजन पुरुष'' शीर्ष के अधीन पैनल में याची का नाम दर्शाने में प्रत्यर्थीगण की ओर से गलती थी। याची ने तुरन्त दिनांक 18.1.1988 को अभ्यावेदन दाखिल करके प्रत्यर्थीगण के ध्यान में गलती को लाया था। उसके तत्पश्चात कोई सेवा अभिलेख अथवा सरकारी अभिलेख याची को ''हरिजन'' के रूप में परिलक्षित नहीं करता है। वर्ष 2005 में प्रकाशित वरीयता सूची (परिशिष्ट-9) में याची को विनिर्दिष्टत: ओ॰ बी॰ सी॰ कोटि में दर्शाया गया है। प्रत्यर्थीगण ने लगभग 23 वर्षों तक ऐसी कोई आपत्ति नहीं की। आक्षेपित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी की सेवाएँ अचानक तुच्छ आधारों पर समाप्त कर दी गयी है और वह भी विधि की सम्यक प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि सेवा समाप्ति का आदेश केवल विभागीय जाँच करने के बाद जारी किया जा सकता है जैसा बिहार राज्य राष्ट्रीयकृत प्राथमिक अध्यापक नियुक्ति एवं अनुशासनिक कार्यवाही नियमावली, 1994 (इसके बाद ''1994 की उक्त नियमावली'' के रूप में निर्दिष्ट) के नियम 8 के अधीन प्रावधानित किया गया है जिसे झारखंड राज्य द्वारा भी अपनाया गया है। वर्ष 1994 की उक्त नियमावली का नियम 8 विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करता है कि विभागीय कार्यवाही आरंभ किए बिना सेवा से सेवा समाप्ति का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। आक्षेपित आदेश उक्त आज्ञापक नियम और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघनकारी है और पूर्णत: असंपोषणीय है।

4. प्रत्यर्थीगण ने प्रतिशपथ पत्र दाखिल करके रिट याचिका का विरोध किया है। अन्य बातों के साथ यह कथन किया गया है कि याची ओ॰ बी॰ सी॰ कोटि से आता है किंतु उसने ''हरिजन'' कोटि के अधीन नियुक्ति प्राप्त किया। उसने तत्कालीन शिक्षा अधीक्षक, साहिबगंज और प्रभारी लिपिक के साथ दुरभिसंधि करके कपट किया। किंतु यह स्वीकार किया गया है कि उस पर ऐसे किसी आरोप को तामील नहीं करके याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी थी।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और उनके निवेदनों तथा अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और सामग्रियों पर विचार करने पर मैं पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश पारित करने के पहले उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी थी जैसा वर्ष 1994 की उक्त नियमावली के नियम 8 के अधीन आवश्यक है। केवल कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था जिसका उत्तर याची द्वारा दिया गया था। कारण बताओ नोटिस जारी किया जाना मात्र वर्ष 1994 की उक्त नियमावली के नियम 8 की आवश्यकता को संतुष्ट नहीं करता है। आक्षेपित आदेश उक्त सांविधिक नियम का उल्लंघनकारी है क्योंकि आक्षेपित आदेश पारित करने के पहले किसी आरोप को विरचित करके याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी थी। चूँकि सेवा समाप्ति का उक्त आदेश कतिपय अभिकथन पर आधारित है, यह वर्ष 1994 की उक्त नियमावली के नियम 8 का उल्लंघनकारी होने के अतिरिक्त याची को पर्याप्त अवसर दिए बिना और भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के प्रावधानों का अनुपालन किए बिना सेवा से बर्खास्तगी के तुल्य है। इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थीगण ने विचित्र रूप से लगभग 23 वर्षों बाद विवाद्यक उठाया है और वह भी किसी अभिकथन के बिना कि याची ने नियोजन पाने के लिए स्वयं को ''हरिजन'' के रूप में दुर्व्यपदेशित किया था। दो दशकों से अधिक के बाद ऐसा बासी विवाद्यक उठाना पूर्णत: अन्यायोचित है।

6. पूर्वोल्लिखित कारणों से, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। जिला शिक्षा अधीक्षक, पाकुड़ (प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा जारी दिनांक 10.12.2011 का मेमो सं॰ 3108 अभिखंडित किया जाता है। याची को समस्त पारिणामिक लाभों के साथ सेवा में पुनर्बहाल किया जाता है। चूँकि उक्त मनमाना आदेश जारी करके याची को अपने कर्तव्य का निर्वहन करने से अवैध रूप से रोका गया था, वह पूर्ण पिछले वेतन का हकदार होगा।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

हरीशचंद्र टंडन (218 में)

विनोद बियानी (845 में)

मेसर्स स्टरलाईट इंडस्ट्रीज (आई॰) लि॰ (852 में)

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य (सभी में)

Cr. M.P. Nos. 218, 845, 852 of 2013. Decided on 8th May, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420/34/120-B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 320 एवं 482—छल एवं षडयंत्र–संज्ञान–आक्षेपित आदेश का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया जा रहा है कि पक्षों ने अपना धनीय विवाद मित्रतापूर्वक सुलझा कर सुलह कर लिया है–पक्षों के बीच धनीय विवाद निजी प्रकृति का होने के नाते किसी लोक नीति को कभी नहीं अंतर्ग्रस्त करता है और इसका अंत सुलह में हुआ है–दांडिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देने से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा क्योंकि दोषसिद्धि की संभावना नहीं होगी–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की गयी। (पैराएँ 6 से 9)

निर्णयज विधि.–(2008)4 SCC 582—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

चूँकि एक ही परिवाद से उद्भूत होने वाले इन तीनों आवेदनों को साथ सुना गया था, उन्हें इस एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. दिनांक 15.12.2000 के आदेश, जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/34/120B के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया है, सहित सी॰ 1 केस सं॰ 1111 वर्ष 2000 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया जा रहा है कि पक्षों ने मित्रतापूर्वक अपने धनीय विवाद को सुलझा कर सुलह कर लिया है।

3. परिवादी का मामला है कि परिवादी ने मेसर्स पी॰ सी॰ एस॰ इंडस्ट्रीज लि॰ के माध्यम से मेसर्स स्टर्लाइट इंडस्ट्रीज (आई॰) लि॰ के 100 शेयरों को खरीदा था। खरीद के बाद उसके पक्ष में शेयर अंतरित करने के लिए आवश्यक दस्तावेजों को दाखिल किया गया था किंतु समय के क्रम में परिवादी को पता चला था कि उन शेयरों को मेसर्स बियानी सिक्यूरिटीज (बॉम्बे) प्रा॰ लि॰ को अंतरित कर दिया गया है। इस पर, उसके नाम में शेयरों को अंतरित करने का अनुरोध किया गया था किंतु अभियुक्तगण ने उसके अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया और तब परिवाद मामला दर्ज किया गया था जिसे सी॰ 1 केस सं॰ 1111 वर्ष 2000 के रूप में दर्ज किया गया था जिसमें याचीगण के विरुद्ध दिनांक 15.12.2000 के आदेश

के तहत भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/34/120B के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया था।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दांडिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान पक्षों को सद्बुद्धि आयी और तद्द्वारा उन्होंने अपने धनीय विवाद का समाधान कर लिया और सुलह कर लिया और अंतर्वर्ती आवेदनों आई॰ ए॰ सं॰ 1690/13, 1914/13 और 1923/13 के रूप में संयुक्त सुलह याचिका दाखिल किया है जिसके द्वारा दिनांक 28.1.2013 का समझौता करार संलग्न किया गया है।

5. विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता भी स्वीकार करते हैं कि पक्षों के बीच धनीय विवाद को सुलझा लिया गया है।

6. पक्षों के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच धनीय विवाद निजी प्रकृति का होने के नाते किसी लोक नीति को अंतर्ग्रस्त कभी नहीं करता है और इसका अंत सुलह में हुआ है और इसलिए, **मदन मोहन एब्बट बनाम पंजाब राज्य, 2008 (4) SCC Supreme 582,** मामले में अधिकथित निर्णयाधार की दृष्टि में दांडिक कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति देने की अपेक्षा कभी नहीं की जाती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त मामले में इस तथ्य को ध्यान में लेते हुए कि विवाद शुद्धत: निजी होने के नाते लोक नीति अंतर्ग्रस्त नहीं करने वाले सुलह में परिणत हुआ, अभिनिर्धारित किया कि यह शायद परामर्श योग्य है कि विवाद में जहाँ अंतर्ग्रस्त प्रश्न शुद्धत: निजी प्रकृति का है, न्यायालय को सामान्य दांडिक कार्यवाही में भी सुलह के निबंधनों को स्वीकार करना चाहिए क्योंकि अभियोजन के पक्ष में किसी परिणाम के होने की कोई संभावना नहीं होने पर मामले को जीवित रखना विलासिता है जिसे न्यायालय, जितने भारी बोझ से वे दबे हुए हैं, पाल नहीं सकते हैं और कि इस प्रकार बचाए गए समय का उपयोग अधिक प्रभावकारी और अर्थपूर्ण मुकदमा को विनिश्चित करने में किया जा सकता है।

7. इन परिस्थितियों के अधीन, दांडिक कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति देने से कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा नहीं होगा क्योंकि दोषसिद्धि दर्ज किए जाने की कोई संभावना नहीं होगी जब पक्षों ने अपना धनीय विवाद सुलझा लिया है जो निजी प्रकृति का है और किसी लोकनीति को कभी नहीं अंतर्ग्रस्त करता है।

8. अत:, इन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/34/120B के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लेते दिनांक 15.12.2000 के आदेश सहित सी॰ 1 केस सं॰ 1111 वर्ष 2000 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

9. परिणामस्वरुप इन तीनों आवेदनों को अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

नासिर मियाँ एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Revision No. 98 of 2013. Decided on 16th May, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498A—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—दहेज मांग एवं क्रूरता–उन्मोचन याचिका अस्वीकार किया जाना–पीड़िता के ससुर और देवर के विरुद्ध

विनिर्दिष्ट अभिकथन हैं–प्राथमिकी में केवल सास को नामित किया गया है और उसके विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है–अन्वेषण के बाद पुलिस ने उसके विरुद्ध कोई अपराध नहीं पाया था और उसके पक्ष में अवर न्यायालय में फाइनल फॉर्म दाखिल किया गया है–आक्षेपित आदेश, जहाँ तक यह सास से संबंधित है अपास्त किया गया और अवर न्यायालय को नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया–अन्य याचीगण का आवेदन खारिज किया गया। (पैराएँ 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Ranjan Kumar Singh, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याचीगण जी॰ आर॰ केस सं॰ 265 वर्ष 2010/नारायणपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 40 वर्ष 2011 में श्री आर॰ एन॰ राय, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जामतारा द्वारा पारित दिनांक 17.10.2012 के आदेश से व्यथित हैं जिसके द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 239 के अधीन उन्मोचन के लिए याचीगण द्वारा दाखिल आवेदन अवर न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है।

3. याचीगण को जी॰ आर॰ केस सं॰ 265 वर्ष 2010 के तत्सम नारायणपुर थाना केस सं॰ 40 वर्ष 2010 के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध का अभियुक्त बनाया गया है।

4. याचीगण क्रमश: सूचक के ससुर, सास और देवर हैं और प्राथमिकी दर्शाती है कि विवाह लगभग 14 वर्ष पहले हुआ था। किंतु, प्राथमिकी में अभिकथन है कि उसमें नामित अभियुक्तगण ने व्यवसाय के प्रयोजन से सूचक के माता-पिता से 1,00,000/- (एक लाख) रुपया मांगना शुरू किया और उसे इसके गैर-भुगतान के लिए क्रूरता एवं यातना के अध्यधीन किया जाता था। यह भी अभिकथित किया गया है कि उसे दांपत्य गृह से बाहर निकाल दिया गया था और पीड़िता के ससुर, पति और देवर सूचक के माता-पिता के घर गए थे जहाँ भी उनके द्वारा उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया था और उसके पति द्वारा उस पर प्रहार किया गया था।

5. अन्वेषण के बाद पुलिस ने केवल पति और याची सं॰ 1 और 3 जो पीड़िता के ससुर और देवर हैं के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। याची सं॰ 2 जो सूचक की सास है के पक्ष में फाइनल फॉर्म यह कथन करते हुए दाखिल किया गया था कि वह निर्दोष है। किंतु अवर न्यायालय ने समस्त अभियुक्तगण के विरुद्ध संज्ञान लिया और तत्पश्चात याचीगण ने उन्मोचन के लिए अपना आवेदन दाखिल किया जिसे भी अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

6. यद्यपि याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याचीगण को इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है किंतु उन्होंने अपना निवेदन केवल सास (याची सं॰ 2) तक सीमित रखा है जिसके पक्ष में पुलिस द्वारा फाइनल फॉर्म यह निवेदन करते हुए दाखिल किया गया है कि आरोप विरचित करने के लिए उसके विरुद्ध कोई सामग्री नहीं है और फिर भी संज्ञान लिया गया है।

7. स्वयं प्राथमिकी से यह प्रतीत होता है कि याची सं॰ 1 और 3 जो पीड़िता के ससुर और देवर हैं के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन हैं। जहाँ तक याची सं॰ 2 नूरेशा खातुन जो पीड़िता की सास है का संबंध है, उसे केवल प्राथमिकी में नामित किया गया है और उसके विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है और यह प्रतीत होता है कि पुलिस ने अन्वेषण के बाद उसके विरुद्ध कोई अपराध नहीं पाया था और

अन्वेषण के बाद उसके पक्ष में अवर न्यायालय में फाइनल फॉर्म दाखिल किया गया है। अवर न्यायालय ने याची सं॰ 2 नूरेशा खातुन के संबंध में किसी सामग्री पर कोई चर्चा नहीं किया है जिसके आधार पर उन्मोचन के लिए उसका आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है और तद्नुसार, यह प्रतीत होता है कि आक्षेपित आदेश जहाँ तक यह याची सं॰ 2 नूरेशा खातुन से संबंधित हैं, बिल्कुल कारण रहित आदेश है।

8. मामले के उस दृष्टिकोण में, दिनांक 17.10.2012 का आक्षेपित आदेश, जहाँ तक यह याची सं॰ 2 नूरेशा खातुन से संबंधित है, एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और अवर न्यायालय को उसके विरुद्ध सामग्री, यदि हो, पर चर्चा करने के बाद विधि के अनुरुप नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

9. यह आवेदन, जहाँ तक यह याची सं॰ 1 और 3 क्रमशः नसीर मियाँ एवं मुख्तार अंसारी, से संबंधित है, एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

10. तद्नुसार, यह आवेदन अंशतः अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

अनिल कुमार लाल

cuke

सेंट्रल कोल फील्ड्स लिमिटेड एवं अन्य

W.P. (C) No. 4267 of 2006. Decided on 20th April, 2012.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—विधिक सहायता–याची अधिवक्ता के बिलों का गैर भुगतान–याची भूमि एवं अन्य हितों से संबंधित मामलों में कनीय अधिवक्ता के रूप में पेशेवर और विधिक सहायता देता रहा–यह सुनिश्चित करने के लिए कि उसके बिलों का पूरा भुगतान चार सप्ताह के भीतर किया जाय, प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ को निर्देश देते हुए परमादेश रिट जारी किया गया–रिट याचिका अनुज्ञात की गयी। (पैराएँ 5, 7 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Anil Kumar Lal, For the Petitioner; M/s G. Mustafa, Arvind Kumar Mehta, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका याची के विधिपूर्ण और विधिक स्वीकृत देयों का भुगतान करने के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारी को परमादेश प्रकृति का निर्देश देने के लिए दाखिल की गयी है।

2. याची की ओर से निवेदन यह है कि वह राँची जिला में पेशेवर अधिवक्ता है और वर्ष 1969 से स्व॰ श्री सुरेश्वरी प्रसाद अखौरी, वरीय अधिवक्ता के साथ कनीय अधिवक्ता के रूप में जुड़ा हुआ था।

3. वरीय अधिवक्ता को सिविल, दांडिक और राजस्व मामले का प्रतिवाद करने के लिए सेंट्रल कोलफील्ड्स की ओर से काम पर लगाया गया था। राँची के जिला न्यायालय में और अधिकरण में भी प्रत्येक उपस्थिति के लिए 550/- रुपया प्रति मामला नियत किया गया था और कनीय अधिवक्ता अर्थात् याची का फीस जिला न्यायालय में और अधिकरण में भी प्रत्येक उपस्थिति के लिए 40/- रुपया प्रति मामला नियत किया गया था।

4. श्री एस॰ पी॰ अखौरी के साथ कनीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत बिलों के प्रथम संवर्ग को दिनांक 27 नवंबर, 1987 के पत्र जो परिशिष्ट-1 पर है के तहत प्रदर्शित किया गया है।

5. विद्वान अधिवक्ता ने कोयला धारक क्षेत्र (अर्जन एवं विकास) अधिनियम, 1957 के प्रावधानों के अधीन अर्जित भूमि एवं अन्य हितों के संबंध में ग्राम पुंडी, रामगढ़ दनिया, पिपरवार, आदि से संबंधित अनेक मामलों में विधिक सहायता दिया जैसा वरीय अधिवक्ता द्वारा चाहा गया था।

6. दिनांक 6 फरवरी, 1989 को वरीय अधिवक्ता श्री एस॰ पी॰ अखौरी की मृत्यु हो गयी और इसलिए कतिपय बिलों को जमा नहीं किया जा सका था।

7. किंतु, याची भूमि एवं अन्य हितों के संबंध में मामलों में कनीय अधिवक्ता के रूप में पेशेवर एवं विधिक सहायता देता रहा। उसने पृथक रूप से दिनांक 26 अप्रिल, 1989 को अपने बिलों को दाखिल भी किया था। बिलों की संख्या 744 (544 + 200) थी जिनका भुगतान आज के दिन तक नहीं किया गया है। रिट याचिका का परिशिष्ट V केवल 3,69,437/- रुपयों का दावा करते हुए प्रत्यर्थीगण को लिखा गया पत्र है। यह 744 (544 + 200) बिलों के बदले में है। उक्त पत्र के पैराग्राफों 6 और 7 में इसका विनिर्दिष्टत: प्राख्यान किया गया है। प्रत्यर्थीगण ने अब तक कोई भुगतान नहीं किया है।

8. अंतिम तिथि पर अर्थात् दिनांक 2 मार्च, 2012 को नियत की गयी अगली तिथि तक पेशेवर फीस के बकायों का पूर्ण भुगतान सुनिश्चित करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देते हुए आदेश पारित किया गया था। अप्रिल 2 नियत की गयी अगली तिथि थी।

9. मामले को आज (दिनांक 20.4.2012) को सुनवाई के लिए लिया गया है किंतु फीस की ओर कोई भुगतान नहीं किया गया है। श्री जी॰ मुस्तफा के कनीय अधिवक्ता स्थगन चाहते थे किंतु चूँकि मामले में काफी विलंब किया जा चुका है, मैं आज किसी स्थगन की अनुमति नहीं दे रही हूँ।

10. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को विचार में लेने के बाद, मैं यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनके समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर उसके बिलों का संपूर्ण भुगतान किया जाय, प्रत्यर्थी सं॰ 1 (सेंट्रल कोलफील्ड्स, अपने अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, दरभंगा हाऊस, राँची के माध्यम से), प्रत्यर्थी सं॰ 4 (वरीय वित्त अधिकारी, विधि विभाग, सेंट्रल कोलफील्डस लिमिटेड, दरभंगा हाऊस, राँची) और प्रत्यर्थी सं॰ 5 (सहायक राजस्व अधिकारी, राजस्व विभाग, सेन्ट्रल कोल फील्डस लिमिटेड, दरभंगा हाऊस, राँची) को निर्देश देते हुए परमादेश रिट याची करने के लिए मजबूर हूँ।

11. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित कनीय अधिवक्ता यह भी सुनिश्चित करेंगे कि यह आदेश अनुपालन के लिए प्रत्यर्थी को संसूचित किया जाय। प्रत्यर्थीगण बिल की ओर बकाया की कुल राशि और रिट याचिका संस्थापित किए जाने की तिथि अर्थात् दिनांक 1 अगस्त, 2006 से कुल राशि पर 9% वार्षिक की दर से ब्याज की संगणना करेंगे।

12. यदि पूर्वोक्त अवधि के भीतर राशि संवितरित नहीं की जाती है, प्रत्यर्थी चक्रवृद्धि ब्याज का भुगतान करने के दायी होंगे।

13. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

14. आवश्यक अनुपालन के लिए इस आदेश की प्रति अधिवक्ता को दी जाएगी।

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

भारत संघ

cuke

गौतम डे एवं अन्य

W.P. (S) No. 6673 of 2010. Decided on 20th June, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—अधिकरण की अधिकारिता–अधिकरण के समक्ष पश्चातवर्ती कार्यवाहियों में उच्च न्यायालय की खंडपीठ के अंतिम निर्णय को चुनौती दी जा रही है–अधिकरण ने विस्तारपूर्वक समस्त विवाद्यकों पर विचार किया है और आवेदक-प्रत्यर्थी के दावा के संबंध में विवाद्यकों को पहले ही अधिकरण द्वारा अंततः उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है–रिट याचिका खारिज की गयी। (पैराएँ 2 से 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Prabhash Kumar, For the Appellant/Petitioner; Mr. M.A. Khan, For the Respondent No.1; JC to Mr. Ram Nivas Roy, For the Respondent No. 2 & 3.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. आवेदक प्रत्यर्थी सं॰ 1 भारत संघ को पक्ष के रूप में और रेलवे के अन्य प्राधिकारियों को भी पक्ष के रूप में पक्षकार बनाकर ओ॰ ए॰ सं॰ 168 वर्ष 2004 दाखिल करके केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, सर्किट पीठ, राँची के पास आया। दिनांक 9 जनवरी, 2007 के आदेश के तहत उक्त ओ॰ ए॰ अनुज्ञात किया गया था। भारत संघ द्वारा और वह भी वरीय डिविजनल कार्मिक अधिकारी, पूर्व केंद्र रेलवे के माध्यम से डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5026/2007 इस न्यायालय के समक्ष दाखिल करके अधिकरण के उस आदेश को चुनौती दी गयी थी जिसे दिनांक 4 अक्टूबर, 2007 के निर्णय के तहत खारिज कर दिया गया था और इस न्यायालय की खंडपीठ ने अपीलार्थी भारत संघ के अभिवचन को ग्रहण किया कि अधिकरण ने पूर्व मध्य रेलवे के महाप्रबंधक द्वारा शिथिलीकरण का आदेश पारित करने के लिए निर्देश दिया है जिनके पास अधिकारिता नहीं है और इसलिए डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5026/2007 में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विनिर्दिष्ट निर्देश जारी किया गया था कि सक्षम प्राधिकारी समुचित आदेश पारित करेगा। डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5026/2007 में इस न्यायालय के दिनांक 4 अक्टूबर, 2007 के निर्णय के अंतिमता प्राप्त किए जाने के बावजूद अपीलार्थी ने आवेदक प्रत्यर्थी सं॰ 1 का दावा अस्वीकार दिया और इसलिए, प्रत्यर्थी सं॰ 1 पुनः ओ॰ ए॰ सं॰ 25/2009 दाखिल करके अधिकरण के पास गया था। दिनांक 13 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा उक्त ओ॰ ए॰ अनुज्ञात किया गया था।

3. भारत संघ के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि भारत संघ पक्ष था किंतु समुचित प्राधिकारी के माध्यम से नहीं। ऐसे अभिवचन पर, इस न्यायालय की खंडपीठ के अंतिम निर्णय को अधिकरण के समक्ष पश्चातवर्ती कार्यवाही में चुनौती दी जा रही है। अतः हमारा सुविचारित मत है कि अधिकरण ने पहले ही समस्त विवाद्यकों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है और हम अभिनिर्धारित करते हैं कि आवेदक प्रत्यर्थी सं॰ 1 के दावा के संबंध में विवाद्यकों को पहले ही अधिकरण द्वारा और अंततः इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है।

4. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम इस रिट याचिका में गुणागण नहीं पाते हैं जिसे खारिज किया जाता है।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

दशरथ राम

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1459 of 2012. Decided on 23rd April, 2013.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धाराएँ 138 एवं 147—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—चेक का अनादर–संज्ञान–अपराधों का शमन–प्रस्ताव दिया गया था किंतु इसे स्वीकार नहीं किया गया था–ऐसी स्थिति में न्यायालय दूसरे पक्ष को सुलह करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है–इसी समय पर प्रस्ताव स्वीकार करने से इनकार के कारण अभियोजन जारी है और ऐसा जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य कभी नहीं होगा–आवेदन खारिज किया गया। (पैराएँ 4 से 7)

निर्णयज विधि.–(2010) 5 SCC 663—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioner; APP., For the State.

आदेश

यह आवेदन परिवाद केस सं॰ 518 वर्ष 2011 (टी॰ आर॰ सं॰ 942 वर्ष 2012) में पारित दिनांक 11.8.2011 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची के विरुद्ध परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान लिया गया है।

2. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इस अभिकथन पर कि परिवादी को दिए गए तीन लाख रुपयों के चेक का अनादर कर दिया गया था, एन॰ आई॰ अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध की कारिता के लिए परिवाद दाखिल किया गया था। जब याची उपस्थित हुआ था, आवेदन दाखिल किया गया था कि याची 3 लाख रुपयों की राशि के भुगतान का प्रस्ताव देकर अपराध के शमन के लिए तैयार था और इसके अतिरिक्त 40,000/- रुपयों की राशि का प्रस्ताव भी दिया गया था। उस आवेदन पर जोर दिया गया था जिस पर पक्षों ने न्यायालय से कुछ समय मांगा था और वे न्यायालय के बाहर गए थे। विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के अधिवक्ता ने परिवादी की उपस्थिति में प्रस्ताव स्वीकार किया था। किंतु जब पक्षगण न्यायालय के अंदर आए, परिवादी प्रस्ताव के स्वीकरण से मुकर गया और इसने इस आवेदन को दाखिल करने के लिए वाद हेतुक उद्भूत किया।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय का सरोकार रहा है कि एन॰ आई॰ अधिनियम की धारा 138 के अधीन दर्ज मामले को जल्द निपटाया जाए और उसके अनुसरण में सुलह प्रोत्साहित किया जाए। यह इंगित किया गया था कि आरंभ में ही सुलह का प्रस्ताव देना अभियुक्तगण के लिए अनिवार्य बनाते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **दामोदर एस॰ प्रभु बनाम सईद बाबालाल एच॰, (2010)5 SCC 663,** में कतिपय मार्गदर्शक सिद्धांतों को अधिकथित किया गया है और मार्गदर्शक सिद्धांतों को दृष्टि में रखते हुए प्रस्ताव दिया गया था जिसे आरंभ में स्वीकार किया गया था किंतु बाद में मुकर जाया गया था, अतः परिवादी की प्रेरणा पर किसी कार्यवाही को जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य होगा।

4. इसके विरुद्ध, परिवादी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ साहनी निवेदन करते हैं

कि आरंभिक चरण पर ही जब परिवादी ने मामले में सुलह करना चाहा, याची मामले में सुलह के लिए आगे कभी नहीं आया बल्कि उपस्थिति के बाद नौ माह पश्चात आवेदन दाखिल किया गया था और तब प्रस्ताव दिया गया था जो स्वीकार्य नहीं था, अत: परिवादी ने सुलह करने से इनकार किया।

5. कथन किया जाए कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रवृत्ति को ध्यान में लेकर कि कार्यवाही आरंभ किए जाने के अनेक वर्षों बाद सामान्यत: शमन के लिए आवेदन दाखिल किया जाता है, यह महसूस किया गया था कि यह न्याय प्रशासन प्रणाली का सहायक नहीं है क्योंकि सुलह का प्रस्ताव देने में अभियुक्त द्वारा किया गया विलंब न्यायालय पर बोझ डालता है, अत: मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए गए थे ताकि अभियुक्त मामले के आरंभिक चरण पर सुलह के लिए प्रस्ताव दे सके:–

> *^^pd d vuknj d ekey e leu d fjV dk vfHk;Dr dk ;g Li"V djr g, mi;Dr :i l mikrfjr fd;k tkuk pkfg, fd og ekey dh igyh ;k nljh luokb ij vijkèkk d 'keu d fy, vkonu n ldrk Fkk vkj ;fn ,lk vkonu fn;k tkrk g] vfHk;Dr ij dkb 0;; vfèkjkfir fd, fcuk U;k;ky; }kjk 'keu dh vuefr nh tk ldrh gA***

6. किंतु यहाँ वर्तमान मामले में प्रस्ताव दिया गया था किंतु इसे स्वीकार नहीं किया गया था। ऐसी स्थिति में, न्यायालय दूसरे पक्ष को सुलह करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है। इसी समय पर प्रस्ताव स्वीकार करने से इनकार के कारण अभियोजन जारी रहता है और इस प्रकार, ऐसा जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य कभी नहीं हो सकता है। इस प्रकार, मैं कार्यवाही के जारी रहने में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ।

7. तद्नुसार, यह आवेदन खारिज किया जाता है।

8. यह कहना अनावश्यक है कि मामले को निपटाते हुए विचारण न्यायालय यह सदैव ध्यान में रखेगा कि अभियुक्त ने पहले विवाद के समाधान के लिए प्रस्ताव दिया था।

---

ekuuh; ,p lhh feJk] U;k;efr

संजय कुमार मंडल उर्फ संजय मंडल

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 48 of 2013. Decided on 16th May, 2013.

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 7A—किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2007—नियम 12—किशोरता का विनिश्चयकरण–केवल नियमावली में वर्णित किसी मैट्रिकुलेशन अथवा ऐसे अन्य प्रमाण पत्रों की अनुपस्थिति में मेडिकल बोर्ड का मत इप्सित किया जाना है–किशोर न्याय बोर्ड ने सही प्रकार से याची द्वारा प्रस्तुत मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र जिसे घटना की तिथि के बाद जारी किया गया था पर विश्वास करने से इनकार किया और याची की आयु विनिश्चित करने के लिए मेडिकल बोर्ड गठित करने का आदेश सही प्रकार से दिया–जहाँ अतिरिक्त जाँच अथवा अन्यथा की आवश्यकता है, ऐसा किया जा सकता है–ऐसी कोई जाँच केवल तब वर्जित है जब विधि की दृष्टि में इसकी आवश्यकता नहीं है–आवेदन खारिज किया गया। (पैराएँ 12 से 17)

निर्णयज विधि.–2013(1) PLJR 156 (SC)—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s Rajeeva Sharma, Rita Kumari, Manoj Kumar, For the Petitioner; Mr. Hemant Kumar Shikarwar, For the State.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची दांडिक अपील सं॰ 78 वर्ष 2012 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, साहिबगंज द्वारा पारित दिनांक 29.11.2012 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा जी॰ आर॰ सं॰ 115 वर्ष 2004, ई॰ सं॰ 11 वर्ष 2012 में किशोर न्याय बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 27.8.2012 के आदेश के विरुद्ध दाखिल अपील को अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है।

3. यह कथन किया जा सकता है कि अभियोजन द्वारा दाखिल आवेदन पर किशोर न्याय बोर्ड, जिसने पहले याची को किशोर घोषित किया था, ने अभिनिर्धारित किया कि याची किशोर नहीं था और विधि के अनुरुप विचारण के लिए अभिलेख सत्र न्यायाधीश, साहिबगंज के न्यायालय को वापस लौटा दिया था। उक्त आदेश के विरुद्ध दाखिल अपील भी अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गयी थी।

4. आक्षेपित निर्णय से यह प्रतीत होता है कि याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302, 328/34 के अधीन अपराध के लिए बोरियो (जे॰) पुलिस थाना केस सं॰ 43 वर्ष 2004, जी॰ आर॰ सं॰ 115 वर्ष 2004 के तत्सम, में अभियुक्त बनाया गया है जिसमें याची सत्र विचारण केस सं॰ 204A वर्ष 2005 में विचारण का सामना कर रहा है। विचारण के क्रम में याची ने किशोरता का अभिवचन किया और अपने दावा के समर्थन में मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था। मामले को जाँच के लिए किशोर न्याय बोर्ड, साहिबगंज के समक्ष भेजा गया था जहाँ याची ने अपनी जन्मतिथि 8.6.1990 दर्शाते हुए वर्ष 2006 की वार्षिक परीक्षा के लिए झारखंड एकेडेमिक परिषद्, राँची द्वारा जारी अपना मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था। घटना की तिथि दिनांक 23.3.2004 होने के नाते याची ने घटना की तिथि पर किशोर होने का दावा किया। चूँकि उक्त प्रमाण पत्र घटना की तिथि के बाद जारी किया गया था, किशोर न्याय बोर्ड ने इस पर विश्वास नहीं किया था और याची की आयु निर्धारित करने के लिए मेडिकल बोर्ड गठित करने का आदेश दिया मेडिकल बोर्ड के रिपोर्ट के आधार पर याची को दिनांक 13.6.2008 के आदेश के तहत किशोर घोषित किया गया था।

5. बाद में, अभियोजन द्वारा पाया गया था कि याची वर्ष 2002 में ही मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उपस्थित हुआ था और तृतीय श्रेणी में इसमें उत्तीर्ण हुआ था। वर्ष 2002 की वार्षिक परीक्षा के लिए झारखंड एकेडमिक परिषद् द्वारा जारी उसके मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र में याची की जन्मतिथि दिनांक 25.9.1984 के रूप में उल्लिखित की गयी थी और उसने घटना की तिथि पर अर्थात् दिनांक 22.3.2004 को पहले ही वयस्कता प्राप्त कर लिया था। तद्नुसार, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा जाँच संचालित किया गया था जिसमें किशोर न्याय बोर्ड ने इस्टर्न रेलवे उच्च विद्यालय, साहिबगंज जहाँ से याची वर्ष 2002 में मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उपस्थित हुआ था के प्राचार्य का और आदिवासी उच्च विद्यालय मंगरोतिकर बोरियो, साहिबगंज जहाँ से वह वर्ष 2006 के लिए मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उपस्थित हुआ था के प्राचार्य का भी परीक्षण किया। इन दोनों विद्यालयों द्वारा जारी विद्यालय निर्गम प्रमाण पत्रों और वर्ष 2002 तथा 2006 में झारखंड

एकेडमिक परिषद्, राँची द्वारा तैयार किए गए टेबुलेशन चार्टों को भी सिद्ध किया गया था और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा यह पाया गया था कि याची वस्तुत: वर्ष 2002 में ही मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था और तृतीय श्रेणी में इसमें उत्तीर्ण हुआ था और वर्ष 2002 में झारखंड एकेडमिक परिषद् द्वारा जारी प्रमाण पत्र ने स्पष्टत: उसकी जन्मतिथि को दिनांक 25.9.1984 के रूप में दर्शाया था।

6. किशोर न्याय बोर्ड ने भी किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2007 के नियम 12 को विचार में लिया जो विहित करता है कि मैट्रिकुलेशन अथवा समतुल्य प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं होने पर ही मेडिकल बोर्ड का मत इप्सित किया जाना था। किशोर न्याय बोर्ड ने पाया कि उक्त नियमावली के नियम 12 ने स्पष्टत: मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र को प्राथमिकता दिया है और केवल ऐसे प्रमाण पत्र की अनुपस्थिति में मेडिकल बोर्ड का मत इप्सित किया जाना था। तद्नुसार, किशोर न्याय बोर्ड ने वर्ष 2002 में झारखंड एकेडमिक परिषद् द्वारा जारी मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र को विचार में लेते हुए अभिनिर्धारित किया कि याची घटना की तिथि पर किशोर नहीं था। उक्त आदेश के विरुद्ध दाखिल अपील को विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 29.11.2012 के आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था जिसमें अवर अपीलीय न्यायालय ने समुचित कार्रवाई करने और दोषकर्ता के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश दिया था।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बिल्कुल अवैध हैं क्योंकि सम्यक जाँच के बाद किशोर न्याय बोर्ड द्वारा याची को किशोर अभिनिर्धारित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि वर्ष 2006 में झारखंड एकेडमिक परिषद् द्वारा जारी प्रमाण पत्र ने मेडिकल बोर्ड के निष्कर्षों को पूर्णत: संपुष्ट किया है जिसने भी मत दिया था कि घटना की तिथि पर याची किशोर था और तद्नुसार याची को किशोर अभिनिर्धारित किया गया था। यह निवेदन किया गया है कि जब एकबार मेडिकल बोर्ड द्वारा उसकी आयु के निर्धारण पर याची को किशोर अभिनिर्धारित किया गया था, याची की किशोरता के बारे में किसी आगे जाँच का अवसर नहीं था और तद्नुसार अवर न्यायालयों द्वारा पारित आदेश बिल्कुल अवैध हैं और इन्हें विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि दोषकर्ता के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने के लिए अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा दिया गया निर्देश बिल्कुल अनपेक्षित और अनपेक्षणीय है। विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया कि **अश्वनी कुमार सक्सेना बनाम मध्य प्रदेश राज्य,** 2013 (1) PLJR 156 (SC) में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐसी अधूरी जाँच की निंदा की गयी है जिसमें माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, मध्य प्रदेश द्वारा जारी प्रमाण पत्र और अन्य दस्तावेजों तथा किशोर की ओर से परीक्षण किए गए गवाहों ने सिद्ध किया कि याची किशोर था किंतु न्यायालय ने अधूरी जाँच और याची की आयु का निर्धारण करने के लिए मेडिकल बोर्ड भी गठित किया जिसके आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि याची किशोर नहीं था। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अवर न्यायालयों द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया की निंदा की थी। विद्वान अधिवक्ता ने उक्त निर्णय के निम्नलिखित पैराग्राफों पर विश्वास किया है:–

*"34. vfèkfu;e dh èkkjk 7A lgifBr 2007 fu;ekoyh d fu;e 12 d vèkhu vuè;kr ^^vk; fofu'p;dj.k tkp** U;k;ky; dk lk{; bfllr dju d fy, l{ke cukrh g vkj ml çfØ;k e U;k;ky; efVdy'ku vFkok lerY; çek.k i=k dk çklr dj ldrk g ;fn o miyCèk gA doy efVdy'ku vFkok lerY; çek.k i=k*

dh vuifLFkfr e U;k;ky; dk ØhMk fo|ky; l fHkUu igyh ckj ço'k fy, x, fo|ky; l tUefrFk çek.k i= çkIr dju dh vko';drk gA doy efVdy'ku vFkok lerY; çek.k i= vFkok igyh ckj ço'k fy, x, fo|ky; l tUefrFk çek.ki= dh vuifLFkfr e U;k;ky; dk fuxe vFkok uxjikfydk çkfèkdkjh vFkok ipk;r }kjk fn, x, tUe çek.k i= (u fd 'kiFk i= cfYd çek.k i=k vFkok nLrkotk) dk çkIr dju dh vko';drk gA lE;d :i l xfBr efMdy ckM l efMdy er çkIr dju dk ç'u doy rc mnHkr gkrk g ;fn iokfYyf[kr nLrkot vuiyCèk gA ;fn vk; dk lVhd fuèkkj.k ugh fd;k tk ldrk g] rc U;k;ky;] nt fd, tku oky dkj.kk l] ;fn vko';d le>rk g] ckyd vFkok fd'kkj dk ,d o"k d ekftu d Hkhrj derj i{k ij mldh vk; eku dj ykHk n ldrk gA

35. tc ,d ckj iokfYyf[kr çfØ;kvk dk vulj.k djr g, U;k;ky; vkn'k ikfjr djrk g] og vkn'k fofèk dk mYy?ku dju oky ,l ckyd vFkok fd'kkj d lcèk e vk; dk fu'p;kRed çek.k gkxkA ***fu;e 12 d mifu;e (5) e ;g Li"V fd;k x;k g fd fu;e 12 d mifu;e (3) dk fufn"V dju d ckn ijh{k.k dju vkj çek.k i= vFkok fdlh vU; nLrkoth çek.k dk çkIr dju d ckn U;k;ky; vFkok ckM }kjk vkx dkb tkp lpkfyr ugh fd;k tk,xkA*** *vkx] t0 t0 vfèkfu;e dh èkkjk 49 b ld fofu'p;dj.k ij fd'kkjrk dh vk; dh mièkkj.kk Hkh fudkyrh gA*

36. t0 t0 vfèkfu;e vkj fu;ekoyh d vèkhu vuè;kr vk; fofu'p;dj.k tkp dk vU; foèkkuk t l lok e ço'k] lokfuofr çkUufr] vkfn d vèkhu tkp l dN yuk&nuk ugh gA ***,lh fLFkfr;k gk ldrh g tgk efVdy'ku vFkok lerY; çek.k i=k] igyh ckj ço'k fy, x, fo|ky; l tUefrFk çek.k i= vkj fuxe vFkok uxjikfydk çkfèkdkjh vFkok ipk;r }kjk fn, x, tUe çek.k i= e çfof"V lgh ugh gk ldrh gA fdr U;k;ky;] t0 t0 ckM vFkok t0 t0 vfèkfu;e d vèkhu dk; djrh dfeVh l ,lh vèkjh tkp dju vkj lkekU; dkedkt d nkjku j[k x, mu nLrkotk dh 'k}rk dk ijh{k.k dju d fy, mu çek.k i=k d ihN tku dh mEehn ugh dh tkrh gA*** *doy ,l ekeyk e tgk mu nLrkotk vFkok çek.ki=k dk eux<r vFkok Nylkfèkr ik;k x;k g] U;k;ky;] t0 t0 ckM vFkok dfefV dk vk; fofu'p;dj.k d fy, efMdy fjikV dh ekx dju dh vko';drk gA** (tkj fn;k x;k)*

इस निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि किशोरता के दावा का विरोध करने वाली आगे की किसी जाँच को किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली 2007 के नियम 12 (5) के अधीन वर्जित किया गया है और याची की किशोरता में किसी अधूरी जाँच करने की आवश्यकता नहीं थी जब एक बार किशोर न्याय बोर्ड द्वारा सम्यक जाँच के बाद याची को किशोर अभिनिर्धारित किया गया था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलीय न्यायालय और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

9. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया था कि याची वर्ष 2002 में ही मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उपस्थित हुआ था और झारखंड एकेडमिक परिषद् द्वारा जारी प्रमाणपत्र ने स्पष्टत: याची की जन्मतिथि को दिनांक 25.9.1984 के रूप में दर्शाया था और इस प्रकार याची घटना की तिथि पर अर्थात् दिनांक 22.3.2004 को किशोर नहीं था। याची द्वारा यह प्रमाण पत्र छुपा लिया गया था और

न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था और वस्तुत: उसने एक अन्य प्रमाणपत्र, जिसे उसने किशोरता का दावा करने के लिए अपनी जन्मतिथि को जानबूझकर दिनांक 8.6.1990 दर्शाते हुए वर्ष 2006 में उसी परीक्षा में पुन: उपस्थित होते हुए जिसमें वह पहले ही वर्ष 2002 में उत्तीर्ण हो चुका था घटना के बाद प्राप्त किया था, को प्रस्तुत करके न्यायालय के साथ कपट किया था। यह निवेदन किया गया है कि याची के पूर्व मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र जिसे वर्ष 2002 में जारी किया गया था की दृष्टि में, किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2007 के नियम 12 के निबंधनानुसार मेडिकल बोर्ड का मत प्राप्त करने की आवश्यकता बिल्कुल नहीं थी। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, आगे जाँच सही रूप से संचालित की गयी थी जो किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 अथवा उसके अधीन विरचित नियमावली के अधीन बिल्कुल वर्जित नहीं थी। तद्नुसार, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता नहीं है।

10. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर मैं पाता हूँ कि याची वर्ष 2002 में झारखंड एकेडमिक परिषद् द्वारा संचालित मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उपस्थित हुआ था जिसमें याची की जन्मतिथि दिनांक 25.9.1984 के रूप में उल्लिखित की गयी थी। घटना की तिथि दिनांक 22.3.2004 होने के नाते याची स्पष्टत: उक्त तिथि पर किशोर नहीं था। याची ने उक्त प्रमाण पत्र को न्यायालय से छुपाया और किशोरता का दावा करने के लिए वह पुन: घटना की तिथि पर अपने को अवयस्क दर्शाने के लिए पुन: वर्ष 2006 में मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उपस्थित हुआ।

11. किशोर की आयु विनिश्चित करने के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2007 के नियम 12 में अधिकथित की गयी है। उक्त नियमावली का नियम 12 (3) का पठन निम्नलिखित है:–

> *12. (3) ckyd ;k fofèk dk mYy?ku dju oky fd'kkj l lcfèkr çR;d ekey e vk; fuèkkfjr dju okyh tkp fuEufyf[kr çkIr djr g, lk{; pkgr g, U;k;ky; ;k e.My] ;k ;FkkfLFkfr lfefr }kjk dh tk;xh&*
>
> *(a) (i) nloh ;k led{k çek.ki=] ;fn miyCèk gk] vkj ftld vHkko e]*
>
> *(ii) igy çfo'k fy; fo|ky; l tUefrfFk çek.k i= ¼Iy Ldy d vykok½] vkj ftld vHkko e(*
>
> *(iii) fuxe ;k fuxe çkfèkdkjh ;k ipk;r }kjk fn;k x;k tUe çek.ki=k]*
>
> *(b) vkj mijkDr [k.M (a) d (i), (ii) ;k (iii) d vHkko e] fpfdRlh; jk; lE;d :i l xfBr fpfdRlh; e.My l çkIr fd;k tk;xk] tk fd'kkj ;k ckyd dh vk; ?kkf"kr djxkA ;fn vk; dk lgh fuèkkj.k ugh fd;k tk ld] rk U;k;ky; ;k e.My] ;k ;FkkfLFkfr] lfefr mud }kjk y[kc) fd; tku oky dkj.kk d fy,] ;fn vko';d fopkfjr fd;k tk;] ,d o"k d ekftu d Hkhrj fupyh rjQ mldh vk; fuèkkfjr djr g, ckyd ;k fd'kkj dk ykHk çnku dj ldrk g vkj ,l ekey e vkn'k ikfjr djr le;] ,l lk{; tk] miyCèk gk] ;k fpfdRlh; jk; dk fopkfjr dju d i'pkr ;FkkfLFkfr] mldh vk; d vkj [k.M (a) (i), (ii) ;k (iii) e l fdlh e fofufn"V lk{; d lcèk e fu"d"k vfHkyf[kr djxk] ;k ftld vHkko e [k.M (b) ,l ckyd ;k fofèk dk mYy?ku dju oky fd'kkj d lcèk e vk; dk fu'pk;d çek.k gkxkA*

12. इस प्रकार, नियम 12 (3) का सादा पठन स्पष्टत: दर्शाता है कि केवल नियमावली में वर्णित किसी मैट्रिकुलेशन अथवा ऐसे अन्य प्रमाण पत्रों की अनुपस्थिति में मेडिकल बोर्ड का मत इप्सित किया जाना है। इस प्रकार, इस तथ्य की दृष्टि में कि स्वयं वर्ष 2002 में जारी याची की जन्मतिथि दर्शाने वाला मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र पहले से ही था, याची की आयु विनिश्चित करवाने के लिए मेडिकल बोर्ड गठित करने की आवश्यकता बिल्कुल नहीं थी। किशोर न्याय बोर्ड द्वारा वह कार्रवाई केवल इसलिए की गयी थी क्योंकि याची द्वारा वर्ष 2002 में जारी मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र छुपा लिया गया था और याची ने वर्ष 2006 का मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र पेश किया था जिसे घटना की तिथि के बाद जारी किया गया था जिस पर मेडिकल बोर्ड द्वारा सही प्रकार से विश्वास नहीं किया गया था और याची की आयु विनिश्चित करने के लिए मेडिकल बोर्ड गठित करने का आदेश दिया गया था। यदि किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष वर्ष 2002 का मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया गया होता, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा उक्त कदम नहीं उठाया गया होता। मामले के उस दृष्टिकोण में याची की आयु के संबंध में मेडिकल बोर्ड के मत को विचार में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि यह विधि की दृष्टि में अविद्यमान है।

13. अब अगले प्रश्न पर आते हुए, क्या मामले में द्वितीय जाँच वर्जित थी जैसा याची द्वारा दावा किया गया है। किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2007 के नियम 12 (5) का पठन निम्नलिखित है:

> *"12. (5) , lk gkr g, vkj flok;] tgk vU; tkp ;k vU;Fkk vU; ckrk d lkFk vfèkfu;e dh èkkjk 7A] 64 vkj bu fu;ek dh 'krk e vif{kr gk] rk dkb Hkh vU; tkp bl fu;e d mi&fu;e (3) e fufn"V çek.ki= ;k dkb vU; nLrkoth çek.k dk ijhf{kr dju vkj çkIr dju d i'pkr U;k;ky; ;k e.My }kjk ugh dh tk;xhA***

इस प्रकार, इस नियम का सादा पठन स्पष्टत: दर्शाता है कि जहाँ आगे की जाँच अथवा अन्यथा आवश्यक है, इसे किया जा सकता है। ऐसी कोई जाँच केवल तब वर्जित है जब विधि की दृष्टि में इसकी आवश्यकता नहीं है। अभिव्यक्ति ''अधिनियम की धारा 7 (A) धारा 64 और नियमावली के निबंधनानुसार जाँच'' को शब्दों ''अन्य बातों के साथ'' अर्हित किया गया है जो स्पष्टत: दर्शाता है कि अधिनियम की धारा 7 (A) और धारा 64 तथा नियमावली के अधीन जाँच अनन्य नहीं है बल्कि सम्मिश्रणकारी प्रकृति की है और यदि न्यायालय महसूस करता है कि दिए गए मामले में आगे जाँच की आवश्यकता है, उक्त अतिरिक्त जाँच निश्चय ही की जा सकती है और यह किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2007 के नियम 12 के उपनियम 5 के अधीन वर्जित नहीं है। वर्तमान मामले की दी गयी स्थिति में जब यह किशोर न्याय बोर्ड के ध्यान में लाया गया था कि याची ने वर्ष 2002 में ही उसके पक्ष में जारी पूर्व मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र को रोक कर कपट किया था, आगे जाँच करने की आवश्यकता निश्चय ही थी और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा सही प्रकार इसे संचालित किया गया था।

14. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए **अश्वनी कुमारी सक्सेना (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय को नियमावली में वर्णित मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र अथवा ऐसे अन्य प्रमाण पत्रों को प्राप्त करना है यदि वे उपलब्ध हैं और केवल किसी मैट्रिकुलेशन अथवा ऐसे प्रमाणपत्रों की अनुपस्थिति में सम्यक रूप से गठित मेडिकल बोर्ड का मत प्राप्त करने का प्रश्न उद्भूत होता है। उक्त मामले में, न्यायालय ने इन दस्तावेजों की उपलब्धता के बावजूद इन पर विश्वास नहीं किया था और मेडिकल बोर्ड का मत प्राप्त किया था जिसकी निंदा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गयी

थी। वर्तमान मामले में वह स्थिति नहीं है। बल्कि इसके विपरीत, वर्तमान मामले में मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र उपलब्ध था और इसे याची द्वारा छुपाया गया था।

15. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि याची के बचपन में ही उसके पिता की मृत्यु हो गयी थी और याची की आयु किसी के द्वारा गलत रूप से दी जा सकती थी जिसने उसको बचपन में विद्यालय में प्रवेश दिलाया था। याची के विद्वान अधिवक्ता के इस निवेदन को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और **अश्वनी कुमार सक्सेना के मामले (ऊपर)** में, जिस पर याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया है, इस पर विचार किया गया है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

> "36. ..... ,lh fLFkfr;k gk ldrh g tgk efVdy'ku vFkok lerY; çek.k i=k] igyh ckj ço'k fy, x, fo|ky; l tUefrfFk çek.k i= vkj fuxe vFkok uxjikfydk çkfèkdkjh vFkok ipk;r }kjk fn, x, tUe çek.k i= e çfof"V lgh ugh gk ldrh gA fdr U;k;ky;] t0 t0 ckM vFkok t0 t0 vfèkfu;e d vèkhu dk; djrh dfeVh l ,lh vèkjh tkp dju vkj lkekU; dkedkt d nkjku j[k x, mu nLrkotk dh 'k}rk dk ijh{k.k dju d fy, mu çek.k i=k d ihN tku dh mEehn ugh dh tkrh g ----------
>
> *** *** ***
>
> 45. gekjk nf"Vdk.k g fd fo|ky;] ftle mEehnokj u igyh ckj ço'k fy;k Fkk] dk ,Mfe'ku jftLVj tUefrfFk d lk{; dk çkIfxd VdMk gA ;g rd fd ekrk&firk ,Mfe'ku jftLVj e xyr tUefrfFk çfof"V djk ldr Fk] vr% ;g lgh tUefrfFk ugh g] ;g lkpu d cjkcj g fd ekrk&firk u ,lk bl çR;k'kk e fd;k gkxk fd lrku Hkfo"; e vijkèk djxk vkj ml fLFkfr e o fd'kkjrk dk nkok lQyrkiod mBk ldr FkA**

16. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, 'मैं पाता हूँ कि इस तथ्य की दृष्टि में कि याची की जन्मतिथि दर्शाने वाला उसका मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र उपलब्ध था, याची की आयु विनिश्चित करने के लिए मेडिकल बोर्ड गठित करने का अवसर नहीं था और ऐसा इसलिए किया गया था क्योंकि याची द्वारा मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र रोक एवं छिपा लिया गया था। मामले के उस दृष्टिकोण में, मेडिकल बोर्ड का निष्कर्ष बिल्कुल अविद्यमान है और इसे विचार में नहीं लिया जा सकता है। मैं यह भी पाता हूँ कि दिए गए मामले में याची द्वारा स्पष्ट रूप से न्यायालय के साथ कपट किया गया था और किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2007 के नियम 12 के उपनियम 5 के अधीन अतिरिक्त जाँच बिल्कुल वर्जित नहीं थी। दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, किशोर न्याय बोर्ड ने सही प्रकार से नया जाँच किया है और याची को घटना की तिथि पर वर्ष 2002 में झारखंड एकेडमिक परिषद् द्वारा जारी मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र के आधार पर वयस्क पाया है। मैं दोषकर्ता के विरुद्ध कार्रवाई का निर्देश देने वाले अवर अपीलीय न्यायालय के आदेश में भी कोई दोष नहीं पाता हूँ।

17. तद्नुसार, मैं पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने योग्य किशोर न्याय बोर्ड, साहिबगंज द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में, अथवा अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ। इस आवेदन में गुणागुण नहीं है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o Jh pn'k[kj] U;k;efrx.k

मो॰ नसीम अंसारी

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 1154 of 2012. Decided on 7th May, .2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—आयुध अधिनियम, 1959—धारा 27—हत्या–दोषसिद्धि–दंडादेश का निलंबन–चश्मदीद गवाहों के अभिसाक्ष्यों की दृष्टि में अपीलार्थी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है–अभिलेख पर साक्ष्यों और अपराध की गंभीरता तथा दंड की मात्रा और तरीका जिसमें अपीलार्थी-अभियुक्त अपराध में अंतर्ग्रस्त है को देखते हुए यह न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश को निलंबित करने का इच्छुक नहीं है–दंडादेश के निलंबन की प्रार्थना अस्वीकार की गयी। (पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajan Raj, For the Appellant; Mr. Amresh Kumar, For the State.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–वर्तमान अपील पहले ही दिनांक 6 फरवरी, 2013 के आदेश के तहत ग्रहण की गयी है।

2. सत्र विचारण सं॰ 429 वर्ष 2008 के अभिलेख और कार्यवाही को विचारण न्यायालय से मंगाया गया था ताकि अपीलार्थी के दंडादेश के निलंबन के तर्कों का अधिमूल्यन किया जा सके।

3. इस अपीलार्थी को सत्र विचारण सं॰ 429 वर्ष 2008 में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास के साथ दंडित किया गया है और उसे आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी पाँच वर्ष के कठोर कारावास के साथ दंडित किया गया है। दोनों दंडादेशों को साथ चलने का निर्देश दिया गया है।

4. इस न्यायालय द्वारा सत्र विचारण सं॰ 429 वर्ष 2008 के अभिलेख और कार्यवाही को प्राप्त किया गया है और हमने इसका परिशीलन किया है और दोनों पक्षों के अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है।

5. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को देखते हुए, इस अपीलार्थी अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है। चूँकि दांडिक अपील लंबित है, हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का अधिक विश्लेषण नहीं कर रहे हैं किंतु इतना कहना पर्याप्त है कि अभियोजन का मामला एक से अधिक चश्मदीद गवाहों पर आधारित है जो अ॰ सा॰ 2, अ॰ सा॰ 3, अ॰ सा॰ 4 और अ॰ सा॰ 5 (सूचक) हैं। उनके साक्ष्य को देखते हुए, उन्होंने इस अपीलार्थी द्वारा निभायी गयी भूमिका का स्पष्टत: विवरण दिया है जिसने आग्नेयास्त्रों का प्रयोग किया और आग्नेयास्त्र द्वारा मृतक पर उपहतियों को कारित किया। उनके अभिसाक्ष्य अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार जिन्होंने मृतक का शव परीक्षण किया, द्वारा दिए गए चिकित्सीय साक्ष्य से पर्याप्त संपुष्टि पा रहे हैं। आग्नेयास्त्र द्वारा एक दर्जन से अधिक उपहतियाँ है। इसके अतिरिक्त, अभियोजन गवाहों के पूर्वोक्त अभिसाक्ष्य अ॰ सा॰ 8 जो अन्वेषण अधिकारी है और अ॰ सा॰ 9 जो दंडाधिकारी है जिन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन बयान दर्ज किया है सहित अभिलेख पर उपलब्ध अन्य साक्ष्यों से भी आगे संपुष्टि पा रहे हैं।

6. अपीलार्थी के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने विस्तारपूर्वक मामले पर तर्क किया है और इस तर्क सहित अनेक तर्क को उठाया है कि किसी लक्ष्मण रवानी जिसे प्राथमिकी में चश्मदीद गवाह के रूप में निर्दिष्ट किया गया है यद्यपि उसका परीक्षण नहीं किया गया है। यह प्रतिवाद मुख्यत: निम्नलिखित कारणों से अपीलार्थी की मदद नहीं करता है:–

(i) xokgk dh l[;k ij fopkj dju dh vko';drk ugh g ;fn dN p'enhn xokgk dk ijh{k.k fd;k x;k g tk vR;Ur fo'oluh; gA vud p'enhn xokgk dk ijh{k.k dju dh vko';drk ugh gA

(ii) vihykFkh d vfèkoDrk u ;g fuonu Hkh fd;k g fd p{kn'kh vkj fpfdRlh; lk{; d chp vrj gA ge nM çfØ;k lfgrk dh èkkjk 389 d vèkhu nMkn'k d fuycu d fy, bl pj.k ij bl çfrokn dk Lohdkj dju dk dkj.k ugh n[kr gA bld foijhr] vfHky[k ij miyCèk lk{; dk n[kr g,] vkXu;kL= d flok, fdlh vU; gfFk;kj dk mi;kx ugh fd;k x;k gA p'enhn xokgk d vfHklk{; dk n[kr g,] bl vihykFkh u vkXu;kL= dk mi;kx fd;k g vkj vkXu;kL= migfr dkfjr fd;k g tk i;kIr lif"V ik jgk gA ge foLrkjiod fooj.k ugh n jg g fd fdl çdkj lif"V dh x;h g fdr bruk dguk i;kIr g fd çFke n"V;k v0 lk0 6 }kjk fn, x, fpfdRlh; lk{; dh lif"V feyrh gA

(iii) vihykFkh d fy, mifLFkr vfèkoDrk u ;g Hkh bfxr fd;k g fd ?kVuk d rjhd vkj pyk;h x;h xkfy;k dh l[;k d ckj e p'enhn xokgk d vfHklk{; e vrj gA nMkn'k d fuycu d bl pj.k ij bl U;k;ky; }kjk ;g çfrokn Lohdkj ugh fd;k x;k gA erd d 'kjhj ij vud migfr;k g tk ,d ntu l vfèkd gA v0 lk0 5 tk p'enhn xokg vkj lpd g d erkfcd vkXu;kL= migfr vihykFkh vkj vU; }kjk dkfjr dh x;h gA

(iv) vihykFkh d vfèkoDrk }kjk ;g fuonu Hkh fd;k x;k g fd çkFkfedh nt dju e tk <kb ?kV dk foyc gvk g] mldk Li"Vhdj.k ugh gA ge bl pj.k ij bl rd ij fopkj dju dk dkj.k ugh n[kr g fdr bruk dguk i;kIr g fd bl rd e dkb lkj fcYdy ugh gA

(v) vihykFkh d vfèkoDrk d erkfcd p'enhn xokg l;kxh lk{kh gA bl U;k;ky; }kjk bl çfrokn dk Hkh Lohdkj ugh fd;k x;k g D;kfd lpd erd dk NkVk Hkkb gA vfHky[k ij miyCèk lk{; d erkfcd ?kVukLFky ij mldh mifLFkfr LokHkkfod gA vr% bl pj.k ij bl U;k;ky; }kjk bl çfrokn dk Lohdkj ugh fd;k x;k gA

7. अपीलार्थी के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अनेक तर्क दिए गए थे किंतु उन सबों पर इस न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है, अत: हम शेष तर्कों पर विचार नहीं कर रहे हैं। किंतु इतना कहना पर्याप्त है कि चश्मदीद गवाहों के अभिसाक्ष्य को देखते हुए इस अपीलार्थी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है।

8. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों, अपराध की गंभीरता, दंड की मात्रा और तरीका जिसमें यह अपीलार्थी अपराध में अंतर्ग्रस्त है जैसा अभियोजन द्वारा अभिकथित किया गया है, को देखते हुए हम विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश को निलंबित करने के इच्छुक नहीं हैं।

9. इस प्रकार, दंडादेश के निलंबन की प्रार्थना में कोई सार नहीं होने के नाते इसे एतद् द्वारा अस्वीकार किया जाता है।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

कमलेश कुमार गौड़ एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1461 of 2012. Decided on 4th July, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 323 एवं 498A सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3/4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 177, 178, 182 एवं 482—क्रूरता एवं उपहति—संज्ञान—न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन अपराध से संबंधित जो कोई भी प्रत्यक्ष कृत्य अभिकथित किया गया है, उन प्रत्यक्ष कृत्यों को उस न्यायालय की अधिकारिता के बाहर किया गया है, जिसने संज्ञान लिया है—साथ ही परिवाद में अभिकथन हैं कि याचीगण ने परिवादी को टेलीफोन पर गंभीर परिणामों की धमकी दी थी जिसने टेलीफोन कॉल पाया था जब वह गुमला में रह रही थी—वाद हेतुक का भाग गुमला में उद्भूत हुआ—न्यायालय के पास क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी नहीं है—आवेदन खारिज।

(पैरा 5)

अधिवक्तागण.—Mr. Arun Kumar, For the Petitioners; Mr. APP, For the State; Mr. Sunil Kumar, For O.P. No. 2.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अधिवक्ता और वि॰ प॰ सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. सिसई पी॰ एस॰ केस सं॰ 127/2008 (जी॰ आर॰ सं॰ 772/2008, टी॰ आर॰ सं॰ 511/12) में पारित दिनांक 4.6.2012 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 323, 498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन भी दंडनीय अपराधों का संज्ञान याचीगण के विरुद्ध लिया गया है, का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया गया है कि न्यायालय, जिसने संज्ञान लिया है, के पास क्षेत्रीय अधिकारिता की कमी है।

3. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता परिवाद याचिका में दिए गए बयानों को निर्दिष्ट करके निवेदन करते हैं कि अपराध, जिसके अधीन संज्ञान लिया गया है, गठित करने वाले प्रत्यक्ष कृत्य देवरिया (उ॰ प्र॰) में किए गए अभिकथित किए गए हैं और न कि उस न्यायालय जिसने अपराध का संज्ञान लिया है की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि अभिकथनों में से एक इस प्रभाव का है कि टेलीफोन पर याचीगण ने धमकी दी थी किंतु यह विनिर्दिष्ट निबंधनों में नहीं है कि क्या वे धमकियाँ टेलीफोन पर उसको बुलाकर याचीगण द्वारा दी गयी थी अथवा परिवादी ने याचीगण को टेलीफोन किया था और वह घटना वर्ष 2004 से संबंधित है जबकि मामला वर्ष 2007 में दर्ज किया गया है और तद्द्वारा संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है।

4. इसके विरुद्ध, वि॰ प॰ सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने परिवाद याचिका को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि यह अभिकथित किया गया है कि जब परिवादी अपने माता-पिता के साथ

गुमला में रह रही थी, याचीगण ने टेलीफोन पर उसको गंभीर परिणामों की धमकी दी और, इसलिए, दांडिक अभित्रास के अपराध का मामला बनता है और उस स्थिति में परिवाद गुमला में दर्ज किया गया है जिस पर, न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 323, 498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन भी दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया है और तद्द्वारा न्यायालय ने गलती नहीं किया।

5. पक्षों के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह प्रतीत होता है कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन जो कुछ भी प्रत्यक्ष कृत्य किए गए अभिकथित किए गए हैं, उन प्रत्यक्ष कृत्यों को उस न्यायालय जिसने संज्ञान लिया है, के अधिकारिता को बाहर किया गया है। इस समय पर, परिवाद में अभिकथन है कि याचीगण ने टेलीफोन पर परिवादी को गंभीर परिणामों की धमकी दी थी जिसने तब टेलीफोन कॉल पाया था जब वह गुमला में रह रही थी। यह दृष्टि में रखते हुए कि वाद हेतुक का भाग गुमला में प्रोद्भूत हुआ, परिवाद गुमला में दर्ज किया गया था, यद्यपि दांडिक अभित्रास के अपराध का संज्ञान नहीं लिया गया है किंतु यह शायद ही कोई मायना रखता है जहाँ तक क्षेत्रीय अधिकारिता के बिंदु से प्रश्न संबंधित है जिसे इस बिंदु पर विनिश्चित किया जाना है कि क्या वाद हेतुक का भाग उस स्थान पर प्रोद्भूत हुआ था जहाँ परिवाद दाखिल किया गया था। इन परिस्थितियों के अधीन, मैं नहीं पाता हूँ कि न्यायालय, जिसने संज्ञान लिया है के पास अधिकारिता की कमी है, विशेषत: दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 182 में अंतर्विष्ट प्रावधान को दृष्टि में रखते हुए। तद्नुसार, यह आवेदन खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

रविन्द्र कुमार गुप्ता उर्फ रविन्द्र गुप्ता

cuke

झारखंड राज्य

Cr.Revision No. 726 of 2012. Decided on 5th July, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 363, 365, 468 एवं 201—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—अपहरण एवं कूटरचना–उन्मोचन आवेदन का अस्वीकरण–अवयस्क लड़कियों को दिल्ली ले जाया गया था–याची ने अधिवक्ता होने के नाते शपथ पत्र पर शपथ लेने वाली लड़कियों के पहचानकर्ता के रूप में अपना हस्ताक्षर किया था–याची ने सह-अभियुक्तगण को कुछ पेशेवर सलाह दिया था–याची के विरुद्ध मामला यह नहीं है कि याची अवयस्क लड़कियों को बहकाने अथवा उनका अपहरण करने में अंतर्ग्रस्त था–भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 363 एवं 365 के अधीन याची के विरुद्ध मामला बनता हुआ नहीं कहा जा सकता है–इसी प्रकार से याची को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 468 एवं 201 के अधीन अपराध का दोषी नहीं पाया जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया और याची को उन्मोचित किया गया–आवेदन अनुज्ञात किया गया। (पैराएँ 8 से 11)

अधिवक्तागण.–M/s Nilesh Kumar, Mr.Amit Kumar, For the Petitioner; Mrs.Sadhna Kumar, For the State.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–याची के विद्वान अधिवक्ता और अभियोजन के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ सुने गए।

2. याची जी॰ आर॰ केस सं॰ 277 वर्ष 2007 में श्री एस॰ एन॰ सिंह, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 8.8.2012 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰

की धारा 239 के अधीन उन्मोचित किए जाने के लिए याची द्वारा दाखिल आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

3. याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 363, 365, 468 और 201 के अधीन अभिकथित अपराधों के लिए कुरु पी॰ एस॰ केस सं॰ 73 वर्ष 2007, जी॰ आर॰ केस सं॰ 277 वर्ष 2007 के तत्सम, में अभियुक्त बनाया गया है। मामला अवयस्क लड़कियों, जिन्हें बाद में बचा लिया गया था, को दिल्ली ले जाने के लिए नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध संस्थापित किया गया था। आरंभ में याची को इस मामले में अभियुक्त नहीं बनाया गया था। याची लोहरदग्गा के न्यायालयों में वकालत करने वाला विधि व्यवसायी है और उसे बाद में इस मामले में यह कथन करते हुए अभियुक्त बनाया गया है कि जब अवयस्क लड़कियों को दिल्ली से वापस लाया गया था, उनको अभियुक्तगण द्वारा याची के पास लाया गया था और यह अभिकथित किया गया है कि यह कथन करते हुए शपथपत्रों को तैयार किया गया था कि पीड़ित लड़कियों का अपहरण नहीं किया गया था बल्कि वे स्वयं अपने माता–पिता की सहमति से काम करने दिल्ली गयी थी। याची ने अधिवक्ता होने के नाते शपथ पत्रों पर शपथ लेने वाली लड़कियों के पहचानकर्ता के रूप में अपना हस्ताक्षर किया था।

4. बाद में, लड़कियों और गवाहों के बयानों को पुलिस द्वारा दर्ज किया गया था जिसमें उन्होंने कथन किया कि जब लड़कियों को दिल्ली से लाया गया था, उन्हें सीधा याची के पास लाया गया था जो अधिवक्ता है जहाँ अभियुक्त महिला के भाई और पति (जो भी मामले में नामित अभियुक्तगण हैं) उपस्थित थे और उन्होंने पीड़ित लड़कियों को कागजातों पर अपना हस्ताक्षर करने के लिए बहकाया था कि बाद में उनको धन का भुगतान किया जाएगा। उनके हस्ताक्षर लिए गए थे किंतु अभियुक्तगण द्वारा उनको भुगतान नहीं किया गया था।

5. अन्वेषण के बाद, पुलिस ने याची के विरुद्ध आरोप–पत्र दाखिल किया और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 363, 365, 468 और 201 के अधीन अपराध के लिए याची के विरुद्ध संज्ञान भी लिया गया था। याची ने उन्मोचन के लिए इस आवेदन को दाखिल किया जिसे अवर न्यायालय द्वारा यह पाते हुए अस्वीकार कर दिया गया था कि केस डायरी में याची के विरुद्ध उपलब्ध सामग्री के आधार पर उक्त धाराओं के अधीन अपराध बनते थे।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बिल्कुल अवैध है क्योंकि याची ने नामित अभियुक्तगण को केवल पेशेवर सलाह दिया था और मामला यह नहीं है कि लड़कियों ने शपथ पत्रों पर अपना हस्ताक्षर नहीं किया था और उनके हस्ताक्षरों को कूटरचित किया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि स्वयं पीड़ित लड़कियों ने शपथपत्र पर शपथ लिया था जिस पर याची ने केवल उनके हस्ताक्षरों को पहचाना है और तद्नुसार याची के विरुद्ध अपराध बनता हुआ नहीं कहा जा सकता है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आक्षेपित आदेश को विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन करते हुए प्रार्थना का विरोध किया है कि याची के विरुद्ध उक्त शपथ पत्रों, जिन पर पीड़ित लड़कियों द्वारा शपथ लिया गया था, को बनाने में सहायक होने का अभिकथन है।

8. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मैं पाता हूँ कि याची, जिसने सह–अभियुक्तगण को कुछ पेशेवर सलाह दिया था, को लोहरदग्गा न्यायालय में वकालत करने वाले वकील होने के नाते इस मामले में अभियुक्त बनाया गया है। याची के विरुद्ध मामला यह नहीं है कि याची अवयस्क लड़कियों, जिन्हें दिल्ली ले जाया गया था, को बहकाने अथवा उनका अपहरण करने में अंतर्ग्रस्त था और याची के विरुद्ध ऐसा अभिकथन बिल्कुल नहीं है। तद्नुसार, मेरे सुविचारित मत में, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 363 और 365 के अधीन याची के विरुद्ध अपराध बनता हुआ नहीं कहा जा सकता है।

9. जहाँ तक भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 468 और 201 के अधीन अभिकथन का संबंध है, केस डायरी से यह प्रकट है कि याची ने अभियुक्तगण को केवल पेशेवर सलाह दिया था। यह मामला नहीं है कि पीड़ित लड़कियों ने शपथपत्रों पर अपना हस्ताक्षर नहीं किया था और वस्तुतः याची द्वारा उनके हस्ताक्षरों को कूटरचित किया गया था, बल्कि पीड़ित लड़कियों ने पुलिस के समक्ष स्वीकार किया है कि उन्होंने इस पर अपना हस्ताक्षर किया था। शपथपत्रों, जिन्हें इस आवेदन के परिशिष्ट–2 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है, से यह प्रकट है कि याची ने केवल अभिसाक्षियों के पहचानकर्ता के रूप में शपथपत्रों पर अपना हस्ताक्षर किया था। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में मैं पाता हूँ कि याची ने केवल सह–अभियुक्तगण को पेशेवर सलाह दिया था जिसके लिए, मेरे सुविचारित दृष्टिकोण में, याची को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 468 और 201 के अधीन अपराधों का दोषी नहीं पाया जा सकता है।

10. पूर्वोल्लिखित चर्चाओं की दृष्टि में मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, जी॰ आर॰ केस सं॰ 277 वर्ष 2007 में श्री एस॰ एन॰ सिंह, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 8.8.2012 के आक्षेपित आदेश को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और याची को उक्त मामले से उन्मोचित किया जाता है।

11. तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

लेदेन किस्कू

cuke

झारखंड राज्य सब डिविजनल अधिकारी, पाकुड़ के माध्यम से

W.P.(C) No. 6628 of 2012. Decided on 1st July, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—रिट याचिका–वैकल्पिक उपचार–याची आर॰ ई॰ आर॰ मामले के शीघ्रातिशीघ्र निपटान के लिए निर्देश इप्सित कर रहा है–याची ने आज की तिथि तक सब डिविजनल अधिकारी के समक्ष मामले की शीघ्रातिशीघ्र सुनवाई के लिए कोई अनुरोध नहीं किया है और समय सीमा के भीतर शीघ्रातिशीघ्र सुनवाई के लिए निर्देश इप्सित करते हुए सीधा उच्च न्यायालय के पास आया है–याची को एस॰ डी॰ ओ॰ के समक्ष ऐसा अनुरोध करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 3)

अधिवक्तागण.–Mr. Md. Asadul Haque, For the Petitioner; J.C. to S.C. (L&C), For the Respondent.

आदेश

याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके आर॰ ई॰ आर॰ केस सं॰ 41 वर्ष 2009-10, जो विद्वान सब डिविजनल अधिकारी, पाकुड़ के समक्ष लंबित है, के संबंध में समय सीमा के भीतर कार्यवाही समाप्त करने के लिए प्रत्यर्थी को समुचित रिट/आदेश/निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना किया है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री विशेषतः ऑर्डर शीट जो परिशिष्ट–2 के तहत संलग्न है, का परिशीलन किया।

3. इसके परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि आर॰ ई॰ आर॰ केस सं॰ 41 वर्ष 2009-10 विद्वान सब डिविजनल अधिकारी, पाकुड़ के समक्ष लंबित है और दिनांक 31.10.2011 के आदेश के तहत मामला तर्क के लिए रखा गया था किंतु याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार तर्क आरंभ नहीं हुआ था। यह प्रतीत होता है कि याची ने आज की तिथि तक मामले की शीघ्रातिशीघ्र सुनवाई के लिए विद्वान सब डिविजनल अधिकारी के समक्ष कोई अनुरोध नहीं किया है और समय सीमा के भीतर शीघ्रातिशीघ्र सुनवाई के लिए निर्देश इप्सित करते हुए सीधे इस न्यायालय के पास आया है। इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि याची को समुचित आवेदन दाखिल करके सब डिविजनल अधिकारी, पाकुड़ के समक्ष ऐसा अनुरोध करने का निर्देश देने की आवश्यकता है और जब तथा जैसे ही सब डिविजनल अधिकारी के समक्ष याची द्वारा ऐसा आवेदन दाखिल किया जाता है, सब डिविजनल अधिकारी, पाकुड़ इस पर विचार करेंगे और विधि के अनुरुप इसे विनिश्चित करेंगे। आवेदन विनिश्चित करते हुए सब डिविजनल अधिकारी, पाकुड़ मामले के लंबित रहने, मामले की प्रकृति और मामले में अंतर्ग्रस्त अत्यावश्यकता को विचार में लेंगे।

4. पूर्वोक्त संप्रेक्षण एवं निर्देश के साथ इस रिट याचिका को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

न्यायालय स्वयं अपने प्रस्ताव पर

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 4715 of 2013. Decided on 1st August, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—पी॰ आई॰ एल॰–उच्च बाल मृत्यु दर–समाचार पत्र रिपोर्ट दर्शाते हैं कि प्रत्येक वर्ष झारखंड राज्य में 5 वर्ष की आयु के नीचे अथवा पाँच वर्ष की आयु तक 46 हजार बालकों की मृत्यु हो जाती है–मामले पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है–राज्य को बाल मृत्यु दर, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की अवस्था और गर्भधारण तथा जनन के दौरान सावधानी बरतने के लिए गर्भवती महिलाओं को शिक्षित करने के प्रयासों के संबंध में तथ्य एवं आँकड़ा देने का निर्देश दिया गया। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Sumeet Gadodia, For the Petitioner; J.C. to A.G., For the Respondents.

आदेश

विद्वान अधिवक्ता श्री सुमित गडोडिया ने हमारा ध्यान दिनांक 1 अगस्त, 2013 के संस्करण में दैनिक समाचार पत्र 'प्रभात खबर' में प्रकाशित खबर की ओर आकृष्ट किया है जिसमें उल्लेख किया गया है कि झारखंड राज्य में प्रत्येक वर्ष 5 वर्ष की आयु के नीचे अथवा 5 वर्ष की आयु तक के 46 हजार बालकों की मृत्यु हो जाती है।

2. इस रिपोर्ट के अनुसार, तथ्यों के सावधानीपूर्वक परीक्षण और अनेक जिलों से विवरण लेने के बाद आँकड़े दिए गए हैं। यह रिपोर्ट दर्शाता है कि लगभग 19000 बालकों की मृत्यु अपने जन्म के 20 दिनों के भीतर हो जाती है और स्वयं सरकारी आँकड़ों के मुताबिक 1000 जन्म में से 55 बालक अपना पाँचवाँ जन्म दिन नहीं देख पाते हैं और उस आँकड़े में से 38 की मृत्यु एक वर्ष के भीतर और 24 की मृत्यु 28 दिनों के भीतर हो जाती है।

3. समाचार पत्र में दिए गए विवरण का परिशीलन करने के बाद हमारा सुविचारित मत है कि मामले पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है, अत: कार्यालय को इसे ''जनहित याचिका'' के रूप में दर्ज करने का निर्देश दिया जाता है।

4. विद्वान अधिवक्ता श्री सुमित गडोडिया से न्यायमित्र के रूप में इस न्यायालय की सहायता करने का अनुरोध किया जाता है।

5. राज्य के विद्वान अधिवक्ता से राज्य सरकार की ओर से नोटिस स्वीकार करने का अनुरोध किया जाता है और स्वास्थ्य एवं कल्याण विभाग तथा राज्य के विद्वान अधिवक्ता भी महाधिवक्ता से इस न्यायालय की सहायता करने का अनुरोध कर सकते हैं ताकि विवाद्यक को तुरन्त विचार किया जा सके।

6. राज्य को झारखण्ड में बाल मृत्यु दर, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की अवस्था और गर्भावस्था तथा प्रसव के दौरान सावधानी बरतने के लिए गर्भवती महिलाओं को शिक्षित करने के प्रयासों के संबंध में तथ्यों और आँकड़ों जो उनके पास है को देने का निर्देश दिया जाता है। राज्य से अन्य समस्त प्रासंगिक तथ्यों और आँकड़ों तथा कदमों जिन्हें उठाया जा रहा है और जो उठाए जाने की प्रक्रिया में हैं का विवरण देने की उम्मीद की जाती है।

7. इस मामले को दिनांक 12 अगस्त, 2013 को रखा जाए।

8. इस आदेश की प्रति राज्य के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान न्यायमित्र को दी जाए।

---

ekuuh; ,p lh feJk] U;k;efr

राकेश सचदेव एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 1088 of 2012 with I.A. No. 2380 of 2013. Decided on 30th July, 2013.

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005—धारा 20—भरण-पोषण, वैकल्पिक वास सुविधा एवं मुआवजा का प्रदान–अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर अवर न्यायालय द्वारा घरेलू हिंसा के संबंध में निष्कर्ष दर्ज किए गए और इनमें पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है–किंतु अधिनियम के प्रभाव में आने के पहले भूतलक्षी प्रभाव से परिवादी को कुछ धनीय अधिकार प्रदान किए गए हैं जो संविधान के अनुच्छेद 20 (1) का स्पष्ट उल्लंघन है–दांडिक प्रावधान भूतलक्षी प्रभाव से प्रवर्तित नहीं होते हैं–आक्षेपित आदेश उपांतरित किया गया। (पैराएँ 16 से 21)

निर्णयज विधि.–—(2011) 4 SCC 441—Relied; 1987 (2) RCR (Cri) 144; 1993 (3) RCR (Cri) 279; (2012) 3 SCC 183—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr Rajan Raj, For the Petitioner; Mr. Manoj Kumar, For the State; M/s Dilip Jerath, Vineet Kr. Vashistha, For the Opp. Party No.2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–याचीगण के विद्वान अधिवक्ता राज्य के विद्वान अधिवक्ता तथा साथ ही विपक्षी पक्षकार सं॰ 2-परिवादी के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याचीगण दांडिक अपील सं॰ 184 वर्ष 2010 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश II, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 3.10.2012 के निर्णय से व्यथित हैं जिसके द्वारा सी॰ पी॰ केस सं॰ 754 वर्ष 2009 टी॰

आर॰ केस सं॰ 727 वर्ष 2010 में श्रीमती वीणा मिश्रा, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 19.7.2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध दाखिल अपील विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गयी है।

3. यह कथन किया जा सकता है कि घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (इसमें इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) के अधीन दाखिल परिवाद में याची सं॰ 1, जो परिवादी का पति है, को पीड़िता परिवादी को उसी स्तर पर जैसा उपभोग किया जा रहा है वैकल्पिक वास सुविधा प्रदान करने अथवा इसके किराया का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है। उसे सम्मिलित गृह में उसके अधिकारों से वंचित करने से भी निर्बंधित किया गया है। याची सं॰ 1 को आगे आदेश से 9 वर्षों और एक माह पहले की अवधि के लिए 2000/- रुपया प्रतिमाह, जो 2,18,000/- रुपया होता है, उसी अवधि के लिए 200/- रुपया प्रति माह मानसिक उपहति के लिए 50,000/- रुपयों के मुआवजा का भुगतान करने के लिए आगे निर्देश दिया गया है और उसे आगे मामला दाखिल करने की तिथि से भोजन, वस्त्र, औषधि आदि की ओर 6000/- रुपया प्रतिमाह भुगतान करने का निर्देश दिया गया है। समस्त याचीगण में से प्रत्येक को अधिनियम की धारा 22 के अधीन पीड़िता परिवादी को मुआवजा के रूप में 10,000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है और उन्हें भी परिवादी को सम्मिलित गृह में अपने निजी सामानों तक निरंतर पहुँच से अवरुद्ध करने से बचने को कहा गया था। याची सं॰ 1 को दो माह की अवधि के भीतर मई, 2009 से जुलाई, 2010 तक का 6000/- रुपया प्रतिमाह के बकाया के 50% का और तीन किस्तों में छह माह की अवधि के भीतर शेष बकाया राशि और अन्य राशियों का भुगतान करने का निर्देश भी दिया गया है। इस तथ्य की दृष्टि में कि विचारण न्यायालय द्वारा यह पाया गया था कि परिवादी अपने दांपत्य गृह/सम्मिलित गृह के बाहर रह रही थी और चूँकि कोई साक्ष्य नहीं था जिसके विरुद्ध प्रत्यर्थीगण को घरेलू हिंसा करने से रोका जाए, उसे अधिनियम की धारा 18 के अधीन किसी अनुतोष का हकदार नहीं पाया गया था।

4. अभिलेख दर्शाता है कि परिवादी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष परिवाद मामला दाखिल किया जिसे अधिनियम के प्रावधानों के अधीन सी॰ पी॰ केस सं॰ 754 वर्ष 2009 के रूप में संख्यांकित किया गया था। परिवादी के मामले के अनुसार, उसका विवाह याची सं॰ 1 राकेश सचदेव के साथ दिनांक 21.2.1985 को हिंदू रीति-रिवाज के मुताबिक हुआ था और तत्पश्चात् वह धनबाद में अपने पति के संयुक्त परिवार गृह में रहने आयी। वर्ष 1986 में पति का बड़ा भाई अर्थात् रमेश सचदेव अपने परिवार के साथ पंजाब से आया और उसी घर में रहने लगा और तत्पश्चात परिवादी महिला की परेशानी शुरू हुई। यह अभिकथित किया गया है कि पति के सिवाए परिवार के सदस्यों द्वारा उसे बांझ कहकर मानसिक वेदना के अध्यधीन किया जाता था क्योंकि उसने किसी संतान को जन्म नहीं दिया था। बाद में, परिवादी अपने पति के साथ रोजाना झगड़ों से बचने के लिए आउट हाउस में रहने लगी। परिवादी के पति के छोटे भाई का विवाह वर्ष 1988 में हुआ था और उसी वर्ष उनकी पुत्री का जन्म हुआ था और तत्पश्चात तीन वर्ष पहले विवाह होने के बावजूद किसी संतान को जन्म नहीं दे पाने के कारण परिवादी की वेदना और भी बढ़ गयी थी। उसे सदैव पारिवारिक समारोह, उत्सव से दूर रहने को कहा जाता था और जब परिवादी के प्रति ऐसी क्रूरता और बढ़ गयी, याची सं॰ 1 पति परिवादी को उसके भाई के घर इस बहाने ले आया कि घर से उसकी अनुपस्थिति स्थिति को सामान्य बनाएगी और वादा किया कि स्थिति

सामान्य होते ही वह उसे वापस ले जाएगा। किंतु, उसे अपने दांपत्य गृह कभी नहीं लाया गया था, सिवाए संक्षिप्त अवधि के लिए जब वर्ष 2002 में उसकी सास की मृत्यु हो गयी थी जब वह अपने दांपत्य गृह गयी थी। पुनः याचीगण उस पर बांझ होने का लांछन लगाते रहे और उसे पुनः अपने भाई के घर ले जाया गया था। आगे यह अभिकथन किया गया है कि अपने भाई के घर रहते हुए उसने स्थानीय विद्यालय में शिक्षक का काम करना शुरू किया किंतु वहाँ भी वह अपने अस्तव्यस्त दांपत्य जीवन के कारण शिक्षकों के बीच बातचीत का विषय बन गयी जिस कारण वह मानसिक और सामाजिक कलंक के चलते काम छोड़ने के लिए मजबूर हुई। अचानक परिवादी को ज्ञात हुआ कि याची सं॰ 1 ने क्रूरता और अधित्यजन के आधार पर तलाक के लिए परिवादी के विरुद्ध हक वैवाहिक वाद सं॰ 100 वर्ष 2006 दाखिल किया था। यह दावा करते हुए कि परिवादी को यह बोध भी हुआ कि उसका पति संयुक्त पारिवारिक संपत्ति में उसके हिस्से से उसको वंचित करने के लिए इसमें अपना हिस्सा अन्य संक्रांत कर सकता है और यह कथन करते हुए कि उसके पास अपने भरण–पोषण का कोई साधन नहीं था जबकि उसका पति बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ और इसके सिस्टर कंसर्न को अर्थमूविंग मशीनरी की आपूर्ति करने का लाभदायी व्यवसाय कर रहा था, परिवादी ने अधिनियम के अधीन संरक्षण इप्सित करते हुए परिवाद दाखिल किया।

5. नोटिस दिए जाने पर याचीगण अवर न्यायालय में उपस्थित हुए और उन्होंने अपना लिखित कथन दाखिल किया जिससे यह प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच विवाह स्वीकृत तथ्य है। याचीगण द्वारा अवर न्यायालय में आपत्ति की गयी थी कि संरक्षण अधिकारी से कोई रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गयी थी जैसा अधिनियम की धारा 12 के अधीन आवश्यक है और इस प्रकार परिवाद पोषणीय नहीं था। याचीगण ने इस अभिकथन से भी इनकार किया कि परिवादी को याचीगण द्वारा किसी मानसिक क्रूरता के अध्यधीन किया गया था और यह कथन किया गया था कि परिवादी ने टी॰ एम॰ एस॰ सं॰ 100 वर्ष 2006 में दाखिल अपने डब्ल्यू॰ एस॰ में कथन किया था कि उसका पति नपुंसक था और तद्नुसार याची का दावा कि उसे बांझ महिला कहा जाता था, बिल्कुल झूठा था। याचीगण ने भी धनीय मुआवजा के लिए परिवादी के दावा से इनकार किया।

6. अभिलेख दर्शाता है कि दोनों पक्षों ने अवर न्यायालय में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विस्तृत चर्चा के आधार पर अवर न्यायालय ने पाया है कि परिवादी यह सिद्ध करने में सक्षम हुई थी कि उसे मानसिक यातना दी जाती थी और उसे याचीगण द्वारा घरेलू हिंसा के अध्यधीन किया जाता था और यह वर्ष 1993 के बाद भी जारी रहा जब उसे अपने भाई के घर छोड़ दिया गया था और अपने दांपत्य गृह नहीं ले जाया गया था।

7. अवर विचारण न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर इस निष्कर्ष पर भी आया कि सामाजिक कलंक के कारण परिवादी को शिक्षिका का काम छोड़ना पड़ा था। अवर न्यायालय ने याचीगण द्वारा की गयी आपत्तियों को भी विचार में लिया कि संरक्षण अधिकारी से कोई रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गयी थी जैसा अधिनियम की धारा 12 के अधीन आवश्यक है और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए पाया कि अधिनियम की धारा 12 संरक्षण अधिकारी से रिपोर्ट मंगाने की आज्ञा नहीं देती थी और अभिनिर्धारित किया कि परिवाद पोषणीय था। किंतु, इस तथ्य की दृष्टि में कि वह स्वीकृत रूप से दांपत्य गृह से बाहर निवास कर रही थी, अवर न्यायालय ने परिवादी को अधिनियम की धारा 18 के अधीन किसी अनुतोष का हकदार नहीं पाया था किंतु उसे अधिनियम की धारा 19 के अधीन अनुतोष का हकदार पाया गया था और सम्मिलित गृह में अपनी निजी वस्तुओं तक परिवादी की निरंतर पहुँच से इनकार करने से प्रत्यर्थीगण को अवरुद्ध किया गया था और पति को उसे वैकल्पिक वास सुविधा प्रदान करने का निर्देश दिया गया था जिसके किराया का भुगतान पति द्वारा किया जाना था और

उसे सम्मिलित गृह में उसके अधिकारों से बेदखल करने से भी अवरुद्ध किया गया था और परिवादी को अधिनियम की धाराओं 20 और 22 के अधीन अन्य धनीय अनुतोष और मुआवजा प्रदान किया गया था जैसा उपर वर्णित किया गया है।

8. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश बिल्कुल अवैध हैं और इन्हें विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है। यह निवेदन किया गया है कि घरेलू हिंसा के संबंध में याचीगण के विरुद्ध एकमात्र अभिकथन यह है कि उन्होंने परिवादी को बांझ महिला कहते हुए उसके साथ दुर्व्यवहार किया जबकि याची सं॰ 1 द्वारा दाखिल हक वैवाहिक वाद में दाखिल उसके डब्ल्यू॰ एस॰ में स्वीकृत अवस्था है कि याची सं॰ 1 नपुंसक व्यक्ति है। यह निवेदन किया गया है कि जब परिवादी ने अपनी गलती को महसूस किया, उसने अभिवचन को संशोधित करने का प्रयास किया किंतु इसकी अनुमति नहीं दी गयी थी और इन समस्त दस्तावेजों को अवर न्यायालय में सिद्ध किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि उन दस्तावेजी प्रमाणों को विचार में लिए बिना अवर न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि उसे इस आधार पर घरेलू हिंसा के अध्यधीन किया जाता था कि उसे बांझ महिला कहा जाता था और वह संतान को जन्म देने में सक्षम नहीं हुई थी। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादी द्वारा स्वीकरण कि याची सं॰ 1 नपुंसक व्यक्ति है, बांझ महिला के रूप में उसको यातना देने का अभिकथन आधारहीन है।

9. विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि वस्तुत: परिवादी ने याची के साथ क्रूरता किया और उसको यातना दिया और उसने स्वयं वर्ष 1993 में अपना दांपत्य गृह छोड़ दिया और तत्पश्चात वह कभी वापस नहीं आयी थी। यह निवेदन किया गया है कि साक्ष्य में आया है कि वर्ष 2007 से पक्षों के बीच दूरभाष वार्तालाप नहीं था और इस प्रकार घरेलू हिंसा का अभिकथन आधारहीन है। विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि जब क्रूरता और अधित्यजन के आधार पर याची सं॰ 1 द्वारा तलाक वाद दाखिल किया गया था, परिवादी ने वर्तमान परिवाद दाखिल किया और उसने दांपत्य अधिकारों के प्रत्यावर्तन के लिए भी आवेदन दाखिल किया।

10. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि यह अभिकथन कि उसने सामाजिक कलंक के कारण शिक्षिका का काम छोड़ दिया था, बिल्कुल गलत है। इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने स्वयं परिवादी द्वारा यह दर्शाने के लिए कि वह विद्यालय में कार्यरत थी, दाखिल और सिद्ध दस्तावेजों पर विश्वास किया है। इन दस्तावेजों को प्रदर्श 1 और 2 के रूप में चिन्हित किया गया था जो केवल यह दर्शाता है की याची संतोषजनक रूप से विद्यालय में कार्यरत थी। इन दस्तावेजों में यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि याची ने किसी सामाजिक कलंक के कारण काम छोड़ दिया था जैसा उसके द्वारा अभिकथित किया गया है।

11. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे प्रतिवाद किया गया है कि अवर न्यायालय ने याची की आय के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है और तद्नुसार, याची की आय के बारे में निष्कर्ष दिए बिना अवर न्यायालय द्वारा धनीय अनुतोष और मुआवजा प्रदान नहीं किया जा सकता था। इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने **मनोरमा स्वेन बनाम गिरिधारी स्वेन, (1993)3 RCR (Cri) 279,** में उड़ीसा उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है। विद्वान अधिवक्ता ने **मधू सूदन बनाम पुष्पा उर्फ भावना, (1987)2 RCR (Cri) 144,** में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब वादकालीन भरण-पोषण आदेश कारणों द्वारा समर्थित नहीं किया जाता है और पति के आय की मात्रा से संबंधित पक्षों के परस्पर विरोधी विवरण के पक्ष-विपक्ष पर चर्चा नहीं करता है, आदेश अपास्त किए जाने का दायी है।

12. अंत में, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन परिवादी को धनीय अनुतोष प्रदान करने वाले आक्षेपित आदेशों को दिनांक 19.7.2010 को पारित किया गया था और आदेश की तिथि से नौ वर्ष और एक माह की अवधि के लिए प्रदान किया गया है जो 19.7.2010 को पारित किया गया था एवं तद्नुसार यह अवधि वर्ष 2001 में किसी समय प्रारंभ होता है जब स्वयं अधिनियम प्रभाव में नहीं था और तद्नुसार अधिनियम के प्रभाव में आने से पहले भूतलक्षी प्रभाव से परिवादी को धनीय आदेश प्रदान किया गया है जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है। इन निवेदनों के साथ याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आक्षेपित निर्णय बिल्कुल अवैध है और अपास्त किए जाने योग्य है।

13. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता और परिवादी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने भी प्रार्थना का विरोध किया है और कथन किया है कि अवर न्यायालय ने विस्तारपूर्वक साक्ष्य पर चर्चा किया है और निश्चयात्मक निष्कर्ष पर आया है कि परिवादी को वर्ष 1986 से ही घरेलू हिंसा के अध्यधीन किया जाता था और अंततः वर्ष 1993 में उसे अपने भाई के घर छोड़ दिया गया था और परित्यक्त महिला होने के सामाजिक कलंक के कारण तत्पश्चात भी उसके प्रति घरेलू हिंसा जारी रही जिस कारण उसे विद्यालय में शिक्षिका का काम छोड़ देना पड़ा था क्योंकि वह सामाजिक कलंक सहने में सक्षम नहीं थी। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अधिनियम की धारा 3 में घरेलू हिंसा परिभाषित की गयी है जो मौखिक, भावनात्मक और आर्थिक तथा मानसिक उपहति सम्मिलित करती है और तद्नुसार यह नहीं कहा जा सकता है कि परिवादी को याचीगण द्वारा घरेलू हिंसा के अध्यधीन नहीं किया जाता था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि भले ही परिवादी ने लिखित कथन में कथन किया था कि उसका पति नपुंसक था, यह स्वयं में परिवादी के साक्ष्य पर अविश्वास करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि उसे इस तथ्य के कारण कि वह संतान को जन्म नहीं दे सकी थी, बांझ महिला के रूप में उसका चित्रण किया जाता था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि परिवादी में अपने प्रति परीक्षण में स्पष्टतः कथन किया है कि याची को सामाजिक कलंक के कारण विद्यालय का काम छोड़ना पड़ा था और तद्नुसार यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रदर्श 1 और 2 में यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि उसने सामाजिक कलंक के कारण विद्यालय में शिक्षिका का काम छोड़ दिया था और इसे सिद्ध नहीं किया गया था।

14. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याची सं॰ 1, जिसने अवर न्यायालय में ब॰ सा॰ 1 के रूप में स्वयं का परीक्षण किया था, ने अपने प्रति परीक्षण में स्वीकार किया था कि वह मेकेनिकल इंजीनियर है और वर्तमान में वह वर्ष 1991 से एक फर्म चला रहा है जो अर्थ मूविंग मशीन स्पेयर्स का व्यवसाय करता है। परिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि चूँकि याची द्वारा अपने व्यवसाय से किसी आय को प्रकट नहीं किया गया था, इस स्वीकृत तथ्य की दृष्टि में कि याची उक्त व्यवसाय कर रहा था, अवर न्यायालय ने पाया कि याची सं॰ 1 साधन संपन्न व्यक्ति है और यह अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी के पास आय का स्रोत नहीं था और तद्नुसार, अधिनियम की धाराओं 20 और 22 के अधीन परिवादी को धनीय अनुतोष और मुआवजा अनुज्ञात किया।

15. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि अवर न्यायालय अधिनियम के प्रभाव में आने के पहले भी पक्षों के आचरण को विचार में ले सकता है और इस प्रकार भूतलक्षी प्रभाव से धनीय अनुतोष और मुआवजा अनुज्ञात करने में कोई अवैधता नहीं की है। इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने **वी॰ डी॰ भानोट बनाम सविता भानोट, (2012)3 SCC 183,** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

*"12. ge mPp U;k;ky; }kjk vfHk0;Dr nf"Vdk.k l lger g fd ih0 MCY;0 Mh0 vfèkfu;e] 2005 dh èkkjk 12 d vèkhu ifjokn ij fopkj djr g, ih0 MCY;0 Mh0 vfèkfu;e d çHkko e vku l igy Hkh m ldh èkkjkvk 18, 19 vkj 20 d vèkhu vkn'k ikfjr djr g, i{kk d vkpj.k dk fopkj e fy;k tk ldrk FkkA gekj nf"Vdk.k e] fnYyh mPp U;k;ky; u lgh çdkj l vfHkfuèkkfjr fd;k g fd Hky gh iRuh] ft lu foxr dky e ?kj e lk>nkjh fd;k Fkk fdr vc og , lk ugh dj jgh Fkh] tc vfèkfu;e çHkko e vk;k] vHkh Hkh ih0 MCY;0 Mh0 vfèkfu;e] 2005 d lj{k.k dk gdnkj gkxhA***

इस निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने योग्य अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में अवैधता नहीं है।

16. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख का परिशीलन करने पर मैं पाता हूँ कि विचारण न्यायालय और अवर अपीलीय न्यायालय ने दोनों पक्षों द्वारा दिए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार किया है और घरेलू हिंसा, जिसके प्रति परिवादी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को अध्यधीन किया जाता था, के बारे में निष्कर्ष पर आया है। चूँकि अवर न्यायालयों के निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित है, अत: पुनरीक्षण अधिकारिता में इनमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। घरेलू हिंसा, जिसके प्रति प्रतिवादी को याचीगण द्वारा वर्ष 1988 से, जब पति का बड़ा भाई आया और उसी घर में रहने लगा, अध्यधीन किया जाता था, और जो वर्ष 1993 के बाद भी जारी रहा जब परिवादी को पति द्वारा उसके भाई के घर में छोड़ दिया गया था, के संबंध में आक्षेपित निर्णय में समस्त निष्कर्ष साक्ष्य द्वारा पूरी तरह समर्थित किए गए हैं। घरेलू हिंसा की परिभाषा जैसा अधिनियम की धारा 3 में दिया गया है, स्पष्टत: पीड़िता को मौखिक, भावनात्मक, आर्थिक दुर्व्यवहार तथा मानसिक उपहति को सम्मिलित करती है और तद्नुसार यह पाते हुए कि परिवादी को याचीगण द्वारा घरेलू हिंसा के अध्यधीन किया जाता था, अवर न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों में दोष नहीं पाया जा सकता है। इसी प्रकार से, अवर न्यायालय का यह निष्कर्ष भी कि परिवादी को परित्यक्त महिला से संबद्ध सामाजिक कलंक के कारण काम छोड़ देना पड़ा था, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

17. इस प्रकार, यह पाते हुए कि परिवादी को घरेलू हिंसा के अध्यधीन किया जाता था और वह अधिनियम के अधीन संरक्षण की हकदार है, अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में मैं कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ।

18. इसी प्रकार से, मैं याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में भी गुणागुण नहीं पाता हूँ कि अवर न्यायालय ने याची की आय के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है। याची सं॰ 1, जिसने अवर न्यायालय में ब॰ सा॰ 1 के रूप में स्वयं का परीक्षण कराया था, अपने प्रति परीक्षण में स्वीकार किया था कि वह मेकेनिकल इंजीनियर है और वर्तमान में वह फर्म चला रहा है जो अर्थ मूविंग मशीन स्पेयर्स का व्यवसाय कर रहा है और वह वर्ष 1991 से फर्म चला रहा है। चूँकि याची द्वारा अपने व्यवसाय से कोई आय प्रकट नहीं किया गया था, अवर न्यायालय ने पाया है कि याची सं॰ 1 साधन संपन्न व्यक्ति है और तद्नुसार, सही प्रकार से परिवादी को धनीय अनुतोष और मुआवजा अनुज्ञात किया है और इसे पति के व्यवसाय की प्रकृति को विचार में लेने के बाद अत्यधिक नहीं कहा जा सकता है।

19. यह हमें याची के विद्वान अधिवक्ता के अंतिम निवेदन की ओर ले जाता है कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन कुछ धनीय अनुतोषों को अधिनियम के प्रभाव में आने के पहले भूतलक्षी प्रभाव से अनुज्ञात किया गया है। याची सं॰ 1 को नौ वर्ष और एक माह की अवधि के लिए 2000/- रुपया प्रतिमाह और उसी अवधि के लिए 200/- रुपया प्रतिमाह की दर पर चिकित्सीय व्यय के लिए भुगतान करने का निर्देश दिया गया है जो स्पष्टत: दर्शाता है कि अधिनियम की धारा 20 के अधीन इन धनीय अनुतोषों को वर्ष 2001 से परिवादी को अनुज्ञात किया गया है। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 दिनांक 26.10.2006 से प्रभाव में आया और यह स्पष्टत: दर्शाता है कि अधिनियम के प्रभाव में आने से पहले भूतलक्षी प्रभाव से परिवादी को उक्त धनीय अनुतोष प्रदान किया गया है। मेरे सुविचारित दृष्टिकोण में, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) का स्पष्ट उल्लंघन है। यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि दांडिक प्रावधान भूतलक्षी प्रभाव से प्रवर्तित नहीं होते हैं। **(हरजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2011)4 SCC 441)** किंतु मैं पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने योग्य विचारण न्यायालय द्वारा अनुज्ञात अन्य निर्देशों, धनीय अनुतोष और मुआवजा में कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ।

20. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, अधिनियम की धारा 20 के अधीन विरोधी पक्षकार सं॰ 2 परिवादी को प्रदान किया गया धनीय अनुतोष, जिसे नौ वर्ष और एक माह की अवधि के लिए अनुज्ञात किया गया है, एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और यह निर्देश दिया जाता है कि अधिनियम के प्रभाव में आने की तिथि से और न कि उस तिथि के पहले से इसे उसी दर पर पुनर्संगणित किया जा सकता है जैसा अवर न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया गया है। सी॰ पी॰ केस सं॰ 754 वर्ष 2009/टी॰ आर॰ सं॰ 727 वर्ष 2010 में श्रीमती वीणा मिश्रा, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 19.7.2010 के आक्षेपित निर्णय और आदेश में इस उपांतरण के साथ यह आवेदन खारिज किया जाता है।

21. तद्नुसार, दिनांक 7.2.2013 का स्थगन आदेश रिक्त करने के लिए परिवादी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दाखिल आई॰ ए॰ सं॰ 2380 वर्ष 2013 भी निपटाया जाता है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

कन्हैया कुमार झा एवं एक अन्य

cuke

मैनेजर, यू॰ बी॰ आई॰ बोकारो एवं अन्य

W.P. (C) No. 3249 of 2013. decided on 19th July, 2013.

बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993—धाराएँ 20 एवं 30—भारत का संविधान–अनुच्छेद 227—वैकल्पिक उपचार–याचीगण ने 1993 के अधिनियम के अधीन प्रावधानित किसी प्रभावकारी सांविधिक उपचार का लाभ/नि:शेष किए बिना अनुच्छेद 227 के अधीन रिट याचिका दाखिल किया है–रिट याचिका पोषणीय नहीं है–याचीगण को समुचित फोरम के समक्ष समस्त विवाद्यकों को उठाने की आवश्यकता है। (पैराएँ 2 से 5)

निर्णयज विधि.–(2010)8 SCC 110—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Pandey Neeraj Rai, For the Petitioner; M/s Anup Kr. Jha, Rajeev Kr. Sinha., For the Respondent-Bank.

आदेश

याचीगण ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके डी॰ आर॰ टी॰, राँची द्वारा पारित आदेश को चुनौती दिया है?

2. वर्तमान रिट याचिका में चुनौती के अधीन आदेशों के विरुद्ध सांविधिक उपचार है जैसा बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों को शोध्य ऋण की वसूली अधिनियम, 1993 की धाराओं 20 एवं 30 के अधीन प्रावधानित किया गया है।

3. यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याचीगण बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों को शोध्य ऋण की वसूली अधिनियम, 1993 के अधीन प्रावधानित किसी प्रभावकारी सांविधिक उपचार का लाभ प्राप्त नि:शेष किए बिना अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके इस न्यायालय के पास आए हैं।

4. यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन, (2010)8 SCC 110, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की दृष्टि में वर्तमान रिट याचिका पोषणीय नहीं है और तद्नुसार याचीगण को समुचित प्राधिकारी के समक्ष जाने की अनुमति देकर निपटाए जाने की आवश्यकता है जैसा अधिनियम के अधीन प्रावधानित किया गया है।

5. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याचीगण को डी॰ आर॰ टी॰, राँची द्वारा पारित आदेशों के बहाने घर से बेदखल कर दिए जाने की संभावना है जो वसूली कार्यवाही के अधीन विषयवस्तु नहीं है। यह निवेदन भी किया गया है कि संपत्ति बोली नहीं लगाने वालों को बेची जा रही है। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए इन दोनों निवेदनों को प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने विवादित किया है। चूँकि अधिनियम के अधीन वैकल्पिक प्रभावकारी उपचार प्रावधानित किया गया है, याचीगण को उन समस्त विवाद्यकों को समुचित फोरम के समक्ष उठाने की आवश्यकता है जिन्हें उक्त निर्दिष्ट दो बिंदुओं सहित वर्तमान याचिका में उठाया गया है।

6. तद्नुसार, उक्त निर्दिष्ट दो बिंदुओं सहित समस्त विवाद्यकों/आधारों, जिन्हें वर्तमान याचिका में उठाया गया है, को समुचित फोरम के समक्ष उठाने की अनुमति याचीगण को देते हुए रिट याचिका निपटायी जाती है।

7. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अंत में निवेदन किया कि वे इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की प्रति की प्राप्ति पर शीघ्रतापूर्वक समुचित प्राधिकारी के पास जाएँगे किंतु कम से कम सोमवार अर्थात् दिनांक 22.7.2013 तक प्रत्यर्थीगण को उनके आवासीय गृह के संबंध में कोई प्रपीड़क कदम नहीं उठाने का निर्देश दिया जाय।

8. प्रत्यर्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निष्पक्षत: निवेदन किया कि वे अपने मुवक्किल/संबंधित प्राधिकारीगण को सोमवार अर्थात् दिनांक 22.7.2013 तक कोई प्रपीड़क कदम नहीं उठाने का निर्देश देंगे ताकि याचीगण को समुचित न्यायालय/फोरम के समक्ष जाने के लिए सक्षम बनाया जा सके।

9. तद्नुसार, समुचित फोरम के समक्ष कार्यवाही दाखिल करने की अनुमति याचीगण को देने के साथ रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

जिमेदार सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 764 of 2013. Decided on 31st July, 2013

भारत का संविधान–अनुच्छेद 12 एवं 226—रिट याचिका–याची यूनाइटेड टेलीकॉम लिमिटेड, बंगलोर से सम्मिलित सेवा केंद्र का आवंटन इप्सित कर रहा है–रिट याचिका में उठाया गया विवाद राज्य अथवा इसके अभिकरण के विरुद्ध निर्देशित नहीं है बल्कि याची और प्रत्यर्थी जो धनबाद में राष्ट्रीय ई॰ गवर्नेंस प्रोग्राम के निष्पादन के लिए फ्रैंचाइजी है के बीच का आपसी विवाद है–वाद हेतुक रिट अधिकारिता के अधीन नहीं है–रिट याचिका खारिज की गयी।

(पैरा 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Ashish Kr. Shekhar, For the Petitioner; Mr. Saket Kr. Upadhyay, For the State.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता सुने गए।

2. याची प्रत्यर्थी सं॰ 4 यूनाइटेड टेलीकॉम लिमिटेड, बंगलोर, जो झारखंड के तेरह जिलों में प्रज्ञा केंद्र को चलाने के लिए फ्रैंचाइजी है, से इसके अध्यक्ष के माध्यम से कॉमन सर्विस सेंटर (प्रज्ञा केंद्र) का आवंटन इप्सित करता है।

3. उसके अनुसार, उसने प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा जारी विज्ञापन में भाग लिया और कॉमन सर्विस सेंटर (प्रज्ञा केंद्र) जो धनबाद जिला में चल रहे हैं और प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा मॉनिटर किए जा रहे हैं, के आवंटन के लिए कतिपय धन भी जमा किया। किंतु, प्रत्यर्थी सं॰ 4 याची को प्रतीक्षारत रखे रहा और इस बीच प्रत्यर्थी सं॰ 5 गोविन्द कृष्ण वर्मा के पक्ष में आवंटन किया गया था। यह निवेदन किया गया है कि उपायुक्त, धनबाद से धनबाद जिला में अनेक स्थानों पर फ्रैंचाइजी (प्रत्यर्थी सं॰ 4) द्वारा संचालित प्रोग्राम को मॉनिटर करने की उम्मीद की जाती है। याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 4 के परियोजना प्रबंधक के समक्ष अभ्यावेदन भी दिया है किंतु इसका प्रत्युत्तर नहीं दिया गया है।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची द्वारा केवल प्रत्यर्थी सं॰ 4 के विरुद्ध शिकायत की गयी है, अत: राज्य अथवा उपायुक्त, धनबाद प्राधिकारी नहीं हैं जिनके विरुद्ध याची वर्तमान रिट आवेदन में अपना वाद हेतुक उठा सकता है।

5. पक्षों के अधिवक्ता सुने गए। मामले के तथ्य बताते हैं कि याची धनबाद में कॉमन सर्विस सेंटर (प्रज्ञा केंद्र) के आवंटन में दिलचस्पी रखता था जिसके लिए प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा विज्ञापन भी जारी किया गया था जैसा याची द्वारा स्वीकार किया गया है और प्रत्यर्थी कंपनी (प्रत्यर्थी सं॰ 4) के निदेशक द्वारा याची के पक्ष में दिनांक 6 अप्रिल, 2008 का आवंटन पत्र (परिशिष्ट-4) भी जारी किया गया था। तत्पश्चात्, याची को कॉमन सर्विस सेंटर (प्रज्ञा केंद्र) खोलने की अनुमति नहीं दी गयी थी और इसे प्रत्यर्थी सं॰ 6 गोविन्द कृष्ण वर्मा को आवंटित किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, वर्तमान रिट आवेदन में उठाए गए विवाद राज्य अथवा इसके अभिकरण के विरुद्ध निर्देशित नहीं है बल्कि याची और प्रत्यर्थी सं॰ 4 जो धनबाद जिला में राष्ट्रीय ई॰ गवर्नेंस प्रोग्राम के निष्पादन के लिए फ्रैंचाइजी है के बीच का आपसी निजी विवाद है। अत: वर्तमान रिट आवेदन में उठाया गया वाद हेतुक रिट अधिकारिता के अधीन प्रतीत नहीं होता है। तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

सैयद बरकत उल्ला

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 3841 of 2012. Decided on 31st July, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 21 एवं 226—अभिरक्षा में मृत्यु–सी॰ आई॰ डी॰ जाँच में कोई प्रगति नहीं–याची के पास यह आशंका करने का युक्तियुक्त कारण है कि पीड़ित की हत्या की गयी थी जब वह पुलिस अभिरक्षा में था जो अन्वेषण में अंतिम निष्कर्ष के अध्यधीन है–सी॰ आई॰ डी॰ को शीघ्रातिशीघ्र अन्वेषण करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Binod Singh, For the Petitioner; J.C. to A.G., For the Respondent.

आदेश

राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 18 मई, 2012 के कुरु पी॰ एस॰ केस सं॰ 41 और 44 वर्ष 2012 से संबंधित झारखंड राज्य के अपराध अन्वेषण विभाग द्वारा किए गए अन्वेषण से संबंधित मुहरबंद लिफाफा में रिपोर्ट दाखिल किया है।

2. याची का अभिकथन है कि पीड़ित शेर मुहम्मद उर्फ शेरु अंसारी की हत्या कर दी गयी थी जब वह दिनांक 18 मई, 2012 को पुलिस अभिरक्षा में था। किंतु, कुरु पी॰ एस॰ केस सं॰ 41 वर्ष 2012 की प्राथमिकी के मुताबिक, संबंधित पुलिस थाना के प्रभारी–अधिकारी ने स्वयं बयान दर्ज किया कि सैंकड़ों अज्ञात व्यक्तियों ने मृतक पर प्रहार किया जब वह पुलिस से भागने का प्रयास कर रहा था। जबकि मृतक के पिता ने यह अभिकथन करते हुए कि उसके पुत्र की हत्या की गयी थी जब वह पुलिस अभिरक्षा में था, प्राथमिकी सं॰ 44 वर्ष 2012 दर्ज किया।

3. हमारा सरोकार घटना की तिथि से है जो दिनांक 18 मई, 2012 है। दिनांक 18 मई, 2012 की घटना के लिए, राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत आज के इस रिपोर्ट से प्रतीत होता है कि सी॰ आई॰ डी॰ ने लंबे समय तक मामले का अन्वेषण नहीं किया था जिसे झारखंड पुलिस निर्देशिका के नियम 410 (11) (aha) (I) सहपठित नियम 425 के अधीन प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में डी॰ आई॰ जी॰, झारखंड, राँची के आदेश द्वारा दिनांक 8 जुलाई, 2012 को राज्य सी॰ आई॰ डी॰ को सौंपा गया था।

4. प्रगति रिपोर्ट से यह प्रतीत होता है कि राज्य सी॰ आई॰ डी॰ के अनुसार इसने पीड़ित के परिवार के सदस्यों के बयानों को दर्ज करने का प्रयास किया और उस प्रयोजन से इसने उनको नोटिस दिया किंतु उन्होंने सहयोग नहीं किया था। मजिस्ट्रीयल जाँच भी की गयी थी और मजिस्ट्रीयल जाँच रिपोर्ट भी राज्य के सी॰ आई॰ डी॰ विंग को भेजी गयी थी। अंततः, दिनांक 10 जुलाई, 2012 को इस रिट याचिका को दाखिल करने और दिनांक 5 फरवरी, 2013 को राज्य सी॰ आई॰ डी॰ को दिनांक 24 जुलाई, 2013 को मुहरबंद लिफाफा में रिपोर्ट दाखिल करने का निर्देश देने के बाद गवाह अर्थात् सैयद बरकतुल्ला का बयान दर्ज किया गया था। सी॰ आई॰ डी॰ का यह पहलू कि दिनांक 18 मई, 2012 की घटना के दिन ही दर्ज कुरु पी॰ एस॰ केस सं॰ 41 और 44 वर्ष 2012 में अभिरक्षा में मृत्यु के अभिकथन जैसे गंभीर मामले में कोई प्रगति नहीं हुई थी। यह न्यायालय राज्य सी॰ आई॰ डी॰ के अन्वेषण अधिकारियों, जो मामले का अन्वेषण नहीं कर सके थे जिसे दिनांक 8 जुलाई, 2012 को राज्य सी॰ आई॰ डी॰ को निर्दिष्ट किया गया था और लगभग एक वर्ष तक कोई अन्वेषण नहीं किया गया है, के आचरण के संबंध में भावी तिथि पर पारित करने के लिए अपना आदेश अपने पास रखता है।

5. हम यहाँ यह उल्लेख भी कर सकते हैं कि आज प्रस्तुत रिपोर्ट में प्रकट किया गया है कि याची के पास यह आशंका करने का युक्तियुक्त कारण है कि अन्वेषण के अंतिम निष्कर्ष के अध्यधीन पीड़ित की हत्या की गयी थी जब वह पुलिस अभिरक्षा में था क्योंकि हमने इस स्टेटस रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्य को ध्यान में लिया है और न्यायिक मजिस्ट्रीयल जाँच के प्रति निर्देश है।

6. राज्य सी॰ आई॰ डी॰ शीघ्रातिशीघ्र अन्वेषण करने के लिए अग्रसर हो सकती है और अन्वेषण अधिकारी दिनांक 20 अगस्त, 2013 को नवीनतम स्टेटस रिपोर्ट के साथ न्यायालय में उपस्थित होंगे। राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को राज्य के विद्वान अधिवक्ता को इसे सुरक्षित और गुप्त रखने के लिए सौंपा जाता है।

7. इस मामले को दिनांक 20 अगस्त, 2013 को रखा जाए।

8. इस आदेश की प्रति राज्य के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

---

ekuuh; vkjh vkjh çlkn] U;k;efr

आदि बुरजोर्जी गोदरेज एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 2444 of 2012. Decided on 17th July, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 406—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—न्यास का दांडिक भंग–संज्ञान–फ्लैट की बुकिंग–परिवादी का मामला कहीं नहीं है कि परिवादी की माता, जिसने फ्लैट बुक किया था को फ्लैट का कब्जा कभी नहीं दिया गया था–परिवादी की शिकायत है कि उसे दो बी॰ एच॰ के॰ फ्लैट का कब्जा नहीं दिया गया था–अपराध के अवयव को गठित करने वाला कोई प्रत्यक्ष कृत्य याचीगण में से किसी के विरुद्ध नहीं बताया गया है–संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किया गया। (पैराएँ 5 से 10)

अधिवक्तागण.––M/s Rajendra Prasad Singh, Pandey Neeraj Rai, For the Petitioenrs; A.P.P., For the State; None, For the O.P. No.2.

आदेश

याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुने गए। नोटिस तामील किए जाने के बावजूद विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने इस मामले में उपस्थित होना नहीं चुना था।

2. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि परिवादी का मामला यह है कि जब गोदरेज प्रोपर्टीज लिमिटेड' के रूप में ज्ञात कंपनी इस उद्घोषणा के साथ आगे आयी कि यह गोदरेज हिल्स में 'रिवर स्केप्स'' के नामाधीन फ्लैटों का निर्माण करेगी, परिवादी की माता ने सहमत प्रतिफल राशि पर एक फ्लैट (2 बी॰ एच॰ के॰) खरीदने का प्रस्ताव दिया। तत्पश्चात् आंशिक भुगतान किया गया था। जब कई वर्षों के बीतने के बाद भी फ्लैट का कब्जा नहीं दिया गया था, कानूनी नोटिस दी गयी थी जिसका उत्तर दिया गया था जिसमें यह कथन किया गया था कि कंपनी से स्पष्टीकरण प्राप्त करने की प्रत्याशा में फ्लैटों को बुक किया गया था। इसी समय पर, दो फ्लैटों (प्रत्येक 1BHK) को देने का प्रस्ताव दिया गया था जिस प्रस्ताव को परिवादी द्वारा स्वीकार किया गया था। फ्लैटों के पूरा होने के बाद,

परिवादी को उन दो फ्लैटों का कब्जा दिया गया था। उसके बावजूद परिवाद दर्ज किया गया था जिसे इस अभिकथन पर कि परिवादी की माता ने एक 2BHK फ्लैट बुक किया था जिसका निर्माण कभी नहीं किया गया था और उसके बजाए दो फ्लैटों (प्रत्येक 1 BHK) का कब्जा दिया गया था, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406, 420, 403 के अधीन परिवाद मामला सं॰ 2159 वर्ष 2010 दर्ज किया गया था। इस पर, दिनांक 24.8.2011 के आदेश के तहत भारतीय दंड संहिता की धारा 406/34 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था।

3. उस आदेश से व्यथित होकर, यह आवेदन दाखिल किया गया है।

4. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि संपूर्ण अभिकथन को सत्य मानने पर भी याचीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन किसी दंडनीय अपराध को करता हुआ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि याचीगण के विरुद्ध किसी संपत्ति के दुर्विनियोग अथवा अपने उपयोग के लिए इसे संपरिवर्तित करने का अभिकथन नहीं है।

5. इस संबंध में आगे निवेदन किया गया था कि परिवादी का यह मामला कभी नहीं है कि परिवादी की माता जिसने फ्लैट बुक किया था को फ्लैट का कब्जा कभी नहीं दिया गया था बल्कि परिवादी की शिकायत यह प्रतीत होती है कि उसे 2BHK फ्लैट का कब्जा नहीं दिया गया था बल्कि दो फ्लैटों (प्रत्येक 1 BHK) को दिया गया है जिसका क्षेत्रफल 2 BHK फ्लैट के क्षेत्रफल से बड़ा है और कीमत भी ज्यादा है किंतु इसे प्रभारित नहीं किया गया था और घटनाओं के इस संवर्ग में याचीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराध करता हुआ नहीं कहा जा सकता है विशेषत: जब अपराध के अवयव को गठित कने वाला कोई प्रत्यक्ष कृत्य याचीगण में से किसी के विरुद्ध नहीं बताया गया है।

6. निवेदनों के संदर्भ में भारतीय दंड संहिता की धारा 405 में अंतर्विष्ट प्रावधान को देखा जा सकता है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"405.* ***vkijkfèkd U;kl Hkx-*** *&tk dkb lEifÙk ;k lEifÙk ij dkb Hkh v[kR;kj fdlh idkj viu dk U;Lr fd, tku ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viu mi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl idkj ,lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] ml dk fofgr dju okyh fofèk l fdlh fun'k dk] ;k ,l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xb fdlh vfHkO;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k O;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; O;fDr dk ,lk djuk lgu djrk g] og ^vkijkfèkd U;klHkx** djrk gA**"*

7. उक्त प्रावधान के पठन पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव होने चाहिए:–

> *"(a) fdlh O;fDr dk lifÙk U;Lr vFkok lifÙk ij v[r;kj U;Lr fd;k tkuk pkfg, FkkA*
>
> *(b) ml O;fDr dk ml lifÙk dk Lo; viu mi;kx d fy, xj bekunkj :i l nfofu;kftr vFkok lifjofrr djuk pkfg, vFkok ml lifÙk dk xj bekunkj :i l mi;kx dju vFkok fBdku yxku d fy, vFkok ,lk dju d fy, fdlh vU; O;fDr dk tkuc> dj ihfMr djuk pkfg,A*
>
> *(c) fd ,l nfofu;kx] lifjoru] mi;kx vFkok fuiVku dk ml <x] ftle ,l U;kl dk mUekfpr fd;k tkuk g] vFkok fdlh fofèkd lfonk] ftl ,l U;kl d mUekpu dk Nr g, O;fDr }kjk fd;k x;k g] dk fofgr dju okyh fofèk;k d fdlh fun'k d mYy?ku e gkuk pkfg,A**"*

8. परिवाद में किए गए अभिकथन को दृष्टि में रखते हुए, कोई भी अवयव आकृष्ट नहीं होता है। इस संबंध में यह कथन किया जाए कि किसी कारणवश परिवादी को 2BHK फ्लैट सौंपा नहीं गया था। इसके बजाए दो फ्लैटों (प्रत्येक 1BHK) का कब्जा दिया गया था जब परिवादी इसको खरीदने के लिए सहमत हुई थी।

9. ऐसी स्थिति के अधीन, मैं यह समझने में विफल हूँ कि किस प्रकार याचीगण ने न्यास के दार्डिक भंग का अपराध किया है।

10. तद्नुसार, संज्ञान लेने वाले आदेश को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है।

11. परिणामस्वरूप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh;k t ;k jk;] U;k;efr

मनीष कुमार

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1437 of 2012. Decided on 30th July, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 439 एवं 482—जमानत–सात लाख रुपयों के डिमांड ड्राफ्ट के साथ स्त्रीधन की समस्त वस्तुओं को लौटाने के अध्यधीन जमानत प्रदान किया गया–पक्षगण मामले में सुलह के लिए तैयार हैं और याची सात लाख रुपयों का भुगतान करने और उसके समस्त स्त्रीधन को लौटाने के लिए तैयार हैं–उच्च न्यायालय विनिश्चित नहीं कर सकता है कि क्या याची ने परिवादी को संपूर्ण वस्तुओं को लौटाया है या नहीं–यह तथ्य का प्रश्न है और इसे केवल पक्षों द्वारा दाखिल शपथ पत्रों के आधार पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है–अवर न्यायालय को इस तथ्य को विनिश्चित करने का निर्देश दिया गया।

(पैराएँ 6 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s B.M. Tripathi, Dilip Kumar Karmakar, For the Petitioenr; Mr. D. Chandra Ghosh, For the O.P. No.2; A.P.P., For the State.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–याची के विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची ने ए॰ बी॰ ए॰ सं॰ 2608 वर्ष 2011 में पारित दिनांक 31.1.2012 के आदेश के उपांतरण के लिए यह आवेदन दाखिल किया है जिसके द्वारा इस न्यायालय ने याची को इस मामले में अवर न्यायालय में परिवादी के नाम में सात लाख रुपयों के एकाउंट पेयी राशि जमा करने और परिवादी को 'स्त्री धन' की समस्त वस्तुओं को लौटाने और पूर्वोक्त अवधि के भीतर अवर न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया है। यदि याची उक्त राशि का एकाउंट पेई डिमांड ड्राफ्ट जमा करता है, पूर्वोक्त समस्त वस्तुओं को लौटाता है और पूर्वोक्त अवधि के भीतर अवर न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करता है, अवर विचारण न्यायालय जमानत बंध पत्र प्रस्तुत करने पर उसे जमानत पर निर्मुक्त करेगा। याची के अधिवक्ता पूर्वोक्त आदेश के उपांतरण के लिए और मैत्रीपूर्ण समाधान के लिए तथा समस्त विवादों को सुलझाने तथा संबंधित अवर न्यायालय में जमानत बंध पत्र प्रस्तुत करने के लिए न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए युक्तियुक्त एवं उपयुक्त समय प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं।

3. याची के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि पूर्वोक्त आदेश की दृष्टि में याची ने दिनांक 26.3.2012 को संबंधित अवर न्यायालय में उसमें वस्तुओं के नाम का विनिर्दिष्टत: कथन करते हुए

स्त्रीधन की सूची के साथ विरोधी पक्षकार सं॰ 2 अर्थात् प्रियंका देव के नाम में सात लाख रुपयों का एस॰ बी॰ आई॰ का डी॰ डी॰ सं॰ 122735 के तहत ड्राफ्ट जमा किया और अपने प्रतिवाद का समर्थन करने के लिए डी॰ डी॰ के विवरण की प्रमाणित प्रति की छाया प्रतिलिपि और स्त्रीधन वस्तुओं की सूची संलग्न की गयी है और इस याचिका में परिशिष्ट–1 के रूप में चिन्हित की गयी है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क किया गया है कि विरोधी पक्षकार सं॰ 2 परिवादी ने अवर न्यायालय के समक्ष उसमें यह कथन करते हुए आवेदन दाखिल किया कि उसने डिमांड ड्राफ्ट प्राप्त किया है किंतु वस्तुओं की सूची में उल्लिखित अधिकतर वस्तुओं को लौटाया नहीं गया है, केवल लगभग 10% वस्तुओं को सूची में उल्लिखित नहीं किया गया है और उन वस्तुओं को लौटाया गया है और अधिकतर वस्तुएँ अभी भी याची के पास है। अवर न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद दिनांक 26.3.2012 का निम्नलिखित आदेश पारित किया:–

*^^, l rF;k vkj ifjfLFkfr;k d vèkhu e le>rk g fd vfre lyg ugh gvk FkkA vr% vfHk;Dr ;kph dh vuefr ;kfpdk etj ugh dh x;h gA***

5. अत: याची ने ए॰ बी॰ ए॰ सं॰ 2608 वर्ष 2011 में इस न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश के उपांतरण के लिए वर्तमान याचिका को दाखिल किया है।

6. विरोधी पक्षकार सं॰ 2 अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुई है और उन्होंने निवेदन किया कि यद्यपि विरोधी पक्षकार ने डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से सात लाख रुपयों की राशि को प्राप्त किया है जैसा पहले कथित किया गया है किंतु उसने उन संपूर्ण वस्तुओं को प्राप्त नहीं किया है जो 'स्त्रीधन' के अधीन आता है और केवल कुछ वस्तुओं को याची द्वारा सौंपा गया है। अत: याची ने ए॰ बी॰ ए॰ सं॰ 2608 वर्ष 2011 में पारित पूर्वोक्त आदेश द्वारा इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश का अनुपालन नहीं किया है।

7. अभिलेख से मैं पाती हूँ कि दोनों पक्षों के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि पक्षगण मामले में सुलह के लिए तैयार हैं और याची सात लाख रुपयों का भुगतान करने और उसके समस्त स्त्रीधन को लौटाने के लिए तैयार है। पूर्वोक्त निवेदनों की दृष्टि में, इस न्यायालय ने दिनांक 31.1.2012 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:–

^^nkuk i{kk d fy, mifLFkr vfèkoDrk u fuonu fd;k g fd i{kx.k ekey e lyg d fy, r;kj g D;kfd ;kph&ifjoknh dk lkr yk[k #i;k dk Hkxrku dju vkj mld leLr L=hèku dk bl vkn'k dh frfFk l nk ekg dh vofèk d Hkhrj ykVku d fy, r;kj gA

pfd nkuk vfèkoDrk bu 'krk ij lger g] e ;kph dk voj U;k;ky; e bl ekey dh ifjoknh d uke e lkr yk[k #i;k d ,dkmV i;h fMekM Mk¶V dk tek dju vkj L=hèku d vèkhu vku okyh leLr oLrvk dk ifjoknh dk ykVku vkj iokDr vofèk d Hkhrj voj U;k;ky; e vkRelei.k dju dk fun'k nrk gA ;fn ;kph mDr jkf'k dk ,dkmV i;h fMekM Mk¶V tek djrk g] iokDr leLr oLrvk dk ykVkrk g vkj iokDr vofèk d Hkhrj voj U;k;ky; d le{k vkRelei.k djrk g] voj fopkj.k U;k;ky; bu 'krk d vè;èkhu fd nkuk tekurnkj lcfèkr ftyk dh vfèkdkfjrk d vrxr vpy lifUk j[ku oky LFkkuh; fuokl gkx vkj n0 ç0 l0 dh èkkjk 438 (2) d vèkhu vfèkdfFkr 'krk d vè;èkhu lh0@1 dl l0 417 o"k 2011 d lcèk e voj U;k;ky;@U;kf;d

nMkfèkdkjh] çFke J.kh] te'knij dh lrf"V gr leku jkf'k dh nk çfrHkfr;k d lkFk 10,000/-(nl gtkj) #i;k dk tekur cèk i= çLrr dju ij ;kph vFkkr euh"k dekj dk tekur ij fueDr dju dk fun'k nrk gA

fopkj.k U;k;ky;@voj U;k;ky; dk bl ekey d ifjoknh dh igpku d lefpr lR;kiu d ckn ifjoknh dk mDr ,dkmV i;h fMekM Mk¶V lkiu dk fun'k fn;k tkrk gA

;kph }kjk iokDr fun'k d vuikyu d ckn ifjoknh viuh ifjokn ;kfpdk okil y yxhA

*iokDr fun'kk d lkFk ;g vkonu fuiVk;k tkrk gA***

8. स्वीकृत रूप से, परिवादी विरोधी पक्षकार ने याची से सात लाख रुपयों की राशि और कुछ वस्तुओं को प्राप्त किया है। याची के अनुसार, उसने परिवादी के संपूर्ण वस्तुओं को लौटा दिया है जो उसके माता–पिता ने विवाह के समय पर उसको दिया था किंतु परिवादी का अभिवचन यह है कि उसने केवल कुछ वस्तुओं को प्राप्त किया है और उसकी अधिकतर वस्तुएँ जो उसका स्त्रीधन है अभी भी याची के पास पड़ी हुई है। इस मामले को विनिश्चित करना इस न्यायालय के लिए संभव नहीं है कि क्या याची ने परिवादी को संपूर्ण वस्तुओं को दे दिया है या नहीं। यह तथ्य का प्रश्न है और इसे इस आवेदन में अवर न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षों द्वारा दाखिल शपथ पत्रों के आधार पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है।

9. अत: मैं अवर न्यायालय को इस तथ्य को विनिश्चित करने का निर्देश देती हूँ कि दोनों पक्षों का मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य लेकर विनिश्चित करे कि क्या याची ने परिवादी को पहले ही संपूर्ण वस्तुओं को दे दिया है अथवा ये अभी भी उसके पास है और तत्पश्चात् इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर ए॰ बी॰ ए॰ सं॰ 2608 वर्ष 2011 में पारित दिनांक 31.1.2012 के आदेश के अनुसार आदेश पारित करे और अवर न्यायालय द्वारा आदेश पारित किए जाने तक पुलिस श्री बी॰ बी॰ सिंह, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर के न्यायालय में लंबित सी॰/1 केस सं॰ 417 वर्ष 2011 के संबंध में याची को गिरफ्तार नहीं करेगी।

10. इस निर्देश के साथ वर्तमान दांडिक विविध याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

शिव राम एवं अन्य

cuke

बिहार राज्य एवं अन्य

C.W.J.C. No. 9001 of 2000(P). Decided on 16th May, 2013.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदन के मामले में।

बिहार भूमि अधिकतम सीमा (अधिकतम सीमा का नियतिकरण और अधिशेष भूमि का अर्जन) अधिनियम, 1961—धारा 16 (3)—परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 5—अग्रक्रय–केवल परिसीमा के आधार पर राजस्व बोर्ड के सदस्य द्वारा पुनरीक्षण में दावा की खारिजी–ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाली महिला पुनरीक्षक के मामले में परिसीमा का आवेदन अस्वीकार करते हुए राजस्व बोर्ड के सदस्य द्वारा अतितकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाना चाहिए था–आक्षेपित

आदेश अपास्त किया गया और मामला नए सिरे से विचार करने के लिए राजस्व बोर्ड के सदस्य को भेजा गया। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mr. V. Shivnath, For the Petitioner; Mr. Rajiv Anand, For the Respondent No. 5 & 6.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के अधिवक्ता सुने गए।

2. याचीगण सदस्य, राजस्व बोर्ड, पटना, बिहार द्वारा पारित दिनांक 15.3.2000 के आदेश (परिशिष्ट–6) द्वारा व्यथित है जिसके द्वारा भूमि अधिकतम सीमा पुनरीक्षण (पलामू) केस सं॰ 75 वर्ष 1997 भूमि अधिकतम सीमा अपील सं॰ 6 वर्ष 1997 में अपर कलक्टर, पलामू द्वारा पारित दिनांक 17.1.1997 के आदेश (परिशिष्ट–2) के विरुद्ध पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करने में 20 दिनों का विलंब होने के एकमात्र आधार पर खारिज कर दिया गया है।

3. याचीगण की माता ने संपत्ति, जिसे दिनांक 11.4.1996 के रजिस्टर्ड विलेख सं॰ 2614 के तहत प्रत्यर्थी सं॰ 5 और 6 के पक्ष में बेचा गया था, के संबंध में बिहार भूमि अधिकतम सीमा (अधिकतम सीमा का नियतिकरण एवं अधिशेष भूमि का अर्जन) अधिनियम, 1961 की धारा 16 (3) के अधीन उप–कलक्टर के समक्ष अग्रक्रय आवेदन भूमि अधिकतम सीमा केस सं॰ 6 वर्ष 1996-97 दाखिल किया था। यह सूचित किया गया है कि अग्रक्रय की मूल याचिका वर्तमान याचीगण की माता द्वारा सह–अंशधारी होने के नाते और भूमि के टुकड़े, जिसे कृषि प्रकृति का बताया जाता है जिसके संबंध में 1961 के अधिनियम की धारा 16 (3) लागू होती है, के उपर विक्रेता का सांपार्श्विक रैयत होने का दावा करते हुए दाखिल किया गया था। किंतु उक्त भूमि अधिकतम सीमा केस सं॰ 6 वर्ष 1996-97 दिनांक 29.8.1996 के आदेश (परिशिष्ट–1) के तहत याची के विरुद्ध विनिश्चित किया गया था। अपील, जिसे भूमि अधिकतम सीमा अपील सं॰ 6 वर्ष 1997 में अपर कलक्टर, पलामू के समक्ष वर्तमान याचीगण की माता द्वारा दाखिल किया गया था, को भी परिशिष्ट–2 के तहत दिनांक 17.1.1997 को अस्वीकार कर दिया गया था। तत्पश्चात, याचीगण की माता ने भूमि अधिकतम सीमा अधिनियम की धारा 32 के अधीन राजस्व बोर्ड के सदस्य के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन सं॰ 75 वर्ष 1997 दाखिल किया। याचीगण की ओर से कथन किया गया है कि अपील में दिनांक 17.1.1997 को अपर कलक्टर द्वारा आदेश पारित किए जाने के बाद दिनांक 20.1.1997 को आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए तलब दिया गया था और इसे दिनांक 30.1.1997 को प्रस्तुत किया गया था। किंतु, याचीगण की माता ने संबंधित वकील के गलत सलाह के भ्रांतिपूर्ण धारणा के अधीन राजस्व बोर्ड के सदस्य के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल करने के लिए परिसीमा अवधि 60 दिन मानते हुए 20 दिनों के विलंब के बाद अंतत: दिनांक 21.3.1997 को उक्त पुनरीक्षण दाखिल किया। तत्पश्चात, याचीगण की माता ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलंब माफ करने के लिए याचिका दाखिल किया। किंतु चूँकि याची के अधिवक्ता बीमारी के कारण आवेदन पर जोर देने के लिए उपस्थित नहीं थे, मामला विलंब की माफी के लिए याचिका पर विचार किए बिना स्वयं गुणागुण पर सुना गया था और राजस्व बोर्ड, बिहार के सदस्य द्वारा दिनांक 6.8.1997 को याचीगण की माता द्वारा दाखिल पुनरीक्षण आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था। तत्पश्चात, याचीगण की माता दिनांक 6.8.1997 के आदेश से व्यथित होकर सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 3428 वर्ष 1997 (R) में पटना उच्च न्यायालय, राँची पीठ के समक्ष गयी थी। इस बीच, रिट आवेदन के लंबित रहने के दौरान, वर्तमान याचीगण को प्रति स्थापित किया गया था क्योंकि उनकी माता की मृत्यु हो गयी थी। किंतु विद्वान एकल न्यायाधीश ने याचीगण का आवेदन अनुज्ञात किया था और राजस्व बोर्ड के सदस्य द्वारा पारित दिनांक 6.8.1997 का आदेश अपास्त कर दिया गया था और परिसीमा मामले पर गुणागुण पर विचार करने के लिए और विधि के अनुरुप तार्किक आदेश पारित करने के लिए मामला वापस भेजा गया था। तत्पश्चात, पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करने में हुए 20 दिनों के विलंब को माफ करने से इनकार करते हुए राजस्व

बोर्ड के सदस्य द्वारा दिनांक 15.3.2003 के आक्षेपित आदेश द्वारा याचीगण का आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री वी॰ शिवनाथ ने निवेदन किया कि याचीगण ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलंब की माफी के लिए आवेदन में पर्याप्त कारण दिया था किंतु राजस्व बोर्ड के सदस्य ने दिए गए कारण को पूरी तरह अनदेखा कर दिया था और केवल 20 दिनों के विलंब द्वारा वर्जित होने के नाते याचीगण के आवेदन को अस्वीकार करके मामले में अत्यन्त तकनीकी दृष्टिकोण अपनाया है। अतः, आक्षेपित आदेश हस्तक्षेप करने योग्य है और मामला गुणागुण पर भी विचार किए जाने के लिए राजस्व बोर्ड के सदस्य के पास भेजा जाना चाहिए।

5. निजी प्रत्यर्थी सं॰ 5 और 6 के विद्वान अधिवक्ता ने याचीगण के उक्त प्रतिवाद का विरोध किया है। यह निवेदन किया गया है कि राजस्व बोर्ड के सदस्य के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल करने की अवधि 30 दिन है और याचीगण की ओर से अनभिज्ञता का ऐसा अभिवचन स्वीकार नहीं किया जा सकता है और वह भी गलत विधिक सलाह पर।

6. मैंने पक्षों के अधिवक्ता को सुना है और आक्षेपित आदेश सहित अभिलेख पर उपलब्ध प्रासंगिक सामग्री का परिशीलन किया है। यहाँ उपर वर्णित तथ्यों से यह प्रकट है कि अपीलीय आदेश दिनांक 17.1.1997 को पारित किया गया था, याचीगण की माता ने दिनांक 20.1.1997 को उक्त आदेश की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन दिया था जिसे उसने दिनांक 30.1.1997 को प्राप्त किया था। पुनरीक्षण आवेदन, यदि हो, आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगे समय के अलावा 30 दिनों की अवधि के दौरान दाखिल किया जाना था। किंतु पुनरीक्षण आवेदन प्रकटतः 20 दिनों के विलंब के बाद दिनांक 21.3.1997 को दाखिल किया गया था और ऐसे विलंब का कारण प्रकट करते हुए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन याचीगण की माता द्वारा विलंब की माफी के लिए आवेदन भी दाखिल किया गया था। राजस्व बोर्ड के सदस्य मामले में अति तकनीकी दृष्टिकोण अपनाते प्रतीत होते हैं और उन्होंने केवल परिसीमा के आधार पर पुनरीक्षण आवेदन अस्वीकार कर दिया। तद्नुसार, आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में समुचित नहीं प्रतीत होता है। कुछ दिनों के विलंब के मामले में, जैसा वर्तमान मामले में प्रतीत होता है, अति तकनीकी दृष्टिकोण और वह भी ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाली महिला पुनरीक्षक के मामले में, परिसीमा का आवेदन अस्वीकार करते हुए राजस्व बोर्ड के सदस्य द्वारा नहीं लिया जाना चाहिए था।

7. मामले के उस दृष्टिकोण में, प्रत्यर्थी सं॰ 2 राजस्व बोर्ड के सदस्य द्वारा पारित दिनांक 15.3.2000 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। विधि के अनुरुप नए सिरे से विचार करने के लिए मामला राजस्व बोर्ड, झारखंड के सदस्य को वापस भेजा जाता है। पूर्वोक्त निबंधनों में रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

प्रशांत कुमार भगत उर्फ बिलटू उर्फ बिलटु कुमार

cuke

कल्पना देवी

F.A. No. 179 of 2007. Decided on 13th September, 2012.

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955—धारा 13—तलाक–अपीलार्थी पति द्वारा किए गए प्रहार एवं दुर्व्यवहार का अभिकथन–न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित किए जाने के बाद एक वर्ष

से अधिक की अवधि के लिए विवाह के पक्षों के बीच साहचर्य का पुनरारंभ नहीं हुआ था–यह विवाह के अपरिहार्य रूप से टूटने का मामला है–तलाक डिक्री मान्य ठहरायी गयी।

(पैराएँ 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Prakash Chandra, For the Appellant; Mr. Purnendu Kumar Jha, For the Respondent.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–यह अपील वैवाहिक केस सं॰ 43 वर्ष 2006/19 वर्ष 2007 में षष्टम अपर जिला न्यायाधीश, गोड्डा के न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 10 सितंबर, 2007 के निर्णय और दिनांक 27.9.2007 की डिक्री के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा दाखिल तलाक याचिका अनुज्ञात की गयी है। प्रत्यर्थी ने इस आधार पर तलाक डिक्री इप्सित किया कि कार्यवाही जिसमें दोनों पक्ष थे में न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित किए जाने के बाद एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए विवाह के पक्षों के बीच साहचर्य का पुनरारंभ नहीं हुआ है।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी का प्रत्यर्थी के साथ विवाह पी॰ एस॰ महगामा, जिला गोड्डा, झारखंड के अधीन महगामा अवस्थित उसके पिता के घर पर वैध विवाह के समस्त रीतियों का अनुसरण करते हुए हिंदू धर्म और प्रथा के अनुसार दिनांक 16.4.2001 को संपन्न किया गया था।

3. मामले का तथ्य यह है कि दिनांक 16.4.2001 को अपीलार्थी (पति) के साथ विवाह के बाद प्रत्यर्थी दिनांक 17.4.2001 को अपने पति प्रशांत कुमार भगत (अपीलार्थी) के साथ ग्राम अंबे मारुचौक, पी॰ एस॰ मुजाहिदपुर, जिला भागलपुर अवस्थित उसके घर गयी और वहाँ दिनांक 17.4.2001 से दिनांक 20.4.2001 तक रुकी और दिनांक 20.4.2001 की सुबह अपने माएके लौट गयी। प्रत्यर्थी का आगे मामला यह है कि अपीलार्थी अर्थात् उसका पति बुरी आदत वाला आदमी है और शराब पीता है और शराब पीने के बाद घर आता है और उस पर प्रहार करता है और उसको गंदी गालियाँ देता है और उसने दहेज भी मांगा जो 10,000/- रुपयों से शुरू हुआ और 1,00,000/- रुपयों तक गया और अनेक अवसरों पर उसके पति ने उसको धमकाया और यातना दिया जिसके परिणामस्वरुप उसने सी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा के समक्ष अपने पति के विरुद्ध परिवाद मामला दाखिल किया और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 एवं 4 के अधीन महगामा पी॰ एस॰ केस सं॰ 109 वर्ष 2001 संस्थापित किया गया था और यह टी॰ आर॰ सं॰ 201 वर्ष 2006 के तहत एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ गोड्डा के न्यायालय में अभी भी लंबित है। जब वह अपने माएके आयी, अपीलार्थी वहाँ भी आया करता था और उसके माएके में भी उस पर प्रहार करता था और यातना देता था। वह अपीलार्थी के विरुद्ध एक अन्य दांडिक मामला अर्थात् जी॰ आर॰ केस सं॰ 799 वर्ष 2001/507 वर्ष 2004 दाखिल करने के लिए मजबूर हुई और यह अभी भी एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा के न्यायालय में लंबित है।

4. प्रत्यर्थी का आगे मामला यह है कि उसने अपने पति की यातना से मुक्ति पाने के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 10 के अधीन मामला दाखिल किया जिसे जिला न्यायाधीश, गोड्डा के न्यायालय में केस सं॰ 20 वर्ष 2001 के रूप में संख्यांकित किया गया था जिसे सप्तम अपर जिला न्यायाधीश, गोड्डा के न्यायालय को अंतरित किया गया था और इसे वैवाहिक मामला सं॰ 6 वर्ष 2005 के रूप में संख्यांकित किया गया था। उसका पति उक्त मामले में उपस्थित हुआ और प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए बयानों का खंडन करते हुए अपना लिखित कथन दाखिल किया। किंतु उसने लिखित कथन में बनाए गए अपने मामले के समर्थन में न्यायालय में स्वयं का परीक्षण नहीं कराया था और न ही उसने अपनी ओर से किसी गवाह का परीक्षण किया था। किंतु प्रत्यर्थी द्वारा परीक्षण किए गए गवाहों में से कुछ का

उसने प्रति–परीक्षण किया था। विद्वान सप्तम अपर जिला न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा मामला डिक्री किया गया था और दिनांक 6.9.2005 को उसके पक्ष में न्यायिक पृथक्करण का डिक्री पारित किया गया था। न्यायिक पृथक्करण की उक्त डिक्री को प्राप्त करने के बाद दिनांक 6.9.2005 की उक्त डिक्री के बाद एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए विवाह के पक्षों के बीच साहचर्य का पुनरारंभ नहीं हुआ था।

5. तत्पश्चात, उसने इस आधार पर कि कार्यवाही जिसमें दोनों पक्षगण थे में न्यायिक पृथक्करण की उक्त डिक्री के बाद एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए विवाह के पक्षों के बीच साहचर्य का पुनरारंभ नहीं हुआ है, तलाक के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1A) (i) के अधीन दिनांक 1.11.2006 को जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गोड्डा के न्यायालय में वर्तमान वैवाहिक मामला सं॰ 43 वर्ष 2006 दाखिल किया और मामले के लंबित रहने के दौरान 1500/- रुपया प्रतिमाह की दर से भरण–पोषण की डिक्री के लिए भी प्रार्थना किया। अंतत: मामला निपटान के लिए षष्टम अपर जिला न्यायाधीश, गोड्डा के न्यायालय को अंतरित किया गया था। उसका पति सम्यक रूप से नोटिस तामील किए जाने के बावजूद वैवाहिक मामला में उपस्थित नहीं हुआ और अंतत: एकपक्षीय सुनवाई के लिए मामला दिनांक 23.7.2007 को नियत किया गया था। अपने दावा का समर्थन करने के लिए उसने अपने मुख्य परीक्षण के रूप में अपना शपथ पत्र दाखिल किया और वैवाहिक मामला सं॰ 20 वर्ष 2001/6 वर्ष 2005 में श्री के॰ के॰ झा, सप्तम अपर जिला न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा दिनांक 6.9.2005 को पारित निर्णय की प्रमाणित प्रति को भी प्रदर्शित किया जिसे प्रदर्श A के रूप में चिन्हित किया गया था। षष्टम अपर जिला न्यायाधीश, गोड्डा ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद दिनांक 10.9.2007 के अपने निर्णय द्वारा तलाक वाद डिक्री किया और उसके पक्ष में तलाक डिक्री पारित किया गया था।

6. अपीलार्थी ने पूर्वोक्त निर्णय और दिनांक 10.9.2007 की तलाक डिक्री के विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल किया है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि उसने पूरी मर्यादा और सम्मान के साथ प्रत्यर्थी को वापस लेने के लिए और पति–पत्नी के रूप में रहने के लिए दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन याचिका दाखिल किया है और वह प्रत्यर्थी को पूरी मान–मर्यादा के साथ पत्नी के रूप में रखने का इच्छुक है और दिनांक 10.9.2007 की तलाक डिक्री को अपास्त करने के लिए प्रार्थना किया है।

7. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपीलार्थी के विरुद्ध क्रूरता का आरोप है और वे विगत ग्यारह वर्षों से अलग रह रहे हैं और आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है और अपील खारिज किए जाने योग्य है।

8. हमने अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया है। हम पाते हैं कि विद्वान अवर न्यायालय ने मामले के समस्त तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार किया है और सुतार्किक निर्णय पारित किया है।

9. दोनों पक्षों को सुनने के बाद हमारा सुविचारित मत है कि यह विवाह के अपरिहार्य रूप से टूटने का मामला है। स्वीकृत रूप से, दोनों पक्ष विगत ग्यारह वर्षों से अलग रह रहे हैं। इसके अतिरिक्त, यद्यपि अपीलार्थी ने पूर्व वाद अर्थात् वैवाहिक मामला सं॰ 6 वर्ष 2005 का प्रतिवाद किया और पक्षों को सुनने के बाद उक्त वाद प्रत्यर्थी के पक्ष में डिक्री किया गया था किंतु उसने उच्चतर न्यायालय के समक्ष कोई अपील कभी नहीं दाखिल किया। हम अभिलेख से पाते हैं कि उसकी क्रूरता और यातना के विरुद्ध अपीलार्थी के विरुद्ध पत्नी–प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल दांडिक मामले अभी भी लंबित हैं। अत: हमारे मत में इस चरण पर पक्षों के लिए साथ रहना संभव नहीं है। अत: तलाक डिक्री पारित करके विवाह विघटित करना सर्वोत्तम रास्ता है।

10. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में दुर्बलता और अवैधता नहीं पाते हैं। तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

वी॰ एन॰ झा उर्फ विवेकानन्द झा एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) Nos. 3632 of 2011 with I.A. No. 1225 of 2013. Decided on 4th July, 2013.

विश्वविद्यालय विधि–वेतन–वार्षिक वेतनवृद्धि–बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम के प्रावधानों के अधीन संविधि का अनुच्छेद 22 विरचित किया गया–वेतनवृद्धि स्वाभाविक रूप से विश्वविद्यालय सेवक को भुगतान योग्य है जब तक इसे दंड के रूप में रोका नहीं जाता है–पी॰ एच॰ डी॰ डिग्री अर्जित करने और यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा विहित अन्य पात्रता की शर्त अधिरोपित करने वाला दिनांक 20.11.2010 का यू॰ जी॰ सी॰ संकल्प का खंड 12 (iii) अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी है और तद्नुसार अभिखंडित किया जाता है। (पैराएँ 15 से 20)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajendra Krishna, For the Petitioners; J.C. to G.P.-IV, For the State; Mr. A.K. Mehta, For the University.

आदेश

याचीगण ने मानव संसाधन विकास विभाग, झारखंड सरकार द्वारा जारी दिनांक 20 नवंबर, 2010 के मेमो सं॰ 5/U106/2009-1188 (परिशिष्ट–10) में अंतर्विष्ट संकल्प के खंड 12 (iii) और खंड 16 के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है।

2. किंतु, सुनवाई के समय याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याचीगण उक्त संकल्प के खंड 16 के अभिखंडन के लिए जोर नहीं दे रहे हैं।

3. उक्त संकल्प का खंड 12 (iii) पी॰ एच॰ डी॰ डिग्री और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (संक्षेप में 'यू॰ जी॰ सी॰') द्वारा विहित अन्य पात्रता अर्जित करने पर समयबद्ध प्रोन्नति योजना के अधीन रीडर के पद पर प्रोन्नति दिए गए अध्यापकों को वार्षिक वेतनवृद्धि के भुगतान के लिए शर्त अधिरोपित करता है।

4. याचीगण ने उक्त खंड 12 (iii) का विरोध इस आधार पर किया है कि यह भेदभावपूर्ण मनमाना और अवैध है और बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1976 के प्रावधानों के अधीन विरचित संविधियों, जिनके पास विधि का बल है, के अनुच्छेद 22 का उल्लंघनकारी है। उक्त शर्त याचीगण पर अधिरोपित नहीं की जा सकती है जिन्हें यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा अनुमोदित समयबद्ध प्रोन्नति योजना के अधीन रीडर के पद पर प्रोन्नति दी गयी थी।

5. याचीगण सेंट जेवियर कॉलेज, राँची के अध्यापक हैं। आरंभ में उन्हें विभिन्न विभागों में व्याख्याता के पद पर नियुक्त किया गया था। याचीगण को रीडर के पद पर प्रोन्नति के लिए उपयुक्त पात्रता हासिल करने के बाद समयबद्ध प्रोन्नति योजना के अधीन रीडर के पद पर प्रोन्नत किया गया था। उनकी प्रोन्नति को विश्वविद्यालय के समक्ष प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया था। रीडर के पद पर प्रोन्नति के बाद

उन्हें पाँचवें वेतन पुनरीक्षण के निबंधनानुसार 12000-18300/- रुपयों के वेतनमान में स्थापित किया गया था। याचीगण में से कुछ सेवानिवृत्ति के कगार पर हैं। याचीगण अब तक पाँचवें वेतन पुनरीक्षण के प्रावधान के अनुरुप वार्षिक वेतन वृद्धि पा रहे थे। दिनांक 20 नवंबर, 2010 के संकल्प द्वारा राज्य सरकार ने छठे वेतन पुनरीक्षण पैकेज, जैसा यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा केंद्र सरकार को अनुशंसित किया गया था, को स्वीकार और क्रियान्वित किया। अनुशंसा में, वार्षिक वेतनवृद्धि देने के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं है। किंतु राज्य सरकार ने खंड 12 (iii) जोड़ा जिसके द्वारा समयबद्ध प्रोन्नति योजना के अधीन रीडर के पद पर प्रोन्नति दिए गए अध्यापकों को वार्षिक वेतनवृद्धि देने के लिए पी॰ एच॰ डी॰ डिग्री अर्जित करने की शर्त अधिरोपित की गयी थी।

6. यह निवेदन किया गया है कि वेतन वृद्धि बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1976 के अधीन विरचित संविधियों के अनुच्छेद 22 के प्रावधानों के अधीन भुगतान योग्य है जिसे कुलाधिपति द्वारा अनुमोदित किया गया है। संविधियों का उक्त प्रावधान वार्षिक वेतनवृद्धि देने के लिए ऐसी कोई शर्त विहित नहीं करता है। उक्त प्रावधान के अधीन, वार्षिक वेतनवृद्धि केवल दंड के रूप में रोकी जा सकती है।

7. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि संकल्प के खंड 12 (iii) में अधिरोपित निर्बंधन स्पष्टत: अवैध है और संविधियों के अनुच्छेद 22 के प्रावधानों का उल्लंघनकारी है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का भी उल्लंघन करता है। रीडरों में से कुछ, जिन्होंने मेधा–सह–वरीयता आधार पर प्रोन्नति पाया है, को वेतन वृद्धि दी गयी है जबकि इन्हें उन रीडरों को देने से इनकार किया गया है जिन्होंने समयबद्ध प्रोन्नति योजना के अधीन प्रोन्नति पाया है। खंड 12 (iii) पुर:स्थापित करके प्रत्यर्थीगण ने रीडरों के मामले के अंतर्गत वर्ग सृजित किया है जो संविधान के अनुच्छेद 14 और विश्वविद्यालय संविधियों के अनुच्छेद 22 का उल्लंघनकारी है। प्रोन्नति की दोनों योजनाओं को यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा अनुमोदित किया गया है और अनुमोदित ढंगों के अधीन प्रोन्नत रीडरों के बीच कोई सुभिन्नता नहीं की जा सकती है। उक्त खंड 12 (iii) अयुक्तियुक्त वर्गीकरण सृजित करके समानता के अधिकार को नकारता है और अधिकारातीत है।

8. प्रत्यर्थीगण ने प्रतिशपथ पत्र दाखिल करके रिट याचिका का विरोध किया। अन्य बातों के साथ यह कथन किया गया है कि विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के अध्यापकों की प्रोन्नति यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा विरचित योजना द्वारा विनियमित होती है। याचीगण को कालबद्ध प्रोन्नति योजना के अधीन रीडर के पद पर प्रोन्नति दी गयी थी और उन्हें पाँचवें वेतन पुनरीक्षण के प्रावधानों के अनुरुप वेतनवृद्धि भी दी गयी थी। समयबद्ध प्रोन्नति योजना को बाद में समाप्त कर दिया गया है। यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा विरचित विनियमन के नए प्रावधान के अधीन, रीडर के पद पर प्रोन्नति और अतिरिक्त वेतन वृद्धि केवल उन रीडरों को दी जानी है जिनके पास पी॰ एच॰ डी॰ डिग्री है। उक्त संकल्प दिनांक 13 नवंबर, 2001 की अधिसूचना द्वारा राज्य सरकार द्वारा स्वीकार और क्रियान्वित किया गया है। उक्त प्रावधान के अधीन, दिनांक 1 जनवरी, 1996 के बाद पुनर्स्थापन वेतनमान और वेतनवृद्धि प्रदान करने के लिए पी॰ एच॰ डी॰ डिग्री पुरोभाव्य शर्त है।

9. जी॰ पी॰ IV के विद्वान जे॰ सी॰ ने राज्य सरकार के उक्त पत्र को निर्दिष्ट करके निवेदन किया कि उन रीडरों जिन्होंने पी॰ एच॰ डी॰ डिग्री प्राप्त नहीं किया है, की वेतनवृद्धि और पुनर्स्थापन वेतनमान रोकने के लिए स्पष्ट प्रावधान है।

10. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों तथा सामग्रियों पर विचार करने पर, मैं पाता हूँ कि यह स्वीकृत तथ्य है कि समस्त याचीगण को समयबद्ध प्रोन्नति योजना के अधीन पात्रता अर्जित करने के बाद रीडर के पद पर प्रोन्नति दी गयी थी। यह भी विवादित नहीं है कि याचीगण को पाँचवें वेतन पुनरीक्षण के पुनर्स्थापन वेतनमान सहित रीडर का विहित वेतनमान दिया गया

था। उन्हें किसी संकोच के बिना सदैव वार्षिक वेतन वृद्धि दी गयी थी। याचीगण को छठे वेतन पुनरीक्षण का पुनर्स्थापन वेतनमान भी दिया गया था।

11. किंतु खंड 12 (iii) द्वारा उन्हें उनकी वेतनवृद्धि से इनकार किया गया है।

12. वेतनवृद्धि बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम के प्रावधानों के अधीन विरचित और कुलाधिपति द्वारा अनुमोदित संविधियों के अनुच्छेद 22 के प्रावधानों के अधीन कर्मचारियों को भुगतान योग्य है।

13. उक्त अनुच्छेद के अनुसार, वेतनवृद्धि स्वाभाविक रूप में विश्वविद्यालय सेवकों को भुगतान योग्य है जब तक इसे उसको नियुक्त करने के लिए सशक्त बनाए गए प्राधिकारी द्वारा दंडात्मक उपाय के रूप में रोका नहीं जाता है।

14. संविधियों के अनुच्छेद 22(1) का पठन निम्नलिखित है:–

*"22 (1) oruof) LokHkkfod :i l fo'ofo|ky; lod }kjk lkekU;r% ik;h tk,xh tc rd bl mldk fu;Dr dju d fy, l'kDr cuk, x, çkfèkdkjh }kjk nMkRed mik; d :i e jkdk ugh tkrk g---------***

15. उक्त प्रावधान के सादे पठन पर यह स्पष्ट है कि वेतनवृद्धि स्वाभाविक रूप से विश्वविद्यालय के कर्मचारी को भुगतान योग्य है और इसे केवल दंडात्मक उपाय के रूप में रोका जा सकता है।

16. उक्त सांविधिक प्रावधान अब तक संशोधित नहीं किया गया है। मानव संसाधन विकास विभाग द्वारा जारी दिनांक 20 नवंबर, 2010 के आक्षेपित संकल्प का संविधियों के अनुच्छेद 22 के उक्त प्रावधान के उपर अध्यारोही प्रभाव नहीं है। उक्त शर्त किसी विधायी अनुमोदन के बिना अधिकथित की गयी है।

17. आक्षेपित संकल्प को यू॰ जी॰ सी॰ योजना के निबंधनानुसार जारी किया गया बताया जाता है। प्रत्यर्थीगण ने वार्षिक वेतनवृद्धि के भुगतान के लिए ऐसी शर्त अधिरोपित करते हुए अभिलेख पर यू॰ जी॰ सी॰ का कोई संकल्प नहीं लाया है।

18. चूँकि याचीगण संविधियों के अनुच्छेद 22 के प्रावधानों के अधीन वार्षिक वेतनवृद्धि पाने के हकदार हैं, उक्त प्रावधान के विपरीत शर्त अधिरोपित करने वाला उक्त खंड 12(iii) बिल्कुल मनमाना, भेदभावपूर्ण और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी है।

19. पूर्वोक्त कारणों से, दिनांक 20 नवंबर, 2010 के आक्षेपित संकल्प का खंड 12 (iii) अभिखंडित किया जाता है।

20. प्रत्यर्थीगण को दिनांक 1 जनवरी, 2006 के प्रभाव से याचीगण को वेतनवृद्धि निर्मुक्त करने, यदि इन्हें पहले ही निर्मुक्त नहीं किया गया है, और इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से छह सप्ताह के भीतर वेतन के अंतर के बकाया का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

21. तद्नुसार, रिट याचिका और आई॰ ए॰ सं॰ 1225 वर्ष 2013 निपटायी जाती है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

मो॰ इसमाइल अंसारी

cuke

प्रबंधन, मेसर्स फुलीन स्वयं सेवा संस्था महिला चेतना विकास केंद्र, मधुपुर

W.P. (S) No. 1788 of 2004. Decided on 4th July, 2013.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के विषय में।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 2 (j)—न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948—धारा 3—सेवा से बर्खास्तगी–संस्थान स्वैच्छिक संगठन है और शुद्धतः स्वास्थ्य सुधारने के काम में लगा हुआ है–यह किसी व्यवसाय अथवा व्यापार में नहीं लगा हुआ है–संस्थान की आमदनी का एकमात्र स्रोत केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय सहित कल्याण संस्थानों की सहायता और अनुदान है–संस्थान उद्योग नहीं है–याची का दावा कि उसे कर्मकार के रूप में नियुक्त किया गया था, सिद्ध नहीं किया गया है–रिट याचिका खारिज की गयी। (पैराएँ 9 से 15)

अधिवक्तागण.–M/s Ram Lakhan Yadav, For the Petitioenr; None, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–याची के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यद्यपि प्रत्यर्थीगण को नोटिस दिया गया है और वे उपस्थित हुए हैं, किंतु आज उनकी ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है और अंततः मामला सुनवाई के लिए लिया गया है।

3. याची निर्देश केस सं॰ 2 वर्ष 2000 में अंतर्विष्ट दिनांक 18.7.2003 के अधिनिर्णय (परिशिष्ट 9) से व्यथित है जिसने याची द्वारा उठाए गए औद्योगिक विवाद पर उसके विरुद्ध निर्देश का उत्तर दिया है। विद्वान श्रम न्यायालय, देवघर के समक्ष निम्नलिखित निर्देश किया गया था जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *^^D;k e l l Qyhu lLFkk] efgyk pruk fodkl dn] no?kj d dedkj ekO blekby vlkjh dh lok lekfIr U;k;kfpr g\ ;fn ugh] og fdl vurk"k dk gdnkj g***

4. विद्वान श्रम न्यायालय के समक्ष दाखिल अपने लिखित कथन के माध्यम से किया गया याची का प्रतिवाद यह था कि उसे दिनांक 19.7.1992 को प्रबंधन द्वारा नियुक्त किया गया था और वह सेवा से मौखिक रूप से बर्खास्त किए जाने तक लगातार कर्मकार, पर्यवेक्षक, आदि के रूप में विभिन्न पदों पर कार्यरत था। वह प्रबंधन का स्थायी कर्मचारी था और कर्मकार की परिभाषा के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत आता है जैसा औद्योगिक विवाद अधिनियम में परिभाषित किया गया है। तद्नुसार, वह वेतन अथवा मजदूरी का हकदार था जिसका भुगतान उसकी सेवा समाप्ति के पहले उसको किया जाता था और इलाहाबाद बैंक में बचत खाता सं॰ 93/49 में जमा किया जाता था। यद्यपि उसने संस्थान के समक्ष अनेक बार अभ्यावेदन दिया था किंतु कोई कारण अथवा नोटिस दिए बिना उसे दिनांक 23.1.1998 को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। पहले उसने दिनांक 11.11.1994 को अपना त्याग पत्र दिया था जिसे स्वीकार नहीं किया गया था और उसका वेतन बढ़ाने के लिए प्रबंधन के मौखिक आश्वासन पर वह सेवा में बना रहा था। उसकी सेवा समाप्ति के पहले कोई घरेलू जाँच संचालित नहीं की गयी थी। अत:, उसने सेवा से अपनी बर्खास्तगी के संबंध में औद्योगिक विवाद उठाया है जिसे न्याय निर्णयन के लिए विद्वान श्रम न्यायालय के समक्ष निर्दिष्ट किया गया है।

5. प्रबंधन ने अपने लिखित कथन में दृष्टिकोण अपनाया था कि स्वयं निर्देश पोषणीय नहीं था क्योंकि प्रश्नगत कर्मकार के पास औद्योगिक विवाद उठाने के लिए वाद हेतुक नहीं है। दावेदार को दिनांक 19.7.1992 को मासिक वेतन आधार पर नियुक्त कभी नहीं किया गया था। उसने स्वयं दिनांक 11.11.1994 को त्यागपत्र दिया था किंतु किसी अधिकारी अथवा कर्मचारी की हैसियत से नहीं बल्कि उसने सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में संस्थान से स्वयं को अलग कर लिया था। उसे किसी बैठक अथवा किसी प्रशिक्षण केंद्र में भाग लेने के लिए प्राधिकृत कभी नहीं किया गया था। प्रबंधन ने विनिर्दिष्ट दृष्टिकोण अपनाया था कि प्रश्नगत संस्थान शुद्धतः उत्पीड़ितों के उत्थान के लिए स्वेच्छापूर्वक सामाजिक सेवा करने

वाला गैर सरकारी स्वैच्छिक संगठन था। संस्थान के साथ जुड़े व्यक्ति सामाजिक कार्यकर्ता थे जो स्वयं अपने हित से जुड़े थे और किसी नियत वेतन अथवा पारिश्रमिक के बिना अंशकालिक आधार पर मानदेय पर कार्यरत थे। संस्थान उद्योग की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है और न ही दावेदार औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन कर्मकार की परिभाषा में आता है। वर्तमान विवाद संस्थान के सचिव को ब्लैकमेल करने के लिए और येनकेन प्रकारेण संस्थान की प्रतिष्ठा को विनष्ट करने के लिए दावेदार द्वारा उठाया गया है और इस प्रकार उसका दावा अस्वीकार कर देना चाहिए और निर्देश का नकारात्मक उत्तर देना चाहिए। विद्वान श्रम न्यायालय द्वारा निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया गया था जिन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

"1. D;k fun'k ik"k.kh; gA

2. D;k nkonkj ekO bljkby vlkjh d ikl vk|kfxd fookn mBku d fy, okn grd gA

3. D;k ell Qyhu lLFkk efgyk fodkl pruk dn m|kx g tlk vkbO MhO ,DV d vèkhu ifjHkkf"kr gA

4. D;k i{kk d chp fu;kDrk vkj dedkj dk lcèk gA

5. D;k lLFkku l nkonkj dh lok lekflr U;k;kfpr gA

*6. fdu vurk"k ;k vurk"kk dk] ;fn gk] nkonkj bljkby vlkjh gdnkj gA**

6. विवाद्यक सं॰ 3 महत्वपूर्ण विवाद्यक है जिस पर याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जोर दिया गया है। विवाद्यक सं॰ 3 के संबंध में निष्कर्ष आक्षेपित अधिनिर्णय के पैराग्राफ सं॰ 21 से 49 तक में अंतर्विष्ट हैं। याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, संस्थान उद्योग की परिभाषा के अंतर्गत आता है जैसा आई॰ डी॰ अधिनियम की धारा 2 (j) के अधीन परिभाषित किया गया है जो तीन अनुबंधित शर्तों को विहित करती है: (I) व्यवस्थित गतिविधि होनी चाहिए, (ii) नियोक्ता और कर्मचारी के बीच सहायता से संगठित और (iii) मानव आवश्यकता अथवा इच्छा को संतुष्ट करने के लिए वस्तुओं अथवा सेवाओं का उत्पादन, आपूर्ति अथवा वितरण।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 8.6.2000 की अधिसूचना परिशिष्ट–8 को निर्दिष्ट करके निवेदन किया कि धार्मिक और सामाजिक संस्थान न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 3 के अधीन आच्छादित हैं। प्रश्नगत संस्थान ने इन तीनों मापदंडों को परिपूर्ण किया जैसा उद्योग की परिभाषा के अधीन विहित है जैसा अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों से स्पष्ट होगा। अत:, किसी घरेलू जाँच अथवा कारण बताओ के बिना बर्खास्त किए जाने पर याची को कर्मकार होने के नाते औद्योगिक विवाद उठाने का अधिकार था। ऐसी परिस्थितियों में, आक्षेपित अधिनिर्णय विधि की और तथ्यों के निष्कर्षों की गंभीर त्रुटि से पीड़ित है।

8. मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है। याची द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय को दी गयी चुनौती के विनिश्चयकरण के लिए विचार किया जाने वाला विवाद्यक यह है कि क्या प्रश्नगत संस्थान उद्योग है या नहीं और क्या याची को उक्त संस्थान में कर्मकार के रूप में अथवा अन्यथा काम पर लगाया गया था या वह स्वैच्छिक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में कार्यरत था।

9. इसे ध्यान में लेना दिलचस्प है कि स्वयं दावेदार द्वारा प्रस्तुत तात्विक गवाह, जिनकी संख्या दावेदार को अपवर्जित करते हुए पाँच है, ने अन्यथा अभिसाक्ष्य दिया है। पाँच कर्मकार गवाहों ने स्पष्टत: कथन किया है कि संस्थान शुद्धत: स्वैच्छिक संगठन है और स्वास्थ्य कार्यक्रम में लगा हुआ है। यह किसी व्यवसाय अथवा व्यापार में नहीं लगा हुआ है और न ही निर्माण करने के बाद बाजार में कोई वस्तु बेचता है। गवाह सं॰ 2 से 5 ने उसी तरीके से अभिसाक्ष्य दिया है जैसा गवाह सं॰ 1 सरवरी खातुन ने दिया है

जिसके अभिसाक्ष्य पर उपर चर्चा की गयी है। गवाह सं॰ 6 दावेदार के साक्ष्य की चर्चा प्रकट करती है कि यद्यपि उसने वर्ष 1992 में नियुक्त होने का दावा किया था किंतु वह स्वीकार करता है कि उसे कोई नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया था और वर्ष 1992 से वर्ष 1997 के बीच किया गया भुगतान नगद प्रकृति का था जो समय-समय पर 250/- से 600/- और 800/- से 7000/- रुपया तक का था। तत्पश्चात, वर्ष 1997 में समय के किसी बिंदु पर राशि उसके खाता में जमा की जाती थी।

10. गवाह यह भी स्वीकार करता है कि प्रत्यर्थी द्वारा कोई सेवा समाप्ति पत्र जारी नहीं किया गया था बल्कि उसे मौखिक आदेश द्वारा बर्खास्त किया गया था। दूसरी ओर, प्रबंधन ने छह गवाहों को पेश किया है। एम॰ डब्ल्यू॰ 1 सफरुद्दीन अंसारी ने अभिसाक्ष्य दिया कि संस्थान महिलाओं के उत्थान में लगा स्वैच्छिक संगठन है और वहाँ कार्यरत व्यक्तियों को सामाजिक कार्यकर्ता कहा जाता है जो संस्थान द्वारा भुगतान किए गए किसी वेतन अथवा मजदूरी के बिना नि:शुल्क सेवा प्रदान करते हैं। संस्थान द्वारा कुछ भी उत्पादित नहीं किया जाता है और न ही निर्माण के बाद बाजार में कोई वस्तु बेची जाती है और संस्थान में केवल प्रशिक्षण दिया जाता है। एम॰ डब्ल्यू॰ 2 ने भी इसी तरीके से अभिसाक्ष्य दिया था और यह कथन भी किया था कि इस याची ने सचिव अर्थात् जानकी सिंह के कृषि फार्म में काम कभी नहीं किया था। उक्त सचिव शालीन महिला और सामाजिक कार्यकर्ता है और संस्थान के पास टाटा सुमो वाहन जैसे अल्प संसाधन हैं जिनका उपयोग स्वास्थ्य सेवा के लिए किया जाता है। एम॰ डब्ल्यू॰ 3, 4, 5, 6 ने भी इसी तरीके से कथन किया है। उन्होंने भी कथन किया है कि वे स्वयं सेवक के रूप में संस्थान में कार्यरत हैं।

11. विद्वान श्रम न्यायालय ने याची और अन्य ऐसे व्यक्तियों को किए गए भुगतान से संबंधित प्रतिवाद को भी विचार में लिया था और पाया था कि ये भुगतान मानदेय प्रकृति के थे और 650/- से 1000/- रुपए तक के थे और इन्हें वेतन अथवा मजदूरी नहीं बल्कि केवल मानदेय माना जा सकता था। मई, 1997 से इनका भुगतान चेक के माध्यम से किया जाता था और उनके खाता में जमा किया जाता था। सचिव जानकी सिंह के आयकर रिटर्न के परिशीलन पर संस्थान की चल संपत्तियों को भी निर्दिष्ट किया गया है जो एक मोटर साइकिल, एक टाटा सुमो, एक कंप्यूटर, एक वेइंग मशीन, एक साइकिल, एक वाटर पंप, एक टाइपराइटर और म्यूजिक सिस्टम की प्रकृति की हैं। विद्वान श्रम न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है कि ये सामग्रियाँ संस्थान की प्रकृति को उद्योग के रूप में संपरिवर्तित कभी नहीं कर सकती है। संस्थान की आमदनी का एकमात्र स्रोत स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार सहित कल्याण संस्थानों से आर॰ सी॰ एच॰ प्रोग्राम के लिए मिलने वाली सहायता और अनुदान है। आय की एक वस्तु भी नहीं है जिसे औद्योगिक गतिविधि से प्राप्त किया गया है। उन्होंने यह भी पाया है कि कुछ जोनल अधिकारियों और फील्ड वर्करों को वेतन का भुगतान किया जाता है जबकि संस्थान से जुड़े शेष व्यक्तियों को मानदेय का भुगतान किया जाता है। सहायता और अनुदान के माध्यम से प्राप्त आमदनी को पारंपरिक स्वास्थ्य, बीमारी, जड़ी-बुटी, कृषि मेला, दक्षता बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम, आवास भूमि में रोपनी के लिए गाँव के किसानों को प्रशिक्षण और टीका-दवाई जैसे अन्य मदद पर खर्च किया जाता है। मौखिक और दस्तावेजी इन तात्विक साक्ष्य के आधार पर विद्वान श्रम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि संस्थान ने लघु कुटीर उद्योग में स्वयं को काम पर लगाकर लोगों को स्वतंत्र बनाने में मदद करने में और प्रशिक्षण केंद्रों के माध्यम से प्रशिक्षण देकर अच्छा काम किया है।

12. उद्योग की परिभाषा से संबंधित अधिकथित मापदंडों के अनेक घटकों अर्थात् (i) व्यवस्थित गतिविधि (ii) नियोक्ता और कर्मचारी के बीच सहयोग द्वारा संगठित, (iii) मानव जरूरत और इच्छा को संतुष्ट करने के लिए संगणित वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और/अथवा वितरण पर चर्चा के बाद श्रम न्यायालय अंततः इस निष्कर्ष पर आया कि संस्थान उद्योग नहीं है। इसने आगे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन अधिसूचना के मुताबिक धार्मिक और सामाजिक संस्थानों के रूप में संस्थान की प्रकृति से संबंधित कर्मकार के निवेदन पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि इस आधार मात्र पर संस्थान को उद्योग नहीं कहा जा सकता है।

13. विवाद्यक सं॰ 3 के मुख्य महत्वपूर्ण विवाद्यक पर पूर्वोक्त निष्कर्ष के आधार पर श्रम न्यायालय ने शेष विवाद्यकों का उत्तर प्रबंधन के पक्ष में दिया और अभिनिर्धारित किया कि निर्देश स्वयं पोषणीय नहीं है और कि औद्योगिक विवाद उठाने के लिए कर्मकार के पास वाद हेतुक नहीं है।

14. संपूर्ण आक्षेपित निर्णय और अभिलेख पर उपलब्ध अन्य सामग्रियों के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि याची का दावा कि उसे संस्थान मेसर्स फुलीन संस्था महिला चेतना विकास केंद्र, देवघर में कर्मकार के रूप में नियुक्त किया गया था, निर्देश केस में कार्यवाही के दौरान प्रस्तुत और अभिलेख पर आधारित सामग्रियों पर सिद्ध नहीं किया गया है। विद्वान श्रम न्यायालय ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया है कि संस्थान औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2 (j) के अर्थ के अंतर्गत उद्योग नहीं है। ये निष्कर्ष विधि अथवा तथ्यों की किसी त्रुटि से ग्रस्त नहीं है और अभिलेख पर उपलब्ध पर्याप्त सामग्रियों पर आधारित है जो निश्चयात्मक रूप से ऐसे निष्कर्ष को इंगित करता है। अतः भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन शक्ति के प्रयोग में किसी हस्तक्षेप को आवश्यक नहीं बनाता है।

15. तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ,p॰ lh॰ feJk] U;k;efr

रामचंद्र साव उर्फ रामचंद्र प्रसाद

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 388 of 2013. Decided on 22th July, 2013.

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धारा 6A (6)—जब्त आवश्यक वस्तु का निपटान–वाहन जिसमें इसे ढोया जा रहा था सहित जब्त आवश्यक वस्तु के निपटान के मामले में जिला कलक्टर को अनन्य अधिकारिता दी गयी है–अन्य समस्त न्यायालयों की अधिकारिता को दृढ़तापूर्वक बाहर कर दिया गया है जब कलक्टर अथवा अपीलीय प्राधिकारी ऐसी वस्तु अथवा वाहन की जब्ती पर विचार कर रहा है–याची के पक्ष में जब्त टैंकर को निर्मुक्त करने से इनकार करने में सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई गलती नहीं है–आवेदन खारिज किया गया। (पैराएँ 12, 16 एवं 17)

निर्णयज विधि.–(1998)2 SCC 493; (1990)4 SCC 21; 1976 BBCJ 444—Discussed.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajani Raj, For the Petitioenr; Mrs. L. Sahay, For the State.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.—याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची रामगढ़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 75 वर्ष 2013 में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 25.4.2013 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा रजिस्ट्रेशन सं॰ WB-03B-1732, JH-02T-7585 और JH-02T-7586 वाले तीन टैंकरों की निर्मुक्ति के लिए याची द्वारा दाखिल आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अन्वेषण अधिकारी द्वारा दाखिल रिपोर्ट के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि समस्त तीनों टैंकर अधिहरण के विषय वस्तु हैं और तद्नुसार, उन्हें निर्मुक्त नहीं किया जा सकता है।

3. आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने अधिहरण कार्यवाही आरंभ किए जाने के बारे में सूचना इप्सित किया था जिसका उत्तर अन्वेषण अधिकारी द्वारा यह कथन करते हुए दिया गया था कि उसने दिनांक 5.4.2013 के मेमो सं॰ 1010 वर्ष 2013 के तहत उपायुक्त, रामगढ़ को टैंकरों के अधिहरण के लिए प्रस्ताव दिया था। आक्षेपित आदेश से यह भी प्रतीत होता है कि विद्वान अपर लोक अभियोजक ने यह सूचना इप्सित करते हुए कि क्या जब्त टैंकरों के संबंध में अधिहरण कार्यवाही आरंभ की गयी थी, उपायुक्त रामगढ़ को लिखा था किंतु उनके द्वारा कोई उत्तर प्राप्त नहीं किया गया था। अवर न्यायालय ने अन्वेषण अधिकारी की रिपोर्ट कि उसने टैंकरों के अधिहरण का प्रस्ताव दिया था को विचार में लेते हुए प्रश्नगत टैंकरों की निर्मुक्ति के लिए याची द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया।

4. पूर्वोल्लिखित तीन टैंकरों, जो याची की थी, को पुलिस द्वारा दिनांक 7.3.2013 को जब्त किया गया था जब रजिस्ट्रेशन सं॰ WB-03B-1732 वाला एक टैंकर, जो 12000 लीटर डीजल तेल से भरा हुआ था, हिंदुस्तान पेट्रोलियम डिपो, राँची रोड पर सी॰ सी॰ एल॰, केडला परिवहित किए जाने के लिए खड़ा था किंतु टैंकर को अपने गंतव्य स्थान पर नहीं ले जाया गया था, बल्कि निकट के स्थान पर उक्त टैंकर से पाइप की मदद से डीजल निकाला जा रहा था और एक अन्य टैंकर, रजिस्ट्रेशन सं॰ JH-02T-7586, में भरा जा रहा था। रजिस्ट्रेशन सं॰ JH-02T-7585 वाला एक अन्य टैंकर वहाँ इसी प्रयोजन से खड़ा था। याची सहित अभियुक्तगण को गिरफ्तार किया गया था और उन्होंने स्वीकार किया कि वे हिंदुस्तान पेट्रोलियम के डिपो से डीजल तेल परिवहित करने वाले टैंकरों से डीजल निकालते थे और इसे किरासन तेल में मिलाते थे। तद्नुसार, अभियुक्तगण को गिरफ्तार किया गया था और तीनों टैंकरों को भी जब्त किया गया था और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 414, 420, 120B और आवश्यक वस्तु अधिनियम (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) की धाराओं 7/8 के अधीन अपराध के लिए रामगढ़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 75 वर्ष 2013 संस्थापित किया गया था। याची ने समस्त तीनों टैंकरों का स्वामी होने के नाते प्रश्नगत टैंकरों की निर्मुक्ति के लिए आवेदन दाखिल किया जिसे अवर न्यायालय द्वारा दिनांक 25.4.2013 के आदेश द्वारा अस्वीकार किया गया था जिसे वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन में चुनौती दी गयी है।

5. यह कारण बताने के लिए कि क्यों नहीं लगभग 12000 लीटर डीजल से भरे टैंकर सं॰ WB-03B-1732 और टैंकर सं॰ JH-02T-7585 और JH-02T-7586 को अधिहृत किया जाए, अधिनियम की धारा 6B के अधीन याची को नोटिस जारी करता अधिहरण केस सं॰ 13 वर्ष 2013 में उपायुक्त, रामगढ़ द्वारा पारित दिनांक 7.5.2013 के मेमो सं॰ 249 में अंतर्विष्ट आदेश अभिलेख पर लाते हुए राज्य द्वारा प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है। उक्त आदेश को प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A के रूप में अभिलेख पर लाया गया है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बिल्कुल अवैध है क्योंकि अवर न्यायालय ने कोई विनिर्दिष्ट कारण नहीं दिया है कि क्यों नहीं प्रश्नगत टैंकरों को याची के पक्ष में निर्मुक्त किया जाए यद्यपि अवर न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर कुछ भी नहीं था कि अधिहरण कार्यवाही वास्तविक रूप से आरंभ कर दी गयी थी। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि अन्यथा भी, उपायुक्त, रामगढ़ द्वारा पारित आदेश जैसा प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A में अंतर्विष्ट है, से यह प्रकट है कि याची को केवल अधिनियम की धारा 6B के अधीन नोटिस जारी किया गया था और तद्नुसार, अभी तक कोई अधिहरण कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दांडिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले न्यायालयों के पास पुलिस मामलों के संबंध में जब्त वाहनों/आवश्यक वस्तुओं, आदि की निर्मुक्ति का आदेश पारित करने की पर्याप्त शक्ति है और इस शक्ति को कम नहीं किया जा सकता है। अपने प्रतिवाद के समर्थन में याची के विद्वान अधिवक्ता ने **सचिदानंद सिंह एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, (1998)2 SCC 493,** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यायालय की सामान्य अधिकारिता पर पाबंदी लगाने वाला प्रावधान की सामान्यत: कठोर व्याख्या करनी होगी जब तक संविधि अथवा संदर्भ अन्यथा आवश्यक नहीं बनाता है (पैरा 7) **मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम रामेश्वर राठौड़, (1990)4 SCC 21** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया प्रश्न यह था कि क्या अधिनियम की धाराओं 6A, 6B और 7 ने दांडिक न्यायालय की अधिकारिता को बहिष्कृत किया। निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:–

*"6. .....fdr ge bl çfrokn dk Lohdkj dju e v{ke g D;kfd lkekU; r% nM çfØ;k lfgrk d vèkhu n'k d nkfMd U;k;ky;k d ikl vfèkdkfjrk g vkj **vijkèk d lcèk e lkèkkj.k nkfMd U;k;ky; dk cfg"Ñr fd;k tkuk doy rc fu"df"kr fd;k tk ldrk g ;fn ;g u, vfèkfu;e dh vko';d foo{kk l çokfgr vifjgk;' fu"d"k gA** ç;Dr Hkk"kk dh nf"V e vkj lnHk] ft le Hkk"kk dk ç;kx fd;k x;k g] e gekjk er g fd mPp U;k;ky; bl fu"d"k ij vku e lgh Fkk fd nkfMd U;k;ky; u vfèkdkfjrk viu ikl j[kk vkj bl vfèkdkfjrk l i.kr% cfg"Ñr ugh fd;k x;k Fkk---------***

(tkj fn;k x;k)

7. याची के विद्वान अधिवक्ता ने अंत में **शंभु प्रसाद साह बनाम बिहार राज्य, 1976 BBCJ 444,** में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें अधिनियम की धारा 6A (6), जिसे बिहार तृतीय संशोधन, अध्यादेश सं॰ 123 वर्ष 1976, द्वारा लाया गया था, को पटना उच्च न्यायालय द्वारा विचार में लिया गया था और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:–

*"6. ..... vè;kn'k dh èkkjk 6A nk ekeyk dk vkPNkfnr djrh g% (i) **vfèkgj.k dh fo"k; oLr** vkj (ii) vfèkgj.k dh dk;okgh] ;fn **fo"k; oLr** dyDVj }kjk tCr fd;k x;k g fdr bld vfèkgj.k d fy, mld }kjk dk;okgh vkjHk ugh dh x;h g] vFkok] tgk **fo"k; oLr** dk viuh vfHkj{kk e fy, fcuk mld }kjk dk;okgh vkjHk dh x;h g] dyDVj dk ^^bl èkkjk d vèkhu ekey ij fopkj djrk gvk** ugh dgk tk ldrk gA ;fn dyDVj bl èkkjk d vèkhu ekey ij fopkj ugh dj jgk g] vihyh; çkfèkdkjh Hkh leku :i l ,lk gh djxkA **vr% ej er e vfHk0;fDr ^^bl èkkjk d vèkhu ekey ij fopkj djrk***

*gvk** dk bl vFk e le>k tkuk gksxk fd vfèkgj.k d fy, çLrkfor oLr dyDVj }kjk vfHkj{kk e yh x;h g vkj mld ekè;e l vihyh; çkfèkdkjh }kjk vkj bldk vfèkgj.k dju dh vkj dne mBk;k x;k gA bl Li"V :i l le>uk gksxk fd vfèkgj.k vfHkxg.k d ckn vxyk dne gA vfHkxg.k fd, fcuk vfèkgj.k ugh gk ldrk gA** (tkj fn;k x;k)

8. पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर अधिक जोर देते हुए, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिहरण अभिग्रहण के बाद का कदम है और कलक्टर द्वारा वस्तु को पहले जब्त किए बिना अधिहरण नहीं हो सकता है, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि वर्तमान मामले में इस मामले के संबंध में जब्त किए गए टैंकरों के संबंध में अधिहरण कार्यवाही अभी तक शुरू नहीं की गयी थी क्योंकि उपायुक्त ने टैंकरों को अपनी अभिरक्षा में नहीं लिया था और इसलिए मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग को प्रश्नगत टैंकरों को याची के पक्ष में निर्मुक्त कर देना चाहिए था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

9. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि उपायुक्त, रामगढ़ द्वारा जारी आदेश, जैसा प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A में अंतर्विष्ट है, स्पष्टत: दर्शाता है कि अधिहरण कार्यवाही पहले ही आरंभ कर दी गयी थी और तद्नुसार, दांडिक न्यायालयों की अधिकारिता को बहिष्कृत करते हुए अधिनियम की धारा 6A (6) के अधीन स्पष्ट वर्जना है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

10. आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6A (6), जिसे 1978 के बिहार अधिनियम 9 द्वारा संविधि पुस्तक पर लाया गया है, का पठन निम्नलिखित है;–

*"6-A (6) n.M ifØ;k lfgrk] 1973 (1974 dk vfèkfu;e l0 II) e vrfo"V fdlh pht d ckotn tc lekgrk ;k vihyh; ikfèkdkjh bl èkkjk d vèkhu ekey ij fopkj dj jgk g] dkb Hkh U;k;ky; vko';d oLr] fdlh idt] vkoj.k] ik= i'k] okgu ;k tgk rd bld forj.k] fuefDr] bR;kfn dk lEcUèk g , lh lkefx;k d ifjogu e i;Dr gkrk g] d lEcUèk e dkb vkonu xg.k ugh djxk rFkk bld fuLrkj.k d lEcUèk e lekgrk ;k vihyh; ikfèkdkjh dh vfèkdkfjrk vuU; gksxhA**

11. इस अधिनियम, का कोरा परिशीलन स्पष्टत: दर्शाता है कि कोई न्यायालय आवश्यक वस्तु वाहन, आदि की निर्मुक्ति के संबंध में कोई आवेदन ग्रहण नहीं करेगा और इसके निपटान के संबंध में कलक्टर अथवा अपीलीय प्राधिकारी की अधिकारिता अनन्य होगी जब कलक्टर अथवा अपीलीय प्राधिकारी 'इस धारा के अधीन मामले पर विचार कर रहा है।' अधिनियम की धारा 6A जिला कलक्टर को जब्त आवश्यक वस्तु, अथवा किसी पैकेज, आदि जिसमें ऐसी वस्तु को पाया जाता है, अथवा आवश्यक वस्तु के हस्तांतरण में प्रयुक्त किसी जानवर, वाहन आदि के संबंध में अधिहरण आदेश पारित करने की शक्ति देती है जब अधिनियम की धारा 3 के उल्लंघन में ऐसी आवश्यक वस्तु को जब्त किया गया है।

12. यह विवादित नहीं है कि डीजल अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत आवश्यक वस्तु है और उच्च गति डीजल तेल के संबंध में लाइसेंसिंग आदेश है। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 6A (6) के कोरे परिशीलन से यह प्रकट है कि जिला कलक्टर को वाहन जिसमें इसे ढोया जा रहा है सहित जब्त आवश्यक

वस्तु के निपटान के मामले में अनन्य अधिकारिता दी गयी है और अन्य समस्त न्यायालयों की अधिकारिता को दृढ़तापूर्वक बहिष्कृत किया गया है जब कलक्टर अथवा अपीलीय प्राधिकारी ऐसे वस्तु अथवा वाहन के अधिहरण के मामले पर विचार कर रहा है। अधिनियम का यह प्रावधान **रत्नेश्वर राठोड़ के मामले (उपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं था और उक्त निर्णय में भी यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अपराध के संबंध में साधारण दांडिक न्यायालय का बाहर निकाला जाना केवल तब निष्कर्षित किया जा सकता है यदि नए अधिनियम की आवश्यक विवक्षा से प्रवाहित अपरिहार्य निष्कर्ष है। अधिनियम की धारा 6A (6) स्पष्टत: दांडिक न्यायालयों की अधिकारिता बहिष्कृत करती है और वाहन जिसमें इसे ढोया जा रहा है सहित जब्त आवश्यक वस्तु के निपटान के मामले में कलक्टर अथवा अपीलीय प्राधिकारी में अनन्य अधिकारित निहित करती है जब कलक्टर अथवा अपीलीय प्राधिकारी ऐसी वस्तु अथवा वाहन के अधिहरण के मामले पर विचार कर रहा है। तद्नुसार, मेरे सुविचारित दृष्टिकोण में उक्त निर्णय याची के विद्वान अधिवक्ता की मदद नहीं करता है। **शंभु प्रसाद साहू के मामले (उपर)** में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी केवल यह दर्शाता है कि न्यायालय की सामान्य अधिकारिता पर पाबंदी लगाने वाले प्रावधान का सामान्यत: कठोरतापूर्वक अर्थ लगाया जाना चाहिए। यदि अधिनियम की धारा 6A (6) के अधीन प्रावधान का कठोरतापूर्वक अर्थ लगाया जाता है, कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जब्त आवश्यक वस्तु अथवा वाहन की निर्मुक्ति के मामले में दांडिक न्यायालय की अधिकारिता बाहर हो जाती है जब एक बार कलक्टर अथवा अपीलीय प्राधिकारी अधिहरण के मामले पर विचार कर रहा है।

13. यह हमें याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए **शंभु प्रसाद साहू के मामले (उपर)** में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार करने की ओर ले जाता है। इस निर्णय में, पटना उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश अभिव्यक्ति ''इस धारा के अधीन मामले पर विचार कर रहा है'' अर्थात् (i) यदि 'विषय वस्तु' कलक्टर द्वारा जब्त किया गया है किंतु इसके अधिहरण के लिए उसके द्वारा कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी है और (ii) जहाँ 'विषय वस्तु' को अभिरक्षा में लिए बिना उसके द्वारा कार्यवाही आरंभ की गयी है, की व्याख्या करने के लिए दो उपधारणाओं पर अग्रसर हुए हैं। पटना उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि जहाँ कलक्टर द्वारा अपनी अभिरक्षा में 'विषय वस्तु' को लिए बिना कार्यवाही आरंभ की गयी है, कलक्टर को ''इस धारा के अधीन मामले पर विचार करता हुआ'' नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसे इस अर्थ में ही समझना होगा कि अधिहरण के लिए प्रस्तावित वस्तु कलक्टर द्वारा अभिरक्षा में नहीं ली गयी है और कि यदि कलक्टर इस धारा के अधीन मामले पर विचार नहीं कर रहा है, अधिनियम की धारा 6A (6) की वर्जना नहीं हो सकती है।

14. उक्त निर्णय के प्रति सम्यक सम्मान के साथ मैं पटना उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारण से इस सरल कारण से असहमत हूँ कि अभिव्यक्ति ''इस धारा के अधीन मामले पर विचार कर रहा है,'' जैसा अधिनियम की धारा 6A (6) में उल्लिखित किया गया है, आवश्यक वस्तु अथवा वाहन अथवा अन्य वस्तुओं अर्थात् 'विषय वस्तु' के संबंध में नहीं है। उक्त निर्णय में, माननीय न्यायाधीश ने अभिव्यक्ति ''अधिहरण का विषय वस्तु'' को विचार में लिया है जिस अभिव्यक्ति को अधिनियम की धारा 6A (6) में बिल्कुल प्रयुक्त नहीं किया गया है। अधिनियम की धारा 6A (6) का सादा पठन दर्शाता है कि प्रयुक्त अभिव्यक्ति है ''जब कलक्टर अथवा अपीलीय प्राधिकारी इस धारा के अधीन मामले पर विचार कर रहा है'' और यह अभिव्यक्ति स्पष्टत: अधिहरण कार्यवाही से संबंधित है और न कि कार्यवाही की 'विषय वस्तु' से जिसे मेरे सुविचारित दृष्टिकोण में पटना उच्च न्यायालय के माननीय

एकल न्यायाधीश द्वारा गलत रूप से विचार में लिया गया है। **कन्हाई लाल भगत बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 1976 BBCJ 15**, में पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा यह मामला पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कलक्टर के समक्ष वस्तुओं की भौतिक प्रस्तुती बिल्कुल आवश्यक नहीं है बल्कि वस्तुओं का अभिग्रहण कलक्टर को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रति अपने विवेक का इस्तेमाल कर सकता है और यदि वह संतुष्ट है कि आदेशों के प्रावधान का उल्लंघन हुआ है, वह अधिनियम की धाराओं, 6A और 6B की आवश्यकता का अनुपालन करने के बाद प्रश्नगत वस्तुओं का अधिहरण कर सकता है। पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अधिनियम की धाराओं 6A और 6B पर विचार करके निम्नलिखित निबंधनों में विधि अधिकथित किया है:–

> *"13. tgk rd ;kph d fo}ku vfèkoDrk d çfrokn dk lcèk g fd tCr oLrvk dk çR;Fkh mik;Dr d le{k dHkh ugh çLrr fd;k x;k Fkk tk vfèkfu;e dh èkkjk 6A d vèkhu vfèkdkfjrk d ç;kx d fy, ijkHkkO; 'kr g] gekjk è;ku bu 'kCnk dh vkj vkÑ"V fd;k x;k g ^^tgk dkb vko';d oLr tCr dh tkrh g-------bl fdlh v;fDr;Dr foyc d fcuk ftyk dyDVj d le{k çLrr fd;k tk ldrk gA** vfèkfu;e dh èkkjk 6A e vku oky 'kCnk** bl çLrr fd;k tk ldrk g** dh 0;k[;k ej er e bl çdkj djuh gkxh rkfd ;g ,l ekey dk vkPNkfnr dj ld ftle tCr dh x;h oLr dh çÑfr d dkj.k bl dyDVj d le{k çLrr djuk lHko ugh gk ldrk gA* ***;g dYiuk ugh dh tk ldrh g fd lln dk vk'k; ;g Fkk fd ml èkkjk d vèkhu 'kfDr dk ç;kx fd, tk ldu d igyr tCr vukt] tk dN ekeyk e gtkjk fDoVy d otu dk gk ldrk Fkk] dk dyDVj d le{k Hkkfrd :i l çLrr djuk gkxkA ej nf"Vdk.k e] bldk vFk çR;d ekey e ç'uxr oLrvk dk Hkkfrd çLrrhdj.k ugh gA bldk vFk ;g g fd ç'uxr oLrvk dh tCrh dk ftyk dyDVj d ikl fjikV fd;k tkuk pkfg, tk ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k d çfr viu food dk bLreky dj ldrk g vkj ;fn og lr"V g fd ç'uxr vkn'k d çkoèkkuk dk mYy?ku gvk g] og vfèkfu;e dh èkkjkvk 6A vkj 6B dh vko';drkvk dk vuikyu dju d ckn ç'uxr oLr dk vfèkgj.k dj ldrk gA**** *(tkj fn;k x;k)*

15. मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि जब एक बार पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विनिश्चित किया गया था कि कलक्टर के समक्ष वस्तु का प्रस्तुतीकरण अधिहरण कार्यवाही आरंभ करने के लिए बिल्कुल आवश्यक नहीं है, माननीय एकल न्यायाधीश ने विपरीत दृष्टिकोण अपनाया है जो उसी उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय की अनवधानता के कारण है।

16. प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट–A में अंतर्विष्ट आदेश स्पष्टत: दर्शाता है कि उप–कलक्टर, रामगढ़ ने मामले के तथ्यों के प्रति अपने विवेक का इस्तेमाल किया था और याची को अधिनियम की धारा 6B के अधीन नोटिस जारी किया है कि एक टैंकर पर लादे गए डीजल के साथ अन्य टैंकरों को क्यों नहीं जब्त किया जाए क्योंकि उन्हें आवश्यक वस्तु अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करता पाया गया था। जब एकबार उपायुक्त, रामगढ़ ने अपने विवेक का इस्तेमाल किया था और याची को कारण बताओ नोटिस जारी किया था, मेरे सुविचारित दृष्टिकोण में उपायुक्त, रामगढ़ 'इस धारा के अधीन मामले पर विचार कर रहे थे' और यह नहीं कहा जा सकता है कि चूँकि उन्होंने प्रश्नगत टैंकरों का भौतिक कब्जा नहीं लिया था, अधिहरण कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी थी। जब एक बार यह पाया जाता है कि कलक्टर उक्त धारा के अधीन अधिहरण के मामले पर विचार कर रहा है, प्रश्नगत टैंकर निर्मुक्त करने के मामले

में अवर न्यायालय की अधिकारिता आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6A (6) के अधीन स्पष्टत: और दृढ़तापूर्वक बहिष्कृत की गयी है और तद्नुसार रामगढ़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 75 वर्ष 2013 में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित याची के पक्ष में जब्त टैंकरों को निर्मुक्त करने से इनकार करने वाले दिनांक 25.4.2013 के आक्षेपित आदेश में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है।

17. पूर्वोक्त कारणों से, मैं पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने योग्य विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ। इस आवेदन में गुणागुण नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

झारखंड रबता हज कमिटी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 3753 of 2012. Decided on 9th May, 2013.

हज कमिटी अधिनियम, 2002—धारा 18—राज्य हज कमिटी के अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति–प्रत्यर्थी पूर्व हज कमिटी का सदस्य था और अधिनियम, 2002 के अधीन नवगठित कमिटी में पूर्व सदस्यों के आमेलन का प्रावधान नहीं है–प्रत्यर्थी 2002 के अधिनियम के अधीन अथवा पूर्व नियमावली के अधीन भी कमिटी का कर्मचारी अथवा अधिकारी नहीं था–रिट याचिका खारिज की गयी। (पैराएँ 9 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Sujit Narayan Prasad, For the Petitioner; Md. Sohail Anwar, For the State; M/s Rajiv Ranjan, Altaf Hussain, For the Respondent No.5.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची दिनांक 16.9.2011 के अधिसूचना सं॰ 2082 (परिशिष्ट–5) से व्यथित है जिसके द्वारा हज कमिटी अधिनियम, 2002 की धारा 18 के अधीन झारखंड हज कमिटी गठित की गयी थी और उसने दिनांक 18.10.2011 की अधिसूचना (परिशिष्ट–6) को भी चुनौती दिया है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 को झारखंड राज्य हज कमिटी के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, प्रत्यर्थी सं॰ 5 अधिनियम, 2002 के प्रभाव में आने के पहले से ही दिनांक 3.7.2001 से हज कमिटी के सदस्य का पद धारण कर रहा था। अधिनियम 2002 की धारा 48 के मुताबिक, किसी विद्यमान कमिटी जो स्पष्टत: अधिनियम 2002 के प्रभाव में आने से पहले विद्यमान थी, का कोई कर्मचारी अथवा अधिकारी धारा 48 में उल्लिखित शर्तों के अध्यधीन और उस धारा के परन्तुक में उल्लिखित अन्य शर्तों के अध्यधीन अधिनियम, 2002 के अधीन ऐसे पद पर बने रहने का हकदार था। धारा 48 के उक्त प्रावधान की दृष्टि में, प्रत्यर्थी सं॰ 5 नवगठित हज कमिटी का सदस्य बन गया जिसे दिनांक 9 मई, 2008 की अधिसूचना के तहत वर्ष 2008 में गठित किया गया था और तब दिनांक 23 जून, 2008 की अधिसूचना के तहत प्रत्यर्थी सं॰ 5 को हज कमिटी का अध्यक्ष बनाया गया था जिस अधिसूचना की प्रति को परिशिष्ट–4 के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है।

अत:, याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, धारा 22 की उपधारा (2) की दृष्टि में कोई सदस्य तीन वर्षों तक और महत्तम दो पदावधि के लिए सदस्य का पद धारण कर सकता है। चूँकि प्रत्यर्थी सं॰ 5 को स्वीकृत रूप से दिनांक 3.7.2001 को सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था, तब वह केवल प्रत्येक तीन वर्ष की दो पदावधि के लिए पद धारण कर सकता था। उक्त कारणों की दृष्टि में प्रत्यर्थी सं॰ 5 को नवगठित हज कमिटी, जिसे दिनांक 16.9.2011 के परिशिष्ट–5 द्वारा गठित किया गया है, में सदस्य के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता था। जब एक बार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 को सदस्य के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता था, तब वह स्पष्टत: अध्यक्ष का पद धारण करने का पात्र नहीं था क्योंकि अध्यक्ष केवल कमिटी के सदस्यों के बीच में से ही हो सकता है।

4. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं॰ 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव रंजन ने निवेदन किया कि याचिका भ्रामक है क्योंकि अधिनियम 2002 केवल दिनांक 11.6.2002 के प्रभाव से प्रभाव में आया था और प्रत्यर्थी सं॰ 5 को अधिनियम 2002 की धारा 18 के अधीन जारी दिनांक 9.5.2008 की अधिसूचना द्वारा पहली बार राज्य सरकार द्वारा राज्य हज कमिटी के सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था। अधिनियम 2002 के पहले कोई अधिनियम नहीं था जिसके अधीन झारखंड राज्य में किसी हज कमिटी को गठित किया गया था। यह निवेदन किया गया है कि दिनांक 3.7.2001 की अधिसूचना केवल प्रशासनिक आदेश थी और, इसलिए, महत्तम अवधि, जिसके लिए हज कमिटी अधिनियम, 2002 के अधीन नियुक्त सदस्य द्वारा पद धारण किया जा सकता है की गणना के प्रयोजन से वह नियुक्ति बिल्कुल अप्रासंगिक थी। यह निवेदन भी किया गया है कि धारा 48 हज कमिटी अधिनियम, 2002 के अधीन नियुक्त कर्मचारियों और अधिकारियों पर लागू होती है और यह सदस्यों और अध्यक्ष पर प्रयोजन नहीं है। उक्त कारणों की दृष्टि में, प्रत्यर्थी सं॰ 5, जिसे हज कमिटी अधिनियम, 2002 की धारा 18 के अधीन जारी दिनांक 9.5.2008 की अधिसूचना द्वारा सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था, पहली बार दिनांक 9.5.2008 से सदस्य बन गया। अधिनियम 2002 की योजना के मुताबिक, कोई तीन वर्षों की अवधि तक और तत्पश्चात आगे तीन वर्षों तक अध्यक्ष का पद धारण कर सकता है और इस कारण से सदस्य के रूप में प्रत्यर्थी सं॰ 5 की नियुक्ति वैध और कानून सम्मत है। यह निवेदन भी किया गया है कि धारा 22 (2) की व्याख्या, जैसा याची द्वारा दिया गया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है और प्रत्यर्थीगण के अनुसार, बहिर्गामी सदस्य दो और अवधियों के लिए कमिटी में राज्य द्वारा पुन: नामांकित किए जाने का अवसर पा सकता है।

5. किंतु, धारा 22 (2) के आलोक में पदावधियों की संख्या का विवाद्यक हमारे विचार के लिए प्रासंगिक इस कारण से नहीं है कि यदि प्रत्यर्थी सं॰ 5 और राज्य का प्रतिवाद स्वीकार किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 को दिनांक 9.5.2008 को सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था, तब वर्ष 2011 की दूसरी नियुक्ति केवल दूसरी नियुक्ति है और यह दूसरी नियुक्ति के अवसान के बाद की नियुक्ति नहीं है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्युत्तर में निवेदन किया कि वस्तुत: प्रत्यर्थी सं॰ 5 को विधि के विनिर्दिष्ट प्रावधान के अधीन नियुक्त किया गया था जो दिनांक 3.7.2001 के परिशिष्ट 3 में उल्लिखित है जो कहती है कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 को ''झारखंड राज्य हज कमिटी नियमावली'' के प्रावधानों के अधीन झारखंड राज्य हज कमिटी के सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि दिनांक 3.7.2001 की अधिसूचना द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 को अध्यक्ष के रूप में दी गयी नियुक्ति केवल प्रशासनिक निर्णय है और किसी नियमावली के अधीन नहीं है।

7. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया और प्रासंगिक आदेशों तथा पक्षों द्वारा विश्वास किए गए विधियों का परिशीलन किया। हज कमिटी अधिनियम, 2002 का कोरा परिशीलन दर्शाएगा कि दिनांक 11 जून, 2002 को भारत के राष्ट्रपति द्वारा उक्त अधिनियम को स्वीकृति दी गयी थी। अधिनियम 2002 की धारा 2 (d) में सदस्य परिभाषित किया गया है। सदस्य की परिभाषा निम्नलिखित है:–

"(d)" lnL; l vfHkçr g èkkjk 4 d vèkhu eukuhr Hkkjr dh gt dfeVh vFkok èkkjk 18 d vèkhu eukuhr jkT; gt dfeVh] ;FkkfLFkfr] vkj ;g vè;{k rFkk mikè;{k dk lfEefyr djrh gA

8. अधिनियम 2002 की धारा 18 के अधीन सदस्य की नियुक्ति दी गयी है। धारा 18 का पठन निम्नलिखित है:–

"18. (1) jkT; ljdkj }kjk eukuhr fd, tku oky lkyg lnL;k l jkT; dfeVh xfBr gkxh] vFkkr%&

(a) jkT; dk çfrufèkRo dju oky efLye lkInk(

(b) jkT; foèkku lHkk d efLye foèkk;dk(vkj

(c) foèkku ifj"kn tgk ;g fo|eku g(

(ii) jkT; e LFkkuh; fudk;k dk çfrufèkRo dju oky efLye lnL;k e l rhu lnL;(

(iii) efLye èke'kkL= vkj fofèk e fo'k"kKrk j[ku oky rhu lnL; ftue l ,d f'k;k efLye gkxk(

(iv) ykd ç'kklu] foÙk] f'k{kk] lLÑfr vFkok lkekftd dk; d {k= e dk;jr efLye LofPNd lxBuk dk çfrufèkRo dju oky ikp lnL;(

(v) jkT; oDQ ckM d vè;{k(vkj

(vi) jkT; dfeVh dk dk;ikyd vfèkdkjh tk jkT; dfeVh dk inu lnL; gkxkh

ijUrq ;g fd fdlh l?kh; {k= dh dfeVh vFkok l;Dr jkT; dfeVh lnL;k dh ,lh l[;k l xfBr gkxh ftl fofgr fd;k tk ldrk gA

(2) ;fn tgk mièkkjk (1) d [kMk (i) vkj (ii) e mfYyf[kr dkfV;k e l fdlh e dkb efLye lnL; ugh g vFkok tgk jkT; e foèkku ifj"kn ugh g] euku;u ml rjhd l fd;k tk ldrk g ftl fofgr fd;k tk ldrk gA

9. अधिनियम 2002 की धारा 20 के मुताबिक, राज्य कमिटी की पदावधि धारा 19 के अधीन सदस्यों की सूची के प्रकाशन के बाद के दिन से आरंभ होते हुए तीन वर्ष है।

10. अधिनियम 2002 की धारा 21 (1) के मुताबिक, धारा 19 के अधीन राज्य कमिटी के सदस्यों के नामों के प्रकाशन के बाद राज्य को 45 दिनों के भीतर राज्य कमिटी के सदस्यों के नामों के प्रकाशन के बाद राज्य को 45 दिनों के भीतर राज्य कमिटी की पहली बैठक बुलाने की आवश्यकता है जिसमें राज्य कमिटी अपने सदस्यों के बीच में से अध्यक्ष चुनेगी। अत:, सदस्य और अध्यक्ष की नियुक्ति के लिए पूरी प्रक्रिया दी गयी है और यह भी स्पष्ट किया गया है कि कौन सदस्य हो सकता है। सदस्य कर्मचारी नहीं है जैसा अधिनियम 2002 की धारा 29 से स्पष्ट है जो राज्य सरकार को राज्य कमिटी के कार्यपालक

अधिकारी के रूप में पद धारण करने के लिए व्यक्तियों, जो उपसचिव के नीचे की श्रेणी का नहीं हो, को नियुक्त करने के लिए सशक्त बनाती है और कर्मचारियों तथा अधिकारियों को भी नियुक्त करने के लिए राज्य सरकार को सशक्त बनाती है जैसा वर्ष 2002 के इस अधिनियम के प्रयोजन को पूरा करने के लिए राज्य सरकार द्वारा आवश्यक समझा जा सकता है। सदस्य की पदावधि धारा 20 की उपधारा (1) में दी गयी है जो तीन वर्ष है और अध्यक्ष की पदावधि जैसा धारा 21 की उपधारा (4) में दिया गया है, भी तीन वर्ष है। धारा 22 (1) प्रावधानित करती है कि बहिर्गामी सदस्य दो पदावधि से अनधिक की अवधि के लिए राज्य कमिटी में पुनर्मनोनयन का पात्र होगा।

11. सारत: अधिनियम 2002 पूर्ण संहिता है और यह धारा 48 के अधीन प्रावधान बनाकर विद्यमान कमिटी के कर्मचारियों के समायोजन और आमेलन के लिए प्रावधान बनाती है और वे विद्यमान कमिटी के अधिकारियों और कर्मचारियों तथा पूर्व विद्यमान विधियों के अधीन राज्य कमिटी पर लागू होते हैं। यह किसी पूर्व विद्यमान विधियों के अधीन गठित किसी कमिटी के विद्यमान सदस्य अथवा विद्यमान अध्यक्ष पर लागू नहीं होते हैं। अत:, केवल इस आधार पर याची द्वारा अधिकथित नींव धराशायी हो जाती है क्योंकि प्रत्यर्थी सं॰ 5 अधिनियम 2002 के अधीन अथवा पूर्व नियमावली के अधीन भी कमिटी का कर्मचारी अथवा अधिकारी नहीं था जिसे उपर निर्दिष्ट किया गया है। स्वीकृत रूप से प्रत्यर्थी सं॰ 5 पूर्व हज कमिटी का सदस्य है और अधिनियम 2002 के अधीन नवगठित कमिटी में पूर्व सदस्यों के आमेलन का प्रावधान नहीं है। दिनांक 9.5.2008 की पहली अधिसूचना द्वारा सदस्य के रूप में प्रत्यर्थी सं॰ 5 की नियुक्ति अधिनियम 2002 के अधीन गठित हज कमिटी के सदस्य के रूप में नयी नियुक्ति थी और हज कमिटी के सदस्य और अध्यक्ष के रूप में प्रत्यर्थी सं॰ 5 की वर्ष 2011 में की गयी नियुक्ति दूसरी नियुक्ति थी।

12. उक्त कारणों से हम इस रिट याचिका में गुणागुण नहीं पाते हैं जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

बार ऐसोसियेशन, झारखंड उच्च न्यायालय

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 2347 of 2012. Decided on 29th July, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—पी॰ आई॰ एल॰–राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय की स्थापना–राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय को भूमि का कब्जा देने के पहले ही छात्रों को प्रवेश दिया गया था और यह प्रक्षेपित किया गया था कि नए भवन का निर्माण किया जाएगा–कुछ राज्य पदधारियों ने एकपक्षीय रूप से घोषित किया कि राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय को 50 करोड़ रुपयों का आवंटन एकमुश्त अनुदान था और विश्वविद्यालय को उसका भुगतान किया जा चुका है–अनेक अवसरों पर उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसा दृष्टिकोण कभी नहीं था–यह न्यायालय के घोर अवमान के तुल्य है–राज्य को इस निमित्त अभिलेख प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 2 से 6)

अधिवक्तागण.–Dr. S.N. Pathak, For the Petitioner; Mr. S. Srivastava, For the Respondent University; J.C. to A.A.G, For the Respondent State.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय अर्थात् विधि में अध्ययन एवं शोध का राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के स्थापना से संबंधित मामला है। मुख्यमंत्री स्वयं अप्रिल, 2011 में नींव समारोह के पक्ष थे और राज्य सरकार द्वारा राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय को भूमि का कब्जा सौंप दिया गया है। निर्माण शुरू हुआ, राज्य द्वारा आपत्तियों को प्रभावकारी रूप से दूर किया गया और तत्पश्चात बार-बार अनेक आश्वासन दिए गए थे कि राँची में राष्ट्रीय विधि अध्ययन एवं शोध विश्वविद्यालय स्थापित किया जाएगा ताकि झारखंड राज्य के छात्रों को लाभ मिल सके क्योंकि उक्त विश्वविद्यालय ने झारखंड के छात्रों के लिए 50% सीटों का आरक्षण प्रावधानित किया है। पहले के खातेदारों/भूमि धारकों की अनेक आपत्तियों पर पहले ही विचार किया गया था और समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के कारण इन्हें अस्वीकार कर दिया गया था और कुछ आदेशों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी किंतु इन्हें मान्य ठहराया गया था और स्थल पर काम प्रगति पर था। राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय को कब्जा दिए जाने के पहले ही छात्रों को प्रवेश दिया गया था और यह प्रक्षेपित किया गया था कि राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय के लिए नए भवन का निर्माण किया जाएगा क्योंकि राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय उस भवन के विशाल किराए का भुगतान कर रहा था जिसमें यह अपना परिसर और छात्रावास चला रहा था। लगभग दो वर्षों तक सरकार ने राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय की स्थापना का पूरा समर्थन किया और 50 करोड़ रुपए भी दिया और निधि का वह आवंटन इस जनहित याचिका को दाखिल किए जाने के पहले किया गया था। छात्रों का पहला बैच पहले ही परीक्षा में उपस्थित हुआ था और परिणाम भी घोषित किया गया था। विश्वविद्यालय को पहले ही राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय में उम्मीदवारों के चयन के लिए राष्ट्र के केंद्रीय परीक्षा प्रणाली (क्लैट) से संबद्ध किया गया है। विश्वविद्यालय अब क्लैट के माध्यम से छात्रों को प्रवेश दे रहा है। द्वितीय सत्र के लिए प्रवेश प्रक्रिया पहले ही पूरी की जा चुकी है और नए छात्रों को पहले ही प्रवेश दिया जा चुका है। इस न्यायालय के समक्ष अनेक अवसरों पर राज्य सरकार ने यथासंभव शीघ्र निधि देने के लिए अपनी इच्छा जतायी और राज्य के उन वचनों को अनेक आदेशों में दर्ज किया गया है। राँची में झारखंड राज्य में इस नए राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय में प्रवेश देने के लिए मेधावी छात्रों को चुनने के बाद अचानक कुछ राज्य पदधारियों ने स्थिति का लाभ लेते हुए अत्यन्त चतुर बनने का प्रयास किया और इसलिए न्यायालय को सूचित किए बिना एक पक्षीय रूप से घोषित किया कि राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय को 50 करोड़ रुपयों का आवंटन एकमुश्त अनुदान था और विश्वविद्यालय को इसका भुगतान किया जा चुका है। अनेक अवसरों पर इस न्यायालय के समक्ष ऐसा दृष्टिकोण कभी नहीं अपनाया गया था जो अनेक पूर्व आदेशों से प्रकट है जिसमें राज्य का दृष्टिकोण दर्ज किया गया है कि वे यथासंभव शीघ्र निधि निर्मुक्त करने का प्रयास करेंगे। दिनांक 6.3.2013 को विश्वविद्यालय ने पुनः इस न्यायालय के समक्ष निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण विश्वविद्यालय को पर्याप्त निधि निर्मुक्त नहीं कर रहे हैं और वह भी निर्माण के बीच में जिसके लिए कार्यादेश C.P.W.D. को आवंटित किया गया है जो केन्द्रीय सरकार का निर्माण विभाग है और न कि निजी ठेकेदार, हमने दिनांक 6.3.2013 के आदेश में पुनः दोहराया कि निधि की कमी के कारण निर्माण विलंबित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इस मोड़ पर काम रोका नहीं जा सकता है। हमने शीघ्रातिशीघ्र निर्णय लेने का निर्देश दिया। दिनांक 22.4.2013 के आदेश में कोष प्रदान करने से संबंधित तथ्यों को दर्ज किया गया था और इस न्यायालय के समक्ष निवेदन किया गया था

कि उपयोग प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद राज्य के संबंधित प्राधिकारियों द्वारा इसका पुनर्विलोकन किया जाएगा और किसी विलंब के बिना अतिरिक्त राशि निर्मुक्त करने के संबंध में सरकारी स्तर पर निर्णय किया जाएगा। पुनः राज्य सरकार को मामले का परिशीलन करने के लिए दिनांक 8.5.2013 तक का समय प्रदान किया गया था। दिनांक 8.5.2013 को यह पुनः इंगित किया गया था कि झारखंड राज्य के छात्रों के लिए 50% सीट आरक्षित की गयी है। दिनांक 12.6.2013 को इस न्यायालय ने राज्य सरकार द्वारा उठाए जाने के लिए आवश्यक कुल व्यय को निकालने के लिए सचिव, मानव संसाधन विभाग और सचिव, वित्त विभाग को निर्देश दिया और उस प्रयोजन से दोनों पक्ष साथ बैठ सकते हैं और मुद्दों पर निर्णय कर सकते हैं। याची के विद्वान अधिवक्ता के मुताबिक इस आदेश के बाद दिनांक 25.6.2013 को बैठक बुलायी गयी थी और उस बैठक के संकल्प के मुताबिक यह संकल्प किया गया था कि दिनांक 25.6.2013 के संकल्प के मुताबिक यह संकल्प किया गया था कि दिनांक 25.6.2013 के संकल्प की दृष्टि में उच्चतर स्तर पर मामले पर विचार करने की आवश्यकता है। दिनांक 4.7.2013 के आदेश में इस तथ्य को ध्यान में लिया गया है और तब इस न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि आज कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि राज्य सरकार द्वारा क्या निर्णय किया गया है और यदि राज्य सरकार को निर्णय लेने की आवश्यकता थी, राज्य सरकार ने अब तक निर्णय क्यों नहीं लिया है। सचिव, मानव संसाधन विभाग और सचिव, वित्त विभाग, झारखंड सरकार को दिनांक 12 जुलाई, 2013 को न्यायालय में उपस्थित रहने का निर्देश दिया गया था। दिनांक 12 जुलाई, 2013 को दोनों सचिव उपस्थित हुए और यह निवेदन किया गया था कि विश्वविद्यालय के अनुरोध को पुनः महामहिम राज्यपाल के सलाहकार और मुख्य सचिव के समक्ष रखा गया था किंतु इस पर कृपा दृष्टि नहीं डाली गयी थी। उस दिन, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने निवेदन किया कि स्थिति पर विचार करने के लिए प्रत्येक संभव तरीकों और साधनों को उस प्रयोजन से शपथ पत्र दाखिल करके अभिलेख पर रखा जाएगा।

3. आज किसी धीरेन्द्र नाथ ओझा, निदेशक, उच्च शिक्षा द्वारा शपथ पत्र दाखिल किया गया है और पैरा 5 में कथन किया गया है कि निदेशक, उच्च शिक्षा ने दिनांक 8.7.2013 के अपने पत्र सं॰ 1078 के तहत झारखंड के महामहिम राज्यपाल के सलाहकार के ओ॰ एस॰ डी॰, प्रमुख सचिव के निजी सचिव, कैबिनेट सचिवालय और समन्वय विभाग, झारखंड को मामले में की गयी कार्रवाई के बारे में सूचित किया। इस संसूचना की प्रति को आज दिनांक 29.7.2013 को दाखिल शपथ पत्र में अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है। इस संसूचना (परिशिष्ट-A) में दिनांक 8.5.2013 के निर्णय के संबंध में तथ्यों का उल्लेख किया गया है जिसके द्वारा यह निर्णय किया गया था कि अब और कोष प्रदान नहीं किया जाएगा क्योंकि विश्वविद्यालय को 50 करोड़ रुपयों का एकमुश्त अनुदान प्रदान किया गया था। तब इस तथ्य को ध्यान में लिया गया था कि इस न्यायालय ने दिनांक 12.6.2013 का आदेश पारित किया है और तब उसके प्रत्युत्तर में दिनांक 25.6.2013 को बैठक बुलायी गयी थी। तब इस तथ्य को ध्यान में लिया गया है कि इस न्यायालय ने दिनांक 12.7.2013 को मामले पर फैसला करने और निर्णय के साथ न्यायालय में आने का निर्देश दिया था और उक्त दो सचिवों को न्यायालय में उपस्थित रहने का निर्देश दिया गया था। तब पैरा 7 में यह कथन किया गया है कि दिनांक 4.7.2013 के आदेश की दृष्टि में दिनांक 25.6.2013 की बैठक में निर्णय किया गया था और उच्चतर स्तर पर निर्णय के लिए झारखंड के महामहिम राज्यपाल के सलाहकार को कार्रवाई करने के लिए दिनांक 9.7.2013 को फाइल भेजा गया था और सलाहकार ने फाइल को मुख्य सचिव को उनके मत के लिए भेजा था। पैरा 8 में यह कथन किया है कि मुख्य सचिव ने मत दिया कि ''विषय पर परामर्शी परिषद् दिनांक 8.5.2013 को ही निर्णय ले चुकी है'' तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि इस न्यायालय के निर्देशों के बावजूद, जिन्हें राज्य के अधिवक्ता को सुनने के बाद और राज्य के दृष्टिकोण कि निर्णय का पुनर्विलोकन किया जाएगा और मामला सुलझाया जाएगा, को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया था, मुख्य सचिव द्वारा एक पक्षीय निर्णय लिया गया था कि दिनांक 8.5.2013 की परामर्शी परिषद् के निर्णय की दृष्टि में सरकार मुद्दे का परीक्षण नहीं करेगी।

4. प्रथम दृष्टया यह इस न्यायालय के घोर अवमान के तुल्य है और यह जानने के लिए कि क्या यह कहकर कि सरकार अपने निर्णय का पुनर्विलोकन करेगी और नया निर्णय लेगी, इस न्यायालय को गुमराह किया गया था और यह इस न्यायालय के आदेशों की अवज्ञा भी है क्योंकि सरकार ने नए सिरे से मामले पर विचार नहीं किया है जिसके लिए आदेश में कारणों के साथ इस न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया था जिस कारण मामले पर विचार करने की जरूरत थी। पैरा 8 में उल्लिखित मुख्य सचिव के निर्णय से यह प्रतीत होता है कि मुख्य सचिव ने न्यायालय के आदेश का पालन करने से इनकार किया है कि उन्हें मुद्दा का परीक्षण करने के लिए विश्वविद्यालय के व्यक्तियों के साथ बैठक करनी चाहिए थी और तब राज्य द्वारा प्रदान किए जाने वाले निधि के बारे में बताना चाहिए था और तब निर्णय करना चाहिए था। दिनांक 8.5.2013 के परामर्शी परिषद् के उक्त सलाह के आधार पर एक पक्षीय निर्णय लिया गया प्रतीत होता है जो बैठक इस न्यायालय के आदेश के पहले की गयी थी और दिनांक 8.5.2013 के परामर्शी परिषद् के उस निर्णय पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने साथ बैठने और यह फैसला करने कि क्या विश्वविद्यालय को निधि प्रदान करना राज्य के हित में है या नहीं, का आदेश पारित किया।

5. इस न्यायालय को यह छवि दिखाकर भी गुमराह किया गया था कि राज्य सरकार झारखंड राज्य में अच्छा संस्थान पाने की इच्छुक है और उस प्रयोजन से यह वित्तीय सहायता प्रदान करेगी, स्पष्टत: यह राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने के लिए झारखंड के छात्रों को लाभ पहुँचाएगा जिसने झारखंड के छात्रों के लिए 50% सीट आरक्षित किया है।

6. चाहे जो भी हो, हम राज्य के नीतिगत निर्णय में हस्तक्षेप नहीं कर रहे हैं किंतु राज्य अधिकारीगण को न्यायालय से तथ्यों को छुपाने का अधिकार नहीं हो सकता है और वे इस न्यायालय को गुमराह नहीं कर सकते हैं और न्यायालय के आदेश की अवज्ञा नहीं कर सकते हैं। क्यों नहीं सरकार के निर्णय को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया था जिसमें निर्णय लिया गया था कि विश्वविद्यालय को 50 करोड़ रुपयों का अनुदान राज्य सरकार द्वारा सहमत एकमुश्त अनुदान है और विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकार किया गया है (यदि ऐसा कोई निर्णय है) और वह निर्णय द्विपक्षीय निर्णय था जिसके आधार पर विश्वविद्यालय ने भवन का निर्माण शुरू किया। यदि ऐसा कोई निर्णय नहीं है कि यह एकमुश्त अनुदान होगा, तब क्यों राज्य सरकार ने झारखंड राज्य में प्रतिष्ठित संस्थान की स्थापना से संबंधित समस्त संबंधित पहलूओं पर विचार करने से इनकार किया। क्यों नहीं दिनांक 8.5.2013 को परामर्शी परिषद् द्वारा दिए गए मत पर इस न्यायालय के आदेश के बावजूद पुनर्विचार किया गया था और यह निर्णय लेने का क्या कारण है कि वे दिनांक 8.5.2013 के परामर्शी परिषद् के निर्णय का पालन करेंगे, इसे भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। यदि राज्य अपने निर्णय को न्यायोचित ठहराना चाहता था कि विश्वविद्यालय बंद करने की कीमत पर और विश्वविद्यालय के समस्त छात्रों का भविष्य बर्बाद करने की कीमत पर राज्य कोष विश्वविद्यालय के भवन के निर्माण के लिए उपलब्ध नहीं कराया जाएगा, मुख्य सचिव की टिप्पणी अथवा आज दाखिल शपथ पत्र में कारण नहीं दिया गया है। तर्क के लिए यह उपधारित करते हुए कि राज्य ने निर्णय लिया कि राज्य 50 करोड़ रुपयों से अधिक विश्वविद्यालय को प्रदान नहीं करेगा, तब क्या दिनांक 8.5.2013 का निर्णय इतना पवित्र था कि पुनर्विचार के प्रयोजन से इसे छुआ तक नहीं जा सकता था? अत: मुख्य सचिव, प्रमुख सचिव, वित्त विभाग और मानव संसाधन विभाग द्वारा अवमान करने के लिए नोटिस जारी करने के पहले हम प्रत्यर्थी राज्य को मूल अभिलेख प्रस्तुत करने का निर्देश देते हैं जिसमें निर्णय लिया गया था कि प्रत्यर्थी राज्य विश्वविद्यालय को 50 करोड़ रुपए का एकमुश्त अनुदान प्रदान करेगा और निर्णय लिया गया था कि किसी तथ्य और परिस्थिति में सहायता बढ़ायी नहीं जाएगी और न ही सरकार समय की आवश्यकतानुसार मुद्दे का पुनर्परीक्षण करेगी और विश्वविद्यालय अधिकारियों के साथ बैठक

करके जरुरत पर विचार नहीं करेगी। राज्य को आगे अभिलेख प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है जिसमें निर्णय लिया गया था कि निर्माण के लिए विश्वविद्यालय को 50 करोड़ रुपयों का अनुदान विश्वविद्यालय के लिए पर्याप्त होगा और शेष व्यय विश्वविद्यालय वहन करेगा। राज्य को आगे शपथ पर कथन करने का निर्देश दिया जाता है कि विश्वविद्यालय के प्रतिवाद के संबंध में उनका दृष्टिकोण क्या है और क्या विश्वविद्यालय को स्वायत्त रूप से चलाने की जरूरत है अथवा इसे निजी व्यवसायी को दिया जा सकता है। हम केवल इस प्रयोजन से अपना दृष्टिकोण रख रहे हैं कि राज्य सरकार अभी भी मुद्दे का पुनर्विलोकन कर सकती है और निर्णय ले सकती है कि क्या झारखंड राज्य में प्रतिष्ठित संस्थान स्थापित करने की अनुमति दी जानी चाहिए विशेषत: जब 12 वर्षों तक झारखंड राज्य की उपेक्षा ऐसे अधिकारियों द्वारा की गयी है जो स्वयं अपना विधान सभा भवन और सचिवालय राजधानी में बना नहीं सके थे।

7. दिनांक 12 अगस्त, 2013 तक या इसके पहले उक्त आदेशों का पालन किया जाए।

8. मामला दिनांक 12 अगस्त, 2013 को रखा जाए।

9. इस आदेश की प्रति याची के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अधिवक्ता और राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

---

ekuuh; Jh pn'k[kj] U;k;efr

अशोक रॉय

cuke

बिहार राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक एवं अन्य

W.P. (S) No. 82 of 2002. Decided on 20th June, 2013.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के विषय में।

बिहार सेवा संहिता, 1952—नियम 74 (b) (ii)—अनिवार्य सेवानिवृत्ति–बैंकिंग सेवा–आक्षेपित आदेश नहीं दर्शाता है कि याची के संपूर्ण सेवा अभिलेख पर विचार किया गया था और निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि याची अनुत्पादक बन गया था–याची की सत्यनिष्ठा संदेहास्पद नहीं थी–आक्षेपित आदेश मनमानेपन के दुर्गुण से पीड़ित है–प्राधिकारियों की व्यक्तिपरक संतुष्टि को अभिलेख पर मॉजूद सामग्री के वस्तुपरक अनुचिंतन पर आधारित होना ही होगा–आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया गया–रिट याचिका अनुज्ञात की गयी। (पैराएँ 13 एवं 14)

निर्णयज विधि.–(2009) 15 SCC 221; (1992) 2 SCC 299; (2001) 3 SCC 314; (2013) 3 SCC 514; (2012) 3 SCC 580; (2012)3 SCC 580; (2001) 3 SCC 314—Relied.

अधिवक्तागण.–Mrs. Neeta Krishna, For the Petitioner; Mr. Mahesh Kumar Sinha, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–याची ने बिहार सेवा संहिता के नियम 74 (b) (ii) के अधीन शक्ति के प्रयोग में प्रत्यर्थी बैंक द्वारा पारित दिनांक 22.6.2000 के अनिवार्य सेवानिवृत्ति आदेश को चुनौती दिया है जिसके द्वारा याची को दिनांक 31.7.2000 के प्रभाव से सेवा से सेवानिवृत्त होने का आदेश दिया गया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याची को दिनांक 11.1.1972 को प्रत्यर्थी बैंक में सहायक के रूप मे नियुक्त किया गया था। सेवा पुस्तिका में सम्यक रूप से दर्ज उसकी जन्म तिथि दिनांक 15.7.1948 है और इसलिए याची को मूलत: दिनांक 15.7.2006 के प्रभाव से सेवा से अधिवर्षित होना

था। याची का मामला यह है कि याची की संपूर्ण सेवा अवधि के दौरान कोई विभागीय जाँच कभी नहीं आरंभ की गयी थी और न ही उसके विरुद्ध कोई दांडिक मामला आरंभ किया गया था। यह प्रतीत होता है कि दिनांक 7.8.1999 को प्रत्यर्थी बैंक के स्थापन कमिटी ने निर्णय लिया जिसके अनुसरण में याची को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने वाला दिनांक 22.6.2006 का आदेश पारित किया गया था। याची ने वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके उक्त आदेश को चुनौती दिया है।

3. प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें यह स्वीकार किया गया है कि बिहार सेवा संहिता के प्रावधान लागू होंगे। यह कथन भी किया गया है कि प्रत्यर्थी बैंक की वित्तीय दशा अच्छी नहीं थी और इसलिए प्रत्यर्थी बैंक की स्थापना कमिटी ने दिनांक 7.8.1999 की अपनी बैठक में एकमत से संकल्प किया कि बैंक के ऐसे समस्त कर्मचारीगण जो अपनी उपयोगिता खो बैठे है और बैंक के लिए अनुपयोगी हो गए हैं और बैंक की सेवा में उनका आगे बने रहना लोक हित में वांछनीय नहीं समझा जाता है, सेवा से सेवानिवृत्त कर दिए जाएँगे। आगे यह कथन किया गया है कि याची सूचना अथवा प्राधिकृत अवकाश के बिना आदतवश अनुपस्थित रहता था और इस प्रकार बैंक का कार्य बाधित होता था। याची को दिनांक 22.9.1999 को दो दिनों के भीतर उत्तर देने का निर्देश देते हुए कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। इन परिस्थितियों के अधीन, प्रत्यर्थी बैंक द्वारा दिनांक 22.6.2000 के अनिवार्य सेवानिवृत्ति आदेश को न्यायोचित और विधिक ठहराया गया है।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए और अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों का परिशीलन किया गया।

5. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्रीमती नीता कृष्णा ने प्रतिवाद किया है कि याची, जो प्रत्यर्थी बैंक में सहायक के रूप में कार्यरत था, ने किसी विभागीय जाँच का सामना कभी नहीं किया था क्योंकि उसने कभी कोई अवचार नहीं किया था। बैंक के धन के किसी दुर्विनियोग के लिए याची के विरुद्ध कोई दांडिक मामला कभी नहीं दर्ज किया गया था। स्थापना कमिटी की अनुशंसा बैंक की सेवा से उन व्यक्तियों को हटाने के लिए जो अनुपयोगी हो गए हैं और जिनका सेवा में बने रहना बैंक के हित में नहीं था। स्थापन कमिटी का निर्णय याची को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का नहीं है। आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत नहीं होता है कि प्राधिकारी, जिसने दिनांक 22.6.2000 का आदेश पारित किया है, के समक्ष क्या सामग्री थी जिसके आधार पर याची को अनिवार्य रूप से सेवा से सेवानिवृत्त किया गया था। आक्षेपित आदेश में मात्र यह दर्ज करके कि कर्मचारी अनुपयोगी हो गया है और सेवा में उसका बने रहना बैंक के लिए लाभदायी नहीं है और याची को सेवानिवृत्त करना लोकहित में है, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, यह आधार के रूप में आक्षेपित आदेश में उद्धृत तक नहीं किया गया है। प्राधिकारी जिसने अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित किया है के समक्ष सामग्री होनी चाहिए थी जिसके आधार पर वह अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित कर सकता था जो स्वीकृत रूप से आक्षेपित आदेश से सामने नहीं आता है। प्रतिशपथ पत्र में किया गया अभिवचन कि याची आदतवश गैरहाजिर रहता था, याची के विरुद्ध आरोप नहीं था क्योंकि परिशिष्ट–A के सिवाए और वह भी बिल्कुल अंत में जब आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, याची को कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था।

6. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिशपथ पत्र में लिए गए दृष्टिकोण को दोहराया है और

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 889 वर्ष 2004– ''बाल्मिकी सिंह बनाम बिहार राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक एवं अन्य''–में पारित माननीय पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है।

7. अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने दिनांक 22.6.2000 का आदेश पारित किया जिसके द्वारा याची को दिनांक 7.8.1999 को प्रत्यर्थी बैंक की स्थापना कमिटी द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसरण में दिनांक 31.7.2000 के प्रभाव से सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था। प्रत्यर्थी बैंक द्वारा प्राख्यान किया गया है कि स्थापन कमिटी ने दिनांक 7.8.1999 की अपनी बैठक में बैंक की सेवा से कैसे समस्त कर्मचारियों को हटाने का निर्णय लिया था जो अपनी उपयोगिता खो बैठे हैं और बैंक की सेवा में उनको बनाए रखना लोकहित में नहीं है। यद्यपि दिनांक 22.6.2000 के आक्षेपित आदेश में यह कथन किया गया है कि नियम 74 (b) (ii) के अधीन शक्ति का प्रयोग लोकहित में किया गया है, न तो दिनांक 22.6.2000 के आक्षेपित आदेश में और न ही प्रत्यर्थी बैंक की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र में यह स्थापित करने के लिए किसी सामग्री अथवा आरोप का उल्लेख है कि याची इतना अकार्यकुशल था अथवा उसका आचरण ऐसा था कि सेवा में उसको रखे रहना बैंक के हित में नहीं था। झारखंड सेवा संहिता के नियम 74 (b) (ii) को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *^^fu;e 74. (a) jkT; ljdkj fdlh ljdkjh lod] ftlu mldh çFke fu;fDr dh frfFk l lxf.kr dr0; dk 21 o"k vkj dy lok dk 25 o"k ijk dj fy;k g] dk ljdkjh lok l lokfuoÙk djuk vko';d cuk ldrh g ;fn ;g le>rh g fd mldh dk;d'kyrk vFkok vkpj.k ,lk ugh g tk lok e mldk j[k jgu dk U;k;kfpr Bgjkrh gA tc fdlh ljdkjh lod d fy, bl çdkj lokfuoÙk gkuk vko';d cuk;k tkrk g] fdlh fo'k"k evkotk dk nkok xg.k ugh fd;k tk,xkA*
>
> *(b) (i) ioorh mifu;e e vrfo"V fdlh pht d ckotn ljdkjh lod lcfèkr çkfèkdkjh dk fyf[kr e de l de rhu ekg dk io ukfVl nu d ckn ml frfFk ij ftl frfFk ij ,lk ljdkjh lod vfgr lok dk 30 o"k ijk djrk g vFkok 50 o"k dh vk; çkIr djrk g vFkok ukfVl e fofufn"V fd, tku oky fdlh frfFk d rRi'pkr lok l lokfuoÙk gk ldrk gA*
>
> *ijUr ;g fd fuycukèkhu ljdkjh lod jkT; ljdkj d fofufn"V vueknu d flok, lok l lokfuoÙk ugh gkxkA*
>
> *ijUr vkx ;g fd e[; U;k;kèkh'k d fu;e cuku d çkfèkdkj d vèkhu iVuk mPp U;k;ky; d vfèkdkfj;k vkj lodk (jkph e lfdV cp d vfèkdkfj;k rFkk lodk lfgr) d ekey e fuycukèkhu ,lk dkb vfèkdkjh vkj lod e[; U;k;kèkh'k d fofufn"V vueknu d flok, lok l lokfuoÙk ugh gkxkA*
>
> *(ii) lcfèkr fu;Dr dju okyk çkfèkdkjh ljdkjh lod dk de l de fyf[kr e rhu ekg dk io ukfVl vFkok ,l ukfVl d cny rhu ekg d oru vkj HkÙkk d cjkcj jkf'k nu d ckn ml d fy, ml frfFk ij ftl frfFk ij ,lk ljdkjh lod vfgr lok dh rhl o"k ijk djrk g vFkok ipkl o"k dh vk; çkIr djrk g vFkok ukfVl e fofufn"V fd, tku oky fdlh frfFk d rRi'pkr ykdfgr e lok l lokfuoÙk gkuk vko';d cuk ldrk gA*
>
> *(iii) ljdkjh lod] tk LoPNkiod lokfuoÙk gkrk g] ftld fy, bl fu;e d vèkhu 50 o"k dh vk; çkIr dju ij vFkok 30 o"kk dh vfgr lok ijh dju ij ykd fgr e lokfuoÙk gkuk vko';d cuk;k x;k g] lokfuofr i'ku vkj eR;&lg&lokfuofÙk minku dk gdnkj gkxkA*

[ukV 1– bl fu;e d vulj.k e çHkkodkjh cuk;h x;h vfuok; lokfuofÙk lfoèkku d vuPNn 311 d [kM (2) d vFk d vrxr lok l c[kkLrxh vFkok gVk, tku d rY; ugh g vkj bl çdkj lokfuofÙk ljdkjh lod vfèkdkjr% nkok ugh dj ldrk g fd ml bl lcèk e dh tku okyh çLrkfor dkjokb d fo#) dkj.k crku dk ;fDr;Dr volj fn;k tkuk pkfg,A , l ekeyk e ljdkjh lok l mldk vfuok; r% lokfuoÙk dju d igy ljdkjh lod d fo#) foHkkxh; dk;okgh d lLFkkiu d fy, vfèkdfFkr çfØ;k dk vulj.k djuk Hkh vko';d ugh gkxk]

*[ukV 2– ml frfFk] ftl ij ljdkjh lod dk vfuok; r% lokfuoÙk gkuk gh gkxk] d ij tku oky fu;e 183 d vèkhu vodk'k çnku vFkok ml frfFk d ij ftl rd ljdkjh lod dk lok e cu jgu dh vuefr nh x;h g] dk ml frfFk rd ftl ij vodk'k dk volku gkrk g] lok d foLrkj.k d fy, etjh d :i e ekuk tk,xkA***

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **''मध्य प्रदेश राज्य सहकारी डेयरी फेडरेशन लिमिटेड एवं एक अन्य बनाम रजनीश कुमार जमीन्दार एवं अन्य, (2009)15 SCC 221,** में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"43. vc ;g fofèk dk lfuf'pr fl)kr g fd fu;kDrk [ky d fu;e l ckè; gkxkA bl Lo; }kjk vfèkdfFkr ekud dk vulj.k djuk gh gkxkA ;fn fdlh çdkj d fu.k;k ij vku d fy, çfØ;k, fofgr dh x;h g] budk lkjoku :i l vuikyu fd;k tkuk pkfg, Hky gh ; fun'kkZed çÑfr dh gA bl fu;e dk foVkjYyh cuke lhVu e ÝdQVj] U;k;efr }kjk ifrikfnr fd;k x;k Fkk ftle fo}ku U;k;kèkh'k u dgk Fkk%&

*^^dk;ikyd ,tlh dk dBkjrkiod mu ekudk ij [kjk mrjuk gkxk ftld }kjk ;g viuh dkjokb dk tkp tku dh odkyr djrk g------- rnulkj] ;fn fu;k tu l c[kkLrxh ifjHkkf"kr çfØ;k ij vkèkkfjr g] ;|fi ;g vko';drkvk d ij nku'khy@mnkj g tk ,lh ,tlh dk ckèkrh g] ml çfØ;k dk ijh bekunkjh l ikyu djuk gkxk-----ç'kklfud fofèk dk ;g U;kf;d :i l fodflr fu;e vc n<rkiod LFkkfir g vkj] ;fn e dg] ,lk fcYdy lgh gA fd og] tk çfØ;kZed ryokj mBkrk g] dk ml ryokj dk viuh cfy p<kuk gkxkA***

9. अनिवार्य सेवानिवृत्ति से संबंधित सिद्धांतों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **''बैंकुंठ नाथ दास एवं एक अन्य बनाम मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी, वारीपद एवं एक अन्य, (1992)2 SCC 299,** में चर्चा किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

"34. mDr ppk l fuEufyf[kr fl)kr lkeu vkr g%

(i) vfuok; lokfuofÙk dk vkn'k nM ugh gA ;g dkb dyd vFkok n0;ogkj dk dkb l>ko foof{kr ugh djrk gA

(ii) vkn'k ljdkj }kjk ;g er fufer fd, tku ij ikfjr fd;k tkuk g fd ljdkjh lod dk vfuok; r% lokfuoÙk djuk ykdfgr e gA vkn'k ljdkj d 0;fDrijd lrf"V ij ikfjr fd;k tkrk gA

(iii) vfuok; lokfuofÙk d vkn'k d lnHk e ulfxd U;k; d fl)kr dk dkb LFkku ugh gA bldk vFk ;g ugh g fd U;kf;d loh{k.k ijh rjg vioftr gA ;|fi mPp U;k;ky; vFkok ;g U;k;ky; vihyh; U;k;ky; d :i e ekey

dk ijh{k.k ugh djxk] o gLr{ki dj ldr g ;fn o lr"V g fd ikfjr vkn'k (d) vlnHkkoi.k g] vFkok ([k) fd fdlh lk{; ij vkèkkfjr ugh g] vFkok (x) euekuk g bl vFk e fd dkb ;fDr;Dr 0;fDr nh x;h lkexh ij vè;if{kr er fufer ugh djxk(l{ki e] ;fn bl foÑr vkn'k ik;k tkrk gA

(iv) ljdkj (vFkok iufoykdu dfeVh] ;FkkfLFkfr) dk fu'p; gh ckn d o"kk d dr0;ikyu d vfHky[k dk vfèkd egRo nr g, ekey e fu.k; yu l igy lok d li.k vfHky[k ij fopkj djuk gkxkA bl çdkj fopkj fd;k tku okyk vfHky[k LokHkkfodr% xkiuh; vfHky[k@pfj= iLrd e vudy vkj foijhr nkuk çfof"V;k dk lfEefyr djxkA ;fn ljdkjh lod dk çfrdy fVli.kh d ckotn mPprj in ij çkUufr nh tkrh g] ,lh fVlif.k;k viuk egRo [kk nxhA fo'k"kdj] vxj ikUufr eèkk (p;u) ij vkèkkfjr g vkj u fd ojh;rk ijA

(v) vfuok; lokfuofÙk dk vkn'k ek= ;g n'kk, tku ij U;k;ky; }kjk vfHk[kfMr fd, tku dk nk;h ugh g fd bldk ikfjr djr g, vlfpr fVlif.k;k dk Hkh fopkj e fy;k x;k FkkA og ifjfLFkfr Lo; e gLr{ki dk vkèkkj ugh gk ldrh gA

gLr{ki doy mij (iii) e mfYyf[kr vkèkkjk ij vuK; gA bl igy ij Åij ijk 30 l 32 e ppk dh x;h gA**

10. पुनः, **''गुजरात राज्य बनाम उमेदभाई एम॰ पटेल'', (2001)3 SCC 314,** में अनिवार्य सेवानिवृत्ति से संबंधित सिद्धांतों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित रूप में संक्षिप्त किया गया है:–

"11. vfuok; lokfuofÙk l lcfèkr fofèk vc fuf'pr fl)krk e rjk'k nh x;h g ft l ekV rkj ij bl çdkj lf{kIr fd;k tk ldrk g%

(i) tc dHkh Hkh ykd lod dh lok, lkekU; ç'kklu d fy, vc mi;kxh ugh g] vfèkdkjh dk ykd fgr dh [kkfrj vfuok;r% lokfuoÙk fd;k tk ldrk gA

(ii) lkekU;r%] vfuok; lokfuofÙk d vkn'k dk lfoèkku d vuPNn 311 d vèkhu vku oky nM d :i e ugh ekuk tk ldrk gA

(iii) cgrj ç'kklu d fy, vui;kxh 0;fDr dk gVkuk vko';d g fdr vfuok; lokfuofÙk dk vkn'k vfèkdkjh d li.k lok vfHky[k dk lE;d :i l è;ku e yu d ckn ikfjr fd;k tk ldrk gA

(iv) xkiuh; vfHky[k e dh x;h fdlh çfrdy fVli.kh dk Hkh fopkj e yuk gkxkA

(v) xkiuh; vfHky[k e vlfpr çfof"V;k dk Hkh fopkj e fy;k tk ldrk gA

(vi) vfuok; lokfuofÙk vkn'k dk foHkkxh; tkp] tc ,lk jkLrk vfèkd okNuh; g] l cpu d fy, 'kkVdV d :i e ikfjr ugh djuk gkxkA

(vii) ;fn xkiuh; vfHky[k e dh x;h çfrdy çfof"V;k d ckotn vfèkdkjh dk çkUufr nh x;h g] ;g oLrr% vfèkdkjh d i{k e gA

(viii) vfuok; lokfuofÙk nMkRed mik; d :i e vfèkjkfir ugh dh tk,xhA**

11. ''राजेश गुप्ता बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य एवं अन्य,'' (2013)3 SCC 514, में और **नंदकुमार वर्मा बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, (2012)3 SCC 580,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समरुप दृष्टिकोण अपनाया गया है।

12. ''बाल्मिकी सिंह'' (उपर) में माननीय पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का विश्वास पूर्णत: कुस्थापित है क्योंकि उक्त मामले में अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि बिहार सेवा संहिता के नियम 74 (b) (ii) के प्रावधान बैंक के कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगे जबकि वर्तमान मामले में यह स्वीकृत अवस्था है कि झारखंड सेवा संहिता के प्रावधान लागू होंगे। **''बाल्मिकी सिंह'' (उपर)** में भी माननीय पटना उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि बिहार सेवा संहिता के प्रावधान बैंक के कर्मचारियों पर प्रयोज्य होंगे।

13. न तो आक्षेपित आदेश से और न ही प्रत्यर्थी बैंक की ओर से दाखिल प्रति शपथ पत्र से यह प्रतीत होता है कि याची के संपूर्ण सेवा अभिलेख पर विचार किया गया था और तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी सं॰ 2 इस निष्कर्ष पर आया कि याची अनुपयोगी बन गया है और इसलिए, सेवा में कार्य कुशलता बनाए रखने के लिए याची की सेवा को समाप्त करना आवश्यक था। मामले के अभिलेख से यह भी प्रतीत नहीं हो रहा है कि याची की सत्यनिष्ठा संदेहास्पद थी और इसलिए प्रशासन में पवित्रता संरक्षित करने के लिए अनिवार्य सेवानिवृति का आदेश पारित किया गया था। दिनांक 22.6.2000 का आक्षेपित आदेश मनमानेपन के दुर्गुण से पीड़ित है। यह सुनिश्चित विधि है कि यह अभिनिश्चित करना न्यायालय के लिए अनुज्ञेय है कि क्या वैध सामग्री अथवा अन्यथा विद्यमान है जिस पर प्रशासनिक प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि आधारित है। **((2012)3 SCC 580** और **(2001)3 SCC 314** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया गया है।) यह भी सुनिश्चित विधि है कि यद्यपि प्राधिकारियों का निर्णय प्राधिकारियों की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित होगा, किंतु इसे अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के वस्तुपरक अनुचिंतन पर भी आधारित होना होगा। यह उपदर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि सामग्रियाँ विद्यमान हैं जिन पर विचार करके प्रत्यर्थी सं॰ 2 इस निष्कर्ष पर आए कि यह लोकहित में है कि याची को सेवा से अनिवार्यत: सेवानिवृत्त करना चाहिए।

14. उक्त की दृष्टि में, रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। दिनांक 22.6.2000 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है। प्रत्यर्थी सं॰ 3 और 4 को याची को देय समस्त स्वीकार्य विधिक देयों को संगणित करने का निर्देश दिया जाता है और प्रत्यर्थी सं॰ 2 को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की प्रति की प्रस्तुति की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर याची को ऐसा भुगतान कर दिया जाए।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

बासमती दास

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.C. N0. 6445 of 2012. Decided on 8th July, 2013.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 21—जीवन की हानि–मुआवजा–अतिवादी हिंसा के कारण याची के पति की मृत्यु–उसमें अधिकथित मापदंड के मुताबिक अतिवादी हिंसा पर पीड़ित को मुआवजा भुगतेय है–मृत्यु की स्थिति में मुआवजा 10 लाख रुपया है, स्थायी नि:शक्तता के लिए मुआवजा 50,000/- रुपया है और गंभीर रूप से घायल व्यक्ति के लिए मुआवजा 10,000/- रुपया है–किंतु ऐसा लाभ ऐसे मृतक के आश्रितों को नहीं दिया जा सकता था यदि मृतक स्वयं अतिवादी अथवा आतंकवादी अथवा आरोपपत्रित अभियुक्त है–यह आवश्यक नहीं है कि संबंधित व्यक्ति को समुचित विचारण के बाद दोषसिद्ध होना चाहिए था–मृतक आरोप पत्रित था–रिट याचिका खारिज की गयी। (पैराएँ 4, 6 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Pankaj Kumar, For the Petitioner; J.C. to A.A.G., For the State; Mrs. Chandra Prabha, For the Union of India.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता सुने गए।

2. याची दिनांक 4.10.2011 को उग्रवादी हिंसा के कारण अपने पति ईश्वर दास की मृत्यु के कारण राज्य सरकार और भारत सरकार से पर्याप्त मुआवजा इप्सित कर रही है।

3. याची के अनुसार दिनांक 4.10.2011 को कुछ उग्रवादियों ने उसके पति ईश्वर दास और उसके ससुर फतिन्दर दास की हत्या कर दी। प्राथमिकी उसकी सास द्वारा दर्ज की गयी थी। याची स्व॰ ईश्वरदास की पत्नी है और भुखमरी के कगार पर है और अपना परिवार चलाने के लिए दाई के रूप में कार्यरत है। आगे यह निवेदन किया गया है कि पहले याची की सास ने मुआवजा और अनुकंपा पर नियुक्ति के दावा के संबंध में अंचलाधिकारी, बोलवा, सिमडेगा के समक्ष आवेदन (परिशिष्ट–3) दिया था।

4. अपने प्रतिशपथ पत्र में प्रत्यर्थी राज्य ने स्पष्ट कथन किया है कि दिनांक 16.2.2006 के प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट–B में अंतर्विष्ट राज्य सरकार के संकल्प और दिनांक 7.5.2003 के परिशिष्ट–C में अंतर्विष्ट पूर्व संकल्प के मुताबिक उसमें अधिकथित मापदंड के मुताबिक उग्रवादी हिंसा पर पीड़ित को मुआवजा भुगतेय है। मृत्यु की स्थिति में मुआवजा 10 लाख रुपया है, स्थायी नि:शक्तता के लिए मुआवजा 50,000/- रुपया है और गंभीर रूप से घायल व्यक्ति के लिए मुआवजा 10,000/- रुपया है, किंतु इसी संकल्प ने शर्त विहित किया कि ऐसा लाभ ऐसे मृतक के किसी आश्रित को नहीं दिया जा सकता था यदि मृतक स्वयं उग्रवादी, आतंकवादी अथवा आरोप–पत्रित अभियुक्त है अथवा वैध पुलिस मुठभेड़ में मारा गया है अथवा उस कारण घायल अथवा नि:शक्त हुआ है। उपायुक्त, सिमडेगा की अध्यक्षता के अधीन की गयी दिनांक 8.10.2012 के बैठक के वृत्तांत परिशिष्ट–D को निर्दिष्ट करते हुए यह निवेदन किया गया है कि याची के आवेदन पर विचार किया गया था और यह पाया गया था कि मृतक ईश्वरदास के विरुद्ध पाँच दांडिक मामला लंबित है जो निम्नलिखित है:–

(i) HkkO nO lO dh èkkjkvk 364/302/34 d vèkhu vkj vk;èk vfèkfu;e dh èkkjk 27 d vèkhu fnukd 4.11.2007 dk djnx ihO ,lO dl lO 40 o"k 2007.

(ii) HkkO nO lO dh èkkjkvk 364A/120B/34 d vèkhu fnukd 20.12.2008 dk dnx ihO ,lO dl lO 42 o"k 2008.

(iii) Hkk0 n0 l0 dh ekkjk 392 d vèkhu vkj vk;èk vfèkfu;e dh ekkjk 25 d vèkhu fnukd 9.10.2007 dk jk;ckxk (mMh lk) ih0 , l0 dl l0 32 o"k 2007.

(iv) Hkk0 n0 l0 dh ekkjk 392 d vèkhu vkj vk;èk vfèkfu;e dh ekkjk 25 d vèkhu fnukd 4.6.2008 dk jk;ckxk (mMh lk) ih0 , l0 dl l0 12 o"k 2008.

(v) Hkk0 n0 l0 dh ekkjkvk 387/307/34 d vèkhu vkj vk;èk vfèkfu;e dh ekkjkvk 25/27 d vèkhu fnukd 21.10.2008 dk fcjfe=kij (mMh lk) ih0 , l0 dl l0 192 o"k 2008.

5. ऐसी परिस्थिति में कमिटि ने गृह विभाग, झारखंड सरकार के दिनांक 7.5.2003 के संकल्प के आधार पर याची का आवेदन अस्वीकार कर दिया है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि मृतक को केवल आरोप-पत्रित किया गया था और दोषसिद्ध नहीं किया गया था और, इसलिए, याची को मुआवजा देने से इनकार नहीं करना चाहिए। किसी मामले में किसी व्यक्ति को केवल नामित किए जाने से वह अपराधी नहीं बन जाता है जैसा प्रश्नगत संकल्प में अनुबंधित शर्त है।

7. मैंने पक्षों के अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है और परिशिष्ट-D सहित अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्रियों का परिशीलन किया है। अपने पति ईश्वर दास की मृत्यु के कारण याची द्वारा मुआवजा का दावा ताथ्यिक आधार पर आधारित है कि दिनांक 4.10.2011 को कतिपय उग्रवादियों द्वारा उग्रवादी हिंसा में मृतक की हत्या की गयी है। ऐसी परिस्थिति में मुआवजा प्रदान के लिए राज्य सरकार की नीति दिनांक 7.5.2003 और दिनांक 16.2.2006 के संकल्प में अधिकथित की गयी है। उक्त संकल्प के मुताबिक यदि मृतक आतंकवादी, उग्रवादी अथवा आरोप-पत्रित अभियुक्त है, ऐसे मृतक के आश्रित मुआवजा का दावा करने के हकदार नहीं होंगे। दिनांक 8.10.2012 के कार्यवृत्त (परिशिष्ट-D) के परिशीलन पर यह प्रतीत होता है कि मृतक पाँच दांडिक मामलों का सामना कर रहा था जिसे यहाँ उपर वर्णित किया गया है। मुआवजा प्रदान करने के मामले में राज्य सरकार इस तरीके से संकल्प अधिकथित करने की हकदार है जहाँ ऐसे उग्रवादी, आतंकवादी अथवा आरोपपत्रित व्यक्ति के आश्रित को मुआवजा के लाभ से इनकार किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि संबंधित व्यक्ति को समुचित विचारण के बाद दोषसिद्ध किया गया था।

8. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, याची उग्रवादी हिंसा में अपने पति की मृत्यु के कारण मुआवजा के भुगतान के लिए प्रत्यर्थीगण पर निर्देश जारी करने का मामला बनाने में सक्षम नहीं हुई है।

9. तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

सितेश्वर राम

cuke

झारखंड राज्य

I.A. Nos. 3220, 3221, 3222, 3223, 3224, 3226, 3227, 3228, 3229, 3230, 3231, 3233, 3234, 3236, 3237, 3238, 3239, 3241, 3242, 3243, 3245, 3246, 3247, 3248, 3249, 3251, 3252, 3253, 3254, 3256, 3257, 3259, 3260, 3262, 3263, 3264, 3265, 3266, 3267, 3268, 3269, 3270, 3271, 3272, 3273, 3275, 3276, 3277, 3280, 3281, 3282, 3283, 3284, 3285, 3286, 3287, 3288, 3289, 3290 with 3291 of 2013 In F.A. Nos. 129,

130, 131, 133, 134, 139, 140, 141, 145, 146, 147, 150, 152, 154, 155, 159, 160, 163, 164, 165, 167, 168, 169, 170, 171, 172, 173, 176, 177, 179, 180, 182, 184, 185, 187, 188, 193, 194, 195, 197, 199, 203, 204, 205, 206, 208, 209, 210, 213, 214, 216, 217, 218, 221, 222, 223, 224, 225, 226 with 227 of 2006 . Decided on 5th July, 2013.

न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870—धारा 35—न्यायालय शुल्क के भुगतान से छूट न्यायालय–पात्र वादकर को न्यायालय शुल्क का भुगतान करने से छूट प्रदान कर सकता है–सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी आय प्रमाण पत्र की दृष्टि में अध्यपेक्षित न्यायालय शुल्क के भुगतान से छूट प्रदान किया गया–शुल्क स्वीकृत। (पैराएँ 1 एवं 2)

निर्णयज विधि.–1994(1) PLJR 486—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s Bhawesh Kumar, Ravi Kumar, Rahul Kamlesh, For the Appellants; Mr. R. Mukhopadhaya, For the State.

आदेश

समरुप विवाद्यक/बिंदु अंतर्ग्रस्त करने वाले उक्त निर्दिष्ट समस्त आई॰ ए॰ को साथ सुना गया है और निम्नलिखित एक ही आदेश द्वारा निपटाया गया है:–

अपीलार्थीगण–आवेदकगण ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 सह–पठित न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 35 के अधीन अन्य बातों के साथ यह कथन करते हुए वर्तमान आवेदनों को दाखिल किया है कि आवेदकगण गरीब व्यक्ति हैं और उनकी वार्षिक आय 50,000/- रुपया प्रतिवर्ष से कम है और अपीलार्थीगण–आवेदकगण ने अंचलाधिकारी, कोडरमा के कार्यालय द्वारा जारी दिनांक 8.2.2008 का प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत किया है जिसके द्वारा यह प्रमाण पत्रित किया गया है कि अपीलार्थीगण–आवेदकगण की आय 24,000/- रुपया प्रतिवर्ष है। अपीलार्थीगण–आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता ने **श्रीमती कैटरिना टोप्पो बनाम श्रीमती मटिल्डा उरैन एवं अन्य,** 1994 (1) PLJR 486, मामले में निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 2, 3 और 6 वर्तमान आवेदनों को विनिश्चित करने के प्रयोजन से प्रासंगिक प्रतीत होते हैं और उन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *"2. ;kph u fnukd 19 vxLr] 1981 d vfèkIpuk l0 ,l0 vk0 1207 d vkèkkj ij U;k;ky; Qhl d Hkxrku l bl vkèkkj ij NV bfIr djr g, vkonu nkf[ky fd;k g fd og vulfpr tkfr dk gku d ukr fofèkd lgk;rk iku dh gdnkj gA blh pj.k ij ge xkj dj ldr g fd vihykFkh }kjk fufn"V vfèkIpuk fnukd 31 vDVcj] 1983 dh i'pkrorh vfèkIpuk tk Hkh mlh çHkko dh g] }kjk vfèkØkr dj nh x;h FkhA fdr pfd ml le; rd fcgkj jkT; detkj ox fofèkd lgk;rk vfèkfu;e] 1983 (bld ckn doy fofèkd lgk;rk vfèkfu;e d :i e fufn"V) çHkko e vk x;k Fkk] vfèkIpuk u çkoèkkfur fd;k fd doy ,l 0;fDr U;k;ky; Qhl l NV d gdnkj gkx tk fofèkd lgk;rk vfèkfu;e dh èkkjk 17 d vu#i fofèkd lgk;rk çkIr dj jg gA*
>
> *3. pnk ukFk cuke tud fd'kkjh noh] 1992 (1) PLJR 760, e mDr vfèkIpuk tkjh fd, tku d ihN d mí'; vkj vk'k; rFkk fofèkd lgk;rk vfèkfu;e d vud çkoèkkuk dk è;ku e j[kr g, ;g vfHkfuèkkfjr fd;k x;k g fd&*
>
> *^^----- U;k;ky; Qhl d lcèk e ik=rk lfgr fofèkd lgk;rk dk nkok dju oky 0;fDr dh ik=rk dk ml d vèkhu vfèkdfFkr çfØ;k d vu#i mDr vfèkfu;e*

d vèkhu xfBr lkfofèkd dfeVh }kjk ijhf{kr] vfHkfuf'pr vkj fofuf'pr djuk gkxkA flfoy U;k;ky; }kjk vfèkdkfjrk dk ç;kx ugh fd;k tk ldrk gA tc ,d ckj fdlh 0;fDr dk mDr vfèkfu;e d vèkhu fofèkd lgk;rk dk gdnkj ik;k tkrk g vkj ml bl çnku fd;k tkrk g] og vfèkdkjr% U;k;ky; Qhl vfèkfu;e dh èkkjk 35 d vèkhu tkjh vfèklpuk d vulj.k e U;k;ky; Qhl d Hkxrku l NV iku dk gdnkj cu tkrk gA doy blh dkj.k l Lo; foèkkueMy u bl lcfèkr U;k;ky; dk lkfofèkd Qke ^ch0 e ik=rk d çek.ki= dh çfr Hktu d fy, fofèkd lgk;rk dfeVh dh vkj l vkKkid cuk;k g ft ldh çkflr ij lcfèkr U;k;ky; d ikl lgkf;r 0;fDr dk U;k;ky; Qhl l NV çnku dju d vykok dkb vU; fodYi ugh gA***

*6. mDr fofèkd igyvk vkj U;kf;d mn?kk"k.kk vk dk nf"V e j[kr g, ;g vfHkfuèkkfjr djuk gh gkxk fd mPp U;k;ky; lfgr dkb U;k;ky; U;k;ky; Qhl vfèkfu;e dh èkkjk 35 d vèkhu jkT; ljdkj }kjk tkjh fnukd 31.10.1983 dh vfèklpuk dh nf"V e okndj dk U;k;ky; Qhl d Hkxrku l NV çnku ugh dj ldrk g tc rd fofèkd lgk;rk vfèkfu;e d çkoèkkuk d vèkhu çkIr fd;k x;k ik=rk çek.k i= lcfèkr U;k;ky; d le{k nkf[ky ugh fd;k tkrk gA***

2. उक्त कथित तथ्यों और विशेषत: सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी आय के संबंध में प्रमाण पत्र अर्थात् परिशिष्ट-1 की दृष्टि में और उक्त निर्दिष्ट निर्णय की दृष्टि में भी समस्त अंतर्वर्ती आवेदन अनुज्ञात किए जाने योग्य हैं। अत: इस मोड़ पर अध्यपेक्षित न्यायालय फीस के भुगतान से छूट, जैसी प्रार्थना की गयी है, प्रदान की जाती है। अपीलों के उक्त निर्दिष्ट समूह में अंतिम निर्णय दिए जाने के समय पर न्यायालय फीस की वसूली/जमा के लिए आगे आदेश पारित किया जाएगा।

3. तद्नुसार, पूर्वोल्लिखित समस्त अंतर्वर्ती आवेदनों को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; ,p lh feJk] U;k;efr

अलीजान मियाँ

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 192 of 2013. Decided on 5th July, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण-पोषण—परित्यक्त पत्नी के भरण-पोषण के लिए 2000/- रुपया प्रतिमाह का भुगतान करने का निर्देश—पक्षों के बीच विवाह स्वीकार किया गया है—याची ने दूसरी महिला के साथ विवाह किया और दूसरी महिला से उसे एक संतान भी है—याची के दूसरे विवाह की दृष्टि में पत्नी के पास पृथक रूप से रहने का युक्तियुक्त कारण है—याची ने अपने वास्तविक आय को छुपाने का प्रयास किया था—अवर न्यायालय सही प्रकार से इस निष्कर्ष के पास आया कि अपनी पत्नी के भरण-पोषण के लिए याची के पास पर्याप्त साधन था—पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया। (पैराएँ 6 से 10)

अधिवक्तागण.—Mr. K.S. Nanda, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और अभियोजन के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ सुने गए।

2. याची भरण–पोषण मामला सं॰ 1 वर्ष 2007 में विद्वान प्रमुख न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 29 जनवरी, 2013 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा याची को अपनी परित्यक्त पत्नी को भरण–पोषण के लिए 2000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

3. विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने स्वयं का याची की विधिवत ब्याहता पत्नी होने का दावा करते हुए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन आवेदन दाखिल किया। स्वीकृत रूप से, वह एक विधवा थी और उसको अपने पहले पति से दो पुत्र थे जिन्हें याची द्वारा स्वीकार किया गया था। याची के मामले के अनुसार, याची ने काफी समय तक उसके साथ दांपत्य जीवन व्यतीत किया और इस विवाह से भी उनको दो संतानें हुई थी। बाद में, याची ने एक अन्य महिला से विवाह किया और विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को दांपत्य गृह से निकाल दिया। यह दावा करते हुए कि उसके पास अपने भरण–पोषण का साधन नहीं था और याची उस समय पर सी॰ सी॰ एल॰ का कर्मचारी था और वह अन्य आमदनी के अतिरिक्त 13,269/- रुपया प्रतिमाह वेतन पा रहा था, भरण–पोषण का आवेदन दाखिल किया गया था।

4. याची अवर न्यायालय में उपस्थित हुआ और अपना कारण बताओ दाखिल किया जिसमें पक्षों के बीच विवाह स्वीकार किया गया है। यह भी स्वीकार किया गया है कि याची ने एक अन्य महिला से विवाह किया और दूसरी महिला से भी उसको संतानें हैं। किंतु, याची ने यह कथन करते हुए कि वह सदैव उसको अपने साथ रखने और उसका भरण–पोषण करने के लिए तैयार था, अपनी पत्नी को भरण–पोषण का भुगतान करने के दायित्व से इनकार किया।

5. अवर न्यायालय में दोनों पक्षों ने अपने परस्पर मामलों के समर्थन में साक्ष्य दिया था। आक्षेपित आदेश में साक्ष्य पर चर्चा से यह प्रतीत होता है कि उस समय तक जब साक्ष्य देना चल रहा था, याची पहले ही सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका था और अवर न्यायालय में विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के साक्ष्य के अनुसार याची 4000/- रुपया प्रतिमाह पेंशन पा रहा था। अपने साक्ष्य में विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने यह दावा भी किया कि याची निजी बिजली मिस्त्री के रूप में काम करके 5000/- रुपया प्रतिमाह कमा रहा था और घर के किराया तथा खेती से भी आमदनी अर्जित कर रहा था और तद्द्वारा, उसने दावा किया, कि कुल मिलाकर याची 16,000/- रुपया प्रतिमाह कमा रहा था। विरोधी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से परीक्षित अन्य गवाहों ने भी याची के अन्य के बिन्दु पर उसके मामले का समर्थन किया।

6. इसके विरुद्ध, याची ने स्वयं का गवाह के रूप में परीक्षण किया था और कथन किया था कि वह केवल 2500/- रुपया पेंशन के रूप में पा रहा था और उसकी कोई अन्य आय नहीं थी। अवर न्यायालय में याची द्वारा परीक्षित अन्य गवाह ने याची के मामले का समर्थन किया। किंतु आक्षेपित आदेश दर्शाता है कि अपने प्रतिपरीक्षण में याची ने स्वीकार किया कि वह अपने खेत में लगभग 40 मन गेहूँ उपजा रहा था और सब्जी की खेती भी कर रहा था।

7. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर, अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि याची के दूसरे विवाह की दृष्टि में पत्नी के पास पृथक रूप से रहने का युक्ति–युक्त कारण था और अवर न्यायालय ने यह भी पाया कि याची अपनी आय छुपा रहा था और प्रति–परीक्षण के दौरान उसने स्वीकार किया कि उसे खेती से भी आमदनी थी। तद्नुसार, अवर न्यायालय ने पाया कि याची अपनी परित्यक्त पत्नी को कम से कम 2000/- रुपया प्रतिमाह भुगतान करने के लिए सक्षम था और तद्नुसार आदेश पारित किया है।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बिल्कुल अवैध है। याची को बड़े परिवार का भरण-पोषण करना है और पेंशन की राशि जिसे याची पा रहा है उसके पूरे परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त नहीं है और याची वित्तीय रूप से विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को 2000/- रुपया प्रतिमाह का भुगतान करने की अवस्था में नहीं है। यह दावा करते हुए कि विरोधी पक्षकार सं॰ 2 अपने पहले पति से दो संतानों के साथ रह रही है, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

9. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आक्षेपित आदेश में अवैधता नहीं है।

10. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने पर मैं पाता हूँ कि वर्तमान मामले में विवाद केवल याची की आय के संबंध में है। पक्षों के बीच विवाह स्वीकृत तथ्य है और यह भी स्वीकार किया गया है कि याची ने दूसरी महिला से विवाह किया है। तद्नुसार, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के पास पृथक रूप से रहने का युक्तियुक्त आधार है और यह तथ्य कि महिला अपने पहले पति से हुए दो पुत्रों के साथ रह रही है, याची को अपनी पहली पत्नी का भरण-पोषण करने की जिम्मेदारी से विमुक्त नहीं करेगा। याची के आय के बिन्दु पर, मैं अवर न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क में पर्याप्त बल पाता हूँ कि याची ने अपनी वास्तविक आय छुपाने का प्रयास किया था क्योंकि उसने कथन किया था कि वह अपने पेंशन से 2500/- रुपया अर्जित कर रहा था और उसके पास आय का अन्य स्रोत नहीं था किंतु अपने प्रति परीक्षण में उसने खेती से अपनी आमदनी के बारे में स्वीकार किया। मामले के उस दृष्टिकोण में, अवर न्यायालय सही प्रकार से इस निष्कर्ष पर आया है कि याची के पास अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त साधन था और अपनी परित्यक्त पत्नी के भरण-पोषण की ओर उसे केवल 2000/- रुपया प्रतिमाह का भुगतान करने का निर्देश दिया है जिसे किसी भी रूप में अत्यधिक नहीं कहा जा सकता है।

11. तद्नुसार, मैं पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने लायक अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ। इस आवेदन में गुणागुण नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

नेपाल मंडल एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 614 of 2002. Decided on 5th July, 2013.

एस॰ टी॰ केस सं॰ 372 वर्ष 1993 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश-IX धनबाद द्वारा पारित दिनांक 20.9.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश के विरुद्ध।

(क) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 62—द्वितीयक साक्ष्य–यदि डुप्लीकेट अथवा ट्रिप्लीकेट में, एक समान कार्बन प्रक्रिया में शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार किया जाता है और प्रत्येक कार्बन कॉपी पर डॉक्टर जिन्होंने इसे तैयार किया, द्वारा हस्ताक्षर किया जाता है, यह प्राथमिक साक्ष्य है और यह और भी मजबूत बन जाता है जब इसको बनानेवाला स्वयं इसे न्यायालय के समक्ष सिद्ध करता है–मेडिकल रिपोर्ट की कार्बन कॉपी, यदि इसे एक एकसमान

प्रक्रिया में तैयार किया जाता है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के स्पष्टीकरण 2 के अर्थ के अंतर्गत प्राथमिक साक्ष्य है। (पैराएँ 10 एवं 11)

(ख) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A, 328 एवं 302/34—दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961—धाराएँ 3/4—दहेज मृत्यु–दोषसिद्धि-अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण नहीं किया जाना अभियोजन मामले के लिए घातक है–सूचक द्वारा दर्ज लिखित रिपोर्ट के अप्रस्तुतीकरण, मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट और अन्य आवश्यक दस्तावेजों के गैर प्रदर्शन के कारण अपीलार्थीगण संदेह का लाभ दिये जाने के दायी हैं–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 10 से 12)

निर्णयज विधि.–1989 (1) SCC 432—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s Ananda Sen, Nagmani Tiwari, For the Appellants; Mr. Sunil Kr. Dubey, For the Respondent.

डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्ति.–एस॰ टी॰ सं॰ 347 वर्ष 1993, तोपचॉची (हरिहरपुर) पी॰ एस॰ केस सं॰ 65 वर्ष 1998 (जी॰ आर॰ सं॰ 379 वर्ष 1998) के संबंध में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश-IX धनबाद द्वारा पारित दिनांक 20.9.2002 का दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश का आदेश इस अपील में चुनौती के अधीन है।

2. दिनांक 10.5.1988 को हरिहरपुर पुलिस थाना के एस॰ आई॰ गुप्तेश्वर सिंह द्वारा बासुदेव मंडल का फर्दबयान दर्ज किया गया था जिसके आधार पर अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 498A, 328, 302/34 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन तोपचाँची (हरिहरपुर) पी॰ एस॰ केस सं॰ 65 वर्ष 1988 दर्ज किया गया था। फर्दबयान से सामने आने वाला तथ्य संक्षेप में यह है कि सुमित्रा देवी (सूचक की पुत्री) का विवाह वर्ष 1986 में अपीलार्थी नेपाल मंडल के साथ हुआ था किंतु वह अपने दांपत्य जीवन से प्रसन्न नहीं थी क्योंकि अपीलार्थीगण सहित अभियुक्तगण दहेज में 1500/- रुपयों की शेष राशि की मांग कर रहे थे। सूचक अपनी बुरी आर्थिक दशा के कारण मांग पूरी करने में विफल रहा, अत: सुमित्रा को उसके पति और ससुराल वालों द्वारा क्रूरता एवं यातना के अध्यधीन किया जाता था। होली के अवसर पर, मृतका अपने माएके गयी थी किंतु उसकी मृत्यु के पंद्रह दिन पहले उसे उसके पति नेपाल मंडल द्वारा दांपत्य गृह वापस लाया गया था। दिनांक 8.5.1988 को अपीलार्थी नेपाल मंडल ने द्वारिका प्रसाद (सूचक के भाई) को सूचित किया कि सुमित्रा बीमार है। सूचक अपनी पुत्री की बीमारी के संबंध में ऐसी सूचना प्राप्त करने के बाद सुमित्रा के घर गया और पाया कि वह चौकी पर बेहोश पड़ी हुई थी। जब उसने उसकी सास से पूछा, उसने कहा कि अभी तक उसका चिकित्सीय इलाज नहीं किया गया है। तत्पश्चात, सुमित्रा को सूचक द्वारा वापस लाया गया था किंतु उसकी दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था और इसलिए उसे दोपहर 1-1.30 बजे धनबाद में आशीर्वाद नर्सिंग होम ले जाया गया था किंतु उसे मृत घोषित किया गया था। सूचक अपनी पुत्री के मृत शरीर के साथ शाम में हरिहरपुर पुलिस थाना गया और संदेहात्मक स्थिति जिसमें सुमित्रा की मृत्यु हुई थी प्रकट करते हुए लिखित रिपोर्ट दर्ज किया। अगले दिन शव परीक्षण किया गया था और डॉक्टर ने मृत्यु का कारण जहर देना बताया था। जब सूचक ने संपुष्टि करवाया कि जहर दिए जाने के कारण उसकी पुत्री की मृत्यु हुई, उसने अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध अभिकथन करते हुए अपना फर्दबयान दिया था।

3. पुलिस ने सम्यक अन्वेषण के बाद भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 498A, 328, 302/34 और डी॰ पी॰ अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन चार अभियुक्तगण अर्थात् नेपाल मंडल, गोपाल मंडल, सदानंद

मंडल और तितली देवी के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया। अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण का मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था और इसे एस॰ टी॰ सं॰ 372 वर्ष 1993 के रूप में दर्ज किया गया था। आरोप विरचित किए गए थे और अभियुक्तगण का विचारण किया गया था। विचारण के क्रम में भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 498A, 328, 302/34 और डी॰ पी॰ अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन आरोप विरचित किए गए थे। दिनांक 16.4.2002 को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B के अधीन विरचित किए गए थे। दिनांक 16.4.2002 को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B के अधीन नया आरोप विरचित किया गया था। विचारण का सामना करने वाले अभियुक्तगण ने आरोप के संशोधन के बाद गवाहों के प्रति परीक्षण को त्याग दिया था।

4. अभियोजन ने आरोप सिद्ध करने के लिए कुल छह गवाहों का परीक्षण किया है और अभिलेख पर साक्ष्य पर विचार करने के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दो अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी अभिनिर्धारित किया है किंतु दो अन्य अभियुक्तगण अर्थात् गोपाल मंडल और तितली देवी को दोषमुक्त कर दिया है और इसलिए यह अपील की गयी है।

5. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय और निष्कर्षों का विरोध इस आधार पर किया है कि लिखित सूचना, जिसे सूचक द्वारा दिनांक 8.5.1988 को दर्ज किया गया था, अभियोजन द्वारा दबायी गयी है और उस सूचना पर कोई मामला दर्ज नहीं किया गया था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया है कि उस लिखित रिपोर्ट के आधार पर सनहा दर्ज किया गया था किंतु अभियोजन द्वारा ऐसी कोई सनहा संख्या अभिलेख पर नहीं लाया गया है। यह अभियोजन का स्वीकृत मामला है कि दिनांक 9.5.1988 को मृत शरीर चालान और मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार की गयी थी और उसी तिथि पर शव परीक्षण भी किया गया था जो निश्चयात्मक है कि वर्तमान मामले के संस्थापन के पहले शव परीक्षण किया गया था। मूल शव परीक्षण रिपोर्ट को भी दबाया गया है और कार्बन कॉपी, जो द्वितीयक साक्ष्य प्रतीत होती है, आपत्ति के साथ सिद्ध की गयी है।

विसरा रिपोर्ट सिद्ध नहीं किया गया है।

आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है।

एक ही और समरुप साक्ष्य के संवर्ग पर दो सह-अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया है। अभियोजन यह सिद्ध करने में विफल रहा है कि मृतका को उसकी मृत्यु के ठीक पहले अथवा दहेज मांग के संबंध में क्रूरता के अध्यधीन किया गया था।

6. विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने तर्क का विरोध किया और निवेदन किया कि दिनांक 8.5.1988 को दर्ज सूचना के आधार पर यू॰ डी॰ केस दर्ज किया गया था। उस यू॰ डी॰ केस के संबंध में मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट और मृत शरीर चालान तैयार किया गया था और शव परीक्षण किया गया था। चूँकि सूचक शव परीक्षण रिपोर्ट के परिशीलन के पहले मृत्यु के कारण के संबंध में निश्चित नहीं था, उसने अपीलार्थीगण (अभियुक्तगण) के विरुद्ध अभिकथन नहीं किया था। वस्तुत:, जब यह पता चला था कि सुमित्रा की मृत्यु जहर दिए जाने के कारण हुई, सूचक का फर्दबयान दर्ज किया गया था और तोपचाँची (हरिहरपुर) पी॰ एस॰ केस सं॰ 65 वर्ष 1988 दर्ज करके यू॰ डी॰ केस को वर्तमान मामले में संपरिवर्तित किया गया था और अन्वेषण किया गया था। अभियोजन गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 5 ने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है। अ॰ सा॰ 6 डॉक्टर ने शव परीक्षण रिपोर्ट सिद्ध किया है और मत दिया है कि मृत्यु का कारण जहर दिया जाना था।

7. वर्तमान मामले में, अपीलार्थीगण को तात्विक गवाहों बिनोती देवी (अ॰ सा॰ 1), दीपक कुमार मंडल (अ॰ सा॰ 3), बासुदेव मंडल (अ॰ सा॰ 5) जो क्रमश: मृतका के माता, भाई और पिता है द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304B के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया है। अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य के अनुसार, उसे उसके भाई द्वारिका प्रसाद मंडल (अ॰ सा॰ 4) द्वारा

सूचित किया गया था कि सुमित्रा देवी (मृतका) बीमारी से पीड़ित थी। ऐसी सूचना पाने पर वह सुमित्रा के दांपत्य गृह गया और प्रातः लगभग 10-10.30 बजे वहाँ पहुँचा और सुमित्रा को चौकी पर बेहोश पड़ा पाया। उसने सुमित्रा की सास से पूछा क्या सुमित्रा का कोई चिकित्सीय इलाज किया गया है किंतु उसने नकारात्मक उत्तर पाया। तत्पश्चात्, सुमित्रा को सूचक द्वारा तोपचाँची में डॉक्टर के पास ले जाया गया था और वहाँ से उसे आशीर्वाद नर्सिंग होम, धनबाद ले जाया गया था जहाँ उसे मृत घोषित किया गया था।

सूचक मृत शरीर के साथ हरिहरपुर पुलिस थाना गया और सुमित्रा की मृत्यु के बारे में जो संदेहात्मक परिस्थिति में हुई थी उसमें प्रकट करते हुए लिखित रिपोर्ट दर्ज किया। अगले दिन शव परीक्षण किया गया था और यह घोषित किया गया था कि जहर दिए जाने के कारण सुमित्रा की मृत्यु हुई थी। दिनांक 10.5.1988 को प्रातः 7 बजे सूचक अ॰ सा॰ 5 का फर्दबयान दर्ज किया गया था और यह मामला दर्ज किया गया था। इस गवाह ने अपने अभिसाक्ष्य में अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है जिसे अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 3 द्वारा संपुष्ट किया गया है। अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 5 के बयानों में कुछ विरोधाभास है।

8. विद्वान अधिवक्ता ने महत्वपूर्ण बिंदु उठाया है कि लिखित रिपोर्ट सूचक द्वारा दिनांक 8.5.1988 को दर्ज की गयी थी जब वह मृत शरीर के साथ पुलिस थाना गया था, किंतु उस लिखित रिपोर्ट पर कोई मामला संस्थापित नहीं किया गया था और इसे पुलिस द्वारा दबाया गया था और दिनांक 10.5.1988 को दर्ज फर्दबयान के आधार पर अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया था। सूचक ने स्वयं स्वीकार किया है कि उसने सुमित्रा की मृत्यु के संबंध में दिनांक 8.5.1988 को लिखित रिपोर्ट दर्ज किया था। अभियुक्त के अनुसार, शव परीक्षण दिनांक 9.5.1988 को किया गया था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपने निर्णय में संप्रेक्षित किया है कि अ॰ सा॰ 5 द्वारा दर्ज सूचना के आधार पर सनहा दर्ज किया गया था किंतु अभिलेख पर ऐसा कोई सनहा नहीं लाया गया है और न ही गवाहों के अभिसाक्ष्य में इसका कोई निर्देश है। अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण नहीं किया गया है जो मेरे अनुसार वर्तमान मामले की परिस्थितियों में अभियोजन मामले के प्रति घातक है। यदि उसका परीक्षण किया गया होता, उसने अभियोजन मामले के इस पहलू पर प्रकाश डाला होता।

अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से, यह अज्ञात है कि उस लिखित रिपोर्ट के आधार पर कौन मामला दर्ज किया गया था अथवा किस निर्देश पर मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट और मृत शरीर का चालान तैयार किया गया था। मैं शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श 2) में भी कोई मामला निर्देश नहीं पाता हूँ। मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट और मृत शरीर चलान शव परीक्षण रिपोर्ट के साथ संलग्न है किंतु इन दो दस्तावेजों को सिद्ध और प्रदर्शित नहीं किया गया है और इसलिए मैं नहीं समझता हूँ कि इन दस्तावेजों का परिशीलन किया जा सकता है। मेरी चिंता दूर करने के लिए जब मैंने मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट और मृत शरीर चालान का परिशीलन किया, यह प्रतीत होता है कि पुलिस अधिकारी ने हरिहरपुर थाना यू॰ डी॰ केस सं॰.....वर्ष 1988 दिनांक 8.5.1988 को रात्रि 7 बजे लिखा था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यू॰ डी॰ केस की संख्या रिक्त छोड़ दी गयी थी और यह ज्ञात नहीं है कि क्या वस्तुतः कोई यू॰ डी॰ केस दर्ज किया गया था।

जब मैं अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य का परिशीलन करता हूँ, यह प्रकट करता है कि उसने कथन किया है कि शव परीक्षण रिपोर्ट से मृत्यु के कारण के बारे में पता चलने के बाद उसने अपीलार्थीगण सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध अभिकथन करते हुए दिनांक 10.5.1988 को अपना फर्द बयान दिया था। सूचक का यह विवरण उपदर्शित करता है कि लिखित रिपोर्ट में जिसे दिनांक 8.5.1988 को दर्ज किया गया था, उसने अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं किया था। कोई रुकावट नहीं है कि यू॰ डी॰ केस को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302 अथवा 304B अथवा 306 अथवा 304

के अधीन दंडनीय अपराध गठित करने वाले संज्ञेय अपराध में संपरिवर्तित नहीं किया जा सकता है किंतु तब ऐसे संपरिवर्तन के लिए ऐसा साक्ष्य बिल्कुल आवश्यक है। पुन: मैं यह संप्रेक्षित करने के लिए मजबूर हूँ कि ऐसी परिस्थिति में आई॰ ओ॰ का गैर परीक्षण अभियोजन मामले के प्रति घातक है। यदि उसका परीक्षण किया जाता, उसने इस पहलू पर प्रकाश डाला होता।

चूँकि यह सूचक का स्वीकृत मामला है कि उसने दिनांक 8.5.1988 को अपनी पुत्री सुमित्रा की मृत्यु के तुरन्त बाद दर्ज लिखित रिपोर्ट में अपीलार्थीगण के विरुद्ध अभिकथन नहीं किया था, मृतका की मृत्यु के दो दिन बाद दर्ज फर्दबयान में किए गए अभिकथन को संदेह मुक्त नहीं माना जा सकता है। सूचक का पृथक बयान दर्ज करने के लिए, जब उसने पहले ही लिखित रिपोर्ट दर्ज किया था, प्रभारी अधिकारी के पास अवसर नहीं था।

9. सूचक ने कथन किया है कि उसने अपने भाई द्वारिका प्रसाद मंडल (अ॰ सा॰ 4) से सुमित्रा की बीमारी के संबंध में सूचना पाया था किंतु उक्त द्वारिका प्रसाद मंडल पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है और उसने अभियोजन मामले, जैसा सूचक द्वारा बनाया गया है, का समर्थन नहीं किया है। उसने नहीं कहा था कि उसने सुमित्रा की बीमारी के संबंध में अपने भाई अ॰ सा॰ 5 को सूचित किया। वह यह कहने की सीमा तक गया है कि वह घटना के बारे में कुछ नहीं जानता है और वह नहीं कह सकता था कि किन परिस्थितियों के अधीन सुमित्रा की मृत्यु हुई इन परिस्थितियों में, पुन: आई॰ ओ॰ का गैर परीक्षण अभियोजन मामले को मृत बनाता है।

चूँकि फर्दबयान में दर्ज सूचक का विवरण घटना के संबंध में दूसरा बयान है, मैं, अन्य गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य पर चर्चा करने का इच्छुक नहीं हूँ।

10. निष्कर्षों के समापन के पहले मैं विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रश्न कि क्या शव परीक्षण रिपोर्ट की कार्बन कॉपी द्वितीयक साक्ष्य है, का उत्तर देना वांछनीय समझता हूँ।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 का स्पष्टीकरण 2 इस संदर्भ में प्रासंगिक है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> ***^^èkkjk 62 dk Li"Vhdj.k 2.***—*tgk fd vud nLrkots ,d :ikRed ifØ;k }kjk cukb xbs gS tSls fd en.k] f'kyken.k ;k QksVks fp=.k e gksrk g] ogk mueas ls gj ,d 'ks"k lc dh vUroLrq dk ikFkfed lk{; g] fdUrq tgk fd os lc fdlh lkekU; ey dh ifr;k gS ogk os ey dh vUroLrq dk ikFkfed lk{; ugh gA***

शव परीक्षण रिपोर्ट की कॉर्बन कॉपी अ॰ सा॰ 6 द्वारा सिद्ध की गयी है जिन्होंने सुमित्रा के मृत शरीर का शव परीक्षण किया है और शव परीक्षण रिपोर्ट की यह कार्बन कॉपी एक एकसमान प्रक्रिया में तैयार की गयी थी और इसलिए यह प्राथमिक साक्ष्य है। डॉक्टर, जिन्होंने शव परीक्षण किया था और कार्बन प्रक्रिया में शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार किया था, ने इसे प्रदर्श 2 के रूप में सिद्ध किया है।

माननीय न्यायाधीशों ने **प्रिथी चंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (1989)1 SCC 432,** में अभिनिर्धारित किया है कि मेडिकल रिपोर्ट की कार्बन कॉपी, यदि इस एक एकसमान प्रक्रिया में तैयार किया जाता है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के स्पष्टीकरण 2 के अर्थ के अंतर्गत प्राथमिक साक्ष्य है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए मैं उक्त निर्णय के पैरा 4 को उद्धृत करने का इच्छुक हूँ जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"4. vfHk;kD=h dk ijh{k.k MkO lhO ,lO onok }kjk fd;k x;k Fkk ftUgksus fpfdRlh; çek.k i=] fnukd 16.6.1979 dk çn'kZ P-E, tkjh fd;k FkkA fpfdRlh;*

çek.k i= n'kkrk g fd vfHk;kD=h u f}rh;d ;ku y{k.kk dk fodfl r ugh fd;k Fkk] vku"kfxd vkj tuufn; cky vuifLFkr Fk vkj ycj {k= ij 3" x 1/8" vkj 2" x 1/8" d [kjkp FkA mUgku Hkx d bn&fxn l tu dk l dr Hkh ik;k Fkk(;kfu l jDr cg jgk Fkk(QV fdukjk d lkFk gk;eu vuifLFkr Fkk vkj pkjk vkj l tu FkhA Nu ij gk;eu l jDr cg jgk Fkk vkj ;kfu e ef'dy l ,d mxyh dk ço'k FkkA yMdh dh l yokj jDrjftr FkhA bl nk LykbMk vkj Lokck d lkFk egjcn idV e fy;k x;k FkkA nHkkX;o'k] ;g efgyk MkDVj] ftlu f'k'k dk fMyhojh fd;k Fkk] lk{; nu d fy, miyCèk ugh Fkh D;kfd og ycs NVVh ij pyh x;h FkhA fo}ku l= U;k;kèkh'k u egl l fd;k fd vufpr foyc d fcuk mldh mifLFkfr l jf{kr djuk lHko ugh gkxk vkj blfy, v0 lk0 2 MkO dfiyk] tk mldh fy[kkoV vkj gLrk{kj l okfdQ Fkh D;kfd mUgku mld lkFk yxHkx nk o"kk rd dke fd;k Fkk] d ekè;e l çek.k i= fl) dju dh vuefr vfHk;ktu dk fn;kA mUgku dFku fd;k fd çek.k i= çn'k P-E dh dkcu dkih ,d çfØ;k }kjk MkO onok }kjk r;kj dh x;h Fkh vkj bl ij mudk gLrk{kj FkkA vihykFkh d fo}ku vfèkoDrk u çfrokn fd;k fd ;g çek.k i= lk{; e vxká Fkk D;kfd vfHk;ktu ;g fl) dju e foQy jgk g fd ey çek.k i= [kk x;k Fkk vkj miyCèk ugh FkkA lk{; vfèkfu;e dh èkkjk 32 çkoèkkfur djrh g fd tc c;ku] fyf[kr vFkok ekf[kd] viu i'koj dr0; d fuogu e fd lh 0;fDr }kjk fn;k tkrk g ftl dh mifLFkfr foyc d fcuk çkIr ugh dh tk ldrh g] ;g çklfxd g vkj lk{; e xká gA ***bld vfrfjDr] pfd dkcu dkih ,d ,dleku çfØ;k }kjk r;kj dh x;h Fkh] ;g lk{; vfèkfu;e dh èkkjk 62 d Li"Vhdj.k 2 d vFk d vrxr çkFkfed lk{; FkkA vr% fpfdRlh; çek.k i= çn'k P-E Li"Vr% lk{; e xká; FkkA bld vfrfjDr] vfHk;ktu xokgk dk etcr] fo'oluh; vkj fuHkj dju ;kX; lk{; g tk Li"Vr% fl) djrk g fd vihykFkh }kjk vfHk;kD=h dk cykRdkj fd;k x;k FkkA***

11. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि शव परीक्षण रिपोर्ट, डुप्लीकेट अथवा ट्रिप्लीकेट में एक एकसमान कार्बन प्रक्रिया में तैयार की जाती है, डॉक्टर जिसने इन्हें तैयार किया द्वारा सम्यक रूप से हस्ताक्षरित प्रत्येक कार्बन कॉपी प्राथमिक साक्ष्य होता है और यह और भी मजबूत बन जाता है जब इसको तैयार करने वाले ने स्वयं इसे न्यायालय के समक्ष सिद्ध किया है।

12. किंतु, उपर की गयी चर्चा की दृष्टि में और आई॰ ओ॰ के गैर–परीक्षण पर विचार करते हुए फर्दबयान, जिसके आधार पर वर्तमान मामला दर्ज किया गया था, घटना का सत्य विवरण नहीं माना जा सकता है। आई॰ ओ॰ का गैर परीक्षण, दिनांक 8.5.1988 को सूचक द्वारा दर्ज लिखित रिपोर्ट का अप्रस्तुतीकरण अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ पाने का हकदार बनाता है और तद्नुसार, उन्हें उनके विरुद्ध लगाए गए आरोप से दोषमुक्त किया जाता है। एस॰ टी॰ सं॰ 347 वर्ष 1993, तोपचाँची (हरिहरपुर) पी॰ एस॰ केस सं॰ 65 वर्ष 1988 (जी॰ आर॰ सं॰ 379 वर्ष 1988) के तत्सम, के संबंध में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश IX धनबाद द्वारा पारित दिनांक 20.9.2002 का दोष सिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को उनके जमानत बंध पत्र के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है और स्वतंत्र किया जाता है।

परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है।

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

जावेद अख्तर

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 496 of 2013. Decided on 4th July, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण-पोषण–परित्यक्त पत्नी के भरण-पोषण के लिए 5000/- रुपया प्रतिमाह और अवयस्क पुत्री के लिए 3000/- रुपया प्रतिमाह भुगतान करने का निर्देश–दहेज की मांग और यातना का अभिकथन–याची ने दूसरी महिला के साथ विवाह किया था जिससे भी उसको संताने हैं किंतु याची का मामला है कि उसने विवाह के पहले अपनी पहली पत्नी को तलाक दे दिया था–याची दवा की दुकान से और पत्रकार के रूप में काम करके आय पा रहा है–पत्नी के पास पृथक रहने का पर्याप्त कारण है–पक्षों के बीच तलाक दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में कोई अंतर नहीं करने जा रहा है–आवेदन खारिज किया गया। (पैराएँ 10 से 13)

अधिवक्तागण.–M/s Jitendra Shankar Singh, For the Petitioner; M/s. A.P.P., For the Opp. Parties.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची विविध केस सं॰ 7 वर्ष 2010/टी॰ आर॰ सं॰ 654 वर्ष 2013 में विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 7.5.2013 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में याची को याचिका की तिथि से उनके भरण–पोषण के लिए अपनी परित्यक्त पत्नी को 5000/- रुपया प्रतिमाह और अपनी माता के साथ रह रही उसकी अवयस्क पुत्री को 3000/- रुपया प्रति माह भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

3. आक्षेपित आदेश दर्शाता है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन आवेदन विरोधी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दाखिल किया गया है जिसने स्वयं का याची की विधिवत ब्याहता पत्नी होने का दावा किया है और विवाह से एक पुत्री का जन्म हुआ था जो लगभग आठ वर्ष की है। बाद में, उसे धन की मांग के लिए क्रूरता एवं यातना के अध्यधीन किया जाता था और याची ने दिनांक 19.7.2009 को दूसरी महिला के साथ विवाह किया था। यह कथन भी किया गया है कि वह स्वयं और अपनी पुत्री का भरण–पोषण करने में सक्षम नहीं है जबकि याची के पास दवा की दुकान है और वह पत्रकार के रूप में भी कार्यरत है और उसकी आय 50,000/- से 60,000/- रुपया प्रतिमाह है। तद्नुसार, भरण–पोषण के लिए याचिका दाखिल की गयी थी।

4. आक्षेपित आदेश से आगे प्रतीत होता है कि याची अवर न्यायालय में उपस्थित हुआ और अपना कारण बताओ दाखिल किया जिसमें पक्षों के बीच विवाह और विवाह से पुत्री का जन्म स्वीकृत तथ्य है। यह भी स्वीकार किया गया है कि याची ने दूसरी महिला के साथ विवाह किया था जिससे भी उसको संतानें हैं किंतु याची का मामला यह है कि विवाह के पहले उसने अपनी पहली पत्नी को तलाक दे दिया था जिस तथ्य से विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने अवर न्यायालय में इनकार किया था। याची ने यह स्वीकार किया था कि उसकी दवा की दुकान है किंतु उसने दावा किया कि उक्त दवा की दुकान से उसे प्रतिदिन 100/- से 150/- रुपयों

की आमदनी थी और उसका आय का कोई अन्य स्रोत नहीं था। याची ने विरोधी पक्षकार सं॰ 2 का भरण–पोषण करने के दायित्व से इनकार किया क्योंकि उसे पहले ही तलाक दिया जा चुका था और मुस्लिम स्वीय विधि के अनुसार वह भरण–पोषण की हकदार नहीं थी। इन प्रकथनों के साथ याची ने विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को भरण–पोषण का भुगतान करने के दायित्व से इनकार किया।

5. दोनों पक्षों ने अवर न्यायालय में साक्ष्य दिया। आवेदक पत्नी ने अवर न्यायालय में स्वयं और अपनी पुत्री सहित चार गवाहों का परीक्षण किया जिन्होंने अवर न्यायालय में आवेदक के मामले का समर्थन किया। गवाहों ने पक्षों के बीच तलाक से इनकार किया और उन्होंने दावा किया कि याची ने दूसरी महिला के साथ विवाह किया था। गवाहों ने दवा की दुकान से और पत्रकार के रूप में काम करने से याची की आय के बारे में भी अभिसाक्ष्य दिया।

6. याची ने स्वयं और अपने परिवार के सदस्यों सहित पाँच गवाहों का अवर न्यायालय में परीक्षण किया और यद्यपि गवाहों ने पक्षों के बीच तलाक के बारे में कथन किया किंतु आक्षेपित आदेश दर्शाता है कि अवर न्यायालय ने तलाक के संबंध में कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं दिया गया था। याची सहित याची की ओर से गवाहों ने कथन किया था कि उसे दवा की दुकान से केवल 100/- से 150/- रुपयों की आय थी किंतु प्रति परीक्षण में याची द्वारा परीक्षण किए गए एक गवाह ने स्वीकार किया कि याची की दवा की दुकान पुलिस थाना के सामने मुख्य सड़क पर थी। इस गवाह ने यह भी स्वीकार किया कि याची पत्रकार के रूप में कार्यरत था। इस गवाह ने अपने प्रति–परीक्षण में यह भी स्वीकार किया कि याची नैनो कार भी रखता था।

7. अभिलेख पर उपलब्ध इन साक्ष्यों को विचार में लेते हुए अवर न्यायालय ने विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को भरण–पोषण का हकदार पाया और तद्नुसार याची को भरण–पोषण के लिए अपनी परित्यक्त पत्नी को 5000/- रुपया प्रतिमाह और अपनी माता के साथ रह रही अपनी अवयस्क पुत्री को 3000/- रुपया प्रतिमाह का भुगतान करने का निर्देश दिया।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश बिल्कुल अवैध है क्योंकि यद्यपि पक्षों के बीच विवाह और पुत्री का जन्म मामले में स्वीकार किया गया है, किंतु अवर न्यायालय ने याची की आय के प्रति कोई निष्कर्ष नहीं दिया था और ऐसा कोई निष्कर्ष दिए बिना भरण–पोषण का आदेश केवल इस तथ्य के कारण पारित किया गया है कि याची की दवा की दुकान थी और वह नैनो कार भी रखता है। यह निवेदन किया गया है कि भरण–पोषण की राशि अत्यधिक है और याचीगण भरण–पोषण का भुगतान करने की अवस्था में नहीं है जैसा अवर न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया है और तद्नुसार, आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

9. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा अनुज्ञात भरण–पोषण अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित है।

10. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और आक्षेपित आदेश के परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि वर्तमान मामले में मतभेद का एकमात्र बिन्दु याची की आय है। पक्षों के बीच विवाह और पुत्री का जन्म इस मामले में स्वीकृत तथ्य हैं। विरोधी पक्षकार पत्नी के पास पृथक रूप से रहने का पर्याप्त कारण है क्योंकि याची का दूसरा विवाह भी स्वीकृत तथ्य है। याची किसी तर्कपूर्ण साक्ष्य को अभिलेख

पर लाकर अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है कि उसने विरोधी पक्षकार सं॰ 2 को तलाक दे दिया था और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में पक्षों के बीच तलाक का तथ्य कोई अंतर पैदा करने नहीं जा रहा है।

11. याची ने आय से इनकार किया है और कथन किया है कि उसे दवा की दुकान से केवल 100/- से 150/- रुपयों की आमदनी है। यह स्पष्टत: दर्शाता है कि याची अवर न्यायालय से अपनी वास्तविक आय छुपा रहा था क्योंकि कल्पना की किसी सीमा तक यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि दवा की दुकान जो मुख्य सड़क पर पुलिस थाना के सामने स्थित थी, केवल 100/- से 150/- रुपयों की आय दे रही थी। इसके अतिरिक्त, स्वयं याची द्वारा परीक्षित गवाह ने स्वीकार किया है कि याची पत्रकारिता का काम कर रहा था और वह नैनो कार भी रखता था।

12. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि उनके भरण-पोषण के लिए अपनी परित्यक्त पत्नी को 5000/- रुपया प्रतिमाह और अपनी अवयस्क पुत्री को 3000/- रुपया प्रतिमाह का भुगतान करने के लिए याची के पास पर्याप्त आय है और कल्पना की किसी सीमा तक उक्त राशि को अत्यधिक नहीं कहा जा सकता है।

13. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, याची की आय के स्रोतों को विचार में लेते हुए मैं पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने लायक अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ। इस आवेदन में गुणागुण नहीं है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî ilkn] U;k;efr

महादेव प्रसाद वरनवाल

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1140 of 2008. Decided on 7th August, 2013.

भारतीय दंड संहिता, 1860–धाराएँ 420 एवं 406–दंड प्रक्रिया संहिता, 1973–धारा 482–छल एवं न्यास का दांडिक उल्लंघन–संज्ञान–भूमि सौदा–प्रवंचना के आवश्यक घटक अनुपस्थित–अगर यह स्वीकार भी कर लिया जाता है कि याची ने धन अपने पास रख लिया है, उसे कपटपूर्ण रूप से दुर्विनियोग करने वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रारंभ से ही छल करने का कोई आशय नहीं था–यह सिविल विवाद का एक मामला प्रतीत होता है–संज्ञान लेनेवाले आदेश समेत समूची दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 12 से 18)

निर्णयज विधि.–(2011)1 SCC 74—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Kashyap, For the Petitioner; APP., For the State; Mr. Abhishek Kumar, For the O.P. No.2.

आदेश

याची के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता तथा विपक्षी सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. देवघर (नगर) पुलिस थाना केस सं॰ 230 वर्ष 2007 में पारित दिनांक 10.3.2008 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए यह आवेदन दाखिल किया गया है जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन, याची के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 420 एवं 406 के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया।

3. परिवादी का मामला यह है कि वह ''उमा समिति'' के नाम से ज्ञात जमीन के हिस्से से जमीन का एक टुकड़ा खरीदने के लिए याची के पास गया था जो एक अग्रणी भूमि व्यापारी है। चूँकि याची एक अग्रणी भूमि व्यवसायी था, परिवादी 750 रु॰ प्रति वर्ग फुट की दर से 870 वर्ग फुट माप वाली जमीन का एक टुकड़ा खरीदने पर सहमत हो गया था और इसके लिए, याची को 1,50,000/- रुपये का भुगतान कर दिया गया था। तत्पश्चात्, जब परिवादी विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए याची के पास गया था, याची ने इसे इस बहाने पर टाल दिया था कि वह एक ही दिन ''उमा समिति'' की समूची जमीन बेंच देगा। जहाँ कहीं भी खरीददार उपलब्ध होंगे, वह उसे सूचित कर देगा और उस दिन वह विक्रय-विलेख निष्पादित कर देगा। अपने वादे के विपरित, परिवादी को यह मालूम हुआ कि उक्त जमीन किसी और को बेंच दी गई है और, अतएव, परिवादी धन का प्रतिदाय करने के लिए याची के पास गया था परन्तु उक्त धन का प्रतिदाय नहीं किया गया था।

4. ऐसे अभिकथन पर, पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 277 वर्ष 2007 के तौर पर परिवाद दर्ज किया गया था। उक्त परिवाद संस्थित किए जाने के लिए तथा अन्वेषण के लिए संबद्ध पुलिस थाना भेज दिया गया था। तद्नुसार, इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन देवघर नगर पुलिस थाना केस सं॰ 230 वर्ष 2007 के तौर पर दर्ज कर लिया गया था।

5. अभियोग पत्र प्रस्तुत किए जाने पर, न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420 एवं 406 के अधीन दिनांक 10.3.2008 के आदेश के माध्यम से दंडनीय अपराध का संज्ञान लिया था।

6. याची के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ कश्यप निवेदन करते हैं कि समूचे अभिकथन को सत्य मान लेने पर भी, छल या दुर्विनियोग का कोई मामला नहीं बनता है क्योंकि याची ने कभी अभिकथित रूप से किसी प्रकार परिवादी से कपट नहीं किया है तद्द्वारा न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420 एवं 406 के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान लेकर अवैधानिकता कारित किया था।

7. इसके विरूद्ध, विपक्षी सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इस याची द्वारा दिए गए इस आश्वासन पर ही कि वह जमीन का एक टुकड़ा बेचेगा, 1,50,000/- रुपये की राशि याची को दी गई थी परन्तु याची ने जमीन का वह टुकड़ा याची को बेचने के बजाय, किसी अन्य व्यक्तियों को बेच दिया था तथा 1,50,000/- रुपये का धन भी अपने पास रख लिया था और जब परिवादी इसे लौटाने के लिए याची के पास गया था उसने इसे लौटाने से सीधे इन्कार कर दिया था।

8. इस चरण में, याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह सूचित किया था कि अग्रिम जमानत के आवेदन में इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में न्यायालय के समक्ष 1,50,000/- रुपये की एक राशि जमा कर दी गई है तथा याची उस राशि का दावा करने नहीं जा रहा है।

9. निवेदन के संदर्भ में, इस संबंध में विचार किया जाना होगा कि परिवाद में किया गया अभिकथन छल एवं दुर्विनियोग का अपराध गठित करता है या नहीं?

10. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन छल का अपराध परिभाषित किया गया है जो निम्नवत् पठित है:-

*^^Ny-&tk dkbZ fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diViod ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkbZ lifÙk fdlh 0;fDr dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkbZ 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og ,lk dkbZ dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml gj çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkZ0; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA**

11. इसके पठन से, यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नांकित घटक आवश्यक रूप से होने होते हैं:–

(1) ml èkk[kk ndj ml 0;fDr dk diVi.k ;k èkk[kkèkMh Hkjk iykHku gkuk pkfg,A

(2)(a) bl idkj Nyk x;k 0;fDr fdlh 0;fDr dk fdlh lifÙk dk ifjnk; dju d fy, ifjr fd;k tkuk pkfg,] ;k blij lgefr nu okyk gkuk pkfg, fd dkbZ 0;fDr fdlh lifÙk dk viu ikl j[kxk ;k

(b) bl idkj Nyk x;k 0;fDr vk'kf;r :i l dkbZ ,lk dk; dju ;k u dju d fy, ifjr gkuk pkfg, ftl og djrk ;k ugh djrk vxj ml bl idkj Nyk x;k ugh gkrkA

(3) 2(b) }kjk vkPNkfnr ekeyk e dk; ;k foyki ,lk gkuk pkfg, tk Ny x; 0;fDr dk 'kkjhfjd :i l ;k mldh ifr"Bk ;k mldh lifÙk dk gkfu dkfjr dj ;k gkfu ;k udlku dkfjr fd, tku dh lHkkouk gkA

12. इस प्रकार, छल के अपराध का गठन करने के लिए पहला आवश्यक तत्व यह है कि अभियुक्त द्वारा परिवादी की प्रवंचना होनी है। जबतक कि प्रवंचना नहीं होगी, छल का अपराध कभी भी आकर्षित नहीं हो सकता है। प्रवंचना किए जाने के उपरान्त, छला गया व्यक्ति किसी कार्य को करने या न करने के लिए प्रेरित किया गया होना चाहिए।

13. यहाँ प्रस्तुत मामले में, प्रवंचना के आवश्यक घटक अनुपस्थित हैं, जो परिवाद याचिका के पैरा 3 में किए गए प्रकथन से प्रकट होगा जिसमें यह कथित किया गया है कि चूँकि याची अग्रणी भूमि व्यवसायी था, परिवादी जमीन का एक टुकड़ा खरीदने पर सहमत हुआ था जिसके लिए, 1,50,000/– रुपये की एक राशि का भुगतान किया गया था। उस अवस्था में याची को कभी भी किसी भी ढंग से परिवादी के साथ प्रवंचना करने वाला नहीं कहा जा सकता है।

14. इस चरण में मैं **इरीडियम इंडिया टेलीकॉम लिमिटेड बनाम मोटोरोला निगमीकृत एवं अन्य [(2011) 1 SCC 74]** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करूँगा जहाँ माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 415 में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान को ध्यान में रखते हुए अभिनिर्धारित किया है कि प्रवंचना धारा के दोनों भागों के अधीन छल के अपराध का एक आवश्यक घटक है। इस प्रकार, समूचे अभिकथन को स्वीकार करने पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है।

15. भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में भी समरूप स्थिति है क्योंकि परिवाद में किए गए अभिकथन को प्रथम दृष्टया देखने पर, उक्त अपराध कभी भी गठित नहीं होता है।

16. भारतीय दंड संहिता की धारा 405 में न्यास का दांडिक उल्लंघन परिभाषित किया गया है, जो निम्नवत् पठित है:–

*“405. **vkijkfèkd U;kl Hkx-**&tk dkb lEifÙk ;k lEifÙk ij dkb Hkh v[kR;kj fdlh idkj viu dk U;Lr fd, tku ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viu mi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl idkj ,lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] mldk fofgr dju okyh fofèk l fdlh fun'k dk] ;k ,l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xb fdlh vfHkO;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k 0;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; 0;fDr dk ,lk djuk lgu djrk g] og ^vkijkfèkd U;klHkx** djrk gA**”*

17. यहाँ प्रस्तुत मामले में, अगर यह स्वीकार भी कर लिया जाता है कि याची ने धन अपने पास रख लिया है, उसे कपटपूर्ण रूप से दुर्विनियोग करने वाला नहीं कहा जा सकता है क्योंकि प्रारंभ से ही छल करने या राशि का दुर्विनियोग करने का कोई आशय नहीं था, बल्कि अधिक-से-अधिक यह सिविल विवाद का एक मामला प्रतीत होता है।

18. इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए कि परिवाद में किए गए अभिकथन छल एवं दुर्विनियोग के अपराध का गठन नहीं करते हैं, संज्ञान लेने वाले दिनांक 10.3.2008 के आदेश समेत समूची दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

19. परिणामतः, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

माधुरी देवी (3227 में)

गोपाल प्रसाद केसरी (3229) में

cuke

खनिज क्षेत्र विकास प्राधिकार एवं अन्य (दोनों में)

W.P. (S). Nos. 3227 with 3229 of 2013. Decided on 7th August, 2013.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–मृत्यु सह-सेवानिवृत्ति लाभ–याची वर्ष 2012 में सेवानिवृत्त हुआ था–याचीगण को प्रबंध निदेशक के समक्ष व्यक्तिगत रूप से अभ्यावेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता दी गई थी–अगर व्यक्तिगत रूप से याचीगण सेवानिवृत्ति के बाद वाले बकायों के कारण वैधानिक रूप से अनुमान्य बकायों एवं वेतन भुगतानों के बकायों के भी हकदार पाये जाते हैं, उस संबंध में योजना के अनुसार किस्तों में इसे विमुक्त किया जाएगा। (पैरा 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Niranjan Singh, For the Petitioners; M/s Bhawesh Kumar, Ravi Kumar, Kumar Rahul Kamlesh, For the M.A.D.A.

आदेश

पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना।

2. डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 3227 वर्ष 2013 में याची मृतक कर्मचारी, सुरेश लाल की विधवा है जिसकी प्रत्यर्थी-एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ के अधीन खलासी के तौर पर कार्य करते हुए 26.10.2012 को सेवा में रहते ही मृत्यु हो गई थी। याची मृतक कर्मचारी की मृत्यु सह-सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान के लिए इस न्यायालय का आश्रय लेने पर बाध्य हुई है क्योंकि परिशिष्ट-2 के माध्यम से पूर्व में किए गए अभ्यावेदन के बावजूद प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों ने कार्यवाही नहीं किया है।

3. डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 3229 वर्ष 2013 में याची कथित रूप से एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ की सेवाओं से 31.12.2012 को खलासी के तौर पर सेवानिवृत्त हुआ था। उसकी व्यथा यह भी है कि उसके सेवानिवृत्तोपरान्त बकायों तथा सेवा लाभ/वेतन के बकायों का भी आज तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा भुगतान नहीं किया गया है।

4. प्रत्यर्थी–एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अगर नये अभ्यावेदन (अभ्यावेदनों) को दाखिल करके याचीगण सक्षम प्राधिकारी, अर्थात, प्रत्यर्थी सं॰ 1, प्रबंध निदेशक, एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ के पास जाते हैं, उनकी व्यथाओं पर विचार किया जाएगा तथा सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधि के अनुसार उनका प्रतितोष किया जाएगा।

5. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सुनवाई करके, याचीगण के दावों के गुणावगुणों पर टिप्पणी किए बिना, अपनी पूर्वोक्त व्यथाओं के प्रतितोष के लिए सभी समर्थक तथ्यों एवं दस्तावेजों के साथ तीन सप्ताह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी सं॰ 1, प्रबंध निदेशक, एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ के समक्ष व्यक्तिगत रूप से अभ्यावेदन (अभ्यावेदनों) को दाखिल करने की याचीगण को स्वतंत्रता अनुज्ञात करते हुए रिट याचिकायें निस्तारित की जाती हैं। ऐसे अभ्यावेदन (अभ्यावेदनों) की प्राप्ति पर, प्रत्यर्थी–एम॰ ए॰ डी॰ ए॰, जिसका प्रतिनिधित्व सक्षम प्राधिकारी–प्रत्यर्थी सं॰ 1, प्रबंध निदेशक, एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ के माध्यम से प्रतिनिधित्व किया गया है, विधि के अनुसार इसपर विचार करेगा तथा 12 सप्ताहों की अवधि के भीतर एक युक्तिसंगत तथा आख्यापक आदेश पारित करेगा, तत्पश्चात् इसे याचीगण को अलग–अलग संसूचित कर दिया जाएगा। अगर याचीगण व्यक्तिगत रूप से सेवानिवृत्तोपरांत लाभों तथा वेतन के बकायों के आधार पर भी वैधानिक रूप से किसी अनुमान्य बकायों के हकदार पाये जाते हैं, उस संबंध में भुगतान उस योजना के अनुसार किस्तों में विमुक्त किए जाएँगे जिसे एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ के ऐसे सेवानिवृत्त कर्मचारीगण पर प्रयोज्य बनाया जा रहा है।

6. दोनों रिट याचिकायें पूर्वोक्त निबंधनों में निस्तारित की जाती हैं।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ i lkn] U;k;efr

शैलेश किशोर सिन्हा (1643 में)

बिपिन बिहारी सिन्हा (1594 में)

cuke

झारखंड राज्य निगरानी के माध्यम से (दोनों में)

Cr.M.P. Nos. 1643 with 1594 of 2013. Decided on 6th August, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973–धारा 167(2)–अनिवार्य जमानत–रद्दकरण–मानक–अनिवार्य जमानत प्रदान किए जाने के एक मामले में, मात्र अभियोग पत्र दाखिल कर देने के कारण जमानत रद्द नहीं की जा सकती बल्कि इस तथ्य के अलावा कि अभियोग पत्र गैर–जमानतीय अपराध का कारित किया जाना प्रकट करता है, ऐसा करने के लिए आवश्यक रूप से विशेष कारण विद्यमान होने हैं–इस कारण जमानत रद्द कर दी गई है कि याचीगण को दोषपूर्ण रूप से जमानत प्रदान कर दी गई है, जिसे न्यायसंगत नहीं बताया जा सकता–आक्षेपित आदेश अपास्त।

(पैराएँ 21 से 24)

निर्णयज विधि.–AIR 2013 SC 296—Distinguished; (013) 3 SCC 77—Referred; (1992)4 SCC 272; (1978) 2 SCC 411; (1977)4 SCC 410; (1986)4 SCC 481.—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s Pandey Neeraj Rai, Prashant Pallav, For the Petitioner; Mr. Shailesh, For the Vigilance.

आदेश

चूँकि दोनों मामले एक ही आक्षेपित आदेश से उद्भूत हैं, इन्हें एक साथ सुना गया था तथा इस सम्मिलित आदेश द्वारा निस्तारित किया जा रहा है।

2. दांडिक विविध याचिका सं॰ 1643 वर्ष 2013 को उद्भूत करने वाले मामले के तथ्य ये हैं कि परिवादी सुनील कुमार चौधरी को 73 नलकूप संस्थापित करने की एक संविदा प्रदान की गई थी इसके परिणामत:, परिवादी ने एक समझौता निष्पादित करने के लिए कार्यपालक अभियंता, बिपिन कुमार सिन्हा के कार्यालय में अपेक्षित दस्तावेजों के साथ आवेदन प्रस्तुत किया था। यह आवेदन परिवादी को वापस कर दिया गया था, जिसे बाद में मालूम हुआ था कि आवंटित कार्य रद्द कर दिया गया है। तदुपरान्त, जब परिवादी ने याची से संपर्क किया था याची, जो एक अधीक्षण अभियंता है, ने रिश्वत की मांग की थी। परिवादी द्वारा मामले की सूचना आरक्षी अधीक्षक, निगरानी को दी गई थी। ऐसा परिवाद प्राप्त करने पर, एक पाश–दल गठित किया गया था तथा याची के घर में छापा मारा गया था जहाँ याची को उस अनुक्रम में रिश्वत के 2,70,000/– रु॰ के धन के साथ रंगे हाथों पकड़ा गया था। घर की तलाशी लिए जाने पर, 4,90,000/– रु॰ की अतिरिक्त राशि मिली थी। तदुपरान्त 2.1.2013 को एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी जिसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7/13(2) के अधीन निगरानी पुलिस थाना केस सं॰ 2 वर्ष 2013 के तौर पर दर्ज किया गया था।

3. दांडिक विविध याचिका सं॰ 1594 वर्ष 2013 को उद्भूत करने वाले मामले के तथ्य ये हैं कि परिवादी सुनील कुमार चौधरी को जब 175 ड्रिल नलकूपों की संस्थापना का कार्य प्रदान किया गया था, समझौते के निष्पादन के लिए अपेक्षित दस्तावेजों के साथ आवश्यक आवेदन प्रस्तुत किया गया था परन्तु इसके लिए, 1,00,000/– रु॰ की रिश्वत की मांग की गई थी। आरक्षी अधीक्षक, निगरानी को मामला सूचित किया गया था, जिसने एक जाल बिछाया था जिसके दौरान याची (कार्यपालक अभियंता) घूस की राशि प्राप्त करते समय रंगे हाथ पकड़ा गया था। ऐसे अभिकथन पर, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 7/13(2) के अधीन निगरानी पुलिस थाना केस सं॰ 1 वर्ष 2013 के तौर पर एक मामला दर्ज किया गया था।

4. दोनों मामलों में, याचीगण को 5.1.2013 को दंडाधिकारी के समक्ष पेश किए जाने पर कारागार की हिरासत में भेज दिया गया था। निगरानी ने अन्वेषण पूरा करके 60 दिनों की अनुबद्ध अवधि के पहले ही 4.3.2013 को अभियोग पत्र प्रस्तुत कर दिया था। तथापि, अभियोजन ने अभियोजन की स्वीकृति प्राप्त करने वाला आदेश हासिल करने में विफल रहा। उस अवस्था में, न्यायालय ने अपने आप को अपराध का संज्ञान लेने में असमर्थ पाकर दिनांक 16.3.2013 के आदेश से याचीगण को जमानत प्रदान कर दिया था।

5. तदुपरान्त, याचीगण को प्रदान की गई जमानत रद्द करने के लिए दोनों मामलों में निगरानी की ओर से एक आवेदन दाखिल किया गया था उसमें यह कथित करते हुए कि अभियोजन पत्र यद्यपि समय रहते प्रस्तुत कर दिया गया था, परन्तु यह अभियोजन की स्वीकृति देने वाले आदेश के साथ नहीं था और इस कारण, न्यायालय ने यह उपधारित करके कि वह संज्ञान लेने में असमर्थ है, जमानत प्रदान कर दिया था, यद्यपि **सुरेश कुमार भीकमचंद्र जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य [(2013) 3 SCC 77]** के मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में, याचीगण संहिता के अधीन अनुबद्ध समय के भीतर अभियोग पत्र प्रस्तुत कर दिए जाने पर जमानत के हकदार नहीं थे इस तथ्य के बावजूद कि यह अभियोजन स्वीकृत करने वाले आदेश के साथ नहीं था और तद्द्वारा दोनों याचीगण की जमानत रद्द करने का आग्रह किया गया था।

6. विद्वान निगरानी न्यायाधीश ने पक्षकारों के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता की सुनवाई करके अभिलिखित किया था कि अभियोग पत्र प्रस्तुत किए जाने पर जब निगरानी द्वारा अभियोजन की स्वीकृति

देने वाला आदेश नहीं लाया गया था, न्यायालय ने अपराध का संज्ञान न लिए जाने तक अभियुक्त को कारागार की हिरासत में न भेजने के दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 के अधीन अनुबद्ध निषेध तथा इस न्यायालय के निर्णय को भी दृष्टिगत रखते हुए याचीगण को जमानत प्रदान कर दिया था। यह भी अभिलिखित किया गया है कि उस समय न्यायालय को निगरानी की ओर से निर्दिष्ट इस निर्णय की जानकारी नहीं थी कि संहिता के अधीन अनुबद्ध समय के भीतर अभियोग पत्र प्रस्तुत किए जाने पर, न्यायालय को अभियोजन की स्वीकृति से संबंधित किसी आदेश की अनुपस्थिति में भी अभियुक्त को प्रतिप्रेषित करने की शक्ति होती है। ऐसी दशा में, जमानत प्रदान किए जाने वाला आदेश रद्द किए जाने के लिए उपयुक्त होता है और तद्नुसार, इसे दिनांक 18.6.2013 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था। यह आदेश दोनों मामलों में चुनौती के अधीन है।

7. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जब विधि द्वारा रिहाई का एक आदेश पारित कर दिया जाता है, या तो धारा 437(1) या (2) या फिर धारा 439(1) के अधीन जमानत प्रदान किए जाने से संबंधित पारित कोई आदेश उस आदेश को रद्द करने के लिए सुसंगत कारकों पर धारा 437 की उपधारा (5) या धारा 439 की उप-धारा (2) के अधीन रद्द किया जा सकता है, जिसका अर्थ हुआ कि 437(1) या (2) के अधीन या धारा 439(1) के अधीन प्रदत्त जमानत रद्द की जा सकती है जब अभियुक्त समरूप दांडिक गतिविधि में संलिप्त होकर अपनी स्वतंत्रता का दुरूपयोग करता है, अन्वेषण के अनुक्रम के साथ छेड़-छाड़ करता है, साक्ष्य या गवाहों के साथ छेड़-छाड़ करने का प्रयास करता है, गवाहों को धमकाता है या समरूप गतिविधियों में संलिप्त होता है जो सुगम अन्वेषण को अवरूद्ध कर सकती हैं या अभियुक्त के फरार हो जाने की संभावना हो, परन्तु प्रस्तुत मामले में, एक बिल्कुल ही भिन्न आधार पर जमानत रद्द कर दी गई है और इस प्रकार, जमानत का प्रदान किया जाना इसके अपने ही आदेश को वापस लिए जाने के तुल्य होगा जो शक्ति दांडिक न्यायालय के पास नहीं है।

8. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि न्यायालय जमानत प्रदान करते समय कभी भी न तो तथ्य पर और न ही विधि पर कोई त्रुटि कारित करता हुआ प्रतीत होता है क्योंकि अभियोग पत्र प्रस्तुत हो जाने पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309(2) में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान के आधार पर अभियुक्त को हिरासत में भेजने की शक्ति न्यायालय तभी प्राप्त करता है जब अपराध का संज्ञान लिया जाता है। चूँकि स्वीकृति प्रदान करने वाले आदेश के दाखिल न किए जाने के कारण, न्यायालय अपराध का संज्ञान लेने में असमर्थ था, वहाँ पर जो एकमात्र रास्ता बचा था वह याची को जमानत प्रदान करने का था जिसे न्यायालय ने प्रदान किया था और अतएव, न्यायालय के पास माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट मामले में दिए गए निर्णय के बावजूद जमानत को रद्द करने का कोई वैध कारण नहीं था जिसमें मुख्य मुद्दा इसके संबंध में था कि स्वीकृति न होने से संज्ञान की अनुपस्थिति में, एक अभियुक्त सांविधिक जमानत का हकदार होगा या नहीं और अतएव, न्यायालय उपरोक्त निर्दिष्ट मामले में दिए गए माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश का आश्रय लेकर जमानत रद्द करने में औचित्य पर नहीं था।

9. यह भी निवेदन किया गया कि पहले जमानत प्रदान की गई थी जब अभियोजन अभियोग पत्र के दाखिले के बावजूद स्वीकृति प्रदान करने वाला आदेश अभिलेख पर लाने में विफल रहा था, परन्तु मात्र अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान करने वाले आदेश के दाखिले मात्र पर, निगरानी द्वारा किए गए आग्रह पर जमानत रद्द कर दी गई थी जो **असलम बाबा लाल देसाई बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1992) 4 SCC 272]** के एक मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में बिल्कुल अवैधानिक है, जिसमें न्यायाधीशों ने अभिनिर्धारित किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के अधीन प्रदत्त सांविधिक जमानत अभियोग पत्र के दाखिले पर रद्द किए जाने की दायी नहीं है।

10. इसके विरूद्ध, निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेश ने निवेदन किया कि धारा 437(5) या 439(2) के अधीन यथा अनुबद्ध साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने, न्याय के सम्यक अनुक्रम

में हस्तक्षेप करने, न्याय की पकड़ से भाग जाने की अभियुक्त की प्रवृत्ति जैसी परिस्थितियाँ जमानत रद्द करने के लिए अकेली परिस्थिति नहीं हो सकती। उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय जमानत रद्द कर सकता है उस दशा में भी जहाँ जमानत प्रदान करने वाला आदेश गंभीर दुर्बलता से ग्रस्त है जिसके परिणामत: न्याय का हनन हुआ है। निगरानी द्वारा आवेदन दाखिल किए जाने पर जब न्यायालय ने यह पाया था कि अभियोग पत्र प्रस्तुत किए जाने के समय स्वीकृति प्रदान करने वाले आदेश के दाखिल न किए जाने के कारण जमानत का प्रदान किया जाना न्यायसंगत नहीं था, तब न्यायालय ने जमानत रद्द कर दिया था और तद्द्वारा न्यायालय **कंवर सिंह मीना बनाम राजस्थान राज्य एवं एक अन्य (AIR 2013 SC 296)** के मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में जमानत रद्द करने में बिल्कुल औचित्य पर था।

11. सुनवाई करके तथा अभिलेख के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि इस मामले में अभियोग पत्र अनुबद्ध समय के भीतर प्रस्तुत किया गया था परन्तु इसके साथ अभियोजन स्वीकृत करने वाला आदेश नहीं था और तद्द्वारा न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 309(2) में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में संज्ञान लेने में एवं याचीगण को हिरासत में भेजने में अपने आप को असमर्थ पाया था और इस कारण, दोनों याचीगण को जमानत प्रदान कर दिया था। तथापि, बाद में स्वीकृति प्रदान करने वाला आदेश प्रस्तुत करके, **सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य के मामले (ऊपर)** में दिए गए निर्णय, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस तथ्य के बावजूद कि अभियोजन अभियुक्त का अभियोजन करने की स्वीकृति प्राप्त करने में सक्षम नहीं रहा था, अभियुक्त सांविधिक जमानत प्रदान किए जाने का हकदार नहीं था क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(a)(ii) के अधीन अनुध्यात अवधि के बिल्कुल भीतर आरोप पत्र दाखिल किया गया था, से संकेत प्राप्त करते हुए निगरानी की ओर से जमानत रद्द करने के लिए एक आवेदन दाखिल किया गया था। ऐसी परिस्थिति में जमानत रद्द कर दी गई थी।

12. इस प्रकार, इसके संबंध में विचार किया जाना है कि न्यायालय जमानत रद्द करने में औचित्य पर था या नहीं।

13. इसे दोहराया जाता है कि न्यायालय ने इस आधार पर जमानत रद्द कर दिया है कि न्यायालय ने **सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य के मामले (ऊपर)** में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखे बिना याचीगण को जमानत प्रदान कर दिया था यद्यपि वे इसके हकदार नहीं थे और अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी गई है।

14. इसे अभिलिखित किया जाता है कि एक गैर–जमानती मामले में जमानत का आवेदन अस्वीकार करना अपेक्षाकृत आसान है एकबार प्रदान की गई उस जमानत को रद्द करने की तुलना में इस कारण कि जमानत का रद्द किया जाना या तो न्यायालय के विवेकाधिकार के इस्तेमाल द्वारा या विधि की प्रबलता द्वारा अभियुक्त द्वारा पहले ही प्राप्त की गई स्वतंत्रता के साथ हस्तक्षेप करता है।

15. ऐसी परिस्थिति में, **राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम संजय गांधी [(1978) 2 SCC 411]** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने सम्परीक्षित किया है कि किसी अभियुक्त जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, को हिरासत में वापस लेने की शक्ति का सावधानी एवं सतर्कता के साथ इस्तेमाल किया जाना है। न्यायालय ने यह भी सम्परीक्षित किया है कि इसका यह अर्थ नहीं है कि इस शक्ति, जो यद्यपि असाधारण प्रकृति की है, का उस समय भी इस्तेमाल नहीं किया जाय जब न्याय के उद्देश्य ऐसी मांग करते हैं।

16. मैं **असलम बाबा लाल देसाई बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले (ऊपर)** में दिए गए एक निर्णय को भी निर्दिष्ट करना चाहूँगा जिसमें विचार के लिए निम्नांकित प्रश्न उठे थे।

17. क्या उसके अधीन विहित अवधि के भीतर अन्वेषण को पूरा करने में विफलता पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक के अधीन प्रदत्त जमानत केवल इसके उपरांत किसी भी समय चालान (अभियोग पत्र) के प्रस्तुतीकरण पर रद्द की जा सकती है।

18. न्यायाधीशों ने मामले का निर्णय करते समय **बसीन बनाम हरियाणा राज्य, (1977) 4 SCC 410** के मामले में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखा था जिनमें न्यायाधीशों ने सुसंगत प्रावधान की जाँच करने के उपरान्त निम्नवत् निष्कर्ष दिया था:–

*^^tekur inku dju dh U;k;ky; dh 'kfDr] vxj ;g bl vko';d le>rk g] mu ekeyk e ifjf{kr tgk fdlh 0;fDr dk ekkjk 437(1) ;k (2) d vèkhu tekur ij fjgk fd;k x;k g rFkk ;g ikoèkku ml 0;fDr ij ykx gkr g ft l ekkjk 167(2) d vèkhu fjgk fd;k x;k gA ekkjk 437(2) d vèkhu tc fdlh 0;fDr dk tkp d yfcr jgr bl vkèkkj ij fjgk fd;k tkrk g fd , lk fo'okl dju d fy, i;kIr vkèkkj g fd mlu tk xj&tekurh; vijkèk dkfjr fd;k Fkk] ml ml U;k;ky; }kjk fgjkIr e Hktk tk ldrk g ft lu ml tekur ij fjgk fd;k Fkk vxj ml lekèkku g fd tkp ijh gk tku ij , lk dju d fy, i;kIr vkèkkj gA pfd ekkjk 437(1)] (2) ,o (5) d ikoèkku ml 0;fDr ij ykx gkr g ft l ekkjk 167(2) d vèkhu fjgk fd;k x;k g] ek= ;g rF; fd mldh fjgkb d mijkUr ,d pkyku nkf[ky fd;k x;k g] ml fgjkIr e Hktu d fy, i;kIr ugh gA bl ekey e] tekur jí dj nh xb Fkh ,o vihykFkhx.k dk fxj¶rkj dju rFkk fgjkIr e Hktu dk vkn'k fd;k x;k Fkk bl vkèkkj ij fd ckn e ,d vfHk;kx i= nkf[ky fd;k x;k Fkk vkj ;g fd ekkjk 167(2) d vèkhu vihykFkhx.k dk fjgk fd, tku d fun'k d igy] l= U;k;ky; rFkk mPp U;k;ky; }kjk x.kkox.kk ij mudh tekur ;kfpdk, [kkfjt dj nh xb FkhA ;g rF; fd ekkjk 167(2) d vèkhu ,d vkn'k ikfjr fd, tku d igy] x.kkox.kk ij vfHk;Drk dh tekur ;kfpdk, [kkfjt dj nh xb Fkh] ekkjk 437 (5) d vèkhu dkjokb dju d mí'; d fy, ikIfxd ugh gA u gh ;g ,d oèk vkèkkj g fd vihykFkh dh fjgkb d ckn ifyl }kjk pkyku nkf[ky fd;k x;k FkkA U;k;ky; dk vfHk;Dr dh fxj¶rkjh rFkk mUg fgjkIr e Hktu dk fun'k nu d igy ekkjk 437(5) d vèkhu , lk djuk vko';d le>uk pkfg,A ;g U;k;ky; }kjk bl fu"d"k ij igpr g, fd;k tk ldrk g fd pkyku d nkf[ky fd, tku d mijkUr , l i;kIr vkèkkj g fd vfHk;Dr u ,d xj&tekurh; vijkèk dkfjr fd;k Fkk vkj ;g fd , lk vko';d g fd ml fxj¶rkj fd;k tkuk pkfg, rFkk fgjkIr e Hkt nuk pkfg,A lk{; d lkFk NM&NkM dju ;k mldk Lor= jguk U;k; d fgr e u gku t l vU; vkèkkjk ij Hkh ;g fxj¶rkjh rFkk fgjkIr e Hktu dk vkn'k dj ldrk gA ijUr ;g vko';d g fd U;k;ky; dk bl vkèkkj ij vkx c<uk pkfg, fd ml ekkjk 437(1) ,o (2) d vèkhu fjgk fd;k x;k le>k x;k gA***

19. रघुबीर सिंह बनाम बिहार राज्य [(1986) 4 SCC 481] के मामले में कमोवेश समरूप दृष्टिकोण दोहराया गया था जहाँ निम्नवत् सम्परीक्षित किया गया था:–

^^rFkkfi] ekkjk 437(5) ;k ekkjk 439(2) d vèkhu tekur ij fjgkb dk vkn'k jí fd;k tk ldrk gA lkekU; r% 0;kid :i l U;k; d i'kkIu d lE;d vuØe d lkFk gLr{ki djuk ;k gLr{ki dju dk i;kI djuk] U;k; d vuØe l cpu ;k cpu dk i;kI djuk] vfHk;Dr }kjk Lor=rk dk n:i;kx djuk tekur jí dju d vkèkkj gkr gA ------ tgk lkB fnuk e vUo"k.k ijk u dju d vfHk;ktu d 0;frØe d fy, ekkjk 167(2) d ijUrd d vèkhu tekur inku dh

xb g] ,d vkjki i= nkf[ky djd nk"k dk mipkj dj fy, tku d mijkUr vfHk;ktu bl vkèkkj ij tekur jí dju dh bl lk dj ldrk g fd , ***lk fo'okl dju d i;klr dkj.k g fd vfHk;Dr u ,d xj tekurh vijkèk dkfjr fd;k g vkj ;g fd ml fxj¶rkj djuk rFkk fgjklr e Hktuk vko';d gA*** *vfUre mfYyf[kr ekey e] okLro e vfricy vkèkkj vif{kr gkr gA***

20. असलम बाबा लाल देसाई बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले (ऊपर) में न्यायाधीशगण विभिन्न निर्णयों एवं उपरोक्त निर्दिष्ट निर्णय को भी ध्यान में रखकर निम्नांकित निष्कर्ष तक पहुँचे थे:–

^^lfgrk d ikoèkku] fo'k"kdj èkkjk, 57 ,o 167 foèkk;h fprk dk idV djrh g fd ifyl }kjk U;k;ky; d fdlh vkn'k ;k okjV d fcuk fdlh 0;fDr dk fxj¶rkj djd mldh Lor=rk d lkFk ,d ckj gLr{ki fd;k tkrk g] rc vUo"k.k vko';d :i l furkr vR;ko';drk d lkFk fd;k tkuk g rFkk lfgrk dh èkkjk 167(2) d ijrd (a) }kjk vuKkr vfèkdre vofèk d Hkhrj ijk dj fy;k tkuk gA bl vko';d :i l le>uk g fd ml le;] ftl le; rd fxj¶rkj vfHk;Dr gk fgjklr e j[kk tk ldrk g] dk c<kuk d fy, U;k;ky; e mDr ikoèkku vr%LFkkfir fd;k x;k FkkA vr,o] vfHk;ktu vfHkdj.k dk vko';d :i l le>uk g fd vxj og ekey d vUo"k.k e 'kh?krk dh Hkkouk fn[kku e foQy jgrk g vkj vuc) le; d Hkhrj vfHk;kx i= nkf[ky dju e 0;frØe djrk g ;k foyki djrk g] rc vfHk;Dr tekur tekur ij fjgk fd, tku dk gdnkj gkxk rFkk èkkjk 167(2) d vèkhu bl iHkko dk ikfjr vkn'k lfgrk dh èkkjk 437(1) ;k (2) d vèkhu ;k èkkjk 439(1) d vèkhu ,d vkn'k gkxkA pfd èkkjk 167 tekur jí dju e l'kDr ugh cukrh g] tekur jí dju dh 'kfDr vfèkfu;e dh èkkjk 437(5) ;k 439(2) e gh [kkth tk ldrh gA bld ckn tekur mu dkjdk ij jí dh tk ldrh g tk lfgrk dh èkkjk 437(1) ;k (2) ;k èkkjk 439(1) d vèkhu inUk tekur d jídj.k d fy, oèk gA ;g rF; fd tekur dk igy vLohdkj dj fn;k x;k Fkk ;k bl lfgrk dh èkkjk 167(2) d ijrd (a) d tkj }kjk iklr fd;k x;k Fkk] rc ;g i"BHkfe e pyk tkrk gA ***vfHk;Dr d ,d ckj tekur ij fjgk dj fn, tku ij] mldh Lor=rk d lkFk vklkuh l gLr{ki ugh fd;k tk ldrk g] vFkkr] bl vkèkkj ij fd vfHk;ktu u ckn e ,d vfHk;kx i= iLrr dj fn;k gA ,lk nf"Vdk.k vUo"k.k vfHkdj.k e f<ykb dh Hkkouk mRiUUk djxk rFkk lfgrk dh èkkjkvk 57 ,o 167(2) }kjk vif{kr vR;ko'drk dh Hkkouk l ;Dr dju d mí'; dk gh u"V dj nxkA vr,o] gekjh jk; g fd bl vfHk;Dr d ,d ckj èkkjk 167(2) d vèkhu tekur ij fjgk dj fn, tku ij] ml doy ,d vfHk;kx i= d nkf[ky ij fgjklr e okil ugh fy;k tk ldrk g cfYd ,lk dju d fy, fo'k"k dkj.k vko';d :i l ektn gku g bl rF; d vfrfjDr fd vfHk;kx i= ,d xj&tekurh vijkèk dk dkfjr fd;k tkuk idV djrk gA*** *jtuhdkr ekey dk fu.k;kèkkj] ftl lhek rd ;g ;gk ij vlxr g] lEeku iod dgr g,] fofèk dk lgh rjhd l dfFkr ugh djrk gA***

21. इस प्रकार, माननीय उच्चतम न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण यह प्रतीत होती है कि अनिवार्य जमानत प्रदान किए जाने के एक मामले में, जमानत केवल अभियोग पत्र के दाखिले के कारण रद्द नहीं की जा सकती है बल्कि ऐसा करने के लिए विशेष कारण आवश्यक रूप से विद्यमान होने हैं इस तथ्य के अलावा कि अभियोग पत्र गैर–जमानतीय अपराध का कारित किया जाना प्रकट करता है।

22. प्रस्तुत मामला यद्यपि अनिवार्य जमानत के मामले से संबंधित नहीं है, परन्तु प्रभावी रूप से जमानत का प्रदान किया जाना व्यतिक्रम पर मिली जमानत कहा जा सकता है और अतएव, यह उन्हीं लक्षणों को प्राप्त कर लेता है जो कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत प्रदान करने के मामले में है।

23. अतएव, उपरोक्त निर्दिष्ट मामलों में जो सिद्धांत अधिकथित किया गया है, उसपर इस संबंध में विचार करने के लिए आसानी से लागू किया जा सकता है कि उपरोक्त कथित परिस्थितियों में क्या जमानत का प्रदान किया जाना न्यायसंगत प्रतीत होता है।

24. जैसा कि मैंने पहले ही कथित किया है कि जमानत इस कारण रद्द कर दी गई है कि याचीगण को दोषपूर्ण रूप से जमानत प्रदान कर दी गई है और यह कि अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी गई है जिसे, उपरोक्त निर्दिष्ट मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि की दृष्टि में न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता है और अतएव, आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

25. जहाँ तक निगरानी को निर्दिष्ट मामले का सवाल है, यह सही है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने निगरानी की ओर से निर्दिष्ट एक मामले में अभिनिर्धारित किया है कि जमानत रद्द करने के संहिता के प्रावधान के अंतर्गत उपलब्ध आधार के अलावा, जमानत तब भी रद्द की जा सकती है अगर जमानत प्रदान करने वाला आदेश गंभीर दुर्बलता से ग्रस्त है जिसके परिणामत: न्याय का हनन हुआ है। उक्त प्रतिपादना मामले के तथ्य पर अधिकथित की गई है और यह पाया जाने पर कि उच्च न्यायालय ने मनमाने तथा लापरवाही भरे ढंग से अपनी वैवेकिक शक्ति का इस्तेमाल किया है क्योंकि सुसंगत सामग्री की उपेक्षा करते हुए जमानत प्रदान करने वाला आदेश पारित किया गया है। अतएव, तथ्यों तथा परिस्थितियों में, उपरोक्त निर्दिष्ट मामला लागू होने वाला प्रतीत नहीं होता है।

26. जमानत के रद्दकरण से संबंधित मामले में उपरोक्त यथा निर्दिष्ट अधिकथित विधि के अनुसार संबद्ध न्यायालय के पुनर्विचार के लिए मामला उसे प्रतिप्रेषित किया जाता है।

27. तद्नुसार, दोनों आवेदन निस्तारित किए जाते हैं।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

प्रेम पांडेय उर्फ प्रेम उर्फ प्रेम कुमार पांडे

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Revision No. 467 of 2013. Decided on 12th July, 2013.

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 14—जमानत–जमानत आवेदन अस्वीकार किया जाना–बलात्कार का अभिकथन–याची को किशोर घोषित किया गया था किंतु किशोर न्याय बोर्ड ने जमानत के लिए उसका आवेदन याची के सामाजिक अन्वेषण रिपोर्ट को ध्यान में लेते हुए अस्वीकार कर दिया था–याची के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है–जमानत प्रदान किया गया–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Md. Zaid Ahmed, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ सुने गए।

2. याची दांडिक अपील सं॰ 174 वर्ष 2013 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 17.5.2013 के आदेश द्वारा व्यथित है जिसके द्वारा जी॰ आर॰ सं॰ 4964 वर्ष 2012 में किशोर याची का जमानत आवेदन अस्वीकार करते हुए किशोर न्याय बोर्ड, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 30.4.2013 के आदेश के विरुद्ध अपील विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गयी है।

3. याची को पुटकी पी॰ एस॰ केस सं॰ 214 वर्ष 2012, जी॰ आर॰ सं॰ 4964 वर्ष 2012 के तत्सम, में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 366A और 376A के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त बनाया गया है। यद्यपि पीड़िता लड़की को विभिन्न स्थानों पर ले जाने और उसके साथ बलात्कार करने का अभिकथन सह–अभियुक्तगण के विरुद्ध है किंतु प्राथमिकी से यह प्रतीत होता है कि यह अभिकथन है कि याची अपने मित्रों के साथ उपस्थित था और पीड़िता से मिला था, किंतु उसके साथ बलात्कार करने का अभिकथन याची के विरुद्ध नहीं है। किंतु, प्राथमिकी के अंतिम पैराग्राफ में यह प्रतीत होता है कि सूचक ने समस्त अभियुक्तगण का नाम लिया था और कथन किया था कि उन्होंने उसे विभिन्न स्थानों पर रखा था और उसके साथ बलात्कार किया था, किंतु याची के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है।

4. यह प्रतीत होता है कि याची को किशोर घोषित किया गया था और उसने जमानत के लिए अपना आवेदन दाखिल किया जिसे याची के सामाजिक अन्वेषण रिपोर्ट जो उसके विरुद्ध थी को विचार में लेते हुए और यह पाते हुए कि याची की निर्मुक्ति उसको शारीरिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक खतरों में डाल देगी और न्याय का उद्देश्य विफल करेगी, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। उक्त आदेश के विरुद्ध दाखिल अपील भी विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दी गयी थी।

5. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, विशेषत: इस तथ्य की दृष्टि में कि याची के विरुद्ध अपहरण करने अथवा बलात्कार करने का कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है, मैं याची प्रेम पांडे उर्फ प्रेम उर्फ प्रेम कुमार पांडे को जमानत पर रिहा करने का इच्छुक हूँ। तद्नुसार, उक्त नामित याची को पुटकी पी॰ एस॰ केस सं॰ 214 वर्ष 2012, जी॰ आर॰ सं 4964 वर्ष 2012 के तत्सम, के संबंध में इस शर्त के साथ कि जमानतदारों में से एक याची का पिता होना चाहिए और वह अवर न्यायालय में वचन देगा कि वह किशोर याची को अपनी निजी देखरेख और संरक्षण में रखेगा और याची द्वारा ऐसा अपराध दोहराया नहीं जाएगा, किशोर न्याय बोर्ड, धनबाद की संतुष्टि के प्रति प्रत्येक समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ 10,000/- रुपयों का जमानत बंध पत्र प्रस्तुत करने पर जमानत पर निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है।

6. तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

अर्जुन कुमार सिंह

cuke

भारत संघ एवं अन्य

Civil Review No. 26 of 2010. Decided on 1st July, 2013.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 114—सेना नियमावली, 1954—नियम 13 (3) (iii) (v) एवं 14—सेवा से उन्मोचन–पुनर्विलोकन आवेदन–गलतियाँ, जो पुनर्विलोकन में परिशुद्धि के अधीन हैं, अभिलेख पर प्रकट गलतियाँ है और न कि प्रच्छन्न गलतियाँ जिनके लिए मामला बनाने के लिए कठिन तर्क करने की आवश्यकता है–रिट याची द्वारा उन्मोचन आदेश को चुनौती कभी नहीं दी गयी थी–याची अन्य सारवान आधारों अथवा किसी अन्य गलतियों पर आक्षेपित निर्णय

द्वारा प्रभावित हो सकता है जो अपील का विषयवस्तु हो सकती हैं–किंतु आक्षेपित निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए आधार नहीं बनाया गया है–पुनर्विलोकन याचिका खारिज की गयी।

(पैराएँ 7 से 11)

अधिवक्तागण.–M/s Manoj Tandon, Prabhash Kumar, For the Petitioner; J.C. to ASGI, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता सुने गए।

2. वर्तमान पुनर्विलोकन आवेदन डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1769 वर्ष 2004 में पारित दिनांक 25.2.2010 के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उक्त रिट याचिका खारिज कर दी गयी थी।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन करना इप्सित किया है कि निर्णय जिसके लिए पुनर्विलोकन इप्सित किया जा रहा है, अभिलेख पर प्रकट त्रुटियों से ग्रस्त है। अपने निवेदन के समर्थन में निवेदन किया गया है कि उन्मोचन आदेश मेजर जेनरल ग्राउंड ऑफिसर कमांडिंग (जी॰ ओ॰ सी॰), 23, इंफैंट्रीडिविजन, द्वारा पारित किया गया है यद्यपि वह सेना नियमावली, 1954 के नियम 13 (3) (iii) (v) के मुताबिक सक्षम प्राधिकारी नहीं था। उक्त सेना नियमावली के मुताबिक, बिग्रेड अथवा सब–एरिया कमांडर याची जैसे व्यक्ति, जो भारतीय सेना में सिग्नल मैन/सिपाही था, को उन्मोचित करने वाला सक्षम प्राधिकारी है, याची की ओर से आग्रहित द्वितीय आधार यह है कि उन्मोचन आदेश पारित किए जाने के पहले उसको जारी किया गया कारण बताओ नोटिस, जो पुनर्विलोकन याचिका का परिशिष्ट–2 है, अवचार के आरोप की प्रकृति का है जिसके संबंध में समुचित अनुशासनिक जाँच किया जाना चाहिए था। अत: उन्मोचन आदेश उन्मोचन मात्र नहीं है बल्कि बर्खास्तगी का आदेश है। अत:, नियम 14, जो अवचार के कारण केंद्रीय सरकार द्वारा सेवा की समाप्ति प्रावधानित करता है, याची के मामले पर प्रयोज्य है जिसका अनुसरण नहीं किया गया है और विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिलेख पर प्रकट त्रुटि है। अंत में, याची की ओर से प्रतिवाद किया गया है कि रिट याचिका में प्रत्यर्थी के पूरक प्रति शपथ पत्र में किए गए विपरीत निवेदन के बावजूद विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया है कि याची सैन्य नियमों के मुताबिक उपदान के भुगतान का हकदार होगा और उसकी आशंका कि उसे अपने सेवा निवृत्ति लाभों से अवैध रूप से वंचित कर दिया जाएगा, भ्रामक है।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी भारतीय संघ के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका में याची की ओर से आग्रहित विनिर्दिष्ट आधारों की ओर इस न्यायालय का ध्यान खींचा है जिन्हें पुनर्विलोकित किए जाने के लिए इप्सित निर्णय के पैरा 8 में निर्दिष्ट किया गया है। यह निवेदन किया गया है कि इन आधारों पर रिट याचिका सुनी और विनिश्चित की गयी थी और आक्षेपित निर्णय में ऐसी कोई प्रकट गलती नहीं है जो प्रश्नगत निर्णय के पुनर्विलोकन की अपेक्षा करती है। इसके अतिरिक्त, यह निवेदन किया गया है कि याची ने उन्मोचन आदेश को चुनौती नहीं दिया था बल्कि इसके परिणामत: जारी मूवमेन्ट आदेश को चुनौती दिया था। याची ने यह भी स्वीकार किया कि उन्मोचन आदेश पारित किए जाने के पहले उसे कारण बताओ जारी किया गया था। उसने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल किया जिसे उसको कमांडिंग ऑफिसर, जी॰ ओ॰ सी॰, 23 इंफैंट्री डिविजन के हस्ताक्षर के अधीन संसूचित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। प्रत्यर्थीगण की ओर से आगे यह निवेदन किया गया है कि नियम 14 के प्रति किया गया निर्देश याची के मामले पर प्रयोज्य नहीं है क्योंकि वह अधिकारी नहीं है जिसके संबंध

में अवचार के कारण सेवा समाप्ति के लिए उक्त प्रक्रिया प्रावधानित की गयी है। याची को सही प्रकार से सक्षम प्राधिकारी द्वारा सेवा से उन्मोचित किया गया है और आक्षेपित निर्णय अभिलेख पर प्रकट त्रुटि से पीड़ित नहीं है।

5. किंतु प्रत्यर्थी भारत संघ ने सिविल विविध याचिका सी॰ एम॰ पी॰ सं॰ 134 वर्ष 2010 दाखिल किया जिसके अधीन दिनांक 25.2.2010 के निर्णय के पैरा 18 में दर्ज निष्कर्षों को सुधारने के लिए प्रार्थना की गयी है। उक्त सी॰ एम॰ पी॰ में याची और रिट याचिका में तथा सिविल पुनर्विलोकन में भी प्रत्यर्थीगण के अनुसार विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करके कि याची कर्मचारी सैन्य नियमावली के मुताबिक उपदान के भुगतान का हकदार होगा गलती की है।

6. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है और आक्षेपित निर्णय तथा पक्षों की ओर से निर्दिष्ट अन्य सामग्रियों एवं प्रश्नगत सेना नियमावली का परिशीलन किया है। आरंभ में ही, यह कथन करने की आवश्यकता है कि आधारों, जिन पर रिट याचिका को सुना और विनिश्चित किया गया था, को विस्तारपूर्वक दिनांक 25.2.2010 के निर्णय के पैरा 8 में निर्दिष्ट किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया है कि याची कर्मचारी सिपाही को सही प्रकार से सक्षम प्राधिकारी द्वारा सेना नियम 13 (3) (iii) (v) के प्रावधानों के अधीन उन्मोचित किया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पक्षों के परस्पर विरोधी निवेदनों पर चर्चा करने के बाद यह भी अभिनिर्धारित किया है कि याची पर किसी अवचार के कारण कोई दंड अधिरोपित नहीं किया गया है। किंतु प्रासंगिक नियम 13 की आवश्यकता के मुताबिक स्वीकृत रूप से उस पर कारण बताओ नोटिस तामील किया गया था जिसका उत्तर देने में वह विफल रहा। उन्होंने प्रत्यर्थी के निवेदन को भी विचार में लिया है कि यद्यपि याची पर उन्मोचन आदेश तामील किया गया था, किंतु उसने उन्मोचन प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था।

7. ऐसी स्थिति में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया है कि सेवा अभिलेख पर आधारित उन्मोचन आदेश और सेवा में उसके प्रदर्शन के बारे में सक्षम प्राधिकारी द्वारा निर्मित मत कि उसका प्रदर्शन संतोषजनक नहीं था, में पाया गया था कि उसे सेना में सिपाही के रूप में बनाए रखना वांछनीय नहीं था। उस पर कोई आरोप मेमो तामील नहीं किया गया था और न ही उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही आरंभ की गयी थी क्योंकि यह प्रासंगिक नियमों के अधीन अप्रासंगिक था जहाँ एकमात्र आवश्यकता यह थी कि उन्मोचन आदेश पारित किए जाने के पहले कर्मचारी/अधिकारी पर कारण बताओ नोटिस तामील किया जाना चाहिए। आक्षेपित निर्णय में गलतियों को इंगित करने के लिए पुनर्विलोकन याची द्वारा श्रम साध्य तर्क दिए गए है। किंतु यह सुनिश्चित है कि गलतियाँ, जो पुनर्विलोकन में सुधार के अध्यधीन हैं, अभिलेख की प्रकट गलतियाँ है और न कि प्रच्छन्न गलतियाँ जिनके लिए मामला बनाने के लिए उबाऊ तर्क दिए जाने की आवश्यकता है। यह प्रतीत होता है कि रिट याची द्वारा उन्मोचन आदेश को चुनौती कभी नहीं दी गयी थी। उन्मोचन आदेश को प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के रूप में रिट याचिका में अभिलेख पर लाया गया है और अपने प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट–F के रूप में संलग्न किया गया है। इसका परिशीलन दर्शाता है कि इसे लेफ्टिनेंट कर्नल द्वारा पारित किया गया है जो रिट याची कर्मचारी का ऑफिसिएटिंग कमांडिंग ऑफिसर है। पुनर्विलोकन याची द्वारा किया गया तर्क कि उन्मोचन आदेश मेजर जेनरल जी॰ ओ॰ सी॰, 23 इंफैंट्री डिविजन द्वारा पारित किया गया था, सारहीन है। मेजर जेनरल, जेनरल ऑफिसर कमांड, 23 इंफैंट्री डिविजन ने याची द्वारा दाखिल अपील खारिज कर दिया था। नियम 13 (3) (iii) (v) कर्मचारी के अन्य समस्त वर्गों/कोटि का उन्मोचन प्रावधानित करता है और सक्षम प्राधिकारी जो उन्मोचित करने के लिए प्राधिकृत है का पदनाम और उन्मोचन का तरीका भी

उसमें उपदर्शित किया गया है। उसमें विहित उन्मोचन के तरीका के मुताबिक, उन्मोचन आदेश पारित करने के पहले सक्षम प्राधिकारी अर्थात् सब एरिया कमांडर द्वारा संबंधित व्यक्ति/अधिकारी के अनुध्यात उन्मोचन के संबंध में कारण बताओ नोटिस जारी किए जाने की आवश्यकता है।

8. वर्तमान मामले में, पुनर्विलोकन याची पर कारण बताओ नोटिस तामील किया गया है जिसका प्रत्युत्तर देने में वह प्रकटत: विफल रहा और तत्पश्चात् उन्मोचन आदेश जारी किया गया था। नियम 14 के प्रावधान अवचार के कारण अधिकारी की सेवा की समाप्ति प्रावधानित करते हैं। किंतु याची प्रकटत: सिग्नलमैन/सिपाही था।

9. अत:, इन समस्त निवेदनों के प्रति निर्देश उपदर्शित करता है कि ये आधार अभिलेख पर प्रकट त्रुटि के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत नहीं आते हैं जो आक्षेपित निर्णय के पुनर्विलोकन की अपेक्षा करता हो। याची अन्य सारवान आधारों अथवा किसी अन्य गलतियों पर आक्षेपित निर्णय द्वारा प्रभावित हो सकता है जो अपील का विषय वस्तु हो सकते हैं। किंतु, आक्षेपित निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए कोई आधार नहीं बनाया गया है।

10. मामले के उस दृष्टिकोण में, आक्षेपित आदेश अभिलेख से प्रकट ऐसी किसी गलती से पीड़ित नहीं होता है जिसको पुनर्विलोकित करने की आवश्यकता है। तद्नुसार, पुनर्विलोकन याचिका खारिज की जाती है। किंतु, पुनर्विलोकन याचिका में प्रत्यर्थी और सी॰ एम॰ पी॰ सं॰ 134 वर्ष 2010 में याची ने दिनांक 25.2.2010 के निर्णय के पैरा 18 में दर्ज निष्कर्ष में सुधार इप्सित किया है जिसके अधीन यह अभिनिर्धारित किया गया है कि याची सेना नियमावली के मुताबिक उपदान के भुगतान का हकदार होगा। भारत संघ के अनुसार, सिविल विविध याचिका में यह गलती तथ्य की गलती है जो अभिलेख को देखते ही प्रकट है। किंतु, ऐसी गलती के सुधार के लिए समुचित उपचार पुनर्विलोकन इप्सित करना है। सिविल विविध याचिकाएँ केवल टंकण गलतियों के सुधार के लिए निर्देशित है जो अनवधानता के कारण प्रश्नगत निर्णय में आ जाती हैं।

11. अत:, वर्तमान सी॰ एम॰ पी॰ में इप्सित प्रार्थना भी प्रदान किए जाने योग्य नहीं है, अत: तद्नुसार, इसे भी खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

जाहिदा खातून एवं अन्य

cuke

मो॰ रफीक एवं अन्य

W.P. (C) No. 6550 of 2004. Decided on 4th July, 2013.

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963—धारा 47—संविदा की समाप्ति के लिए और निष्पादन मामले की खारिजी के लिए याचिका अस्वीकार किया जाना–शेष राशि अनुबंधित समय के भीतर जमा की गयी है जैसा न्यायालय द्वारा आदेश दिया गया है–इस पर अविश्वास करने का कारण नहीं है–रिट याचिका खारिज। (पैराएँ 7 से 12)

निर्णयज विधि.–(1982)1 SCC 539—Applied; AIR 1999 SC 918—Distinguished; AIR 2007 SC 1514—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. V. Sheonath, For the Petitioners; Mr. Ayush Aditya, For the Respondents.

आदेश

याचीगण ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान याचिका दाखिल करके निष्पादन केस सं॰ 6 वर्ष 1994 में विद्वान अपर मुंसिफ, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 18.9.2004 के आदेश (परिशिष्ट–4) को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा संविदा की समाप्ति के लिए और निष्पादन मामले की खारिजी के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 47 के अधीन निर्णीत ऋणी/याचीगण द्वारा दाखिल याचिका अस्वीकार कर दी गयी है।

2. याचीगण और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता विस्तारपूर्वक सुने गए और आक्षेपित आदेश तथा अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य सामग्रियों का परिशीलन किया गया।

3. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 47 के अधीन याचीगण द्वारा दाखिल याचिका अस्वीकार कर विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश आरंभ से ही अवैध और शून्य है। आगे यह निवेदन किया गया है कि याचीगण को अभिधान वाद सं॰ 53 वर्ष 1974 में पारित निर्णय और डिक्री से तीस दिनों के भीतर 925/- रुपयों की प्रतिफल की शेष राशि को जमा करने का निर्देश दिया गया था किंतु डिक्रीधारक अनुबंधित समय के भीतर इसे जमा करने में विफल रहा और आदेश के अननुपालन के लिए डिक्री निष्पादित नहीं की जा सकी थी।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अभिलेख पर मौजूद दस्तावेजों को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि प्रत्यर्थीगण ने एस॰ एल॰ पी॰ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद दिनांक 16.12.1998 को 925/- रुपयों की राशि जमा किया है; अत: उनका आचरण स्वयं उपदर्शित करता है कि प्रत्यर्थीगण अनुबंधित समय के भीतर उक्त राशि जमा करने में विफल रहे हैं जैसा इस न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया था। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदनों के समर्थन में **वी॰ एस॰ पलानीचामी चेट्टियार फर्म बनाम अलगप्पन एवं एक अन्य, AIR 1999 SC 918,** में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है।

5. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याचीगण ने मूल वादी को डिक्री के फल का आनंद लेने से वंचित करने के लिए समय–समय पर प्रयास किया और डिक्री के निष्पादन में रूकावट डालने का प्रयास किया। आगे यह निवेदन किया गया है कि याचीगण द्वारा उठाए गए आधार सारहीन और आधारहीन हैं। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश के मुताबिक अनुबंधित समय के भीतर अध्यपेक्षित राशि जमा की गयी थी। इसके समर्थन में प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट–A को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि 925/- रुपयों की राशि को दिनांक 30.3.1978 के सिविल चालान सं॰ 317 के तहत जमा किया गया था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान अपर मुंसिफ, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 18.9.2004 के आदेश के पैराग्राफ 3 को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि अवर न्यायालय ने समय पर धन जमा किए जाने के बारे में तथ्य को विचार में लिया था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि द्वितीय अपील सं॰ 134 वर्ष 1979 (R) का निर्णय दिए जाने के समय इस न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ 12 में संप्रेक्षित किया है कि वादी ने मूल न्यायालय द्वारा नियत अनुबंधित समय के भीतर शेष राशि जमा किया और यह संप्रेक्षण अभिलेख के सत्यापन के आधार पर किया गया था जैसा पैराग्राफ 3 में संप्रेक्षित किया गया है।

6. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों को भी निर्दिष्ट किया है और इन पर विश्वास किया है:–

(1) (1982)1 SCC 525 vkj

(2) AIR 2007 SC 1514.

7. पक्षों के पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्रियों के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि विनिर्दिष्ट पालन के वाद में प्रत्यर्थीगण–मूल वादी के पक्ष में निर्णय और डिक्री पारित की गयी थी। निर्णय और डिक्री के निबंधनानुसार, प्रत्यर्थीगण–मूल वादी को निर्णय की तिथि से तीस दिनों के भीतर 925/- रुपयों की शेष राशि जमा करने की आवश्यकता थी। प्रत्युत्तर के प्रति परिशिष्ट–B और प्रतिशपथ पत्र के प्रति परिशिष्ट–A फार्म सं॰ (M) 39 के पिछले भाग पर न्यायालय के नाजिर द्वारा किए गए पृष्ठांकन के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि उक्त राशि दिनांक 31.3.1978 को चालान सं॰ 317 के तहत जमा की गयी थी। उक्त तथ्य विद्वान मुंसिफ, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 18.9.2004 के आदेश से भी समर्थन पा रहा है। उक्त आदेश का पैराग्राफ 3 स्पष्टतः उपदर्शित करता है कि न्यायालय के आदेशानुसार उक्त शेष राशि अनुबंधित समय के भीतर जमा की गयी थी और अभिलेख के सत्यापन के आधार पर उक्त तथ्य संप्रेक्षित किया गया है। द्वितीय अपील सं॰ 134 वर्ष 1979 पर विचार करते हुए इस न्यायालय द्वारा समरुप संप्रेक्षण किया गया था। निर्णय के पैराग्राफ 12 के प्रासंगिक उद्धरण का पठन निम्नलिखित है:–

> *"12. Jh bdcky }kjk ;g n'kkZu dk {kh.k ç;kl fd;k x;k Fkk fd viu v'k dk ikyu dju e okfnh dh vkj l dkb r;kjh ugh Fkh D;kfd okfnh vucfèkr le; d Hkhrj 'k"k jkf'k tek dju e foQy jgk tlk U;k;ky; }kjk vkn'k fn;k x;k Fkk fdr vfHky[k d lR;kiu ij ;g ik;k tk ldk Fkk fd ,lk fuonu vkèkkjghu g D;kfd okfnh&çR;Fkh }kjk vucfèkr le; d Hkhrj jkf'k tek dh x;h Fkh tlk ey U;k;ky; }kjk fu;r fd;k x;k FkkA**"*

8. इस प्रकार, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करने पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि शेष राशि अनुबंधित समय के भीतर जमा की गयी थी जैसा न्यायालय द्वारा आदेश दिया गया था और उक्त तथ्य द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश में वर्णित किया गया है और वह भी अभिलेख के समुचित सत्यापन के बाद और इस पर अविश्वास करने का कारण नहीं है। मैंने उस निर्णय का भी परिशीलन किया है जिसे याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किया गया है जो **AIR 1999 SC 918** में प्रकाशित है। किंतु उक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं है।

9. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय, **(1982)1 SCC 539,** वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर प्रयोज्य है। उक्त निर्णय का पैरा 29 निम्नलिखित है:–

> *"29. çfØ;k U;k; d gr dk vkx y tku d fy, g vkj u fd bl dk èkhek dju d fy,A fMØh èkkjd dh ef'dy mld }kjk çkIr dh x;h fMØh d vulj.k e dCtk iku l vkjHk gkrh gA fu.khr _.kh leLr lHko vkifÙk;k }kjk fu"iknu dk ukdke dju dk ç;kl djrk gA mDr dfFkr ifjfLFkfr;k e] ge mPp U;k;ky; }kjk ikfjr fu.k; e dkb nk"k ugh ikr gA**"*

10. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत एक अन्य निर्णय, **AIR 2007 SC 1514,** भी वर्तमान मामले के निर्णय के लिए प्रासंगिक प्रतीत होता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित संप्रेक्षण एवं निर्णयाधार, जिन्हें उक्त निर्णय के पैराग्राफों 10 और 11 में कथित किया गया है, वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक है और इसलिए इन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

"10. fofufn"V ikyu dh fMØh dk vkjfHkd fMØh d :i e of.kr fd;k x;k gA vfèkfu;e dh èkkjk 28 d vèkhu 'kfDr Lofoodh g vkj U;k;ky; ,d ckj bldk ikfjr dj nu ij fMØh dk lkekU;r% ckfry ugh dj ldrk gA ;|fi fMØh ckfry dju dh 'kfDr fo|eku g] fQj Hkh vfèkfu;e dh èkkjk 28 fMØh d fucèkukulkj nkuk i{kk dk i.k vurk"k çkoèkkfur djrh gA U;k;ky; dh le; vkx c<ku dh 'kfDr lekIr ugh gkrh g ;|fi fopkj.k U;k;ky; u fMØh e igy fun'k fn;k gk fd dfri; frfFk rd 'k"k dher dk Hkxrku fd;k tk, vkj foQyrk ij okn [kkfjt gk tk,xkA bl èkkjk d vèkhu i;kT; 'kfDr Lofoodh gA

11. tlk çR;Fkx.k d fo}ku vfèkoDrk }kjk lgh çdkj l çfrokn fd;k x;k g] vc viuk;k x;k nf"Vdk.k fopkj.k U;k;ky; vkj mPp U;k;ky; d le{k ugh fy;k x;k FkkA dekj èkhjUn ekey (Åij) e fu.k; Li"Vr% rF;k ij lfHkUu fd, tku ;kX; gA oLrr% ml ekey e xkj fd;k x;k Fkk fd fMØh èkkjd dk ckj&ckj Hkxrku dk vk'oklu fn;k x;k FkkA ;gk olh fLFkfr ugh gA viuk;k x;k ,dek= nf"Vdk.k ;g Fkk fd le; fo'k"k d Hkhrj Hkxrku dju dk fun'k ugh gA ;g vfHkopu Li"Vr% vlik"k.kh; vkj vekU; g vkj lgh çdkj l vLohdkj fd;k x;k gA

11. उक्त कथित तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में और विधि के प्रासंगिक प्रावधानों तथा उक्त निर्दिष्ट निर्णयज विधि को देखते हुए याचीगण द्वारा दाखिल रिट याचिका में सार और गुणागुण नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है।

12. तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

परम्बी अनहोनी चाकोचन उर्फ परम्बी उनहोनी चाको उर्फ पी॰ ए॰ चाको

cuke

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 907 of 2013. Decided on 16th July, 2013.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 82 एवं 83 सह-पठित धाराएँ 313 एवं 317—आदेशिका जारी किया जाना—जमानत बंध पत्र का रद्दकरण—समन मामलों में जहाँ अभियुक्त की उपस्थिति पहले ही अभिमोचित कर दी गयी हो, न्यायालय उसका परीक्षण भी अभिमोचित कर सकता है—वर्तमान मामले में, उस दिन पर जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज करने के लिए मामला नियत किया गया था, याची विदेश में था और जैसा बताया गया है वह अभी भी विदेश में काम कर रहा है और निकट भविष्य में उसका न्यायालय में आना उसकी ओर से मुश्किल होगा—याची को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के प्रावधान का सहारा लेने के लिए प्रार्थना करने की स्वंतत्रता दी गयी। (पैराएँ 6, 9, 11, 12 एवं 13)

निर्णयज विधि.—AIR 2000 SC 3214—Relied.

अधिवक्तागण.—Mr. A.K. Das, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह आवेदन गोलमुरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 105 वर्ष 2003 में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 28.6.2012 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची का जमानत बंध पत्र रद्द कर दिया गया है और आगे यह दिनांक 9.10.2012 के आदेश तथा दिनांक 11.1.2013 के आदेश के विरुद्ध भी निर्देशित है। जिसके द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 82 और 83 के अधीन आदेशिका जारी करने का आदेश दिया गया है।

3. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री दास निवेदन करते हैं कि याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 279, 337, 427 के अधीन आरोपों का सामना करने के लिए विचारण पर रखा गया था। अभियोजन का मामला बंद कर दिए जाने के बाद याची को उपस्थित रहने के लिए कहा गया था ताकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसका बयान दर्ज किया जा सके। नियत की गयी तिथि पर अर्थात् दिनांक 28.6.2012 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 317 के अधीन याची को निजी उपस्थिति से छूट देने के लिए आवेदन दाखिल किया गया था। उस आवेदन को दाखिल करते हुए न्यायालय के समक्ष मौखिक रूप से निवेदन किया गया था कि न्यायालय में उपस्थित होना याची के लिए संभव नहीं है क्योंकि वह विदेश चला गया है किंतु न्यायालय ने इस पर सम्यक विचार किए बिना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 317 के अधीन दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया और उसी समय पर याची का जमानत बंध पत्र रद्द कर दिया गया था। बाद में, दंड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 82 और 83 के अधीन आदेशिकाओं को जारी करने का आदेश पारित किया गया था।

4. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि जब न्यायालय को यह संसूचित किया गया था कि न्यायालय में उपस्थित होना याची की ओर से मुश्किल है क्योंकि वह विदेश चला गया है, याची को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 की उपधारा (1)(b) के परन्तुक में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में अपने अधिवक्ता के माध्यम से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज करने की अनुमति दी जानी चाहिए थी क्योंकि इस प्रकार की अत्यावश्यकता में अपने अधिवक्ता के माध्यम से धारा 313 के अधीन अभियुक्त का बयान दर्ज करवाना न्यायालय की ओर से समुचित होगा और शायद विधानमंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता में इस प्रकार की अत्यावश्यकता को दृष्टि में रखते हुए संविधि में ऐसा प्रावधान रखना समुचित समझा था।

5. आगे यह निवेदन किया गया था कि जहाँ तक दिनांक 9.10.2012 और दिनांक 11.1.2013 के आदेशों का संबंध है, वे विधि के अनुरुप पारित किए गए प्रतीत नहीं होते हैं क्योंकि गिरफ्तारी के वारंट अथवा धारा 82 के अधीन जारी आदेशिका से संबंधित किसी रिपोर्ट के पहले दंड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 82 और 83 के अधीन आदेशिकाओं को जारी करने का आदेश पारित किया गया है।

6. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन याची का बयान दर्ज करने के लिए मामला नियत किया गया था, याची को नियत तिथि पर अर्थात् दिनांक 28.6.2012 को उपस्थित रहने का निर्देश दिया गया था किंतु याची व्यक्तिगत तौर पर उपस्थित नहीं हुआ था बल्कि व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने से याची को छूट देने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन आवेदन दाखिल किया गया था। याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, न्यायालय के समक्ष मौखिक रूप से कथन किया गया था कि याची अभी विदेश में है और निकट भविष्य में न्यायालय में आना उसके लिए संभव नहीं होगा। जब यह मामला उठाया गया था, न्यायालय द्वारा गंभीर रूप से विचार किया जाना चाहिए था कि या तो याची को व्यक्तिगत तौर पर उपस्थित होने के लिए पर्याप्त समय दिया जाय या फिर धारा 313 की उपधारा (1) के खंड (b) के परन्तुक के अधीन प्रावधान का सहारा लिया जाए।

7. ऐसी स्थिति में, न्यायालय याची के जमानत बंध पत्र को रद्द करने वाला दिनांक 28.6.2012 का आदेश पारित करने में न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है। आगे, दिनांक 9.10.2012 और दिनांक 11.1.2013 को पारित आदेश भी विधि के अनुरुप पारित किए गए प्रतीत नहीं होते है। तद्नुसार, उन आदेशों को अपास्त किया जाता है।

8. जहाँ तक अपने अधिवक्ता के माध्यम से अभियुक्त का बयान दर्ज करने से संबंधित निवेदन का संबंध है, मैं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 की उपधारा (1) के खंड (b) के परन्तुक में अंतर्विष्ट प्रावधान को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसका पठन निम्नलिखित है:

> *313(1)(b) vfHk;ktu d lkf{k;k dh ijh{kk fd, tku d i'pkr vkj vfHk;Dr l viuh ifrj{kk dju dh vi{kk fd, tku d io m l ekey d ckj e mll lkekkj.kr;k i'u djxk%*
>
> *ijUrq fdlh leu&ekey e] tgk U;k;ky; u vfHk;Dr dk o;fDrd gkftjh l vfHkefDr n nh g] ogk og [k.M (b) d vèkhu mldh ijh{kk l Hkh vfHkefDr n ldrk gA***

9. इसके परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि समन मामले में जहाँ अभियुक्त की उपस्थिति पहले ही अभिमोचित कर दी गयी है, न्यायालय खंड (b) के अधीन उसका परीक्षण भी अभिमोचित कर सकता है। प्रश्न उठता है कि क्या उक्त प्रावधान का लाभ अभियुक्त को दिया जा सकता है जब समन मामले में विचारणीय अथवा किसी अन्य अपराध में भी उसकी व्यक्तिगत तौर पर उपस्थिति पहले ही अभिमोचित कर दी गयी थी।

10. बासवराज आर० पाटिल एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, AIR 2000 SC 3214, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न विचारार्थं आया जहाँ माननीय न्यायालय ने प्रश्न पूछा, ''कम गंभीर अपराधों को अंतर्ग्रस्त करने वाले मामलों में भी क्या न्यायालय अभियुक्त की ओर मदद का हाथ नहीं बढ़ा सकता है जो ऐसी मदद के योग्य होते हुए दुविधा में पड़ा हुआ है? ऐसा प्रश्न धारा 313 की उपधारा (1) के खंड (b) के परन्तुक में अंतर्विष्ट प्रावधान को ध्यान में लेने के बाद रखा गया था जो समन मामलों को निर्दिष्ट करता है। न्यायालय ने प्रश्न रखने के बाद निम्नलिखित दर्ज किया:–

> *^^lfgrk dh èkkjk 243 (1) vfHk;Dr] tk ifyl fjikV ij lLFkkfir okjV ekey d fopkj.k e vrxLr g] dk dkbZ fyf[kr dFku nu d fy, l{ke cukrh gA tc ,lk dkbZ c;ku U;k;ky; e nkf[ky fd;k tkrk g] U;k;ky; bl ekey d vfHky[k dk Hkkx cuku d fy, ckè; gA Hky gh ifyl fjikV ij ,lk ekeyk lLFkkfir ugh fd;k tkrk g] vfHk;Dr d ikl ogh vfèkdkj (èkkjk 247 d rgr) gA l= U;k;ky; }kjk vuU; :i l fopkj.kh; vijkèkk e vrxLr vfHk;Dr Hkh fyf[kr dFku nkf[ky dju d ,l vfèkdkj [lfgrk dh èkkjk 233 (2)] dk ç;kx dj ldrk gA ;g lkekU; Kku dh ckr g fd vfèkdrj] ;fn leLr ugh] ,l c;ku vfHk;Dr d vfèkoDrk }kjk r;kj fd, tkr gA ;fn ,l fyf[kr c;kuk dk çR;{kr% vfHk;Dr l fuxfer c;kuk d :i e ijh rjg ekuk tk ldrk g] fo'k"k vkdfLedrkvk e bl d ckn of.kr rjhd e mld }kjk fn, x, mÙkjk dk D;k ugh ogh eY; fn;k tk,A***
>
> *^^ge le>r g fd ,lh fo'k"k vR;ko';drkvk d lcèk e 0;ogkfjd vkj ekuoh; jo;k viukuk vif{kr gA lfgrk dh èkkjk 313 d [kM (b) e 'kCn ^^djxk** dh 0;k[;k U;k;ky; ij ckè;dkjh d :i e djuh gkxh vkj bldk vuikyu fd;k tkuk pkfg, tc ;g vfHk;Dr d ykHk d fy, gA fdr tc ;g mld xHkhj çfrdyrk vkj vykHk d fy, dke djrk g] U;k;ky; dk lefpr*

ekeyk e] mnkgj.kLo#i] tc vfHk;Dr U;k;ky; dk lr"V djrk g fd og Hkkjh 0;; lgu d flok, U;k;ky; rd igpu e v{ke g vFkok fd og 'kkjhfjd v{kerk vFkok ,Ih fdlh vU; dfBukb d dkj.k ych ;k=k dju e v{ke g] mldk ,Ih dfBukb l eDr dj ldrk g vkj mlh le; ij lkjoku rjhd l lfgrk dh èkkjk 313 e vko';drk dk vuikyu dju d fy, dne mBk ldrk gA ,Ik dl çkIr fd;k tk ldrk Fkk\

^^;fn vfHk;Dr (ftl igy gh U;k;ky; e futh :i l mifLFkr gku l NV fn;k x;k g) ;g çkFkuk djr g, U;k;ky; d ikl vkonu nrk g fd U;k;kfpr vR;ko';drk d dkj.k U;k;ky; e mldh o;fDrd mifLFkfr d fcuk ç'uk dk mÙkj nu dh vuefr nh tk ldrh g] U;k;ky; ml ij lefpr vkn'kk dk ikfjr dj ldrk g ijUr ;g fd ,Ik vkonu d lkFk fuEufyf[kr ekeyk dk vrfo"V djr g, Lo; vfHk;Dr }kjk 'kiFk ij fn, x, 'kiFk i= lyXu g% (d) ,l mÙkjk dk nu d fy, U;k;ky; e l'kjhj mifLFkr gku e mldh okLrfod ef'dyk d çfr U;k;ky; dk lr"V dju d fy, rF;k dk fooj.k(([k) vk'oklu fd ,Ih iNrkN d nkjku mldh o;fDrd mifLFkfr dk vfHkekfpr djd fdlh rjhd l ml ij çfrdyrk dkfjr ugh gkxh((x) opu fd og ekey d fdlh pj.k ij ml vkèkkj ij dkb f'kdk;r ugh djxkA**

^^;fn U;k;ky; mDr vkonu e vfHk;Dr }kjk fn, x, c;kuk vkj 'kiFk i= dh okLrfodrk l lr"V g] U;k;ky; dk mld vfèkoDrk dk (ç'uk] ftUg U;k;ky; lfgrk dh èkkjk 313 d vèkhu ml iN ldrk g] dk vrfo"V dju oky) ç'u lph dh vkifr dju vkj le; fu;r dju ftld Hkhrj bl lefpr :i l vfHkçekf.kr 'kiFki= fd o mÙkj Lo; vfHk;Dr }kjk fn, x, g d lkFk vfHk;Dr }kjk lE;d :i l fn, x, mÙkj dk ykVkuk gkxkA ml mÙkj fn, x, ç'u lph d çR;d 'khV ij viuk gLrk{kj djuk pkfg,A fdr] ;fn og ç'uk e l fdlh dk dkb mÙkj nuk ugh pkgrk g] og ç'ulph e lefpr LFkku ij ml rF; dk minf'kr dju d fy, Lor= gA (koèkkuh crkj U;k;ky; mÙkj d fy, vfHk;Dr dk bldh vkifr dju d igy ç'u lph dh Nk;k ifrfyfi vFkok dkcu çfr j[k ldrk gA ;fn vfHk;Dr lE;d :i l mÙkj fn, x, ç'u lph dk iokDrkulkj le; vFkok U;k;ky; }kjk çnku fd, x, c<k; x, le; d Hkhrj ykVku e foQy jgrk g] og ,Ih iNrkN d nkjku U;k;ky; l futh NV bfllr dju d viu vfèkdkj dk leiâr dj nxkA**

11. अंतत: न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि आपवादिक अत्यावश्यकता में ऐसा रास्ता अपनाया जाता है, यह संहिता की धारा 313 में परिकल्पित विधायी आशय का उल्लंघन नहीं करेगा।

12. वर्तमान मामले में, जैसा तथ्य से प्रतीत होता है कि उस दिन जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज करने के लिए मामला नियत किया गया था, याची विदेश में था और जैसा बताया गया है वह अभी भी विदेश में काम कर रहा है, अत: निकट भविष्य में न्यायालय में आना उसकी ओर से मुश्किल होगा।

13. इस विशेष अत्यावश्यकता के अधीन, याची उक्त प्रावधान का सहारा लेने के लिए न्यायालय के समक्ष प्रार्थना कर सकता है ताकि न्यायालय उक्त प्रावधान को और उपर निर्दिष्ट निर्णय को दृष्टि में रखते हुए आदेश पारित कर सके।

14. तद्नुसार, यह आवेदन निपटाया जाता है।